सेठ भोलाराम सेकसरिया-स्मारक ग्रन्थमाला—९

हिंदी के कृष्ण भक्ति कालीन साहित्य में संगीत

लेखिका

उषा गुप्ता, एम० ए०, पी-एच० डी०

हिंदी विभाग

लखनऊ विश्वविद्यालय

प्रकाशक

लखनऊ विश्वविद्यालय

प्रथमावृत्ति ११००] [विक्रमाब्द २०१६

अम्मी

और

पापा को

कृतज्ञता प्रकाश

श्रीमान् सेठ शुभकरन जी सेकसरिया ने लखनऊ विश्वविद्यालय की रजत जयंती के अवसर पर बिसवाँ शुगर फैक्टरी की ओर से बीस सहस्र रुपये का दान देकर हिंदीविभाग की सहायता की है। सेठ जी का यह दान उनके विशेष हिंदी अनुराग का द्योतक है। इस धन का उपयोग हिंदी मे उच्च कोटि के मौलिक एवं गवेषणात्मक ग्रंथों के प्रकाशन के लिये किया जा रहा है, जो श्री सेठ शुभकरन सेकसरिया जी के पिता के नाम पर 'सेठ भोलानाथ सेकसरिया स्मारक ग्रथमाला' में संग्रथित होंगे। हमें आशा है कि यह ग्रंथमाला हिंदी साहित्य के भंडार को समृद्ध करके ज्ञानवृद्धि मे सहायक होगी। श्री सेठ शुभकरन जी की इस अनुकरणीय उदारता के लिये हम अपनी हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करते हैं।

दीनदयालु गुप्त
प्रोफेसर तथा अध्यक्ष, हिंदी तथा आधुनिक
भारतीय भाषा-विभाग,
लखनऊ विश्वविद्यालय

विषयानुक्रमणिका

प्रथम अध्याय

(प्रवेश १—४९)

दूसरा अध्याय

(संगीत और साहित्य ५०—१००)

तृतीय अध्याय

चतुर्थ अध्याय

पंचम अध्याय

षष्ठ अध्याय

(कृष्णभक्तिकालीन साहित्य की समीक्षा संगीत सिद्धांतों के निकष पर २१७-२८६)

सप्तम अध्याय .

(कृष्णभक्तिकालीन संगीत की भाषागत विशेषतायें २८७-३२८)

अष्टम अध्याय

(लय, ताल और गायन प्रणाली के आधार पर कृष्णभक्तिकालीन साहित्य में प्रयुक्त पदों की समीक्षा ३२९-३६४)

परिशिष्ट

उपोद्घात

संगीत मे चंचल मन को मुग्ध करने की अमोघ शक्ति है, इस तथ्य को सभी मानते है। इसी मोहिनी शक्ति के कारण भक्तो ने भी चित्तवृत्ति के लिए अन्य साधनों के साथ संगीत को भी साधन रूप मे अपनाया है। यो साधारण जीवन मे भी सगीत की महत्ता और लोक प्रियता सर्व विदित है। मनुष्य तो क्या पशु जगत भी सगीत की स्वर-लहरी के वशीभूत हो जाता है। सगीत की रमणीयता के कारण ही बहु विषयक साहित्य मे कवियो ने इसका समावेश किया है। वाक्य की रसात्मकता भाव पर तो निर्भर रहती ही है परन्तु वाक्य की लय और उसकी सगीतमयी भाषा भी उस रसात्मकता को द्विगुणित कर देती है। हिन्दी साहित्य के निर्गुण-सगुण सन्तो, धर्म-प्रचारको तथा लौकिक कवियो ने अपने भाव और विचारो को सगीतमयी वाणी मे व्यक्त किया है। हिन्दी साहित्य के मध्यकालीन कृष्ण-भक्तो के काव्य मे प्रेम और सौन्दर्य के साथ सगीत का सुखद समन्वय हुआ है। कृष्ण-भक्तों ने अपनी विनयं, अपनी अकिचनता, अपनी सासारिक प्रतारणाओ की वेदना, अपने आराध्य-कृष्ण का माहात्म्य, अपनी शरणागति की भावनाये तथा उनके चरित्र, सगीत की सरसता के सहारे व्यक्त किये है। उनके काव्य में संगीत-तत्व का विशिष्ट समावेश है। उन्होने लोक और शास्त्रीय दोनो प्रकार के संगीत का अध्ययन किया था और दोनो प्रकार के संगीत को उन्होने अपनी भावना की अभिव्यंजना का माध्यम बनाया था। गीत गोविन्द के रचयिता जयदेव, विद्यापति, अष्टछाप के सूरदास, परमानन्ददास, कुभनदास, नन्ददास, गोविन्दस्वामी, स्वामी हरिदास, श्री हितहरिवंश, मीरा आदि भक्त-जन उच्च कोटि के शास्त्रीय गायक थे। अष्टछाप की तो कीर्तन-सेवा उनकी दिनचर्या का एक अग ही थी।

कृष्ण की मोहिनी मुरली के स्वर के साथ कृष्णभक्तो का मधुर स्वर भी मुखरित है। वैष्णवो के वार्ता-साहित्य से विदित है कि अकबर जैसे. विविध कला प्रेमी और कला-श्रयदाता इन भक्तों के पदगायन सुनने के इच्छुक रहते थे। अकबर के दरबार के प्रमुख गायक तानसेन ने हरिदास स्वामी तथा गोविन्दस्वामी से गान विद्या सीखी थी। यों तो हिन्दी का अधिकांश काव्य वृत्तों में बद्ध होने के कारण संगीतमय है परन्तु कृष्णभक्ति का साहित्य सरसता और मनमोहकता का एक अनुपम भंडार है।

बहुत समय से मै चाहता था कि हिन्दी कवियो के लोक और शास्त्रीय संगीत तत्व का भी अध्ययन हो। इसी भाव से प्रेरित होकर मैंने सन् १९५२–५३ मे कुमारी (अब श्रीमती) उषा गुप्ता को उनकी संगीत-प्रियता और सगीत की विशिष्ट रुचि के कारण, एम० ए० द्वितीय वर्ष के निबन्ध का विषय संगीत से सम्बन्धित दिया। यह निबन्ध इन्होंने योग्यता और अनुशीलन के साथ लिखा। फिर १९५३ मे मैंने इन्हे "हिदी के कृष्ण भक्ति कालीन साहित्य मे संगीत" विषय पी-एच० डी० हेतु दिया और हमारे विभाग के अनुभवी अध्यापक डा० विपिन विहारी त्रिवेदी इस कार्य के निर्देशक नियुक्त हुए। यह कहते हुए मुझे बड़ा हर्ष है कि डा० त्रिवेदी के सुयोग्य निर्देशन मे श्रीमती गुप्ता को इस विश्वविद्यालय ने सन् १९५५ ई० मे पी-एच० डी० की उपाधि प्रदान की।

विदुषी लेखिका ने अपनी इस अनुसधान कृति को आठ भागों में विभाजित किया है। इसके आरम्भ मे कृष्णभक्ति और उसके सम्प्रदायो पर प्रकाश डालते हुए कृष्ण-भक्तो की सगीत-प्रेरणा और उनके संगीत-ज्ञान का विवरण दिया गया है। इनके पदो मे लोक और शास्त्रीय सगीन-तत्वो को बताते हुए, इनकी संगीतमयी भाषा का विश्लेषण भी किया गया है। इन भक्तो के साहित्य को श्रीमती डा० गुप्ता ने ताल, स्वर और विविध गायन-पद्धति की कसौटी पर भी परखा है। राग-रागिनियो की पुरातन स्वरूप-धारणा और चित्रो के आधार से भी अपनी विवेचना को लेखिका ने सारगर्भित बनाया है। छपे ग्रन्थो के अतिरिक्त हस्तलिखित अप्रकाशित सामग्री की सहायता से भी यह अध्ययन मौलिक और महत्वपूर्ण हो गया है। मै इस कृति के लिए श्रीमती डा० गुप्ता और उनके निर्देशक डा० त्रिवेदी दोनो को बधाई देता हूँ। श्रीमती गुप्ता अपने विषय को डी० लिट० उपाधि के लिये भी बढा रही हैं और मुझे आशा है कि वे अपने इस संकल्प मे भी सफल होगी। वे प्रशसा और शुभ कामना की पात्री है। लखनऊ विश्वविद्यालय से इस ग्रन्थ को प्रकाशित करते हुए मुझे बड़ा हर्ष है।

दीनदयालु गुप्त

डा० दीनदयालु गुप्त,
एम०ए०, एल०एल०बी०, डी० लिट्०,
प्रोफ़ेसर तथा अध्यक्ष,
हिन्दी तथा आधुनिक भारतीय-भाषा-विभाग,
लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ।

प्रस्तावना

राग और विराग, अमर्ष और प्रसन्नता, हास्य और रुदन, उत्साह और निराशा, साहस और भय के सम-विषम क्षणों मे व्यक्ति के आदोलित मन से अनायास जो स्वसवेद्य निरपेक्ष उद्गार स्वरित हुए उनको उसने क्रमशः परिशीलन कर, अन्य अनुकूल स्वरों से अनुस्यूत कर तथा उत्तरोत्तर विचार और परीक्षण साधना द्वारा परसंवेद्य बना सकने में गायन के माध्यम से सफलता प्राप्त की। मुख से स्वर निसृत होने के साथ ही उसने क्षण विशेषो मे यह भी लक्ष्य किया होगा कि उसके हाथ, पैर, कटि आदि एक विशेष ढंग से थिरकते है तथा कपोल, चक्षु, भृकुटि आदि भी विशेष रूप से गति लेने लगते है जिनका परिज्ञान और अध्ययन नृत्य की मुद्राओ द्वारा गायन को सहायता प्रदान करने के लिये नियोजित हुआ होगा। गायन और नृत्य को सुव्यवस्थित रूप प्रदान हेतु कालांतर में वाद्य यत्रों का अवलब गवेषित हुआ होगा। किस प्रकार गायन, नृत्य तथा वादन कलाये विकसित होकर संगीत नाम धारण कर एक सक्षम कला मे परिणत हुए यह एक स्वतत्र और विस्तृत विवेचन का प्रसंग है परन्तु इतना निर्विवाद है कि संगीत एक शास्त्रीय कला बन कर मानव को लगभग प्रत्येक क्षेत्र मे सहारा देने के लिये अवतरित हुआ।

जिस प्रकार हास्य और विनोद किसी मानव समुदाय या वर्ग के सांस्कृतिक स्तर के अनुरूप होते है उसी प्रकार किसी जाति अथवा देश का सगीत सुनकर हम उसकी सांस्कृतिक समृद्धि का पता पा सकते है। प्रत्येक जाति, वर्ग और देश के संगीत जलवायु और वातावरण से प्रभावित होने के कारण अपनी-अपनी विशेषता रखते है। वैसे इस समय पाश्चात्य और पूर्वी ये ही दो सगीत की प्रसिद्ध प्रणालियाँ है जिनका साधारण अभिज्ञान स्वरों की विषमता (disharmony) तथा समता (harmony) के विधान द्वारा सहज ही किया जा सकता है।

मानव की आदि दुर्बलता है अवलम्ब और प्रेरणा के स्रोत की चिरंतन खोज जिससे उसे सतत अग्रसर होने की शक्ति प्राप्त होती रहे। और प्रेम ने उसकी अभिलाषा की पूर्ति की है। यदि प्रेम लौकिक हुआ तो मानव ने लोक मे अलौकिक कार्य कर दिखाये और यदि वह ईश्वरोन्मुख हुआ तो अध्यात्म क्षेत्र का दिव्य रूप वह दूसरों के लिये भी सुलभ कर सका। अनुसंधान कर्ता यदि खोज करे तो उन्हे अखिल विश्व के साहित्य और सगीत में प्रेम के इन्ही उभय पक्षो की कृतियाँ अन्य भावो तथा संवेदनाओ की अपेक्षा अधिक मिलेगी। लौकिक प्रेम से अलौकिक प्रेम में अपेक्षाकृत अधिक आस्था, स्थायित्व और शांति पाई जाती है क्योंकि वहाँ परपक्ष की शाश्वत-असीम अज्ञेयता के कारण मनोनुकूल स्वकल्पित आशा ही आशा और नितांत सहानुभूति रहती है इसी मे बहुधा निराशा तथा उत्पीडन के क्षणो मे स्थूल के प्रति प्रेम परिवर्तित होकर सूक्ष्म अदृश्य सत्ता के प्रति भी हो जाता है। परमात्मा के प्रति प्रीति और प्रतीति चाहे किसी प्रलोभन वश हो या किसी अशक्तता वश अथवा भर दी गई निष्ठा के कारण, वह इतनी प्रबल होती है कि सब ओर से निराश और विदग्ध मानव अंततः उसी मे

आकर त्राण पाता है। यही कारण है धार्मिक साहित्य की विपुलता का। और इस आध्यात्मिक रचना को जहाँ और जब संगीत का बल मिला है वह अत्यत मर्मस्पर्शिनी हो गई है।

प्राकृत-अपभ्रंश युग मे शैल्यूष और मागधो द्वारा साधारण जन-मन को रिझाने के लिये रचित डफली पर गाये जाने वाले गेय मात्रिक छंदो ने काव्य-कृतियो हेतु नवीन द्वार उन्मुक्त कर दिये थे। हिंदी साहित्य ने अपने उत्तराधिकार में यह ऐसी पैतृक सम्पत्ति प्राप्त की जिसका वह आजतक सदुपयोग करता चला आ रहा है। अपने युगारभ से ही हिंदी की रचनाओ मे मात्रिक वृत्तो को अपनाने के कारण गेय गुण की सम्पन्नता रही है। जहाँ तक धार्मिक साहित्य का सबध है हिदी का संतकाव्य जिसमे निर्गुणोपासक कबीर प्रभृति चिन्तको के सरस स्वाभाविक पद, जायसी आदि सूफी सतो की गेय दोहा-चौपाई पद्धति पर प्रणीत प्रबध काव्य तथा सगुणोपासक कृष्णभक्तो के सख्य भाव के अनन्य एकातिक प्रणय के पद और राम भक्त तुलसी के दास्य भाव के विनय और दैन्य गर्भित पद एव उनका गेय मानस—सगीत के दृष्टिकोण से दैवी वरदान है।

कृष्ण का चरित्र आदि से ही भारत मे परम आकर्षण का केन्द्र विंदु रहा है। श्रीमद्भागवत्, गीतगोविंद, विद्यापति पदावली आदि के माध्यम से उसने वह रूप प्रस्फुटित किया कि उससे मधुर भक्ति के अकुर फूटे। हिंदी के कृष्णभक्तिकालीन साहित्य मे सूर और मीरा प्रभृति भक्तों की कृतियाँ उत्कृष्ट कोटि के सगीत की रचनायें है। ये अनन्य भक्त काव्य-गुणो से तो पूर्ण थे ही संगीत-शास्त्र मे भी पारंगत थे। सगीत और काव्य की मर्मज्ञता तथा सच्चे भक्त की तन्मयता और वीतराग भावना लक्ष्यकर ही सूरदास, कुभनदास, नंददास आदि भक्तो को आचार्यो ने अपना शिष्य बनाया था। इसमे कोई सन्देह नही है कि कृष्ण-भक्ति के प्रचार में इन भक्त कवियो के संगीत ने जादू का काम किया।

गायन मे स्वर और ताल साधना प्रधान होती है और काव्य मे शब्द-साधना के साथ वर्ण एव मात्रा गणना। गायक शब्द का मुखापेक्षी नही होता और यही कारण है कि बहुधा हम शास्त्रीय गायकी मे शब्दों की ऐसी तोड-मरोड़ पाते है कि वास्तविक पद के अर्थ का ही पता नही लग पाता। परन्तु गायन की इस विशेषता से परिचित संगीतज्ञ-कवियो के पद गायक के स्वरो मे बँधकर ठीक उतरते है। कृष्णभक्तिकालीन काव्य को ऐसे अनेक सगीतज्ञ कवियो का योग मिला जिससे अभिभूत हो उनकी कृत्रियो का आकलन करने के लिए डॉ० उषा गुप्ता ने उनके अध्ययन को अपने निबंध का विषय बनाया और भातखंडे सगीत-विश्वविद्यालय मे प्राप्त सगीत-शिक्षा उनकी सहायिका बनी।

'निज कवित्त केहि लाग न नीका' को आधारित कर मै अपनी प्रिय शिष्या के प्रस्तुत निरभ्यवेक्षण के विषय में कुछ न कहना ही समुचित समझता हूँ। 'सतनि जीहा जासु' सहृदय समालोचक विद्वत् वर्ग के विचारार्थ कृति प्रस्तुत है, वे ही इसका निर्णय करे।

सहायक प्रोफेसर
लखनऊ विश्वविद्यालय
१ जनवरी १९६०

विपिनविहारी त्रिवेदी

भूमिका

पुरुष-नारी-सौन्दर्य, ईश्वरोपासना, जलकल ध्वनियाँ, पक्षियो के कलरव गान आदि संगीत के प्रेरक तत्व कहे जाते है। संगीत को विश्व के पदार्थो में अभिनवीकरण का श्रेय मिला है। चिरकाल में इसने मानव-मस्तिष्क मे नवीन रंग भरकर भावनाओं की मधुरिमा की सृष्टि की तथा निराशा के प्रागण मे आशा और आनंद के उत्स पैदा कर दिये और कालान्तर में यह विश्व का नैतिक विधान बनकर लोक को दिव्य सौन्दर्य प्रदान करने वाला हुआ। शाति और आनंद की खोज ने भी संगीत को मानव के लिये सुलभ किया। निराशा, अवसाद और दु ख के क्षणो मे अवलम्ब हेतु तथा आशा के प्रतिफलित और आकाक्षा की पूर्ति पर स्वाभाविक आह्लाद उदग्र निर्झर ही क्रमशः विकसित होकर संपुष्ट सगीत में परिवर्तित हुए जिसने आत्मिक सौन्दर्य का उद्घाटन कर परानंद की राशि से साक्षात् करने का समर्थ सम्बल दिया।

" 'संगीत' और 'काव्य' कलात्मक और रसात्मक होते हुए भी मूलत· एक दूसरे से भिन्न है। संगीत मे रस की अवतारणा जहाँ ध्वनि के 'ताल' और 'स्वर' के कलात्मक आरोह और अवरोह के माध्यम से उपस्थित कर दी जाती है वही काव्य मे रस की निष्पत्ति शब्द शक्ति के छदबद्ध कलात्मक सयम से सिद्ध होती है।" (यह सत्य है कि साहित्य और सगीत पृथक्-पृथक् भी सच्चे आनद को प्रदान करने वाले है। बिना संगीत के काव्य तथा बिना काव्य के उत्कृष्ट कोटि के संगीत का सृजन हो सकता है किंतु ऐसी अवस्था में एक के बिना दूसरा अपूर्ण ज्ञात होता है। साहित्य तथा संगीत कला अपना स्वतंत्र अस्तित्व रखते हुए भी अनेक अंशो मे अन्योन्याश्रित है अतः दोनों का सुन्दर समन्वय सोने मे सुगध उत्पन्न कर देता है। जहाँ साहित्य और संगीत दोनो मिलकर स्वर्गीय आनद प्रदान करते है वहाँ की छटा अनुपम हो जाती है।)

श्रेष्ठ काव्य मे संगीत का स्थान अत्यन्त महत्वपूर्ण है। यों तो कवि बडा समर्थ कलाकार होता हैं। वह श्रोता अथवा पाठक को अपनी कल्पना के थिरकते पंखों पर बैठा कर स्वर्णिम लोक में विचरण करवाता है। अन्य कलाये अपने उपकरणों के कारण बद्ध है

किंतु कवि के लिए भी एक बंधन है। उसके शब्दों का प्रभाव उन व्यक्तियो तक ही सीमित होता है जो उसकी भाषा से परिचित तथा अभ्यस्त हों। संगीत इस परिधि से भी उन्मुक्त है। संगीत तो विश्वव्यापी कला है। उच्चतम संगीत का प्रभाव देश, काल और व्यक्ति मात्र तक ही सीमित नही रहता। स्वरो की भाषा सार्वभौमिक है। सुन्दर स्वरों मे आबद्ध संगीत के राग किसी भाषा विशेष के गान न होकर सृष्टि के अमर संकेत होते है जो नादमाधुर्य के सहारे जड तथा चेतन दोनो को आत्मविभोर और लीन कर देने की अपूर्व क्षमता रखते हैं। दु:ख और वियोग पड़ने पर जब मानव के अन्तराल की पीड़ा अश्रु-सरोवर के रूप में उमग उठी तब आनंद और संयोग के क्षणो मे उसके अन्त:करण का सुख-स्रोत हास्य-निर्झर रूप मे विवृत हुआ। इन्ही दोनो परिस्थितियो मे कोकिला, पपीहे, मयूर, तीतर, मैना प्रभृति पक्षियो के सुने हुए एवं अनुकरण किये हुए स्वरों की स्मृति गति और ताल में बँधकर कभी विहाग के रूप में प्रकट हुई और कभी जयजयवंती रूप मे स्फुरित। इसी प्रकार रागो की साधना ने कालांतर में मेघराग द्वारा विदग्ध वसुधा को जल-प्लावित किया, दीपक और मालकोश द्वारा ऊष्मा पैदा करके दीप ही नही जलाये वरन् पत्थरो तक को पिघला कर अशिव का संहार करके शिव की रक्षा कर विश्व को शंकरत्व दिया एवं तोड़ी द्वारा हरिण सदृश जड पशुओं को भी किकर्त्तव्यविमूढ करके अपनी ओर प्रबल आकर्षण के जाल से खीच लिया। (साहित्य में काव्य ने जब सगीत से परिणय किया तो वह अनजाने ही जगमगा उठा तथा उसमे विवेचित भाव एक अज्ञात परन्तु समर्थ शक्ति से समन्वित होकर श्रोता पर अनुकूल प्रभाव डालने मे क्षम हुए। इसीसे अपने काव्य को सार्वभौमता और माधुर्य गुणों से अलकृत करने के लिए कवि ने संगीत का आश्रय ग्रहण किया। अनुभूति की तन्मयता मे कलाओं का स्वरूप विभिन्न नहीं रहता। कवि संगीतज्ञ बन जाता है। प्रत्येक शब्द मे ध्वनि गूंजने लगती है अक्षर-अक्षर गुनगुनाने लगते है। यही कला का सुन्दरतम स्वरूप है जहाँ सौदर्य अपने श्रेष्ठतम् रूप मे प्रस्फुटित होता है। मधुरिमा उसका गुण नहीं वरन् अनिवार्य तत्व बन जाती है। काव्य और संगीत मौन होकर परस्पर एक दूसरे का आलिंगन करते है। सौदर्य की इस सम्मिलित द्विगुणित नूतन छवि मे दोनो एक दूसरे को पहचान भी नही पाते। वस्तुत काव्य स्वत: सगीत बन जाता है। इसी को लक्ष्य कर कहा जाता है कि 'कविता शब्दों के रूप मे सगीत और संगीत स्वर के रूप मे कविता है' तथा 'सगीत साहित्य का प्रतिरूप है।' अत: संगीत को कविता से विलग करना अथवा कविता का संगीतमय रूप नष्ट कर देना उसकी दिव्य शक्ति, आह्लादकारी प्रभाव और अपूर्व महत्व को न्यून कर देना है।)

भारतीय संगीत कला प्रारम्भ से ही धर्म का आधार लेकर उसी की छत्रछाया मे विकसित हुई है। उसके अंग प्रत्यंग पर अध्यात्मिकता की अमिट छाप अंकित है। हमारी संगीत कला का प्रधान लक्ष्य तथा चरम आदर्श कभी भी पार्थिव आनंद की तृप्ति, कोई वैषयिक ऐश्वर्य लाभ मात्र, शृंगारिकता को उद्दीप्त करना और विषयोपभोग मे प्रवृत्त कराना नही रहा है वरन् उसका उच्चतम ध्येय आत्मा की मुक्ति, आत्मा का परमात्मा से मिलन, परम

शाति तथा मोक्ष को प्रदान करना माना गया है । सगीत मे ईश्वर से साक्षात्कार कराने की असीम शक्ति निहित है । संगीत के स्वर मन को एकाग्र करके इतना अधिक लीन, तन्मय और स्थिर कर देते है कि हृदय की समस्त चचल वृत्तियाँ केन्द्रीभूत हो कर अन्तर्मुख हो जाती है और इधर-उधर भाग नही पाती । अतः चचल चित्तवृत्ति के निरोध, साध्य के साथ एकीकरण और भक्ति में तन्मयता लाने के लिए संगीत के स्वरो मे तल्लीन होना अनिवार्य है ।

भारत मे पूर्व पाषाण-काल का गाना स्वरो पर आधारित था । उत्तर पाषाण-काल मे सामूहिक संगीत की उत्पत्ति हुई । भाषा ने आँखे खोली तथा ऊँची सभ्यता और सस्कृति वाले ताम्रकाल मे संगीत को धार्मिक चेतना मिली और लौहकाल में आर्यो ने द्रविड़ों से संगीत की अलभ्य धरोहर पाई ।

(वैदिक-युग मे प्रत्येक परिवार मे संगीत का उत्कृष्ट स्थान था । समन सदृश आयोजन इसके विकास मे साधक बने । इसी युग में संगीत के गर्भ से नाटक प्रादुर्भूत हुआ । अपूर्व पवित्रता ही इस युग के संगीत की विशेषता थी । यहाँ भक्ति और संगीत घनिष्ट रूप से सम्बद्ध ही नही हुए वरन् सगीत पूर्ण रूपेण धर्म का प्राण बन गया । स्वर-साधना के गुण से अभिषिक्त होकर सगीत जीवन को विकास पथ पर ले जाने का प्रमुख साधन बनकर यज्ञो के रूप मे प्रस्फुटित हुआ ।)

पौराणिक-युग मे वैदिक-समन समज्जा के रूप मे परिणत हुआ जिसमे सगीत-प्रतिभा की होडे दर्शनीय थी । कठ-सगीत ने त्वरित गति से विकास की ओर चरण बढाये । समाज मे नाटक आदृत हुए । पुरुष और नारी के प्रेम की आधार शिला बनकर तथा वाह्य उपादानों पर अधिक ध्यान देने वाला संगीत विधान पूर्ण होकर आत्मोत्थान का आधार मनोनीत हुआ ।

रामायण-काल मे सार्वजनिकता की प्रतिष्ठा उपलब्ध करके सगीत की चारित्रिक मर्यादा की रक्षा का प्रशस्त संबल स्वीकृत हुआ ।

महाभारत-काल मे अनेक प्रकार के नृत्यों का सृजन हुआ, संगीत और धर्म और अधिक समीप हुए, सगीत प्रतिभा-युक्त नारी आदरणीया बनी और संगीत अपने विशद-निर्मल रूप मे कृष्ण की मोहक वेणु निनादित करता अपने उच्चतम रूप को प्राप्त हुआ ।

पाणिनि-युग मे सगीतिक क्रीडाओं की प्रधानता के साथ लोक संगीत भी पनपा । संगीत ने भारतीय नारी की आत्मा को मात्र जगाया ही नही वरन् उसे निर्भीक, शीलवान और दृढप्रतिज्ञ भी बना दिया ।

जनपद-काल मे सगीत के वाह्य सौदर्य पर अधिक बल दिया गया जिसके फलस्वरूप

वह विलासिता का उपकरण बनने की ओर उन्मुख हुआ। इसी युग मे सर्वाधिक लोकनृत्य निर्मित हुए और भारतीय संगीत विदेशो में पहुँचा।

जैन-युग मे संगीत की पृष्ठभूमि क्रातिपूर्ण लहरो से तरगायमान हुई। ब्राह्मणों का एकाधिपत्य समाप्त होकर संगीत के द्वार मानव मात्र के लिए उन्मुक्त हो गये। सत्य, पवित्रता, सौदर्य, अहिसा और अस्तेय—मानव जीवन के ये पाँच आधार ही संगीत के स्तम्भ बने और पचशील कहलाये। सर्वसाधारण का सामान्य संगीत भी सपुष्ट संगीत के मेल मे आया।

बोद्ध-काल मे सगीत मानव मात्र के कल्याणार्थ अग्रसर हुआ। इस युग न अनेक सुप्रसिद्ध सगीतज्ञ नारियो को प्रसूत किया। दिव्य सगीत इस युग की अपरिमेय शक्ति बना। बुद्ध के पावन सिद्धान्तों पर आधारित संगीत नैतिकता से पूर्ण होकर, अपने वाह्य और आन्तरिक शक्तिशाली रूपो से समन्वित होकर कला के क्षेत्र में अपना एक चिह्न विशेष छोड़ गया।

मौर्य-युग मे सगीत अपनी नैतिक मर्यादा से किंचित च्युत होने लगा। लोक संगीत ने अधिक प्रसार पाया। यूनानी भारतीय कला के प्रशसक बने। सगीत के आध्यात्मिक सौदर्य का पुनरुत्थान हुआ और उसका आदर्श पूर्ण सदेश विदेशों मे ध्वनित हुआ।

शुग-काल मे ब्राह्मण पुन संगीत पर अपना एकाधिकार करने को सचेष्ट हुए। गरवा-नृत्य इसी युग का वरदान है परन्तु कोई विशेष प्रगति न होने के कारण इस युग को संगीत की दृष्टि से अवरुद्ध काल की संज्ञा मिली।

कनिष्क-युग में सगीत की सार्वभौमिकता पुन. प्रतिष्ठित हुई और विश्व बधुत्व की भावना का उल्लेखनीय विकास हुआ। यहाँ का सगीत रोम, मध्य एशिया और चीन में पहुँचा और इस क्षेत्र मे भारत गौरवान्वित हुआ। अश्वघोष ने संगीत को दार्शनिक मोड़ दिया। इस युग मे प्रथम बार संगीत का वैज्ञानिक विवेचन हुआ और यह भारतीय संगीत का नवीन प्रभात था।

नृत्य प्रवीण अनन्य सुन्दरी नाग कन्याओं ने नाग-युग मे विधानपूर्ण संगीत की अभिवृद्धि की।

हिन्दू सस्कृति के जागरण वाले गुप्त-काल मे शास्त्रीय संगीत विहित हुआ। एक शासन सूत्र मे आवद्ध भारत के संगीत प्रेमी गुप्त सम्राटो के समय कालिदास और भास की चतुर्मुखी प्रतिभाओ ने संगीत को गौरव प्रदान करके इस काल को संगीत का स्वर्ण-युग बना दिया।

हर्ष-युग मे मतग और वाणभट्ट सरीखे कलाकार उद्भूत हुए और संगीत ने जनवादी दृष्टिकोण अपनाया।

राजपूत-युग मे सगीत के वाह्य रूप पर अधिक ध्यान दिया गया। राजपूत रमणियाँ संगीत-कला में परम निपुण थी। इस युग में घरानो की नीव पड़ने से ईर्ष्या जगी और संगीत के आत्मिक सौदर्य का प्रसार न हो सका। भवभूति और जयदेव सदृश नाटचकार तथा सगीतज्ञ अवतरित हुए परन्तु इस युग मे जनवादी दृष्टिकोण लुप्त हो गया यद्यपि नृत्य इस काल में पर्याप्त विकास को प्राप्त हुए।

मुस्लिम युगारंभ मे संगीत की भारतीयता अक्षुण्ण न रह सकी। विजेताओं की संकीर्ण. मनोवृत्ति उसकी प्रगति मे बाधक हुई। भारतीय संगीत की पवित्रता और उसके आत्मिक सौदर्य.को नष्ट करने के प्रयत्न हुए परन्तु उसने इस चुनौती को स्वीकार कर लिया। गोपाल नायक और शार्ङ्गधर ने कार्य अग्रसर किया। भारतीय नारियों का संगीत-विकास रुक गया तथा नगर और ग्राम संगीत क्रमश· पृथक होने लगे। संगीतज्ञ अथवा संगीत प्रेमी मुगल शासक अपेक्षाकृत सहिष्णु थे। इसी युग मे उत्तरी भारत मे भक्ति आन्दोलन वेग से बढ़ा।(कबीर, चैतन्य महाप्रभु, ग्वालियर नरेश मानसिह, वैजू बावरा, स्वामी हरिदास, तानसेन, स्वामी वल्लभाचार्य, सूरदास प्रभृति संतो और सगीतज्ञो ने सगीत की वह लोक पावन शाश्वत मदाकिनी प्रवाहित की जिसमे योगदान देकर अगणित सत भक्त अमर हो गए और आज भी वह अपनी तारण-तरण शक्ति से पाप-शाप मोचन करती चली जा रही है।)

(हिंदी साहित्य के निर्माण तथा सरक्षण मे संगीत की जो अमूल्य देन है। उसकी उपेक्षा नही की जा सकती।

(हिन्दी साहित्य के अनेक महान कवि उच्चकोटि के भक्त थे। उनके जीवन का ध्येय काव्य-साधना नही वरन् अपने आराध्य की उपासना मे पूर्णत लीन होकर उसका शाश्वत समीप्य प्राप्त करना था। अस्तु सासारिक बंधन, प्रलोभन और मायामोह को विस्मृत कर अपने आराध्य देवता के साथ वाछित तादात्म प्राप्त करने के लिए उन्होने सगीत की शरण ली।)

(अपने इष्टदेव को रिझाने, उसकी पूजा व अर्चना करने तथा भक्ति की तन्मयता मे की गई अनुमति को प्रकट करने के लिए इन भक्तो ने सुन्दर-सुन्दर पदो का गायन किया और दास्य, सखा, रति प्रभृति मनोभूमिकाओं मे भावावेश मे गाये गए ये ही पद अपने दिव्य साहित्यिक गुणो के कारण 'काव्य' की संज्ञा से विभूषित हुऍं। अत: यदि यह कहा जाय कि भक्ति भावना की अनुभूति का प्रतिफल होने के फलस्वरूप हिंदी साहित्य के एक प्रमुख अंग के निर्माण मे संगीत अपनी धार्मिक प्रवृत्ति और विश्वव्यापी महत्ता के कारण न केवल प्रमुख माध्यम, आधार तथा उपादान ही बना वरन् उसी के परिणामस्वरूप उस विशिष्ट साहित्य की सृष्टि हुई तो अत्युक्ति न होगी।)

(यही नहीं नाद सौंदर्य से हमारी कविता की आयु बढ़ी है।. तालपत्र, भोजपत्र आदि का आश्रय न ग्रहण करने पर भी कवियों. की बहुत सी रचनायें अपनी संगीतिक क्षमता के कारण जनसाधारण की जिव्हा पर नाचती हुई आज तक जीवित रह सकी है।)

किंतु खेद का विषय है कि साहित्य के इस महत्वपूर्ण अग तथा सगीत की अमर देन की ओर हमारे आलोचको, साहित्यकारो और सगीतज्ञो का ध्यान अभी तक आकर्षित नही हुआ है। उन्होने इस ओर उपेक्षा सी ही दिखाई है। परन्तु इस उपेक्षा के पीछे सगीत के प्रति अवहेलनात्मक दृष्टिकोण और अशत: उसके फलस्वरूप इन विचारकों की संगीत ज्ञान विषयक अल्पज्ञता भी कम विचारणीय नही है। यो तो कौन नही जानता कि साहित्य की यह विधा स्वयं एक स्वतंत्र जीवत साधना है जिसमे पूर्णता प्राप्त करने के लिये एक निश्चित और नियोजित काल की अपेक्षा है। संगीत के दृष्टिकोण से हिंदी साहित्य के विवेचनात्मक अध्ययन के लिये अभी तक तनिक भी प्रयास नही किया गया। इसी महती आवश्यकता का अनुभव करके लेखिका ने आदरणीय गुरुदेव डॉ० दीनदयालु जी गुप्त के आदेशानुसार उन्ही से प्रेरणा पाकर उन्ही के निरीक्षण मे सन् १९५३ मे अपने एम० ए० की थीसिस की लिये 'हिंदी साहित्य मे संगीत (ई० १६ वी शताब्दी के अन्त तक)' विषय चुन कर साहित्य और सगीत के समन्वित स्वरूप पर प्रकाश डालने का बाल प्रयास किया था। और आदरणीय डॉ० विपिनविहारी जी त्रिवेदी के उत्साहपूर्ण निर्देशन मे पीएच० डी० के लिये प्रस्तुत अध्ययन द्वारा आज पुन इस महत्वपूर्ण न्यूनता की पूर्ति का किंचित् प्रयास किया जा रहा है।

१७ वी शताब्दी तक का समय उत्तरी भारतीय सगीत का वह उच्च शिखर है जहाँ तक उसकी उत्तरोत्तर उन्नति होती रही। पूर्ण विकास को प्राप्त करने के उपरान्त उसका क्षय होना प्रारम्भ हुआ। औरंगजेब के शासनकाल मे शहशाह की धार्मिक कट्टरता, सकीर्ण रूढिवादिता और निरंकुश दमन नीति ने सगीत पर कठोर प्रहार किया तथा वह पददलित कर दिया गया। किंबदन्ती है कि सगीत की दुर्दशा पर व्यथित हो कर संगीतज्ञो ने शहशाह आलमगीर के महल के सामने से सगीत की अर्थी निकाली। जिज्ञासा पर जब उसे ज्ञात हुआ कि ये लोग सगीत का शव अन्त्येष्टि हेतु लिये जा रहे है तो उसने तत्काल कहा कि क़ब्र अत्यधिक गहरी खोदना जिससे उसकी आवाज की गूंज कभी भी बाहर न आ सके। इस प्रकार १७ वी शताब्दी के उपरान्त संगीत की रूपरेखा विकृत, परिवर्तित तथा क्षीण होती गई और उसकी धारा दूसरी ओर को मुड गई। अत. १७ वी शताब्दी तक के साहित्य को ही मैंने संगीत की समीक्षा का विषय चुना है।

यह बात अप्रिय होते हुए भी स्वीकार करनी पडेगी कि राष्ट्र के भावी कर्णधार हमारे आज के नवयुवती तथा नवयुवक समाज के हृदय पर शास्त्रीय सगीत की दृष्टि से अधकचरे आधुनिक सिने गीतों का अत्यधिक प्रभाव है और भारतीय काव्य तथा सगीत की स्वयं सम्पूर्णता, उत्कृष्टता और पवित्रता के बावजूद भी 'हालीवुड' की अश्लीलता हमारे आधुनिक गीतों को आच्छादित करती जा रही है। किंतु भारत अब एक स्वतत्र राष्ट्र है। उसे जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में अग्रसर होकर अग्रगण्य बनना है। साढ़े सात सौ बर्षो की गुलामी भुगतने के कारण हमारी हीनावस्था को सुधारने और शक्ति को जागृत करने के लिये भारत की अतीत सभ्यता ही सबसे अधिक उपयुक्त आदर्श है। अत: विदेशी छाया से

भाराक्रान्त साक्षर भारतीय जीवन के अंग प्रत्यंग को पुन. अतीत के स्वर्ग की ओर प्रेरित करना हमारा कर्तव्य हो जाता है । इस विचार से भी हिंदी साहित्य के स्वर्णिम युग अर्थात् भक्ति काल के संगीतमय काव्य पर विचार किया गया है ।

(यों तो हिंन्दी साहित्य में संगीत का सामंजस्य उसकी उत्पत्ति से ही है । हिंदी साहित्य अपने शैशव से ही संगीत की क्रोड मे पला है । विक्रम की नवी शताब्दी के लगभग होने वाले सिद्ध तथा नाथपंथी कवियो ने अपने पदो का गायन सगीत की राग-रागिनियों मे किया है । जयदेव तथा विद्यापति ने भी अपने पदो मे राग-रागिनियो को आश्रय दिया है किंतु हिंदी साहित्य में सगीत की राग-रागिनियों मे वद्ध पदो की गायन-प्रणाली की कड़ियाँ क्रमबद्ध नही मिलती । यह नितात सत्य है कि वीर गाथा कालीन मात्रा वृत्त काव्य गाये जाने के लिये ही लिखा गया था । "मात्रिक छदो को जन्म देने वाले प्राकृत और अपभ्रंश काल के शैल्यूष, मागध, चारण, भट्ट आदि जनता के गायक थे जिन्होंने जनरंजनार्थ एक डफली पर गाये जा सकने वाले छंद रचे थे । मात्राओं का निदान होने के कारण ताल लगते ही छदो मे गेय गुण समाविष्ट हो जाता है । विद्वानो से छिपा नही है कि घत्ता और मदन-गृह इस प्रकार के छद है जिनका प्रयोग नृत्य मे भी होता है ।" किंतु वीरगाथा कालीन काव्य मे राग-रागिनियों का विधान नही पाया जाता । सूफी-काव्य मे भी सगीत का समावेश भाषा और दोहा-चौपाई शैली के कारण सहज रूप में तो अवश्य है किंतु इन कवियों ने भी अपने काव्याशो की अवतारणा विशिष्ट राग-रागिनियों के अन्तर्गत नही की है । राम काव्य के अन्तर्गत केवल तुलसी ही ने राग-रागिनियों मे अपने कुछ पदों की सृष्टि की है । अतः सूफी तथा राम-भक्ति काव्य की संगीत सबधी विवेचना का प्रयास नही किया गया है । हाँ निर्गुण नामधारी संत काव्य मे अवश्य राग-रागिनियो की व्यवस्था है ।)

(यद्यपि पद्यों की सगीतमय रचना अर्थात् पदों को राग विशेष मे गाने का प्रचलन सिद्ध, नाथपथी तथा सत कवियो मे भी था किंतु इस प्रणाली का सफलीभूत विकास कृष्ण भक्तिकालीन साहित्य मे हुआ । सिद्ध, नाथपंथी तथा संत कवियो ने जनसाधारण को आकर्षित करने तथा अपने धार्मिक सिद्धातो के प्रतिपादन और जनता मे उन्हे प्रचलित करने के लिए अपने काव्य मे संगीत का पुट दिया किंतु इन कवियो ने जितना प्रयास अपने धार्मिक भावों की अभिव्यक्ति के लिए किया है उतनी दूर तक वे गेयत्व के लिए नही गये है । प्रेम के पुजारी भक्तिकालीन कृष्णभक्त कवियो का चरम उद्देश्य अपने आराध्यदेव की लीला और छवि का गान करना था । आध्यात्मिक विरह-बाण से बिधे इनके व्यथित हृदय से गाये बिना भी रहा नही जाता था । अत प्रिय-मिलन की आशा मे ये जीवन पर्यन्त अपनी हृतत्री के स्वर वाद्य वाद्यो के स्वरो मे घुला मिलाकर उसके माध्यम से उस अव्यक्त को रिझाने की चेष्टा मे लीन रहे । अपने इष्ट की पूजा तथा अर्चना के लिए भक्ति की तन्मयता मे गान के रूप में प्रकट होने वाले पद ही कृष्णभक्तिकालीन साहित्य की प्राय. अधिकाश निधि है । इस प्रकार अपने प्रेमाधिक्य से हृदयगत अनुभूति को 'संगीत और काव्यमय नव स्वर' मे 'झंकृत कर' कृष्ण-

भक्तिकालीन कवियो ने संगीत और साहित्य के समन्वय की धारा को परम वेगवती कर दिया। विश्व के साहित्य मे काव्य और संगीत का इतना सुन्दर मेल विरल है। बाइबिल के ओल्ड टेस्टामेंट (Old Testament) के साम गान (Psalms) अवश्य ही इस नैसर्गिक समन्वय के श्रेष्ठ निदर्शन है। परन्तु हिंदी के भक्तिकाल की प्राय आद्योपान्त सामग्री चिरतन तक इस अनुपम अनुपात पूर्ण मेल की स्मृति स्वरूप स्मरण की जाती रहेगी। हिंदी के तत्कालीन कृष्णभक्त कवि प्रथमत. भक्त होकर एक बहुत ऊँचे कोटि के सगीत कला मर्मज्ञ और काव्य शास्त्र के पारखी थे। यही कारण है कि संगीत के ठाठ मे बँधा हुआ उनका काव्य आज भी हमे आत्मविभोर और आमविस्मृत कर आत्मिक आनंद की अनुभूति कराने की पूरी क्षमता रखता हैं। इन कवियों के अपने जीवन मे दैन्य और निराशा के क्षणो मे अविरल प्रवाहित करुण अवसाद और आशा को गर्भ में धारण किये मर्मस्पर्शी विषाद एवं अपने आराध्य से सामीप-सायुज्य आदि मनोभूमिकाओं मे प्रसूत अक्षर मधुर हास्य के समन्वित रूपों मे निनादित नैसर्गिक संगीत की झनकार आज भी भग्न हृदयो में आशा के प्राण फूँकती है और तुष्ट अन्त करणों मे आह्लाद और प्रेरणा का एक नवीन संदेश भरती है।

आज शताब्दियाँ बीत चुकी है तथा आगे और भी अनेकों बीत जावेगी परन्तु मानव के निराशा और उत्पीड़न के क्षणो में इन कृष्णभक्तिकालीन कवियो के प्रभावोत्पादक वर्ण संयुजन वाली पद-योजनाओं की मधुर स्मित और दैन्य तथा आत्मनिवेदन के झिलमिलाते अश्रुकणों से सिचित स्वर्गीय संगीत की झनकार सदा की भाँति उसे आशा का सम्बल और हर्ष तथा सन्तोष का पाथेय प्रदान करती रहेगी। ताल और लय से वेष्ठित, मूर्च्छना लेती, बल खाती हुई ये स्वर लहरियाँ जब श्रोता के मनोदेश, बुद्धिक्षेत्र और आत्मा को एक साथ उत्तरोत्तर महाकाश मे ऊपर उठाती हुई ले चलती है तब नाद ब्रह्म का स्वरूप अपनी अनुभूति कराता हुआ उसे अखिल विश्व के प्रति सौहार्द्र, प्रेम, करुणा, दया और अपनत्व के भावो से तरंगित करके 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' की प्रतीति कराता एकोऽहं की परम आलोकमयी और फलत आनदमयी भावना से आपूर कर देता है।

गायन और वादन का उल्लेख तो भक्तिकालीन सभी धाराओ के साहित्य के अन्तर्गत मिलता है किंतु नृत्य का समावेश कृष्ण-काव्य की अपनी विशेषता है। सूफी कवि आलम ने अवश्य नृत्य कला के लालित्यपूर्ण उच्चकोटि के चित्रण प्रस्तुत किये है किंतु उनके अतिरिक्त भक्तिकालीन अन्य सूफी, संत तथा रामभक्त कवियों के काव्य मे प्रायः नृत्य-वर्णन का अभाव सा ही है। इसके विपरीत कृष्णभक्तिकालीन कवियो के आराध्य नटनागर नंदकिशोर नृत्य के भी आचार्य है। अत नटवर वेशधारी कन्हैया की नृत्य-क्रीडाये इन कवियो के आकर्षण का प्रमुख केन्द्र बन गई और इन गायक कवि साधको की गहरी अनुभूति के मध्य साध्य की मनोहारिणी नृत्यमूर्ति साकार हो उठी। साथ ही क्रियात्मक नृत्य की अमर साधिका कृष्णभक्तिकालीन कवयित्री मीरा ने निरंतर नृत्य के माध्यम से कृष्ण को रिझाने का प्रयास किया जिसके कारण नृत्य-मुद्राओं का सफल अंकन उनके काव्य मे हुआ है।

इस प्रकार भक्ति कालीन कृष्णभक्त कवियो ने अपने काव्य में गायन, वादन एवं नृत्य तीनों के सफल संयोग के द्वारा संगीत की परिभाषा सार्थक कर दी है। इन विशेषताओं और गुणों से युक्त होने के कारण ही प्रस्तुत ग्रथ में समीक्षा के लिए मात्र 'कृष्णभक्तिकालीन साहित्य में संगीत' विषय को स्वीकार किया गया है।

प्रस्तुत ग्रंथ आठ अध्यायों मे विभक्त है। प्रथम अध्याय में प्रवेश के रूप में भूमिका है। इसमे सर्वप्रथम 'भक्तिकालीन हिंदी साहित्य में कृष्णभक्ति शाखा की स्थापना और उसका क्षेत्र' शीर्षक प्रकरण के द्वारा विषय के समय, सीमा तथा स्वरूप पर प्रकाश डाला गया है। तत्पश्चात् कृष्णभक्तिकालीन साहित्य के अन्तर्गत आनेवाले विभिन्न सम्प्रदायो, उनकी प्रवृत्तियों तथा कृष्णभक्तिकालीन कवियों का सक्षिप्त परिचय मात्र है। यों तो सगीत की दृष्टि से कृष्णभक्तिकालीन कवियों मे अभी तक किसी भी कवि का गभीर विवेचनात्मक अध्ययन नही हुआ है किंतु साहित्य के दृष्टिकोण से सूरदास, परमानंददास, कुंभनदास, कृष्णदास, नददास, चतुर्भुजदास, गोविंदस्वामी, छीतस्वामी, हरिराम व्यास तथा मीरा हिंदी जगत में विशेष प्रतिष्ठित एवं प्रसिद्ध है। इनके अतिरिक्त सूरदास मदनमोहन, हितहरिवश, हरिदास स्वामी, राजा आसकरण का पूर्ण रूपेण अध्ययन नही किया गया है; गदाधर भट्ट, बिट्ठलविपुल, विहारिनदास, श्री भट्ट, परशुराम और गंगग्वाल प्रायः उपेक्षित से ही रहे है। प्रस्तुत ग्रंथ मे ऊपर कहे गये समस्त कवियों तथा उनकी रचनाओं का संगीत की दृष्टि से अध्ययन किया गया है। कुछ लेखक तथा आलोचक कृष्णभक्तिकालीन कवियो के अन्तर्गत बैजूबावरे और तानसेन को भी स्थान देते है। किंतु प्रथमत: बैजू बावरे के स्थितिकाल के विषय मे निश्चयात्मक रूप से अभी तक कुछ भी नहीं कहा जा सका है साथ ही बैजू तथा तानसेन प्रमुख रूप मे सगीतज्ञ और गौण रूप में भक्त थे। कृष्णभक्तिकालीन सभी कवियो ने साध्य कृष्ण की अर्चना करने के लिए सगीत को प्रमुख साधन बनाया किंतु बैजू और तानसेन ने संगीत की साधना की। उनके जीवन का साध्य ही संगीत की आराधना करना था। संगीत विद्या की प्राप्ति के लिए ही उन्होने ईश्वर के प्रायः सभी अवतार रूपो से याचना की है। यह बात दूसरी है कि उनके उपलब्ध काव्य में कृष्ण लीला से सम्बद्ध पद अधिक है। किंतु अन्य विश्वसनीय सूत्रो के अभाव मे उनकी सगीत विद्वत्ता की उपेक्षा कर उनके भक्त रूप को प्रधानता नही दी जा सकती। इसी कारण कृष्णभक्तिकालीन कवियो के साथ बैजू तथा तानसेन की समीक्षा नही की गई है।

प्रथम अध्याय मे कृष्णभक्तिकालीन कवियो की प्रकाशित तथा हस्तलिखित रूप में अवलोकन की गई रचनाओं का उल्लेख मात्र किया गया है। उनका विस्तृत वर्णन तथा परिचय पंचम अध्याय मे है। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि पदों का संगीत से विशेष संबंध है। यो तो दोहा चौपाई आदि छंद भी गाये जा सकते है और गाये जाते है किंतु छंदों को बिना यति भंग किए रागानुसार गाना, लय के अनुसार मनमानी खीचना तथा ताल मे बद्ध रखना संभव नही है। इसके विपरीत पदावली विशुद्ध संगीत के ढाँचे पर बँधी होती है। उसमें मात्रा तथा यति संबंधी कोई विशिष्ट अपरिवर्तनशील बंधन नही है अतः छद तथा

पद में निहित संगीत के दृष्टिकोण से इस मूल तथा महत्वपूर्ण पार्थक्य के कारण प्रस्तुत प्रबंध में केवल पदावली-साहित्य की ही समीक्षा की गई है ।

प्रथम अध्याय के अंत मे प्राचीन उपलब्ध सामग्री और प्रचलित किबदन्तियों के आधार पर कृष्णभक्तिकालीन कवियों के संगीत ज्ञान, निपुणता तथा कुशलता को प्रमाणित करने और उनकी संगीत-शिक्षा तथा सगीत से सम्बद्ध विशेष घटनाओ का क्रमबद्ध परिचय देने का प्रयास किया गया है ।

द्वितीय अध्याय 'सगीत और साहित्य' शीर्षक के अन्तर्गत सगीत क्या है, संगीत के आधार, संगीत की व्यापकता, संगीत की महत्ता, साहित्य मे सगीत का स्थान, सगीत एवं काव्य मे पारस्परिक सबंध, संगीत कला एव काव्य कला मे समानतायें, कलाओं मे सगीत कला की श्रेष्ठता, सगीत एव काव्य के पारस्परिक सबध के उपादान, साहित्य मे सगीत का औचित्य—इन अगों पर स्वतत्र रूप से मौलिक विचार प्रकट किये गये है । संगीत के आधार नाद, श्रुति, स्वर, ग्राम, मूर्च्छना, तान, सप्तक, वर्ण, अलकार, पकड, जाति और राग से साहित्यिकों को परिचित कराने के लिए सगीत के इन पारिभाषिक शब्दो की विशद व्याख्या की गई है । कृष्णभक्तिकालीन कवियो के समय मे आधुनिक रूप मे ठाट या मेल का प्रचलन न होने के कारण उसका उल्लेख मात्र ही किया गया है ।

ललित कलाओ मे काव्य-कला की श्रेष्ठता पर समालोचकगण अपनी-अपनी सम्मति रखते है । संगीत अभी तक इतना उपेक्षित रहा है कि सभवत अधिकांश समालोचकों को इतना अवकाश ही नही रहा कि उसकी विस्तृत विवेचना करते । किंतु संगीत भी कम महत्वपूर्ण स्थान नही रखता है । 'कलाओ मे संगीत कला की श्रेष्ठता' शीर्षक प्रकरण में विविध दृष्टिकोणो से गवेषणात्मक, निष्पक्ष तथा मौलिक समीक्षा द्वारा संगीत की महत्ता सिद्ध करने की चेष्टा की गयी है ।

तृतीय अध्याय में 'कृष्ण भक्ति कालीन साहित्य मे संगीत प्रेरणा के उपादान' शीर्षक के अन्तर्गत आध्यात्मिक महत्ता तथा कवि रूप, परम्परा, कवियों के आराध्य विषय तथा दृष्टिकोण, पुष्टिमार्गीय सेवाविधि पर विचार किया गया है । कृष्णभक्तिकालीन साहित्य के निर्माण मे संगीत अपनी धार्मिक प्रवृत्ति तथा विश्वव्यापी महत्ता के कारण प्रमुख माध्यम, आधार तथा उपादान बना । संगीत मे चंचल वृत्तियो को केन्द्रीभूत करने, साध्य के साथ एकीकरण तथा आत्मा-परमात्मा का मिलन कराने, भक्ति में तन्मयता लाने और परम शाति को प्रदान करने की असीम शक्ति है—यह वैज्ञानिक तथा विवेचनात्मक रूप से सिद्ध किया गया है जो लेखिका की मौलिक कृति है । इसके अतिरिक्त विशिष्ट परिस्थितियाँ, वातावरण तथा विशेषतायें जो कृष्णभक्तिकालीन साहित्य में संगीत की प्रेरणा के लिए विशेष रूप से सहायक तथा उद्दीपक हुईं उनका भी वर्णन किया गया है । हिंदी साहित्य में संगीत की परंपरा के विकास का दिग्दर्शन कराते हुए विभिन्न सम्प्रदायो के

संगीत के आधार मे जो विभिन्नता थी उसको भी दिखाने का नूतन प्रयास किया गया है। कृष्णभक्तिकालीन कवियो के आराध्य, विषय और दृष्टिकोण तथा पुष्टिमार्गीय सेवाविधि के विधान मे एक निश्चित क्रम और व्यवस्थित रूप मे निर्धारित अष्टप्रहर की नित्य कीर्तन प्रणाली तथा उत्सव आदि नैमित्तिक आचार साहित्य और सगीत के अपूर्व समन्वय मे विशेष रूप से सहायक हुए इस पर भी प्रकाश डाला गया है। अंत में दिखाया गया है कि स्वर साधना अपनाने के कारण कृष्णभक्तिकालीन साहित्य मे संगीत-सौदर्य—(१) सगीत तथा उससे सम्बद्ध सामग्री का उल्लेख, (२) सगीत की विभिन्न राग रागिनियों का प्रयोग तथा (३) कृष्णभक्तिकालीन कवियो की भाषा तथा शैली मे संगीत का समावेश – इन तीन रूपो मे प्रस्फुटित हुआ है। इन्ही रूपो के दृष्टिकोण से अग्रिम अध्यायों मे 'कृष्णभक्ति-कालीन साहित्य मे सगीत' विषय की समीक्षा की गई है।

'कृष्णभक्तिकालीन साहित्य मे संगीत तथा उससे सम्बद्ध सामग्री का उल्लेख और विवरण' शीर्षक चतुर्थ अध्याय में निर्दिष्ट विषय की विवेचना की गई है। सम्पूर्ण अध्याय के दो खंड है। प्रथम खड मे सगीत सबधी ग्रथो की रचना तथा उनका विस्तृत विश्लेपण किया गया है। हिदी-सग्रहालय, हिंदो साहित्य सम्मेलन प्रयाग तथा प्रयाग-सग्रहालय में सुरक्षित हिन्दी मे रचित संगीत सबंधी हस्तलिखित प्राचीनतम ग्रथों का आधार लेकर इस दृष्टिकोण से कृष्णभक्तिकालीन कवि हरिराम व्यास के अतुलनीय महत्व की ओर भी संकेत किया गया है। द्वितीय खंड मे भारतीय साहित्य मे प्राप्त संगीत सबधी उल्लेखो का परिचय देते हुए कृष्णभक्तिकालीन साहित्य संबधी उल्लेख तथा वर्णन विषय की विशद व्याख्या की गई है। सगीत के भेद प्रभेदो, अंग उपागों, पारिभाषिक शब्दों, राग रागिनी शब्द उनकी संख्या तथा नामो, गायन के ध्रुपद तथा धमार इन दो प्रकारो, वाद्ययत्रों, तालो, नृत्य संगीत की महत्ता, कीर्तन भजन गायन की महिमा तथा उसमे मन को लीन रखने के लिए दी गई चेतावनी आदि से सम्बद्ध और संगीत सबंधी जो आत्मविषयात्मक उल्लेख कृष्णभक्तिकालीन साहित्य मे यत्र तत्र बिखरे हुए रूप मे मिलते है, उनका वर्णन तथा पुष्टि कृष्णभक्तिकालीन प्रत्येक कवि की हस्तलिखित तथा प्रकाशित रचनाओ से उद्धरण देकर किया गया है। नृत्य के प्रसग मे पहले परिभाषा देकर नृत्य के तांडव तथा लास्य प्रकारों का वर्णन किया है तत्पश्चात् कृष्णभक्तिकालीन साहित्य मे अकित नृत्य की विधियो – बाल नृत्य, ताडव नृत्य और रास नृत्य की विशद समीक्षा की गई है। नृत्य से सम्बद्ध रूपक व उत्प्रेक्षा तथा नृत्य के बोलो की ओर भी इगित किया गया है। बाल नृत्य की मंजुल स्वाभाविक हृदयग्राही छवि का अंकन तथा कालियनागनाथन के मिस रौद्र मुद्रा मे किये गये कृष्ण के तांडव नृत्य की आध्यात्मिक भावना का प्रदर्शन लेखिका का मौलिक प्रयास है। हिंदी साहित्य के विद्वानों द्वारा सगीत के गायन तथा वादन इन दो अगो का तो यदा-कदा प्रसंग-वश उल्लेख मात्र कही-कही हो भी गया है किंतु नृत्य संबंधी समीक्षा का पूर्णतया अभाव है।

रास लीला की आध्यात्मिक विवेचना तो हिंदी साहित्य में पर्याप्त हुई है किंतु

उसके संगीत पक्ष की उपेक्षा ही की गई है। विशेष रूप से प्रस्तुत निबध का सगीत से संबंध होने के कारण रास लीला के संगीत-अंग पर ही प्रकाश डाला गया है। आध्यात्मिक महत्ता की ओर केवल संकेत मात्र कर दिया गया है। इस प्रकार सम्पूर्ण अध्याय में तो नवीनता का समावेश हुआ ही है, नृत्य-प्रसग विशेष रूप से अध्ययन का मौलिक अग है। यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि संगीत की महत्ता के अन्तर्गत मुरली से सम्बद्ध पदों की विवेचना कर दी गई है किंतु उसके आध्यात्मिक पक्ष की व्याख्या नही की गई है। 'सगीत सबंधी आत्मविषयात्मक उल्लेख' के अन्तर्गत गायन तथा नृत्य दोनो प्रकार के आत्मविषयात्मक उल्लेखो का वर्णन है। नृत्य की क्रियात्मक साधिका मीरा के नृत्य सबंधी आत्मविषयात्मक उल्लेखो का व्यापक चित्रण किया गया है।

पंचम अध्याय 'कृष्णभक्तिकालीन साहित्य मे प्रयुक्त राग रागिनियो' पर है। इसमें सर्व प्रथम हस्तलिखित तथा प्रकाशित रूप मे उपलब्ध संस्कृत, हिन्दी, अग्रेजी, मराठी और गुजराती ग्रंथों की सहायता से राग की उत्पत्ति तथा विकास का क्रमबद्ध इतिहास प्रस्तुत किया गया है। कृष्णभक्तिकालीन कवियो के समय मे कौन-कौन सी राग-रागिनियाँ प्रचलित थी इसका दिग्दर्शन कराने के लिए उस समय मे प्रचलित प्राय: सभी मतो के राग-रागिनी वर्गीकरण संलग्न कर दिए है। वर्गीकरणो के प्रस्तुत करने के लिए लेखिका को हस्तलिखित तथा प्रकाशित होती हुई भी दुष्प्राप्य दोनो प्रकार की सामग्री पर्याप्त शोध करके जुटानी पड़ी है। सगीत ग्रंथो तथा उनके रचयिताओ की निश्चित तिथि के विषय मे प्राय: मतभेद है अत. उनकी निश्चित तिथि का उल्लेख नही किया गया है।

कृष्णभक्तिकालीन कवियों ने अपने पदों में कौन कौन सी राग-रागिनियो तथा कितनी संख्या मे किन-किन राग-रागिनियो का प्रयोग किया है इस पर आज तक हिंदी के किसी भी लेखक, इतिहासकार, आलोचक तथा संगीतज्ञ ने प्रकाश नही डाला है। प्राय· विद्वानो ने कुछ रागों के नाम गिना कर तथा उसके साथ यह कह कर कि इनके अतिरिक्त अन्य भी बहुत से राग गाये गये है सन्तोष कर लिया है। इन कवियों ने कुछ विशेष रागो का अधिक प्रयोग किया है। अलोचको द्वारा इस ओर भी संकेत किया गया है किंतु उसे सिद्ध करने की चेष्टा नही की गई है। प्रस्तुत अध्याय मे कृष्णभक्तिकालीन प्रत्येक कवि के काव्य मे प्रयुक्त राग रागिनियो का सख्यानुसार विवरण दिया गया है। कृष्णभक्तिकालीन कवियो मे केवल सूरदास मदनमोहन, व्यास, मीरा तथा राजा आसकरण के ही पद प्रकाशित रूप मे प्राप्त है। इनके अतिरिक्त परमानंददास, कुभनदास, कृष्णदास, नंददास, चतुर्भुजदास, गोविंदस्वामी, छीतस्वामी, गदाधर भट्ट, हितहरिवंश, हरिदास स्वामी, बिट्ठलविपुल, बिहारिनदास, श्री भट्ट, परशुराम और गंग ग्वाल कवियों की सम्पूर्ण पदावली अभी तक प्रकाश मे नही आई है। अतः इस विषय को अंकित करने के लिए अधिकतर हस्तलिखित ग्रंथों का ही आश्रय लेना पड़ा है। इन हस्तलिखित संग्रहों तथा रचनाओं का अध्ययन लेखिका ने लखनऊ में रह कर तथा काशी, प्रयाग, कलकत्ता और दिल्ली आदि वाह्य स्थानों पर स्वत: जा कर वहाँ के

माननीय साहित्यिको तथा विद्वानो के निजी संग्रहालयों, साहित्यिक सस्थाओ, पुस्तकालयों और विभिन्न संग्रहालयों मे किया है। सूरदास मदनमोहन तथा राजा आसकरण की छपी सामग्री भी इधर-उधर बिखरे हुए रूप मे छिपी पडी है अत. लेखिका ने उसे ढूँढ़ कर जुटाया है। केवल सूरदास, व्यास तथा मीरा के ही प्रामाणिक प्रकाशित संस्करण प्राप्त हुए है। इनके अतिरिक्त अन्य सभी कृष्णभक्तिकालीन कवियों के विभिन्न संग्रहों में प्राप्त पदों मे अत्यधिक विषमता है। प्राय: प्रत्येक पद-संग्रह में प्रत्येक कवि के पद विभिन्न राग-रागिनियों तथा विभिन्न संख्या में मिलते है। अत: ऐसी परिस्थिति में प्रत्येक कवि की रचनाओ की जितनी अधिक से अधिक हस्तलिखित प्रतियाँ तथा प्रकाशित पद-संग्रह उपलब्ध हो सके है उन सभी में प्रयुक्त राग-रागिनियो तथा उनकी संख्या का विवरण दिया गया है। प्राय: सभी कवियो के हस्तलिखित तथा प्रकाशित अधिकाश पद-संग्रहो मे पदों का विभाजन रागानुसार नही है। साथ ही कुछ कवियों के पद एक ही संग्रह मे मिले-जुले रूप मे लिखे हुए हैं। अत. प्रत्येक हस्तलिखित तथा प्रकाशित ग्रंथ में विभिन्न कवियों के पदों मे प्रयुक्त संख्यानुसार राग-रागिनियों की गणना करने के लिए लेखिका को प्रत्येक पद खोज-खोज कर निकालना पडा है। सख्यानुसार राग-रागिनियो का विवरण देने के उपरान्त कृष्णभक्ति कालीन कवियों के द्वारा प्रस्तुत की गई सम्पूर्ण पदावली साहित्य की शास्त्रोक्त समीक्षा की गई है। समस्त संगीतमय काव्य को (१) प्रचलित सामयिक संगीत रूपों मे अभिव्यक्त राग-रागिनियों, (२) प्राचीन परिपाटी के अनुसार पूर्व स्वीकृत किंतु अप्रचलित राग-रागिनियो और (३) नवीन प्रयोग, इन कोटियों मे विभक्त कर उसकी विवेचना की गई है। कृष्ण-भक्तिकालीन साहित्य मे प्रयुक्त राग रागिनियों तथा उनकी सख्या के अध्ययन से प्राप्त विशेषताओ का दिग्दर्शन कराते हुए (१) विशिष्टि राग-रागिनियों का अधिक अथवा न्यून प्रयोग, (२) कवि विशेष द्वारा प्रयुक्त राग-रागिनियो, (३) फारसी तथा भारतीय रागों के समन्वय से आविष्कृत राग रागिनियों का प्रयोग, (४) राग विशेष के नाम के अनेक लोचयुक्त रूपो का प्रयोग, (५) राग की श्रेणी में न आ सकने वाले नामो का उल्लेख—इन प्रसंगो पर विस्तृत प्रकाश डाला गया है।

षष्ठ अध्याय मे संगीत के सिद्धांतो की कसौटी पर कृष्णभक्तिकालीन साहित्य की वैज्ञानिक रूप से गवेषणात्मक समीक्षा की गई है। सर्व प्रथम रस और राग सिद्धात, राग ऋतु और समय सिद्धांत तथा राग की प्रकृति गुण और प्रभाव इन सिद्धांतों तथा विषयों की विस्तृत व्याख्या तथा उनकी महत्ता का आलोचनात्मक ढंग से प्रतिपादन किया गया है। तत्पश्चात् संगीत के इन तीनों दृष्टिकोणों से वाह्य (वार्ता साहित्य) और आन्तरिक (कवियों के पद-संग्रहों) आधारों द्वारा कृष्णभक्तिकालीन प्रत्येक कवि के पदों की अलग-अलग विस्तृत विवेचनात्मक गंभीर समीक्षा की गई है। सगीत के सिद्धांतों की कसौटी पर कृष्णभक्तिकालीन साहित्य की समीक्षा करने के लिए संगीत के ग्रंथों तथा रागमाला चित्रों का आश्रय-लिया गया है।

प्रत्येक कला अपने चरम विकास के क्षणों मे एक दूसरे का आश्रय ग्रहण करती है।

मध्यकाल भारतीय कलाओ के विकास का स्वर्णयुग रहा है । कलाओ के अपूर्व समन्वय द्वारा भावो की जैसी सूक्ष्म तीव्रतम अभिव्यजना भारत मे उस समय हुई, विभिन्न कलाओ का वैसा मणिकाचन सयोग विश्व के इतिहास मे अन्यत्र प्राय. देखने को नही मिलता है । सगीत और साहित्य के इस अपूर्व समन्वय के फलस्वरूप जहाँ एक ओर विपुल पदावली साहित्य तथा 'ध्यान रूपो' की सृष्टि हुई वही चित्र कला के अन्तर्गत सगीत की विभिन्न स्वरलहरियो के मनोवैज्ञानिक सकेत 'रागमाला' चित्रो के द्वारा प्रदर्शित किए गये । रागमाला चित्रो मे राग-रागिनियो से सम्बद्ध वातावरण, दृश्य, विषय, रस, समय तथा भाव आदि का चित्रण होता है । जिसके द्वारा चित्र के देखने मात्र से ही राग अथवा रागिनी के स्वरूप, प्रकृति, रस, समय आदि का पूर्ण ज्ञान हो जाता है । यहाँ यह सकेत कर देना अनिवार्य है कि अब रागमाला चित्रो में विभिन्न शैलियों (राजपूत शैली, मुगलकालीन शैली) के अनुसार भेद भी देख पडते है । इसमे भी सदेह नही कि बहुत से चित्र ऐसे भी प्राप्त होते है जिनमे राग-रागिनी के रूप आकार तथा वातावरण का उचित अकन नही है । लेखिका ने प्रयाग संग्रहालय, भारत कला भवन बनारस, विक्टोरिया मेमोरियल कलकत्ता तथा सेठ गोपी कृष्ण जी के सग्रहालय मे स्वत. जा कर प्राचीनतम मूल चित्रों (Original paintings) का निरीक्षण किया है और उनके फोटो ले कर प्रस्तुत अध्याय में उनका उपयोग किया है ।

सप्तम अध्याय मे 'कृष्णभक्तिकालीन सगीत की भाषागत विशेषताये' विषय पर विचार किया गया है । यो तो हिदी साहित्य के कुछ लेखकों तथा आलोचको ने कृष्णभक्तिकालीन कुछ कवियों की भाषागत विशेषताओ का विवेचन प्रस्तुत किया है कितु विशेष रूप से संगीत के दृष्टिकोण से सभी कृष्णभक्तिकालीन कवियो की भाषा का अध्ययन लेखिका का मौलिक प्रयास है । ब्रजभाषा के प्रयोग के अन्तर्गत स्वरध्वनि की बहुलता, विभक्तियाँ, क्रियाओ के रूप, शब्दो के लोचयुक्त रूप, कोमल शब्द विन्यास, सयुक्तवर्णो का अभाव, री, अरी, एरी आदि शब्दो और अनुस्वारयुक्त दीर्घ स्वरो का प्रयोग तथा शब्दो की ध्वनि शक्ति के अन्तर्गत भाषा मे भावात्मकता और अनुप्रास शब्दालंकार के प्रयोग द्वारा कृष्णभक्तिकालीन भाषा के संगीत-माधुर्य मे जो अभिवृद्धि हुई है उसका चित्रण किया गया है । शब्दों के विकार के संबध में लोचयुक्त रूप के प्रसग मे लेखिका ने स्वतंत्र रूप से नवीन मौलिक विचार प्रकट किए है । अंत में कृष्णभक्तिकालीन साहित्य की संगीतमय भाषा पर एक सामान्य दृष्टि डालते हुए पूर्ववर्ती कवियों की भाषा से किचित् तुलना कर उनकी भाषा के विशेष माधुर्य का वर्णन किया गया है ।

अष्टम अध्याय मे कृष्णभक्तिकालीन साहित्य मे प्रयुक्त पदो की समीक्षा लय, ताल और गायन प्रणाली के आधार पर की गई है । जैसा कि जनभारती (वर्ष ३ अक १ सं० २०१२) पत्रिका में आचार्य ललिता प्रसाद जी सुकुल ने छंद तथा पद के अन्तर की ओर संकेत किया है उसी के अनुसार प्रस्तुत अध्याय मे पहले छंद तथा पद के अन्तर को सक्षेप में दिखलाया है तत्पश्चात् लिपिबद्ध रूप में प्राप्त पदों के स्वरूप पर प्रकाश डाला गया है ।

समान मात्रा, टेक तथा असमान मात्रा वाले पदों की न्यूनता, अधिकता तथा विभिन्नता के कारणों को भी प्रत्यक्ष करने की चेष्टा की गई है। भावानुकूल विलम्बित, द्रुत तथा मध्य लय और तुक अथवा अन्त्यानुप्रास के प्रयोग द्वारा कृष्णभक्तिकलीन साहित्य में संगीत-माधुर्य जिस प्रकार प्रस्फुटित हुआ है उसको उदाहरणो के संयोग तथा व्याख्या से समझाने का प्रयास किया गया है। कृष्णभक्ति सबधित पदो में प्रयुक्त तालो की समीक्षा के लिए कुछ पदो को तालबद्ध रूप मे प्रस्तुत करके भी दिखाया गया है।

कृष्णभक्तिकालीन कवियो द्वारा उनके काव्य मे अपनाई गई गायन-प्रणालियों को निश्चित रूप से प्रमाणित किया गया है। संगीत ग्रथो तथा प्राचीन वाह्य आधारों की कसौटी पर कृष्णभक्तिकालीन कवियो के काव्य मे प्राप्त उल्लेखों तथा पदो के स्वरूप और गति के निर्द्धारण द्वारा यह सिद्ध करने की चेष्टा की गई है कि कृष्णभक्तिकालीन कवियो ने ध्रुवपद, धमार, भजन-कीर्तन और विष्णुपद-संगीत की इन गायन प्रणालियो को क्यो अपनाया है। इनके पद धमार शैली मे गाये जा सकते है अथवा नही इसको सिद्ध करने के लिये कुछ पदो को तालबद्ध रूप मे बाँध कर दिखाया गया है। इस प्रकार स्पष्ट है कि प्रस्तुत अध्याय हिदी साहित्य के शोध क्षेत्र मे एक नितात नवीन, मौलिक और गवेषणात्मक रूप मे प्रकट हो रहा है।

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि प्रस्तुत ग्रंथ के अन्तर्गत हस्तलिखित प्रतियो से जो पद उद्धृत किये गये है वे अपने मूल हस्तलेख मे प्राप्त अपरिष्कृत रूप मे ही है जिनमें कही कही गति, यति भग आदि दोष स्पष्ट है। शब्द के अपरिष्कृत रूप भी पर्याप्त मात्रा मे आये हैं। कीडो के द्वारा विनष्ट किये जाने अथवा जीर्ण अवस्था मे होने के कारण कही-कही मूल प्रति से पूर्ण शब्द का भास नही होता। ऐसे शब्दों के स्थानों को रिक्त छोड दिया गया है। मूल हस्तलिखित प्रतियो मे कही-कही पृष्ठों तथा पदो की संख्या का उल्लेख नही किया गया है अत ऐसे प्रसगो मे केवल मूलप्रति की सख्या के नाम का उल्लेख मात्र ही किया गया है, पृष्ठ अथवा पद संख्या का उल्लेख नही किया जा सका है।

सभव है ग्रथ में आई हुई कुछ पुनरावृत्तियाँ खटकने वाली प्रतीत हों। उनके विषय मे लेखिका का विनम्र निवेदन है कि प्रस्तुत अध्ययन मे कृष्णभक्तिकालीन साहित्य के सभी कवियो की सगीत के समस्त अगो के दृष्टिकोण से अलग-अलग रूप मे अथवा प्रत्येक कवि के उदाहरण प्रस्तुत करके काव्य-समीक्षा की गई है। अत प्रत्येक प्रसग मे कवि तथा रचनाओं के नामो, पदो के उदाहरणों, संगीत के उपांगो, भेद प्रभेदो तथा पारिभाषिक शब्दों, प्रसंगों के शीर्षकों तथा कुछ विषयो की पुनरावृत्ति हो गई है। प्रथम, द्वितीय और तृतीय अध्याय मे प्रस्तुत निबध के समय, सीमा, क्षेत्र, स्वरूप विषय से सम्बद्ध उपकरणो, काव्य-आलोचना के सिद्धातो तथा दृष्टिकोणो से परिचित कराने का प्रयास किया गया है और उन्ही के आधार पर आगे के अध्यायो मे विस्तृत समीक्षा की गई है। अत इन सब की पुनरुक्ति हो जाना अनिवार्य हो गया है।

इस विवेचन के विभिन्न प्रसंगों में जिन विद्वानों की कृतियों अथवा विचारधारा की आलोचना हुई है उनके प्रति लेखिका के हृदय में अत्यधिक सम्मान है। साथ ही विद्वानो की जिन कृतियो से सहायता ली गई है उनके प्रति लेखिका अत्यधिक कृतज्ञ है।

आदरणीय डा० दीनदयालु जी गुप्त, श्री ब्रजरत्नदास जी और श्री बालकृष्णदास जी के सौजन्य से लेखिका को जो हस्तलिखित पद-सग्रह देखने के लिए प्राप्त हुए है उनके लिए वह अत्यधिक आभारी है। श्री सतीश चन्द्र काला (अध्यक्ष प्रयाग-सग्रहालय), श्री रायकृष्णदास जी (अध्यक्ष कलाभवन बनारस), सेठ गोपीकृष्ण कनौडिया, हिंदी-संग्रहालय हिंदी साहित्य सम्मेलन प्रयाग, काशीनागरी प्रचारिणी सभा, एशियाटिक सोसाइटी कलकत्ता के अधिकारियों तथा बंगीय हिंदी परिषद के अविभावक आचार्य ललिताप्रसाद जी सुकुल के प्रति लेखिका हृदय से कृतज्ञ है जिनके उदार सौजन्य से उसे हस्तलिखित तथा दुष्प्राप्य हिंदी तथा अंग्रेजी के संगीत संबंधी ग्रंथों के अवलोकन और अध्ययन तथा रागमाला चित्रों के निरीक्षण और प्राप्ति मे अमूल्य सहायता प्राप्त हुई है। लेखिका स्व० आचार्य पं० ललिता प्रसाद जी सुकुल, ठाकुर जयदेव सिंह, पं० ओकारनाथ ठाकुर, श्री राजबली पांडे, श्री ब्रजरत्नदास जी, श्री कुमुद चन्द जी, श्री सीतासरन सिंह जी की अत्यधिक आभारी है जिनके ममत्वपूर्ण व्यवहार, महत्वपूर्ण सुझावों सम्मतियो, विवेचनों और विचारों के अभाव में प्रस्तुत ग्रंथ का भली प्रकार से सम्पन्न हो सकना दुष्कर था।

इसके अतिरिक्त लेखिका नेशनल लाइब्रेरी कलकत्ता, पब्लिक लाइब्रेरी प्रयाग, प्रयाग विश्वविद्यालय पुस्तकालय, काशी विश्वविद्यालय पुस्तकालय, टैगोर लाइब्रेरी, लखनऊ विश्वविद्यालय, एसेम्बली लाइब्रेरी, पब्लिक लाइब्रेरी तथा मैरिस कालेज पुस्तकालय के अधिकारियों के प्रति अनुगृहीत है जिनके सहयोग तथा विशेष सुविधाओं के प्रदान करने के कारण प्रस्तुत ग्रंथ के पूर्ण होने मे अत्यधिक सहायता मिली।

लखनऊ विश्वविद्यालय के अधिकारियों के प्रति लेखिका बहुत विनीत है जिन्होंने 'फेलोशिप' प्रदान कर इस ग्रंथ को दो वर्ष (सन् १९५३–५५ ई०) में ही सम्पूर्ण करने मे विशेष सहायता दी।

अंत मे लेखिका का विनम्र कथन है कि वह अपने आदरणीय गुरुवर डा० विपिनविहारी जी त्रिवेदी को किन शब्दो मे धन्यवाद दे और किस रूप में कृतज्ञता प्रकट करे जिनके पथ-प्रदर्शन, प्रोत्साहन और उत्साहपूर्ण निरीक्षण के अभाव में प्रस्तुत ग्रंथ का इतने शीघ्र तथा इस रूप में पूर्ण होना दुष्कर ही नही वरन् नितात असंभव ही था। उनसे कभी उऋण नहीं हो सकती और होना भी नहीं चाहती। उनकी ज्ञान-गरिमा की शीतल सुखद साया मुझे आजीवन प्रेरणा देती रहे यही कामना है।

सबसे अंत में कविवर धनपाल के शब्दों मे विद्वज्जनों एवं कला-मर्मज्ञो से मेरी विनती है कि देवी भारती के मदिर में की हुई साधना प्रस्तुत ग्रंथ के रूप मे उनके सामने है, इसमे आई हुई त्रुटियों का प्रक्षालन कर वे इसे सम्हाल लें—

'बुधजन संभालमि तुम्ह तेत्थु'।

—उषा गुप्ता

विशेष चिह्न

> यह चिह्न पूर्वरूप से पररूप के परिवर्तन को बताता है।

जैसे – श्री हर्ष > सीहड़

< यह चिह्न पररूप से पूर्वरूप के परिवर्तन को बताता है।

जैसे :– सीहड़ < श्री हर्ष

× यह चिह्न ताल की सम दिखाता है।

० यह चिह्न ताल का खाली स्थान दिखाता है।

. जिस स्वर के नीचे यह चिह्न हो वह मन्द्र सप्तक का स्वर होता है।

जैसे :– नि ; ध ; प

. जिस स्वर के ऊपर यह चिह्न हो वह तार सप्तक का स्वर होता है।

जैसे :– सां ; रें ; ग

– जिस स्वर के नीचे यह चिह्न हो उसे कोमल समझना चाहिए।

जैसे :– रे ; ग ; ध ; नि

। 'म' के ऊपर यदि यह चिह्न हो तो उसे तीव्र स्वर समझना चाहिए।

‿ इस चिह्न के अन्तर्गत जितने स्वर और बोल हो उन्हे एक मात्रा का समझना चाहिए।

जैसे :– सरेगम , धागे ; तिरकिट ।

प्रथम अध्याय

मध्यकालीन हिन्दी साहित्य मे कृष्णभक्तिशाखा की स्थापना और उसका क्षेत्र

"यों तो भक्ति का इतिहास तथा उसकी मीमांसा बहुत लम्बी है।..... भक्तिमार्ग केवल मध्य युग की ही उपज नहीं। 'नारदीय पंचरात्र' और 'शाण्डिल्य सूत्र' के द्वारा निर्धारित आध्यात्म का यह मार्ग अपनी प्राचीनता का दावा पुष्ट आधारों पर उस समय से करता है जब ईसाई और इस्लाम धर्म अपनी शैशवावस्था मे शायद पालनों मे ही क्रीड़ा कर रहे थे।"[1] किन्तु कृष्ण का इतिहास भी कम प्राचीन नही है। "कृष्ण का इतिहास स्वयं ही एक बहुत उलझी हुई गुत्थी है। यों तो कृष्ण-नाम 'ऋग्वेद संहिता' मे भी पाया जाता है। ब्राह्मण और उपनिषद् भी कृष्ण के नाम को अपने वक्ष पर आदरपूर्वक अकित किये देखे जाते है.........विष्णुपुराण, ब्रह्मवैवर्त्त पुराण और भागवत् पुराण वैष्णव धर्म के सर्वविदित आधार है। इनमें विष्णु ही प्रधान देवता माने गये है और ब्रह्मवैवर्त्त और भागवत् पुराण मे तो विष्णु के अवतार कृष्ण के चरित्र का ही सबसे अधिक महत्व है .... महाभारत और उपर्युक्त तीनों पुराण कृष्ण-चर्चा से आद्योपान्त भरे पडे है।"[2] इस प्रकार कृष्ण-चरित्र की महत्ता भक्त जनो की कृतियो मे प्राचीन युग से ही निरन्तर प्रतिपादित होती आई है।

हिन्दी में विक्रम की १५ वी शताब्दी के अन्तिम भाग से लेकर १७ वी शताब्दी के अन्त तक सगुण और निर्गुण नाम से भक्ति-काव्य की दो धाराओं के अन्तर्गत (१) कृष्ण

---

१. मीरा-स्मृति-ग्रंथ, कृष्णभक्ति परंपरा और मीरा, आचार्य ललिताप्रसाद सुकुल, पृ० १९९ तथा १८४

२. मीरा-स्मृति-ग्रंथ, कृष्णभक्ति परंपरा और मीरा, आचार्य ललिताप्रसाद सुकुल, पृ० २०३

भक्ति शाखा, (२) रामभक्ति शाखा, (३) ज्ञानाश्रयी शाखा तथा (४) प्रेममार्गी सूफी शाखा—ये चार शाखाये स्पष्ट रूप से प्रचलित लक्षित होती है ।[1]

कृष्णभक्ति शाखा के भक्तो ने ब्रह्म के 'सत्' और 'आनन्द' स्वरूप का साक्षात्कार कृष्ण के रूप मे इस वाह्य जगत के व्यक्त क्षेत्र में किया । अपनी माधुर्य भावना से परिपूर्ण अथवा प्रेम-लक्षणा-भक्ति के लिए उन्होने कृष्ण के मधुर रूप तथा भागवत् में वर्णित कृष्ण की ब्रज-लीला को स्वीकार किया ।

कृष्ण भक्तो के आराधना-क्षेत्र मे यद्यपि साध्य की एकता थी अर्थात् सभी ने कृष्ण को अपने आराध्य के रूप मे ग्रहण किया था किन्तु उनकी सेवा-विधि तथा कृष्ण के विभिन्न रूपो सम्बन्धी मान्यताओ मे थोडा बहुत अन्तर था जिसके कारण निम्नलिखित प्रमुख सम्प्रदायों की स्थापना हुई –

(१) वल्लभ सम्प्रदाय,
(२) गौड़ीय सम्प्रदाय,
(३) राधावल्लभीय सम्प्रदाय,
(४) हरिदासी अथवा सखी सम्प्रदाय और
(५) निम्बार्क सम्प्रदाय ।

इन्हीं सम्प्रदायों के अन्तर्गत अनेक प्रतिभावान कवियो का उदय हुआ जिन्होंने हिन्दी के कृष्णभक्तिकालीन साहित्य को श्री-सम्पन्न किया । प्रस्तुत निबध मे हम १५ वी शताब्दी के अन्त से लेकर १७ वी शताब्दी के अन्त तक के उन्ही कृष्णभक्त कवियो का विवेचन करेंगे, जिन्होने या तो एकमात्र पदावली साहित्य ही लिखा है अथवा छंदो के साथ पदो मे भी थोड़ी बहुत रचना अवश्य की है । कृष्णभक्ति कालीन साहित्य के अन्तर्गत केवल पदावली साहित्य की ही विस्तृत समीक्षा की जायेगी ।

कृष्णभक्तिकालीन कवि और उनकी काव्य-कृतियों का उल्लेख

वल्लभ-सम्प्रदाय

"विक्रम की १६ वीं शताब्दी मे विष्णु स्वामी सम्प्रदाय की उच्छिन्न गद्दी पर श्री वल्लभाचार्य जी बैठे और उन्होने श्री विष्णु स्वामी के सिद्धान्तो से प्रेरणा लेकर शुद्धाद्वैत सिद्धान्त तथा भगवद् अनुग्रह अथवा पुष्टि द्वारा प्राप्त प्रेम-भक्ति के मार्ग की स्थापना की।"[2]

वल्लभाचार्य जी ने प्रेम-लक्षणा-भक्ति को अत्यधिक महत्ता प्रदान की और उसको

१. हिन्दी साहित्य का इतिहास, पं० रामचन्द्र शुक्ल, पृ० ७०
२. अष्टछाप और वल्लभ संप्रदाय, डा० दीनदयालु गुप्त, भाग १, पृ० ७०

प्राप्त करने के लिए नवधाभक्ति-श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पादसेवा, अर्चन, वदन, दास्य, सख्य और आत्मनिवेदन का प्रतिपादन किया। इस सम्प्रदाय मे कृष्णभक्ति प्रमुख है। यद्यपि इस सम्प्रदाय के कवियों ने युगल स्वरूप की लीलाओ का चित्रण भी किया है किन्तु वल्लभ सम्प्रदाय में राधा भगवान की आह्लादिनी शक्ति अथवा रस शक्ति के रूप मे ही मान्य है। अतः जहाँ कही भी वल्लभ सम्प्रदायी कवियो ने राधा की स्तुति की है वहाँ उनसे कृष्ण की भक्ति ही मागी है।

वल्लभ-सम्प्रदाय मे अष्टछाप के कवि विशेष प्रसिद्ध है। अष्टछाप के अन्तर्गत सूरदास, परमानददास, कुंभनदास, कृष्णदास अधिकारी, नंददास, चतुर्भुजदास, गोविदस्वामी तथा छीतस्वामी ये आठ कवि आते है।[१] इनमे से प्रथम चार श्री वल्लभाचार्य जी के शिष्य थे और अन्तिम चार श्री विट्ठलनाथ जी के।

सूरदास–सूरदास का जन्म समय सं० १५३५ बैसाख सुदी पचमी[२] और गोलोकवास लगभग स० १६३८ अथवा १६३९ वि० है।[३]

सूरदास की तीन रचनायें–(१) सूरसागर (२) सूर-सारावली तथा (३) साहित्य-लहरी प्रामाणिक मानी जाती हैं।[४] सूरसागर सूर द्वारा राग-रागिनियो मे गाये गये पदो का विशाल सग्रह है। सूर-सारावली काफी राग मे गाई गई है। वदना के बाद इसमें सरसी और सार छंदो मे ११०६ द्विपद छन्द दिये हुए है। साहित्य-लहरी कवि के दृष्टकूट पदो का सग्रह है। इसमे राग-रागिनियो का उल्लेख नहीं है।

परमानंददास–परमानददास की जन्मतिथि सं० १५५० वि० अगहन सुदी ७ सोमवार है।[५] और उनकी मृत्यु लगभग स० १६४० वि० में हुई।[६]

परमानंददास की प्रामाणिक रचना 'परमानंदसागर' है।[७] उसी के पद पृथक-पृथक रूप से छपे तथा हस्तलिखित कीर्तन-सग्रहो मे मिलते है। डा० दीनदयालु गुप्त जी ने कॉकरौली तथा नाथद्वारा के पद-संग्रहो से लगभग ४८९ पद छॉट कर परमानददास के पदों का एक हस्तलिखित प्रामाणिक पद-संग्रह तैयार किया है।

---

१. **अष्टछाप और वल्लभ संप्रदाय, डा० दीनदयालु गुप्त, (भाग १), पृ० १–२**
२. **वही, पृ० २१२**
३. **वही, पृ० २१९**
४. **वही, पृ० २९८**
५. **वही, पृ० २२९**
६. **वही, पृ० २३०**
७. **वही, पृ० ३११**

कुंभनदास—कुभनदास का जन्म सं० १५२५ वि०[1] और गोलोकवास लगभग संवत् १६३९ वि० है ।[2] कुंभनदास का कोई ग्रंथ उपलब्ध नही है। छपे रूप मे इनके कुछ पद वल्लभ सम्प्रदायी कीर्तन-सग्रह भाग १, २ तथा ३ मे मिलते है। इसके अतिरिक्त कुंभनदास जी के दो हस्तलिखित पद-सग्रह कॉकरौली-विद्या-विभाग तथा नाथद्वारा के निजी पुस्तकालय मे सुरक्षित है ।[3] उक्त हस्तलिखित सग्रहो के लगभग ९४ पद डा० दीनदयालु गुप्त जी के पास है ।

कृष्णदास अधिकारी—कृष्णदास का जन्म लगभग स० १५५२ वि०[4] तथा निधन सं० १६३२ से १६३८ वि० के मध्य[5] मे हुआ । कवि की प्रामाणिक रचना केवल वल्लभ सम्प्रदायी केन्द्रो मे हस्तलिखित तथा छपे कीर्तन रूप मे पाये जानेवाले पद-सग्रह है ।[6] डा० दीनदयालु गुप्त ने हस्तलिखित तथा छपे कीर्तन-सग्रहो मे से कृष्णदास अधिकारी के लगभग २०० पद छॉट कर एकत्र किये है ।

नंददास—नंददास का जन्म लगभग स० १५९० वि०[7] तथा निधन सं० १६३९ वि० के लगभग[8] हुआ । नददास के निम्नलिखित १४ ग्रंथ उनकी प्रामाणिक रचना माने गये है–[9]

(१) रस मजरी (२) मान मजरी अथवा नाममाला (३) अनेकार्थ मंजरी
(४) दशमस्कध भाषा (५) श्याम सगाई (६) गोवर्द्धन लीला
(७) सुदामा चरित (८) विरह मंजरी (९) रूप मंजरी
(१०) रुक्मिणी मंगल (११) रासपंचाध्यायी (१२) भँवर गीत
(१३) सिद्धात पचाध्यायी (१४) पदावली ।

नददास जी ने पदावली को ही राग-रागिनियो में बद्ध पदों में गाया है । नंददास जी की सम्पूर्ण पदावली का अभी तक कोई प्रामाणिक सस्करण प्रकाशित नही हुआ । श्री उमाशकर शुक्ल जी ने अपने 'नंददास' नामक ग्रंथ मे २८३ पद प्रकाशित किये है जो प्रामा-

---

१. अष्टछाप और वल्लभ संप्रदाय, डा० दीनदयालु गुप्त, (भाग १), पृ० २४२
२. वही, पृ० २४४
३. वही, पृ० ३११
४. वही, पृ० २५४
५. वही, पृ० २५५
६. वही, पृ० ३२४
७. वही, पृ० २६१
८. वही, पृ० २६२
९. वही, पृ० २७२

णिक रूप से नंददास द्वारा लिखित मान्य है।[१] किंतु उसमे अधिकांश पदों के ऊपर राग-रागिनियों के नामों का उल्लेख नही किया गया है। नंददास जी के कुछ पद वल्लभ सम्प्रदाय के प्रकाशित ग्रथ 'नित्य कीर्तन, वर्षोत्सव कीर्तन', 'वसन्तधमार कीर्तन', 'राग-रत्नाकर', तथा 'राग कल्पद्रुम' मे मिलते है। इनके अतिरिक्त कुछ स्फुट पद पुष्टिमार्गीय कीर्तनिओ के पास भी है। उपर्युक्त छपे ग्रथों के आधार पर तथा फुटकर रूप से मिलने वाले पदों को लेकर श्री जवाहरलाल चतुर्वेदी जी ने नंददास के पदों का एक प्रामाणिक संग्रह तैयार किया है।[२] इसके लगभग १९० पद श्रीयुत डा० दीनदयालु गुप्त जी के पास है। इस पद-संग्रह में लगभग १५० पदों के ऊपर राग-रागिनियों के नामो का उल्लेख किया गया है।

चतुर्भुजदास—चतुर्भुजदास का जन्म सं० १५९७ वि०[३] तथा निधन सं० १६४२ वि०[४] मे हुआ।

कवि की प्रामाणिक रचना कॉकरौली तथा नाथद्वारा में प्राप्त होने वाले पद-संग्रह तथा वल्लभ सम्प्रदायी छपे कीर्तन-सग्रहो में प्राप्त पद है।[५] उक्त सग्रहो से डा० दीनदयालु जी गुप्त ने चतुर्भुजदास जी के लगभग १२६ पद छाँट कर एकत्र किए है।

गोविंदस्वामी—गोविंदस्वामी का जन्म लगभग सं० १५६२ वि० तथा गोलोकवास सं० १६४२ वि० मे हुआ।[६]

गोविंदस्वामी की प्रामाणिक रचना उनके २५२ पद है।[७] लेखिका ने गोविंदस्वामी के २५२ पदो का एक हस्तलिखित पद-संग्रह डा० दीनदयालु गुप्त जी क़े पास देखा है।

छीतस्वामी—छीतस्वामी का जन्म लगभग सं० १५६७ वि० तथा निधन तिथि सं० १६४२ वि० फाल्गुन कृष्ण ८ है।[८]

कवि की प्रामाणिक रचना वल्लभ सम्प्रदायी कीर्तन-संग्रहो में छपे पद तथा डा० दीनदयालु गुप्त जी का हस्तलिखित पद-सग्रह है।[९]

---

१. **अष्टछाप और वल्लभ संप्रदाय, डा० दीनदयालु गुप्त, (भाग १), पृ० ३७१**
२. **वही, पृ० २७२**
३. **वही, पृ० २६५**
४. **वही, पृ० २६६**
५. **वही, पृ० ३८५**
६ **वही, पृ० २७२**
७. **वही, पृ० ३८९**
८. **वही, पृ० २७८**
९. **वही, पृ० ३९१**

गौड़ीय सम्प्रदाय

गौडीय सम्प्रदाय के प्रचारक श्री चैतन्य महाप्रभु थे। इस सम्प्रदाय मे राधा-कृष्ण-युगल रूप के चरणो की उपासना मान्य थी। इसमे सत्सग, नाम तथा लीला-कीर्तन, ब्रज-वृन्दावनवास, कृष्णमूर्ति की सेवा-पूजा आदि भक्ति के साधनो को विशेष महत्व दिया गया है। इस सम्प्रदाय के अन्तर्गत निम्नलिखित कवि हुए है –

गदाधर भट्ट–शिवसिह-सरोज मे गदाधर भट्ट का समय स० १५८० वि० दिया हुआ है।[1] शुक्ल जी ने इनका रचनाकाल स० १५८० वि० से सं० १६०० वि० के पीछे तक माना है।[2] शिवसिह जी ने इनके एक पद (सखी हौ श्याम के रग रँगी) का उल्लेख किया है और कहा है कि 'इनके पद राग-सागरोद्भव मे है।'[3] शुक्ल जी ने गदाधर भट्ट की काव्य-रचना का विवरण देते हुए लिखा है–"गोस्वामी तुलसीदास जी के समान इन्होने संस्कृत पदों के अतिरिक्त सस्कृत गर्भित भाषा-कविता भी की है।[4] डा० रामकुमार वर्मा जी ने इनके स्फुट पदो का उल्लेख किया है।[5] बनारस के बालकृष्णदास जी के पास लेखिका ने गदाधर भट्ट कृत 'श्री गदाधर भट्ट जी महाराज की बानी' नामक हस्तलिखित प्रति देखी है जिसका विस्तृत वर्णन पचम अध्याय मे किया गया है।

सूरदास मदनमोहन–मिश्रबधुओ ने इनका रचनाकाल सं० १५९५ वि० के लगभग माना है।[6] शुक्ल जी ने इनका आविर्भाव काल स० १६०० माना है।[7]

सूरदास मदनमोहन कृत कोई काव्य-ग्रंथ उपलब्ध नही है। हिंदी साहित्य के इतिहास-कारो तथा लेखको ने इनके स्फुट पदो का उल्लेख किया है।[8] विभिन्न हस्तलिखित तथा छपे पद-सग्रहो मे कवि के जो पद लेखिका के देखने मे आये है उनका वर्णन पचम अध्याय मे किया गया है।

राधावल्लभीय सम्प्रदाय

राधा वल्लभीय सम्प्रदाय के प्रवर्त्तक श्री स्वामी हितहरिवश जी थे। इस सम्प्रदाय

१. शिवसिह-सरोज, शिवसिह सेंगर, पृ० ४०३
२. हिंदी साहित्य का इतिहास, रामचन्द्र शुक्ल, पृ० १८२
३. शिवसिह-सरोज, शिवसिह सेंगर, पृ० ४०३
४. हिंदी साहित्य का इतिहास, रामचन्द्र शुक्ल, पृ० १८३
५. हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, रामकुमार वर्मा, पृ० ७११
६. मिश्रबंधु विनोद, (प्रथम भाग), कवि संख्या ९४, पृ० ३५४
७. हिंदी साहित्य का इतिहास, रामचन्द्र शुक्ल, पृ० १८७
८. मिश्रबंधु-विनोद, (भाग १), पृ० ३५४; हिंदी साहित्य का इतिहास, शुक्ल, पृ० १८०; हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, वर्मा, पृ० ७१२; अकबरी दरबार के हिंदी कवि, सरयूप्रसाद अग्रवाल, पृ० ४७

में राधा और कृष्ण की युगल उपासना की गई किंतु राधा की पूजा और भक्ति प्रधान रही। राधावल्लभीय सम्प्रदाय मे राधाकृष्ण की कुजलीला तथा शृंगारिक केलि को प्रधानता देने के कारण रति-क्रीडा का ही एक मात्र अवलम्ब लिया गया है। उसमें शृंगार के वियोग पक्ष का पूर्णतया अभाव है।

हितहरिवंश जी–हितहरिवश जी का जन्म सं० १५८५ वि० में हुआ था।[१] शिवसिंह जी ने हिंदी मे हितहरिवश विरचित 'हित चौरासी धाम' ग्रंथ का उल्लेख किया है।[२] 'हस्तलिखित हिंदी पुस्तको के सक्षिप्त विवरण' मे कविकृत दो ग्रथ (१) हरिवंश चौरासी तथा (२) फुटकर बानी कहे गए है।[३] मिश्रबधुओ ने भाषा में विरचित इनके ग्रंथ का नाम 'चौरासी पद' लिखा है। मिश्रबधु-विनोद के वर्णन से विदित होता है कि बाबू राधाकृष्ण दास जी ने ८४ पदो के अतिरिक्त कुछ और भी हितहरिवश जी के पद देखे है।[४] हिन्दी साहित्य के अन्य इतिहासकारो तथा लेखको ने हिन्दी मे हितहरिवंश कृत 'हित चौरासी' ग्रथ का उल्लेख किया है।[५] पं० रामचन्द्र शुक्ल ने हित चौरासी के अतिरिक्त इनकी फुटकर बानी का वर्णन भी किया है जिसमे सिद्धात संबधी पद है।[६] हस्तलिखित रूप मे प्राप्त हितहरिवश जी के ८४ पदो के जो सग्रह तथा स्फुट पद लेखिका के देखने मे आये हैं उनका वर्णन पचम अध्याय में किया गया है।

हरिराम व्यास–ओरछानरेश श्री मधुकरशाह के राजगुरु श्री हरिराम व्यास का कविताकाल मिश्रबधुओ ने सं० १६१५ वि०[७] तथा रामचन्द्र शुक्ल ने उनका समय सं० १६२० वि० के आसपास[८] माना है। वासुदेव गोस्वामी ने व्यास जी का जन्म सं० १५६७ वि०

---

१. **शिवसिंह-सरोज, पृ० ५१४, कवि संख्या १२; मिश्रबंधु-विनोद, पृ० २८५, कवि संख्या ६०; हिंदी साहित्य का इतिहास, शुक्ल, पृ० १८०; अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय, डा० दीनदयालु गुप्त, (भाग १), पृ० ६६**
२. **शिवसिंह-सरोज, पृ० ५१४, संख्या १२**
३. **हस्तलिखित हिंदी पुस्तकों का संक्षिप्त विवरण, पृ० १६७**
४. **मिश्रबंधु-विनोद, (प्रथम भाग), पृ० २८५**
५. **हिंदी भाषा और साहित्य, श्यामसुंदरदास, पृ० ४२०; हिंदी साहित्य का इतिहास, शुक्ल, पृ० १८०; हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, वर्मा, पृ० ७१५; अष्टछाप और वल्लभ संप्रदाय, डा० दीनदयालु गुप्त, (भाग १), पृ० ६६**
६ **हिंदी साहित्य का इतिहास, पं० रामचन्द्र शुक्ल, पृ० १८१ में आये फुटकर पदों में से एक पद उद्धृत भी किया गया है किंतु उसमें राग का नाम नहीं दिया।**
७. **मिश्रबंधु-विनोद, (भाग १), पृ० ३३८, कवि संख्या ७८**
८. **हिंदी साहित्य का इतिहास, रामचन्द्र शुक्ल, पृ० २११**

तथा कविताकाल सं० १५६० वि० से सं० १६६९ वि० तक सिद्ध किया है।[1]

मिश्रबंधुओं ने व्यास जी कृत ५ ग्रंथों का उल्लेख किया है—(१) बानी (२) रास के पद (३) ब्रह्मज्ञान (४) मंगलाचार पद (५) पद (३०० पृष्ठ छोटे)।[2] शुक्ल जी ने व्यासजी कृत रासपंचाध्यायी, पद और साखियों का वर्णन किया है।[3] वर्मा जी ने इनका एक प्रसिद्ध ग्रंथ 'व्यास की बानी' बताया है जिसमें भक्ति के पदों के साथ रासपंचाध्यायी भी है।[4] डा० दीनदयालु गुप्त जी का कथन है कि ब्रजभाषा में इनके पद बहुत प्रसिद्ध है।[5] बासुदेव गोस्वामी ने हिंदी में व्यास जी के दो ग्रंथ प्रामाणिक माने है—(१) रागमाला जिसमे ६०४ दोहे है तथा (२) व्यासवाणी जिसमे विविध प्रतियों के आधार पर ७५८ पद और १४८ दोहे उपलब्ध है।[6] व्यास जी के काव्य की समीक्षा व्यासवाणी में संग्रहीत पदों के द्वारा ही की गई है।

हरिदासी सम्प्रदाय

हरिदास स्वामी–हरिदासी सम्प्रदाय के प्रथम गुरू अलीगढ़ निवासी आसधीर जी हुए। उनके बाद इस भक्ति-पद्धति को एक स्वतंत्र सम्प्रदाय का रूप देने वाले गुरू अलीगढ के निकट स्थित हरिदासपुर स्थान के निवासी अष्टछाप कवियों के समकालीन स्वामी हरिदास जी हुए।[7] हरिदासी सम्प्रदाय में राधाकृष्ण की युगल उपासना सखी-भाव से मान्य थी।

हरिदास स्वामी ने दो ग्रंथो की रचना की थी (१) साधारण सिद्धांत और (२) रास के पद।[8] हरिदासी सम्प्रदाय मे निम्नलिखित कवि और हुए है–

विट्ठलविपुल–शिवसिंह-सरोज तथा 'हस्तलिखित हिंदी पुस्तकों का सक्षिप्त विवरण' में विट्ठलविपुल का जन्म स० १५८० वि० दिया है।[9] मिश्रबंधुओं ने इनका रचनाकाल सं० १६१५ वि० माना है।[10]

---

१ भक्त कवि व्यास जी, वासुदेव गोस्वामी, पृ० ४१
२. मिश्रबंधु-विनोद, पृ० ३३७
३. हिंदी साहित्य का इतिहास, पं० रामचन्द्र शुक्ल, पृ० २१३
४. हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, राम कुमार वर्मा, पृ० ७१८
५. अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय, डा० दीनदयालु गुप्त, (भाग १), पृ० ६७
६. भक्त कवि व्यास जी, वासुदेव गोस्वामी, पृ० १४६
७. अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय, डा० गुप्त, (भाग १), पृ० ६८
८. वही, पृ० ६९
९. शिवसिंह-सरोज, पृ० ४५९; हस्तलिखित हिंदी पुस्तकों का संक्षिप्त विवरण पृ० १००
१०. मिश्रबंधु-विनोद, पृ० ३३८, कवि संख्या ७९

खोज रिपोर्ट तथा मिश्रबधुविनोद मे विट्ठलविपुल कृत 'विट्ठलविपुल जी की बानी' ग्रंथ का उल्लेख है ।[१] 'विट्ठलविपुल जी की बानी' नामक ग्रथ की जो हस्तलिखित प्रतियाँ लेखिका के देखने में आई है उनका वर्णन पंचम अध्याय मे किया गया है ।

बिहारिनदास—'हस्तलिखित हिंदी पुस्तको का संक्षिप्त विवरण' में बिहारिनदास को १७ वी शताब्दी के पूर्वार्द्ध मे माना है ।[२] किंतु १९०९-१०-११ की खोज रिपोर्ट मे इन्हे १६ वी शताब्दी मे बताया गया है ।[३] मिश्रबधुओ ने इनका कविताकाल स० १६३० वि० माना है ।[४] हस्तलिखित हिंदी पुस्तको के सक्षिप्त विवरण मे विट्ठलविपुल कृत दो ग्रथों का उल्लेख है—(१) समय प्रबध—इसमे ४४८० श्लोक है और छप्पै दोहा आदि दिए हुए है, (२) श्री बिहारिनदास की बानी ।[५] मिश्रबधुओ ने इनके दो ग्रंथो (१) साखी, जिसमें ६५० छंद है तथा (२) ११६ पदो के ग्रथ का वर्णन किया है ।[६] 'श्री बिहारिनदास जी की बानी' नामक हस्तलिखित रचना का वर्णन पचम अध्याय मे किया गया है ।

निम्बार्क सम्प्रदाय

निम्बार्क सम्प्रदाय के प्रचारक श्री निम्बार्काचार्य जी थे । वल्लभ और चैतन्य सम्प्रदायो की भाँति इसमे भी मधुर भाव को उत्कृष्टता प्रदान की गई है । निम्बार्क सम्प्रदाय के उपास्यदेव व्रजकृष्ण है जो अपनी प्रेम और माधुर्य की अधिष्ठात्री शक्ति राधा तथा अन्य आह्लादिनी गोपी स्वरूपा शक्तियों से परिवेष्ठित रहते है । निम्बार्काचार्य जी ने युगल उपासना के साथ राधा की उपासना पर विशेष महत्व दिया है ।

श्री भट्ट – 'शिवसिह सरोज' तथा 'हस्तलिखित हिंदी पुस्तकों का संक्षिप्त विवरण' मे श्री भट्ट का समय सं० १६०१ वि० माना गया है ।[७] मिश्रबंधुओ ने भट्ट जी का कविताकाल स० १६३० वि० के लगभग दिया है ।[८] प० रामचन्द्र शुक्ल ने अपने इतिहास मे श्री भट्ट का जन्म स० १५९५ वि० तथा कविताकाल स० १६२५ वि० के लगभग स्वीकार किया है ।[९]

---

१. हस्तलिखित हिंदी पुस्तकों का संक्षिप्त विवरण, पृ० १००; मिश्रबंधु-विनोद, पृ० ३३८
२ वही, पृ० १००
३. खोज रिपोर्ट, सन् १९०९-१०-११, पृ० ५८
४. मिश्रबंधु-विनोद, पृ० ३५२, कवि संख्या ८८
५ हस्तलिखित हिंदी पुस्तकों का संक्षिप्त विवरण, पृ० १००
६. मिश्रबंधु-विनोद, पृ० ३५२
७. शिवसिंह-सरोज पृ० ५००; हस्तलिखित हिंदी पुस्तकों का संक्षिप्त विवरण, पृ० १०१
८. मिश्रबंधु-विनोद, पृ० ३५०, कवि संख्या ८७
९. हिंदी साहित्य का इतिहास, रामचन्द्र शुक्ल, पृ० २१०

श्री भट्ट जी ने 'युगलशतक' ग्रथ की रचना की ।[१] युगलशतक ग्रंथ की जिन हस्तलिखित प्रतियो का लेखिका ने निरीक्षण किया है उनका विवरण पंचम अध्याय मे है । मिश्रबंधुओं तथा शुक्ल जी ने कवि कृत 'आदि वाणी' नामक ग्रंथ का भी उल्लेख किया है ।[२] किंतु वह ग्रंथ लेखिका के देखने में नही आया ।

परशुराम---'शिवसिह सरोज' तथा 'हस्तलिखित हिदी पुस्तकों का सक्षिप्त विवरण' में परशुराम का जन्म समय स० १६६० वि० दिया है ।[३] शिवसिह जी ने परशुराम कृत स्फुट पदो का उल्लेख किया है ।[४] 'हस्तलिखित हिदी पुस्तको का सक्षिप्त विवरण' मे इनके 'वैराग्य निर्णय' ग्रथ का उल्लेख है ।[५]

सन् १९१२–१३–१४ की खोज रिपोर्ट मे परशुराम कृत 'परशुरामसागर' ग्रंथ का वर्णन किया गया है ।[६] सन् १९३४–३५–३६ की खोज रिपोर्ट मे इनके निम्नलिखित १३ ग्रंथ कहे गए है –

(१) तिथिलीला (२) वारलीला (३) बावनीलीला (४) प्रियबतीसी
(५) नाथलीला (६) रोगरथनामलीला (७) साचनिषेधलीला (८) हरिलीला
(९) लीलासमझनी (१०) नक्षत्रलीला (११) निजरूपलीला (१२) अमरबोध
(१३) पदावली ।

काशी नागरी प्रचारिणी सभा में सुरक्षित परशुराम कृत 'रामसागर' ग्रंथ की हस्त-लिखित प्रति लेखिका के देखने में आयी है । प्रति से ग्रंथ के निर्माणकाल, लिपिकार तथा लिपिकाल का कोई पता नही चलता । 'रामसागर' मे विभिन्न शीर्षको तथा प्रकरणो के अन्तर्गत बहुत सी लीलाये दी हुई है उसमे ऊपर लिखे सभी ग्रंथ आ गए है । इन लीलाओं के अतिरिक्त 'रामसागर' मे विभिन्न राग-रागिनियो मे कुछ पद भी दिए हुए है जिनका वर्णन पचम अध्याय मे किया गया है ।

सम्प्रदाय मुक्त कवि

इस काल के कृष्ण-साहित्य के अध्ययन में हमे ऐसी विपुल पदावली-सामग्री भी

---

१ हस्तलिखित हिंदी पुस्तकों का संक्षिप्त विवरण, पृ० १७१; हिंदी साहित्य का इतिहास शुक्ल, पृ० २१०; हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, रामकुमार वर्मा, पृ० ५९७

२. मिश्रबंधु-विनोद, पृ० ३१५, हिंदी साहित्य का इतिहास, शुक्ल, पृ० २१०

३ शिवसिंह-सरोज, शिवसिंह सेंगर, पृ० ४५१; हस्तलिखित हिंदी पुस्तकों का संक्षिप्त विवरण, पृ० ८५

४, शिवसिंह-सरोज, शिवसिंह सेंगर, पृ० ४५१

५. हस्तलिखित हिंदी पुस्तकों का संक्षिप्त विवरण, पृ० ८५

६ खोज-रिपोर्ट सन् १९१२–१३–१४

मिलती है जो अपने तत्व विवेचन मे कृष्ण लीलाओ से ही सम्बद्ध है किंतु उसके गायक किसी सम्प्रदाय विशेष के अन्तर्गत परिगणित नही किये गये है । और न जिनके विषय में कोई ऐसा आधार ही प्राप्त है जिसके अनुसार उन्हे किसी विशेष सम्प्रदाय से सम्बद्ध किया जाये । किंतु इस कोटि की सामग्री अपना काव्यगत महत्व तो रखती ही है और साथ ही साथ उसमे सगीततत्व भी प्रचुर मात्रा मे है इसलिए इस सामग्री का अध्ययन भी आवश्यक माना गया है । इस कोटि के प्रधान कवि निम्नलिखित है –

मीराबाई–मीरा का जन्म स० १४९८ से १५०३ वि० के भीतर माना जाता है ।[१] मीरा कृत तीन रचनाये प्रसिद्ध है—(१) गीत गोविद की टीका, (२) नरसी जी रो मायरो और (३) राग गोविद । किंतु इन ग्रथो की प्रामाणिकता मे सदेह है ।[२] मीरा के स्फुट पदो की रचना ही उनकी प्रामाणिक कृति मानी गई है । मीरा के प्रचलित पदो के अनेक सग्रह हिंदी तथा भारत की अन्य विविध भाषाओ मे प्राचीन काल से लेकर आज तक उपलब्ध हुए है किंतु उनमे से अधिकाश प्राचीन हस्तलिखित प्रतियो के आधार पर सगृहीत न होने के कारण प्रामाणिकता की कसौटी पर खरे नही उतरते ।[३] मीरा-स्मृति-ग्रंथ मे 'मीरा पदावली' नामक प्रकरण मे प्राचीन हस्तलिखित प्रतियो के आधार पर मीरा के १०३ पदो का सग्रह प्रकाशित किया गया है । यही मीराकृत पदो का प्रामाणिक सग्रह माना जा सकता है । मीरा के काव्य की समीक्षा प्राय इसी संग्रह के आधार पर की गई है ।

राजा आसकरण–आइने अकबरी मे अबुलफज़ल ने प्रभावशाली सामतो तथा राजाओ की सूची मे राजा आसकरण का उल्लेख किया है ।[४] शिवसिंह-सरोज मे इनका जन्म स० १६१५ वि० दिया है ।[५] मिश्रबन्धुओ ने इनका रचनाकाल सं० १६०६ वि० माना है ।[६]

राजा आसकरण विरचित कोई ग्रथ उपलब्ध नही है । हिंदी साहित्य के इतिहासकारो ने इनके स्फुट पदो का ही उल्लेख किया है ।[७] हस्तलिखित तथा छपे रूप मे इनके जो पद उपलब्ध हुए है उनका वर्णन पचम अध्याय मे है ।

गंग ग्वाल–तासी, शिवसिह सेंगर, श्यामसुदरदास, रामचन्द्र शुक्ल किसी ने भी अपने इतिहास ग्रथ मे गग ग्वाल का उल्लेख नही किया । मिश्रबधु-विनोद मे गग उपनाम

---

१. मीरा-स्मृति-ग्रंथ, मीरा–'निरुक्त', आचार्य ललिताप्रसाद सुकुल, पृ० ४३
२. वही, पदावली परिचय, पृ० द०
३. वही, " " " पृ० ख०
४. आइने अकबरी, (भाग १), पृ० ५३१
५. शिवसिंह-सरोज, शिवसिंह-सेंगर, पृ० ३७९
६. मिश्रबंधु-विनोद, (भाग १), पृ० ३५६, कवि संख्या १०२
७. शिवसिंह-सरोज, शिवसिंह सेंगर, पृ० ३७९; मिश्रबंधु-विनोद, पृ० ३५६

गग ग्वाल का वर्णन है और उनका कविता काल स० १६३५ वि० के लगभग माना है।[1] किंतु मिश्रबधुओ ने गग ग्वाल के किसी काव्य-ग्रंथ, पदसग्रह अथवा स्फुट पदो का उल्लेख नही किया है।

गग ग्वाल कृत दान-लीला, राधा जी की जन्म-लीला, मोती-लीला तथा स्फुट पद लेखिका के देखने मे आये है। (१) दानलीला (२) राधा जी की जन्म लीला तथा (३) मोती-लीला, इन तीनो ग्रथो की हस्तलिखित प्रतियाँ ब्रजरत्नदास जी के पास है। ग्रंथो के लिपिकाल का समय तथा लिपिकार का नाम ज्ञात नही होता। दान-लीला के अत मे लिखा है– "इ·········लीला गग ग्वाल कृत सपूर्ण। मीती आसा······" यहा से कीड़ो ने काट दिया है अतः आगे पढा नही जाता। ब्रजरत्नदास जी ने अपने नोट मे इसका लिपिकाल आषाढ़ ब० ५ स० १८२४ वि० लिख रखा है। उनका कहना है कि उनके देखने के बाद ही इस ग्रथ को किसी तरह कीड़ो ने काट दिया है अत. अब लिपिकाल नही पढ़ा जाता।

ये तीनो रचनाये छदो मे है। इनमे राग-रागिनियो का उल्लेख नही है। हस्तलिखित तथा छपे पद-संग्रहो मे गग ग्वाल का एक स्फुट पद प्राप्त होता है उसका वर्णन पचम अध्याय मे किया गया है।

कृष्णभक्तिकालीन कवियों के संगीत-ज्ञान का परिचय

किसी भी कवि के संगीत-ज्ञान तथा सगीत सबधी घटनाओं की जानकारी अंत.साक्ष्य अर्थात् उनकी रचनाओ मे उपलब्ध आत्मविषयात्मक उल्लेखो तथा प्राचीन बहि साक्ष्य इन दो आधारों पर होती है।[2] जहाँ तक अत साक्ष्यों[3] का प्रश्न है उनके द्वारा कही-कही यह सकेत तो अवश्य मिलता है कि कृष्णभक्तिकालीन कवि अपने पदो को गाया करते थे किन्तु इसके अतिरिक्त अन्य सगीत सम्बन्धी घटनाओ तथा इन कवियों के संगीत गुरु कौन थे, इन्होने सगीत की शिक्षा कहाँ पाई आदि प्रश्नो से सम्बद्ध विवरण इन कवियो के आत्मविषयात्मक उल्लेखो मे नही मिलते। वाह्य आधारभूत ग्रंथों[4] मे अवश्य कुछ कृष्णभक्तिकालीन कवियो के सगीत-ज्ञान पर कही-कही प्रकाश डाला गया है। इनमे जिन कवियो के सम्वन्ध मे जो वृतात उपलब्ध होते है उन्ही के आधार पर आगे की पक्तियो मे उन कृष्णभक्तिकालीन कवियो के सगीत-ज्ञान की रूपरेखा प्रस्तुत की जायेगी।

---

१. मिश्रबंधु-विनोद, (भाग १), पृ० ३८५

२. अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय, डा० दीनदयालु गुप्त, भाग १, पृ० ८१

३ कृष्णभक्तिकालीन कवियों के संगीत संबन्धी आत्मविषयात्मक उल्लेख प्रस्तुत निबंध के चतुर्थ अध्याय में दिए गए है।

४. अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय, डा० दीनदयालु गुप्त, भाग १, पृ० १०८

सूरदास

यों तो अष्टछाप के आठो कवि उच्चकोटि के भक्त, कवि तथा गवैये थे किन्तु इनमे सर्वश्रेष्ठ स्थान सूरदास का ही है। "आचार्यो की छाप लगी हुई जो आठ वीणाये श्री कृष्ण की प्रेम-लीला कीर्तन करने उठी उनमे सबसे ऊँची, सुरीली और मधुर झकार अंधे कवि सूरदास की वीणा की थी।"[1] नाभादास जी ने सूरदास के काव्य की प्रशंसा करते हुए लिखा है –

उक्ति चोज अनुप्रास वरन अस्थिति अति भारी।
वचन प्रीति निर्वाह अर्थ अद्भुत तुक धारी ॥
प्रतिबिंबित दिवि दृष्टि हृदय हरिलीला भासी।
जन्म कर्म गुण रूप सबै रसना जु प्रकासी ॥
विमल बुद्धि गुनि और की, जो वह गुण श्रवणनि धरै।
सूर कवित्त सुनि कौन कवि, जो नहिं सिर चालन करै ॥[2]

"ऐसा कौन व्यक्ति है जो सूरदास जी के कवित्त को सुनकर प्रशंसा मे सिर न हिला दे। उनकी कविता में अनोखी उक्तियाँ, चोज, अनूठे अनुप्रास और सुन्दर शब्द-चयन है। कविता मे आदि से अन्त तक प्रेम के भाव का निर्वाह किया गया है। उनकी कविता मे अद्भुत अर्थ-गाम्भीर्य और मुग्धकारी तुक है। ईश्वर ने उनको दिव्यदृष्टि दी है। और इनके हृदय में हरि की लीला प्रतिभासित होती है। इन्होंने कृष्ण के जन्म, कर्म, गुण और रूप सबको अपनी दिव्य दृष्टि से देखा और अपनी रसना से उन्हे प्रकाशित किया। जो कोई सूर के गाये हुए भगवद् गुणो को सुनेगा उसकी बुद्धि विमल हो जायगी।"

नाभादास जी के उक्त कथन से यद्यपि स्पष्ट रूप से यह नही ज्ञात होता कि सूरदास को सगीत का ज्ञान कितना था, कहाँ उन्होने संगीत की शिक्षा प्राप्त की किन्तु साकेतिक रूप से यह ध्वनि अवश्य निकलती है कि सूरदास संगीत मे अत्यधिक कुशल थे और उन्होंने सुन्दर पद बनाकर गाए क्योकि नाभादास जी ने सूर के काव्य मे जिन गुणो (अनुप्रास, सुन्दर शब्द चयन, तुक आदि) का समावेश किया है वे सब सगीत के उपादान है। इनके संयोग से काव्य मे संगीत की मधुरता तथा झकार आ जाती है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि सूरदास कुशल गायक थे और इसी कारण अपने काव्य मे उन्होने सगीत के समस्त् गुणों का समावेश कर दिया। सूर की प्रतिभा को लक्ष्य कर नाभादास ने कहा है –

सूर कवित सुन कौन कवि जो नहि सिर चालन करै।

इससे भी विदित होता है कि सूर के पदो में इतना अधिक संगीत निहित

---

१ **भ्रमरगीत-सार, आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल, प्रथम संस्करण, भूमिका, पृ० २**

२. **भक्तमाल, भक्ति रस बोधिनी, प्रियादास, छप्पय सं० ७३, पृ० ८३**

है कि उनको सुनकर सहृदय मात्र आनद विभोर हो जाते है और श्रोताओ का सिर स्वतः ताल तथा सम के साथ हिल जाता है ।

ध्रुवदास जी ने भी सूरदास के पद-गायन का उल्लेख किया है –

परमानंद अरु सूर मिलि गाई सब ब्रज रीति,
भूलि जात विधि भजन की सुनि गोपिन की प्रीति ।[१]

वार्ता साहित्य से इनके सगीत ज्ञान पर विशेष प्रकाश पड़ता है । ८४ वैष्णवन की वार्ता से पता चलता है कि सूरदास जिस समय गऊघाट पर रहते थे उस समय बहुत सुन्दर पद बना कर गाते थे । उनसे गान विद्या सीखने के लिये बहुत से लोग उनके सेवक भी बन गए थे –

"सो गऊघाट ऊपर सूरदास जी को स्थल हुतौ । सो सूरदास जी स्वामी है आप सेवक करते । सूरदास जी भगवदीय है । गान बहुत आछो करते ताते बहुत लोग सूरदास जी के सेवक भये हुते ।"[२]

हरिराय जी के वर्णन से भी इस बात की पुष्टि होती है कि सूरदास जी गन्धर्व-विद्या मे निपुण थे । उनकी स्वरलहरी इतनी मधुर थी कि उनके अनेक सेवक हो गए थे और अपने गान के कारण वे जगत मे विख्यात हो गए थे –

"सूरदास को कठ बहोत सुन्दर हतो । सो गान विद्या मे चतुर और सगुन बतायबे में चतुर । सो उहा हूं बहोत लोग सूरदास जी के पास आवते । उहा हू सेवक बहोत भये । सो सूरदास जगत मे प्रसिद्ध भये ।"[३]

सन्तदास ने भी सूरदास के गान, कीर्तन तथा ख्याति की प्रशसा की है –

सूर के समान और भक्त नाहीं पाइये ।
सेवक श्री वल्लभ के तिहूं लोक गाइये ।
× × ×
गुनी तान गाननि परिपूरन अवलोक को ।[४]

सूरदास को गुणी संगीतज्ञ प्रमाणित करने का सबसे बडा आधार ऐतिहासिक है । सूरदास की गान विद्या की प्रशसा अकबर तक पहुँची और वह इनसे मिलने के लिए

---

१. **भक्तनामावली, छन्द सं० ६५**
२. **८४ वैष्णवन की वार्ता, हरिराय, पृ० ६**
३. **८४ वैष्णवन की वार्ता, हरिराय पृ० ६**
४. **अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय, डा० दीनदयालु गुप्त, भाग १, पृ० १५२**

लालायित हो गया। तानसेन के साथ अकबर का सूर से मिलना इतिहास प्रसिद्ध घटना है। श्री महाराज रघुराज सिंह, मुशी देवीप्रसाद, डा० दीनदयालु गुप्त आदि ने अकबर और सूर की भेट को प्रामाणिक माना है।[१] हरिराय जी वाली भाव प्रकाश वार्ता में स्पष्ट रूप से उल्लेख किया गया है कि तानसेन के द्वारा सूरदास का एक पद सुनकर अकबर इतना प्रभावित हुआ कि उसने कवि को सादर मथुरा बुला कर उनका गाना सुना—

"पाछे उनके पद जहा तहा लोग सीखि के गावन लागे। सो तब (एक समय) तानसेन ने एक पद सूरदास कौ सीखि के अकबर बादशाह के आगे गायो। सो पद। राग नट—'यह सब जानो भक्त के लच्छन'। यह सुनि देसाधिपति अकबर ने कह्यो जो ऐसे लच्छन वारे भक्तन सो मिलाप होय तो कहा कहिये ? सो तानसेन ने कही जो—जिनने यह कीर्तन कियो है सो ब्रज मे रहत है। और सूरदास जी उनको नाम है। यह सुनि देसाधिपति के मन मे आई जो कोई उपाय करि के सूरदास सो मिलिये। पाछे देसाधिपति दिल्ली ते आगरा आयो। तब अपने हलकारन सो कह्यो जो ब्रज मे सूरदास जी श्री नाथ जी के पद गावत है सो तिनकी ठीक पारिके मो को श्री मथुराजी मे खबरि दीजियों और (जो) यह बात सूरदास जाने नाही।

तब उन हलकारन ने श्री नाथ जी द्वार मे आय के खबरि काढी। तब सुनी जो सूरदास जी तो मथुरा जी गये है। सो तब वे हलकारा श्री मथुरा में आय के सूरदास को नजरि मे राखे जो या समय यहा बैठे है। तब उन हलकारन ने देसाधिपति को खबरि करी जो—अजी साहब! सूरदास जी तो मथुरा जी मे है।

तब सूरदास कू अकबर बादशाह ने दस पाँच मनुष्य बुलायवे को पठाये। सो सूरदास जी देसाधिपति के पास आये। तब देसाधिपति ने उनको बहोत आदर सन्मान कियो। पाछे सूरदास जी सो देसाधिपति ने कह्यो जो—सूरदास जी! तुमने विष्णुपद बहोत किये है सो तुम मोको कछु सुनावो।

तब सूरदास ने अकबर बादशाह के आगे यह पद गाया। सो पद। राग बिलावल—"मनारे तू करि माधो सो प्रीत"[२]

८४ वैष्णवन की वार्ता से भी अकबर और सूरदास के मिलन के इस प्रसंग की पुष्टि होती है।[३]

---

१ अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय, डा० दीनदयालु गुप्त, भाग १, पृ० २१४-१७

२. ८४ वैष्णवन की वार्ता, हरिराय, अष्टसखान की वार्ता, पृ० १४

३. "और सूरदास जी ने सहस्रविधि पद कीये है ताको सागर कहियै सो सब जगत में प्रसिद्ध भये। सो सूरदास जी के पद देसाधिपति ने सुने सो सुनि के यह विचारौं जौ सूरदास जी काहू विधि सों मिले तो भलो। तो भगवदिच्छा ते सूरदास जी मिले। सो

वार्ता से यह भी विदित होता है कि सूरदास का गाना सुनने के अनंतर अकबर इतना मोहित हुआ कि उसने सूरदास के पदो का सकलन भी करवाया ।[१]

सूरदास के सगीत गुरु कौन थे तथा उन्होने सगीत की प्रारम्भिक शिक्षा कहाँ ग्रहण की इस विषय मे किसी ग्रथ मे कोई उल्लेख नही है। वार्ता से विदित होता है कि जिस समय सूरदास जी अपने गाँव से चार कोस दूर स्थान पर रहते थे उस समय भी उन्हे सगीत का थोडा ज्ञान था। वहाँ पर उन्होने गान विद्या का सब साज एकत्रित कर लिया था और वहाँ पर वे पद बना कर गाया करते थे।[२] जिस समय सूर गऊघाट पर रहते थे उस समय उनकी संगीत की ख्याति बहुत फैल गई थी। संगीत सीखने के लिए उनके बहुत से सेवक बन गए थे और वे स्वामी कहे जाने लगे थे। वल्लभ सम्प्रदाय मे प्रवेश करने से पूर्व ही सूरदास गन्धर्व विद्या मे पारगत हो गए थे। क्योकि वल्लभाचार्य जी से प्रथम भेट होने पर सूरदास ने उन्हें विनय के पद गा कर सुनाये थे।[३]

पुष्टिसम्प्रदाय मे दीक्षित होने के उपरान्त सूरदास वल्लभाचार्य जी के साथ गोकुल चले गए। कुछ दिनो के अनंतर वे गोवर्द्धन चले गए और वहाँ श्री नाथजी की कीर्तन सेवा आपको सौप दी गई।

"तब श्री महाप्रभू जी अपने मन मे विचारे जो श्री नाथजी यहाँ और तो सब सेवा को मंडान भयौ और कीर्तन को मडान नाही कीयो है ताते अब सूरदास जी को दीजिये। तब आप श्री जी द्वार पधारे सो सूरदास जी को साथ लीये ही सो श्रीनाथ जी द्वार जाय पहुँचे।[४]

गोवर्द्धन मे रहकर सूरदास श्रीनाथ जी के भजन कीर्तन तथा गान मे अपने दिन व्यतीत करने लगे। हाँ बीच-बीच मे वह मथुरा, गोकुल आदि स्थानो पर भी आते जाते रहते थे।

सूरदास जी सों कह्यो देसाधिपति ने जो सूरदास जी में सुन्यो है जो तुमने बिसन पद बहुत कीये है। जो मोकों परमेश्वर ने राज्य दीयौ है सो सब गुनीजन मेरो जस गावत है तातें तुमहूँ कछू गावो। तब सूरदास ने देसाधिपति के आगे कीर्तन गायो। सो पद राग विलावल। "मनारे तू करि माधो सों प्रीति।' यह पद देसाधिपति के आगे संपूर्ण करिके सूरदास जी ने गायो।"

८४ वैष्णवन् की वार्ता, पृ० २७९-८०

१. **८४ वैष्णवन की वार्ता, हरिराय, अष्टसखान की वार्ता,** पृ० १६

२ **अष्टछाप, कांकरौली,** पृ० ९

३. **८४ वैष्णवन की वार्ता,** पृ० २७२-७३

४. **वही,** पृ० २७८

परमानंददास

नाभादास जी ने परमानंददास जी के कीर्तन तथा गान की प्रशंसा करते हुए लिखा है –

व्रजवधू रीति कलियुग विषे, परमानंद भयौ प्रेमकेत ।
पोगंड बाल कैसोर गोप लीला सब गाई ।
अचरज कहा यह बात हुतौ पहिलो जु सखाई ।
नैननि नीर प्रवाह, रहत रोमांच रैन दिन ।
गद्-गद् गिरा उदार स्याम शोभा भीज्यौ तन ।
सारंग छाप ताकी भई, श्रवण सुनत आवेस देत ।
व्रजवधू रीति कलियुग विषे, परमानंद भयौ प्रेमकेत ।[1]

परमानददास जी कृष्ण की बाल, पौगड तथा किशोर अवस्था के कीर्तन इतने सुन्दर गाया करते थे कि सुनने वाले भावमग्न हो जाते थे ।

ध्रुवदास जी ने भी परमानददास जी की गान-कला के लिए कहा है –

परमानंद अरु सूर मिलि गाई सब व्रज रीति ।
भूलि जात विधि-भजन की सुनि गोपिन की प्रीति ।।[2]

यद्यपि सगीत के दृष्टिकोण से परमानददास सूरदास की भाँति विख्यात नही है किन्तु ध्रुवदास जी के उपर्युक्त कथन से इस तथ्य की पुष्टि होती हैं कि परमानददास भी एक उच्चकोटि के गायक थे । गान विद्या मे आप सूरदास से किसी प्रकार हीन नही थे ।

'भाव प्रकाश' वार्ता मे भी इन्हे सगीत मे निपुण कहा गया है । "और परमानंददास ने अपने घर कीर्तन को समाज कियो । सो गाम-गाम मे प्रसिद्ध भये । और परमानददास गान विद्या मे परम चतुर हते ।"[3]

८४ वैष्णवन की वार्ता मे लिखा है– "सो वे परमानददास जी बहुत योग्य भये और कवि भये । भगवत कृपा के पात्र भये । कीर्तन बहुत आछौ गावते । ताते परमानंद जी के सग समाज बहुत रहतो । आप स्वामी कहावते आप सेवक करते ।"[4]

वार्ता साहित्य के इन प्रसगो से यही ज्ञात होता है कि परमानन्ददास संगीत मे बहुत चतुर थे । शीघ्र ही वे कीर्तनकार के रूप मे विख्यात हो गए थे । सगीत गुण के कारण ये

१ भक्तमाल, भक्तिरस बोधिनी, छप्पय सं० ७४, पृ० ८३
२ भक्तनामावली, पृ० ६
३ ८४ वैष्णवन की वार्ता, हरिराय (अष्टसखान की वार्ता), पृ० ३४
४. वही, पृ० २६१

स्वामी कहलाने लगे और अनेक व्यक्ति इनके शिष्य हो गए थे। सन्तदास ने परमानन्ददास के कीर्तन की प्रशसा तथा प्रभाव का वर्णन किया है –

स्वामी परमानन्द बड़े महापुरुष है।

× × ×

आपु करें कीर्तन सुन्दर सु गावहीं।
जो कोउ सुने हिये हरि तोक आवहीं।
एक दिन विरहा अनुभवे बहुते महा।
वैसे ही सुर गावत अनभै बरनों कहा।

× × ×

नाम समर्पन करत भये धर परमानंद नाम।
तुम्ह कृत पद जो गाइहै पाइये आनंद धाम।
श्री भगवत अनुक्रम कह्यो समुझाइ के।
ताही छन पद गायो एक बनाय के।[1]

इससे भी यही विदित होता है कि परमानन्ददास जी कीर्तन मे अत्यन्त प्रवीण थे। उनके गाये हुए कीर्तन को जो कोई सुनता था अथवा गाता था उसको परम तुष्टि प्राप्त होती थी। इससे यह पता भी चलता है कि भगवान के प्रेम मे व्याकुल होकर जब आप विरह के पद गाते थे तो भाव मग्न होकर आत्मविस्मृत हो जाते थे।

व्यास जी ने भी परमानन्ददास जी की गान-कला तथा कीर्तन-भजन का स्मरण करते हुए कहा है –

परमानंददास बिनु को अब लीला गाय सुनावै।[2]

वार्ता से ज्ञात होता है कि परमानन्ददास को नृत्य का भी ज्ञान था। गाते-गाते भावावेश मे आकर वे नृत्य करने लगते थे –

"पाछे श्री नंदराय जी और गोपी ग्वाल वैष्णवन् के जूथ अपने लाल जी सब को लेके दधिकाँदो किये। तब परमानददास को चित्त आनंद में विक्षिप्त होय गयो। ता समय परमानंददास नाचन लागे औरं यह पद गायो।"[3]

---

१. **अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय, डा० दीनदयालु गुप्त, भाग १, पृ० १५२**
२. **व्यास वाणी, प्रकाशक आचार्य श्री राधाकिशोर गोस्वामी, पृ० १४**
३. **८४ वैष्णवन की वार्ता, हरिराय, सं० द्वारिकादास परीख, पृ० ५४**

परमानन्ददास जी ने गान तथा नृत्य की शिक्षा कहाँ पाई तथा आपके सगीत-गुरू कौन थे इसका कुछ पता नही चलता। 'चौरासी वार्ता' तथा 'भाव प्रकाश' दोनो के कथनों से यह ज्ञात होता है कि वल्लभ-सम्प्रदाय मे प्रवेश करने से पूर्व ही परमानन्ददास सगीत-विद्या मे प्रसिद्धि प्राप्त कर चुके थे। उनके कीर्तन की ख्याति से आकर्षित होकर मनुष्य दूर-दूर से उनका सगीत श्रवण करने के लिए आते थे। वार्ता के निम्नलिखित प्रसग से पता चलता है कि श्री आचार्य जी महाप्रभु के सेवक जलघरिया कपूर स्वय उनकी गान-विद्या की प्रशसा सुन कर उनका कीर्तन सुनने के लिए गये थे और अन्त मे उनके गान की प्रशसा करते हुए लौटे थे—

"सो भगवदिच्छाते एक समय परमानददास जी कन्नौज ते आप प्रयाग को आये सो प्रयाग म उतरे सो वहाँ कीर्तन बहुत आछे गावते ताते बहुत लोग कीर्तन सुनिवे को आवते और अडेल ते कार्यार्थ लोग बहुत आवते सो इनके कीर्तन सुनिके पार अडेल मे जाय कहते जो परमानददास जी इहाँ प्रयाग मे आये है सो कीर्तन बहुत आछे गावत है सो श्री आचार्य जी महाप्रभून के सेवक जलघरिया कपूर छत्री सो उनके रागउ पर बहुत आसक्ति परि वे अवकाश नाही पावे जो परमानददास जी के कीर्तन सुनिबे कूँ आवे। सेवा मे अवकाश नाही पावे जो प्राग जाय सके। सो एंक दिन एक वैष्णव प्राग ते अडेल मे आयौ सो वाने कह्यौ जो आज एकादशी है सो परमानददास जी आज जागरन करेगे। सो या सुनिके वा जलघरिया ने अपने मन मे विचारचो जो आज परमानददास जी के कीर्तन सुनिबे को चलनो सो वे छत्री कपूर जलघरिया अपनी सेवा सो पहुँच के रात्रि को अपने घर आये सो घर आय के अपने मन मे विचार कीयौ जो या बेर नाव तौ मिलेगी नही ताते कहा कर्तब्य। परि वे पेरबे में भले निपुन हुते सो मन में बिचारी जो पैरि के पार जैये। पाछे अपने घर ते चले सो श्री यमुना जी के तीर ऊपर आय ठाडे भये। तब पदनी पहर के वस्त्र सब माथे सो बाधि के श्री यमुना जी मे पैर के प्रयाग आये। पाछे वस्त्र पहर के जा ठौर परमानददास उतरे हुते तहाँ आये ······। जहाँ और सब जने बैठे हुते तहाँ एऊ जाय बैठे। ता पाछे परमानददास ने कीर्तन को प्रारम्भ कीयो। सो परमानद स्वामी ने विरह के ऐसे पद गाये। ······विरह के ऐसे पद परमानंद स्वामी ने सगरी रात गाये। पाछिली घड़ी चारि रात्रि रही तब जो जो जागरन मे आये हुते सो सब अपने घर को गये। तैसेई श्री आचार्य जी महाप्रभून के सेवक एक जलघरिया कपूर हूँ परमानन्द स्वामी सो 'जै सी कृष्ण स्मरण' कहि के चले और परमानद स्वामी सों कह्यो जो जैसे हमने सुने हुते ताते अधिक देखे।"[१]

जिस समय वल्लभाचार्य जी प्रयाग के निकट अडेल नामक स्थान पर रहते थे परमानंददास जी सगीत मे बहुत प्रसिद्धि प्राप्त कर चुके थे। अडेल के लोगो ने उनके गीतो पर मुग्ध हो कर स्वय वल्लभाचार्य जी से उनकी गान-कला की प्रशंसा की थी—

"सो एक समय परमानददास कन्नौज ते मकर स्नान को प्रयाग मे आये सो तहा रहे।

१. ८४ वैष्णवन की वार्ता, हरिराय, पृ० २६४-६५

और कीर्तन को समाज नित्य करै, सो बहोत लोग इनके कीर्तन सुनिबे को आवते । सो पार अडेल मे श्री आचार्य जी विराजत हते । अडेल ते लोग कछू कार्यार्थ ग्राम मे आवते सो परमानददास के कीर्तन सुनि के अडेल मे जाय के श्री आचार्य जी सो कहते जो एक परमानददास कन्नौज ते आयो है सो कीर्तन बहोत आछे गावत है ।"[१]

इन प्रसगो से इस बात की पुष्टि होती है कि वल्लभ सम्प्रदाय के सम्पर्क मे आने से पूर्व ही परमानददास सगीत मे प्रवीण हो चुके थे ।

डा० दीनदयालु गुप्त जी ने भी परमानददास को वल्लभ-सम्प्रदाय मे प्रवेश करने से पूर्व ही सगीत-विद्या मे पारगत माना है –

"हाँ कीर्तन करने वालो का समाज वल्लभ-सम्प्रदाय मे आने से पहले ही इनके साथ वहुत था और उस समाज मे ये स्वामी कहलाते थे ।···वार्ता से ज्ञात होता है कि कविता करने और गाने का शौक इन्हे बचपन ही से था । वल्लभ-सम्प्रदाय मे आने से पहले ही यह एक योग्य व्यक्ति, कवीश्वर, उच्चकोटि के गवैये और कीर्तनियाँ प्रसिद्ध हो गए थे । उस समय इनके कीर्तन का समाज वहुत बडा था । उस समाज मे परमानददास 'स्वामी' की पदवी से सुशोभित थे······। कविता और गान विद्या सीखने के लिये इनके अनेक शिष्य हो गए थे तथा हमेशा गुणीजनो का ही इनका सग रहता था ।"[२]

इनकी ऐसी ख्याति देख कर ही आचार्य वल्लभ ने इन्हे अपने सम्प्रदाय में दीक्षित कर लिया होगा । वल्लभ-सम्प्रदाय मे प्रवेश करने के उपरान्त कुछ दिन तक परमानददास जी अडेल मे आचार्य जी के पास रह कर नवनीत प्रिय के सम्मुख कीर्तन करते रहे ।

"ता पाछे परमानददास अडेल मे श्री आचार्य जी के पास रहे । तब श्री आचार्य जी परमानददास सो कहे जो–अब समय समय के पद नित्य नवनीत प्रिय जी को सुनायो करो, सो यह सेवा तुमको दीनी । तव परमानददास नित्य नये पद करिके समय-समय के श्री नवनीत प्रिय जी को सुनावते ।"[३]

तत्पश्चात वे गोकुल गये और कुछ दिन गोकुल की बाललीला के पद गाते हुए बिताये । इसके उपरान्त वे आचार्य जी के साथ गोवर्द्धन चले गए । जहाँ पर आचार्य जी ने उन्हे कीर्तन की सेवा सौंप दी और ये जीवन पर्यन्त वहाँ श्रीनाथजी के कीर्तन मे लीन रहे । श्रीनाथजी के कीर्तन स्वरूप ही इन्होने सहस्रो पदो की रचना की ।

---

१. ८४ **वैष्णवन की वार्ता, हरिराय, अष्टसखान की वार्ता, पृ०** ३४

२. **अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय, डा० दीनदयालु गुप्त, पृ०** २२०-२१

३. ८४ **वैष्णवन की वार्ता, हरिराय, पृ०** ४३

"ता पाछे श्री आचार्य जी ने परमानददास को श्री गोवर्द्धन नाथ जी के कीर्तन की सेवा दीनी । सो नित्य नये पद करिके परमानददास श्रीनाथजी को सुनावते ।"[१]

वल्लभाचार्य जी के शिष्य होने से पहले परमानददास जी केवल विरह के पद बना बना कर गाते थे । प्रयाग मे एकादशी की रात्रि को जलघरिया कपूर के सम्मुख उन्होंने विरह के पद ही गाये थे ।[२]

वल्लभाचार्य जी से भेट होने पर इन्होने जो भगवत्-लीला के पद गाए वे भी विरह से ही सम्बद्ध है –

"सो यह विचार मन मे करिके परमानद स्वामी तत्काल उठि के अडेल को चले । ......सो परमानद स्वामी को श्री आचार्य जी के दरसन अत्यद्भुत अलौकिक साक्षात श्री कृष्ण के स्वरूप सो भये ।... इतने मे श्री आचार्य जी आप श्री मुखते परमानद स्वामी सो आज्ञा किये जो परमानददास । कछु भगवल्लीला गावो । तब परमानददास जी ने श्री आचार्य जी को साष्टाग दडवत करिके ये पद गाये –

राग सारंग

(१) कौन बेर भई चले री गोपाले ।
(२) जिय की साध जिय ही रही री ।
(३) यह बात कमल दल नैन की ।
(४) सुधि करत कमल दल नैन की ।

या भाति सो परमानददास ने विरह के पद श्री आचार्य जी के आगे गाये ।"[३]

वल्लभाचार्य जी की शरण मे जाने के उपरान्त परमानददास बाल-लीला के पद भी गाने लगे । वार्ता मे कवि के बाल-लीला सबधी पद गाने का एक प्रसग दिया हुआ है । जिस समय परमानददास जी की आचार्य जी से भेट हुई कवि ने उन्हे विरह के पद गा कर सुनाए । तब आचार्य जी ने उनसे बाल-लीला के पद गाने को कहा । उस समय कवि ने कहा कि उसे बाल-लीला का बोध नही है । तब आचार्य जी ने परमानददास को अपनी शरण मे लिया और बाल-लीला के दर्शन कराए । उस समय से परमानददास बाल-लीला के पद भी गाने लगे –

"या भाति सो परमानददास ने विरह के पद श्री आचार्य जी के आगे गाये । सो सुनि के श्री आचार्य जी श्री मुख सौं कहे जो परमानददास कछु बाललीला के पद गावो । तब

---

१. ८४ **बैष्णवन की वार्ता, हरिराय, पृ०** ४९
२ **वही, पृ०** २९४-९५
३ **वही, पृ०** ४०

परमानंददास ने हाथ जोरि के श्री आचार्य जी सो बिनती कीनी जो महाराज ! मै बाल-लीला मे कछु समभत नाही हौ।

पाछे श्री आचार्य जी आपु पधारि भोग सराय के परमानददास को बुलाय के श्री नवनीत प्रिय जी सन्निधान कृपा करिके नाम सुनायो ता पाछे ब्रह्मसबध करवायो। पाछे श्री भागवत दशमस्कध की अनुक्रमणिका सुनाये तब परमानददास ने श्री आचार्य जी के आगे बाल-लीला के पद गाये।[1]

वार्ता से विदित होता है कि कवि आचार्य जी से सुने हुए प्रसगो के कीर्तन बना कर गाया करता था। परमानददास ने कृष्ण की बाल, पौगंड और किशोर लीला के अत्यधिक मनोरम पद गाये थे। उनके गाये हुए अधिकांश पद बाल-भाव[2], कान्ता-भाव और दास-भाव[3] की भक्ति से परिपूर्ण है।

कुंभनदास

भक्तमाल तथा भक्तमाल की टीकाओ मे कुभनदास के सगीत-ज्ञान पर कुछ भी विवरण प्राप्त नही होता। ध्रुवदास जी ने इनके भक्ति रस के गान की प्रशसा करते हुए कहा है –

कुंभन कृष्णदास गिरधर सों कीनी साँची प्रीति।
कर्म धर्म पथ छाँड़ि के गाई निज रस रीति॥[4]

कुंभनदास जी के जीवन की संगीत संबंधी घटनाये ८४ वैष्णवन की वार्ता, हरिराय जी कृत भाव प्रकाश वाली ८४ वार्ता तथा श्री गोवर्द्धननाथ जी के प्राकट्य की वार्ता मे विस्तार के साथ दी हुई है। चौरासी-वार्ता मे इस बात का उल्लेख है कि कुभनदास जी गान बहुत अच्छा करते थे और स्वय पद बना कर गाते थे –

"सो कुभनदास कीर्तन बहुत नीके गावते जो श्री आवार्य जी महाप्रभून ने कुंभनदास जी को नाम सुनायो और ब्रह्म सबध करवायो तब कुंभनदास जी नित्य नये पद करिके श्री नाथजी को सुनावते और श्रीनाथ जी कुंभनदास जी के घर पधारते।"[5]

---

१. ८४ वैष्णवन की वार्ता, हरिराय, पृ० ४०–४२

२. "या प्रकार सहस्रविधि कीर्तन परमानंददास ने किये, तासों परमानंददास के पद मे बाल लीला भाव और रहस्य हू भलकत है। सो जा लीला को अनुभव परमानंददास को भयो ताही लीला के पद परमानंददास गाये।" अष्टछाप, काँकरौली, पृ० ८९

३. "सो ऐसे कीर्तन परमानंददास ने प्रार्थना के गाये", अष्टछाप काँकरौली, पृ० ८३

४. भक्तनामावली, छंद सं० ६३, पृ० ६

५. ८४ वैष्णवन की वार्ता, पृ० ३१८

हरिराय जी ने कुंभनदास के गान की बहुत प्रशंसा की है। उनके वर्णन से ज्ञात होता है कि पुष्टि-सम्प्रदाय मे दीक्षित होने से पूर्व ही कुंभनदास संगीत मे प्रवीण थे। उनका कठ मधुर था और वे कीर्तन बहुत सुन्दर करते थे। इसीलिए आचार्य जी ने कुभनदास को कीर्तन की सेवा सौप दी थी।

"सो कुभनदास कीर्तन बहुत सुन्दर गावते। कंठहू इनको बहोत सुन्दर हतो। तासों कुंभनदास सो श्री आचार्य जी आपु कहै जो तुम समय-समय के कीर्तन नित्य श्री गोवर्द्धन नाथ जी को सुनाइयो।" [१]

श्री गोवर्द्धननाथ जी के प्राकट्य की वार्ता से भी यही विदित होता है कि जब श्री वल्लभाचार्य जी महाप्रभु ने श्रीनाथ जी की सेवा पधराई थी तब इन्हे कीर्तनियाँ नियुक्त किया था –

"तब श्री आचार्य जी ने श्रीनाथ जी की सेवा मे बगाली ब्राह्मण हते तिनको राखे सेवा की रीत बताई माधवेन्द्र पुरी कू मुखिया किये और उनके शिष्यन कू सेवा मे राख दियो, कृष्णदास जी कू अधिकार की सेवा दिये, कुंभनदास कू कीर्तन की सेवा दिये और श्री आचार्य जी महाप्रभून ने नित्य को नेग बाध्यो ··· ·· ।" [२]

वार्ता से विदित होता है कि कुंभनदास एक विख्यात गायक थे। कुभनदास के पद उनके जीवन काल मे ही दूर-दूर तक प्रसिद्ध हो गए थे। इनके पदो मे संगीत-माधुर्य की इतनी प्रचुरता थी कि अन्य मनुष्य इनके पदों को सीखने के लिए लालायित रहते थे और सीख कर गाया करते थे। गान-विद्या के कारण कुंभनदास की ख्याति इतनी फैल गई थी कि स्वयं अकबर ने इनके गाने की प्रशसा सुन कर इनसे गाना सुना था –

"तब कुभनदास जी के पद सब जगत में प्रसिद्ध भये सो सब लोग इनके पद गावते तब इनको पद काहू कलामत ने सीख्यौ सो फतेपुर सीकरी मे देशाधिपति के आगे कुंभनदास जी को कीयो भयौ पद वा कलामत ने गायौ सो सुन के देशाधिपति को चित्त वा पद मे गड गयौ और माथौ धुनौ जो ऐसे हू महापुरुष ह्वै गये है जिनको ऐसे दर्शन परमेश्वर के होत है तब वा कलामत ने कह्यो जो अजी साहब अब हू है सो सुनि के देशाधिपति बहुत प्रसन्न भयौ और वा कलामत सो कह्यौ जो वे कहाँ है तब वा कलामत ने कही जो श्री गोवर्द्धन के पास जमुनावतौ गाँव है तहाँ वे रहत है तब देशाधिपति ने कही जो यहां बुलावौ हम उनसो मिलेगे तब देसाधिपति ने मनुष्य और असवारी कुंभनदास के बुलायबे को भेजे। ·· ··

तब कुभनदास मन मे विचार कीयौ जो बिना जाये तो निर्वाह न होयगो सो कुभन-

१ ८४ **वैष्णवन की वार्ता, हरिराय, पृ० ६१**

२ **श्री गोवर्द्धननाथ जी के प्राकट्य की वार्ता, हरिराय जी कृत, पृ० २०**

दाम जी तत्काल उहाँ ते पनही पहिर के चले........ सो फतहपुर सीकरी आय पहुँचे। सो देशाधिपति के डेरा हुते तहाँ गये। तब मनुष्यन नें देशाधिपति सो कह्यो जो कुभनदास जी आये है तब देशाधिपति ने कुभनदास सो कही-जो कुभनदास जी आवो बैठो .. तव इतने मे देशाधिपति बोल्यौ जो कुभनदास जी तुमने बिसन पद बहुत कीये है सो मैंने तुमको बुलायो है ताते तुम कछु विसन पद गावो। तब कुभनदास जी तौ मन मे कुढे हुते जो विचारे कहा गाऊ। मेरी वाणी के **भोक्ता** तौ श्री गोवर्द्धनधर है और कछू गाये बिना मेरौ काम चलेगौ नाही ताते ऐसो गाऊं जो कबहू मेरौ नाम न लेय काहे ते जो याके सग ते मेरे प्रभू छूटे है ताते कछू कठोर बचन कहू जो बुरो मानेगौ तो कहा करेगौ। तब यह मन मे आई—**जाकों मनमोंहन अंगीकार करें। एकौ केस खसै नहीं सिरतें जो जग वैर परै।**" यह विचारि के ता समय कुभनदास जी ने एक नयौ पद करि के गायौ। सो पद–राग सारग–**'भक्तन को कहा सीकरी सों काम'**। यह पद गायौ सो देशाधिपति अपने मन मे बहुत कुढ्यौ और कह्यौ जो इनको काहू बात को लालच होय तो मेरो जस गावे। इनको तो अपने परमेश्वर सो साँचो सनेह है। इतनो कहिके देशाधिपति ने कुभनदास को सीख दीनी तब कुभनदास जी उहाँ ते चले।" [१]

वार्ता से विदित होता है कि राजा मानसिह भी कुभनदास के गान पर मुग्ध हो गए थे। एक वार राजा मानसिह दिग्विजय करके आगरे लौट रहे थे, रास्ते मे वह मथुरा मे केशवराय जी के दर्शन करते हुए गोवर्द्धन आये, वहाँ उन्होने गोवर्द्धननाथ जी के दर्शन किये। मदिर मे कुभनदास जी भोग-दर्शनो के कीर्तन कर रहे थे। जैसा कोटि कन्दर्प लावण्य युक्त श्रीनाथ जी का रूप था वैसे ही सुन्दर कुभनदास जी के कीर्तन थे। राजा मानसिह कुभनदास के कीर्तन से ऐसे प्रभावित हुए कि दूसरे दिन वे स्वय चद्रसरोवर पर कुभनदास से मिलने गए –

"सो वे प्रभू विराजे है। आगे ताल मृदग बाजत है। कीर्तन होत है। सो कुभनदास जी ठाडे-ठाडे मणिकोठा मे दर्शन करत है और कीर्तन गावत है। सो राजा मानसिह को मन वा पद मे गड गयो हुतो। तेसौई कोटिकंदर्पलावण्यस्वरूप और तेसौई कीर्तन कुभनदास जी करत हुते। . . ऐसे पद कुभनदास जी गावत है।

इतने मे राजभोग के दर्शन होय चुके तब राजा मानसिंह दडौत करिके अपने डेरा मे गयौ। तब कुभनदास जी सध्या आरती के दर्शन करिके अपनी सेवा सो पहुच के अपने घर को गये तब राजा मानसिंह अपने डेरा मे आय के अपने पास के मनुष्य हुते तिनमे श्री गोवर्द्धननाथ जी के सिगार-की वार्ता करन लागे और कह्यो जो यह श्री गोवर्द्धननाथ जी के आगे कोन गावत हुतो। इनने ऐसे विसन पद गाये है जो कछू कहिबे मे नाही आवत। तब काहू ने कही जो महाराज एक ब्रजवासी है कुभनदास नाम है सो आपने सुने ही होयगे।

---

१. ८४ **वैष्णवन की वार्ता, हरिराय,** पृ० ३२४

देशाधिपति सो मिले हुते सो है । तब राजा मानसिह ने कही जो हमहू इनसो मिलें तो आछौ । तब राजा मानसिंह सवारे उठे सो श्री गिरिराज की परिक्रमा को निकसे जो परासोली आये सो परासोली मे कुंभनदास जी न्हाय के बैठे । इतने में श्री गोवर्द्धननाथ जी पधारे । श्रीमुख सों कहे जो कुंभनदास जी हो तो एक बात कहूंगो । तब इतने में राजा मानसिंह आयो सो कुंभनदास जी को प्रणाम करिके बैठौ । "[१]

वार्ता से ज्ञात होता है कि श्री हितहरिवश, स्वामी हरिदास आदि कुंभनदास. के उत्कृष्ट गायन की प्रशसा सुन कर उनसे मिलने आए थे और उन्होने उनका गान सुन कर प्रसन्न हो उनके गाने की भूरि-भूरि प्रशंसा की थी –

"और एक समय कुभनदास जी को मिलबे को बृन्दावन के महत हरिवश भृत आये सो यह जानि के आये सो महापुरुष है इनसो श्री ठाकुर जी बोलत है । बाते करत है और काव्य इनकी सुनी सो कीर्तन बहुत सुन्दर कीयै ताते ऐसे पद श्री ठाकुर जी के साक्षात्कार बिना न होय यह जानि के कुंभनदास सो मिलबे आये सो कुभनदास सों मिलिके बहुत प्रसन्न भये और कह्यौ जो कुभनदास जी तुमने विसन पद बहुत कीये सो हमने आय के सुने है और आपको पद श्री स्वामिनी जी कौ नाही सुन्यौ ताते आप कोई स्वामिनी जी कौ पद सुनावौ तब कुंभनदास जी ने श्री स्वामिनी जी कौ पद करिके गायौ······सो सुनि के महंत बहुत ही रीझे ।"[२]

इन प्रसगो से कुंभनदास जी के गान की उत्कृष्टता का परिचय मिलता है और यह निश्चित हो जाता है कि कुभनदास एक ख्याति प्राप्त तथा कुशल गायक थे ।

जैसा कि पूर्व भी कहा जा चुका है वार्ता से पता चलता है कि पुष्टि-सम्प्रदाय मे दीक्षित होने से पूर्व ही कुंभनदास को सगीत का ज्ञान था । यह ज्ञान उनको किस प्रकार प्राप्त हुआ इसका कही उल्लेख नही मिलता । पुष्टि-सम्प्रदाय मे दीक्षित होने के अनन्तर वे गान द्वारा श्रीनाथ जी का कीर्तन किया करते थे । सूरदास के आगमन से पहले कुंभनदास ही श्रीनाथ जी की कीर्तन सेवा करते थे और कुभनदास की भेट वाले प्रसंग से इस बात का परिचय मिलता है कि वे सांसारिक प्रलोभन तथा लौकिक ख्याति से दूर रह कर एकमात्र अपने इष्टदेव को रिझाने के लिए कीर्तन किया करते थे । कुभनदास ने केवल भगवान की प्रशसा के ही गीत गाए है । राजाओ तक को उन्होने अपने गाने में फटकार दिया है । कुंभनदास ने केवल युगल स्वरूप के ही पद गाए है अन्य किसी विषय का गान नही किया है ।[३]

---

१. ८४ **वैष्णवन की वार्ता,** पृ० ३२९

२. **वही,** पृ० ३३१ – ३२

३. **"सो कुंभनदास सगरे कीर्तन युगल स्वरूप संबंधी कीये । सो बधाई, पालना, बाल लीला गाई नाही ।" ८४ वैष्णवन की वार्ता, अष्टसखान की वार्ता,** पृ० ६१

कृष्णदास

भक्तमाल में कृष्णदास के विषय मे कहा गया है –

> श्री वल्लभ गुरुदत्त, भजन-सागर गुन आगर।
> कवित नोख निरदोष, नाथ सेवा में नागर ।।
> बानी बंदित विदुष, सुजस गोपाल अलंकृत।
> ब्रज रज अति आराध्य, वहै धारी सर्वस चित ।।
> सांनिध्य सदा हरिदासवर्य, गौरस्याम दृढ़ व्रत लियौ।
> गिरिधरन रीभि कृष्णदास को, नाम मांभ साभौ कियौ ।।[१]

इससे विदित होता है कि कुभनदास भगवान के भजन-कीर्तन बहुत सुन्दर किया करते थे। श्री राधाकृष्ण के भजन का ही एकमात्र इनका दृढ व्रत था। ध्रुवदास जी ने भी इनके कीर्तन-गान की प्रशसा करते हुए कहा है –

> कुंभन, कृष्णदास गिरधर सों कीनी सांची प्रीति।
> कर्म धर्म पथ छाँड़ि कै गाई निज रस रीति ।।[२]

वार्ता मे कृष्णदास के कीर्तन को अद्भुत और अनुपम बताया गया है –

"श्री गुसाई जी कहै जो कृष्णदास ने तीन बात आछी करी। एक तो अधिकार कीयौ सो ऐसो कियौ जो फेरि ऐसौ न करौ। दूसरे कीर्तन कियै सो अद्भुत कीयै और तीसरे श्री आचार्य जी महाप्रभन के सेवक होय के सेवाहू ऐसी करी जो कोऊ न करेगौ।"[३]

"सो या प्रकार बहोत कीर्तन कृष्णदास जी ने गाये ·····तासो गुसाई जी कहे जो कृष्णदास रासादिक कीर्तन ऐसे अद्भुत किये सो कोई दूसरे सों न होथ।"[४]

उपर्युक्त कथनो मे यह नही ज्ञात होता कि कृष्णदास, सूरदास तथा गोविदस्वामी की तरह संगीताचार्य थे किन्तु इतना अवश्य निश्चित हो जाता है कि ये बहुत सुन्दर कीर्तन किया करते थे और आपको भजनो से अत्यधिक प्रेम था।

कृष्णदास की सगीत में विशेष रुचि थी। आप सगीत-कला के पारखी तथा उपासक थे। कृष्णदास की सगीत प्रियता के उदाहरणस्वरूप एक घटना का वर्णन मिलता है। वार्ता

---

१. भक्तमाल, भक्तिरस बोधिनी, छप्पय सं० ८१, पृ० ५८१

२. भक्तनामावली, छंद सं० ६३, पृ० ६

३. ८४ वैष्णवन की वार्ता, पृ० ३६८

४. अष्टछाप कांकरौली, पृ० २०५ तथा २४६

में लिखा है कि वे एक बार मदिर के कार्यवश आगरा गये थे । वहाँ उन्होंने एक सुन्दरी वेश्या को गायन और नृत्य करते हुए देखा । वे उसके सगीत पर इतने मोहित हुए कि उसे श्रीनाथ जी के सन्मुख नृत्य-गान करने के लिए अपने साथ गोवर्द्धन ले गए । वह वेश्या ख्याल-टप्पा[1] गाती थी जो कृष्णदास को पसद नहीं थे । अतः उन्होंने अपने रचे हुए कुछ पद उसे सिखा दिये और श्रीनाथ जी के सन्मुख उन्ही को गाने का आदेश दिया –

"और एक समय श्रीनाथ जी के भडार मे कछू सामग्री चाहियत हुती । सो कृष्णदास गाडा लेके आगरे कौ आये । सो आगरे के बाजार मे एक वेश्या नृत्य करत हुती । ख्याल टप्पा गावत हुती और भीर हुती । सब लोग तमासो देखत हुते । सो कृष्णदास बाजार मे तमासे मे जाय ठाडे भये । तब भीर सरक गई तब वह वेश्या कृष्णदास के आगे नृत्य करन लागी । सो वह वेश्या बहुत सुन्दर, और गावै बहुत आछौ, नृत्य तैसोई करे । सो कृष्णदास वा वेश्या के ऊपर रीझे और मन मे कहै जो यह तौ श्रीनाथजी के लायक है ता पाछे वा वेश्या को दश मुद्रा तो उहां ही दीयै और कही जो रात्रि को समाज सहित आइयौ । ता पाछे कृष्णदास उहाँ हवेली मे उतरे । सो सामग्री चहियत हुती सो सब लेकै गाडा लदाय सिद्धि करवायौ । ता पाछे रात्रि पहर गई । तब वेश्या समाज सहित आई । ता पाछे नृत्य भयौ वापै कृष्णदास बहुत रीझे सो रुपैया सत एक दिये । तब वा वेश्या सो कह्यौ जो तेरो गान हू आछौ और नृत्य हू आछौ परि हमारो सेठ है सो तेरे ख्याल टप्पा ऊपर रीझेगो नाही ताते हो कहो सो गाइयौ । ता पाछे कृष्णदास ने एक पूरबी राग मे पद करिके सिखायौ । ता पाछे दूसरे दिन वा वेश्या को साथ लेके चले सो आगरे ते आयै तीसरे दिन श्रीनाथ जी द्वार आयै । सामग्री सब भंडार में धराई । ता पाछे जब उत्थापन को समय भयौ तव कीर्तनियाँ काहू को बागे न दीयै । तब ता वेश्या को समाज सहित ले गयै । श्री गुसाई जी मदिर में ठाड़े श्री नाथजी को मूढा करत है और मणिकोठा मे वेश्या नृत्य करन लागी ओर यह पद गायो । सो पद राग पूरवी–मो मन गिरधर छबि पर अटक्यौ ।"[2]

इस कथा से ज्ञात होता है कि कृष्णदास को सगीत का ज्ञान था । वे रागो मे पदो को बद्ध करके गाते थे । कृष्णदास इतने सगीत प्रिय थे कि कला के क्षेत्र में वे धार्मिक संकीर्णता अथवा ऊँच-नीच के भेदभाव को स्थान नही देते थे ।

कृष्णदास को सगीत का ज्ञान किस प्रकार हुआ इसका उल्लेख वार्ता तथा हरिराय जी कृत भावप्रकाश मे भी नही है । हरिराय जी की वार्ता से ज्ञात होता है कि कृष्णदास जब गुजरात से ब्रज मे आकर वल्लभाचार्य जी के शिष्य हुए थे उस समय आपकी आयु तेरह वर्ष

---

१. टप्पा शैली के प्रचलन का समय विवादग्रस्त तथा संदिग्ध है । अष्टछाप के कवियों के समय टप्पा गायन प्रचलित था अथवा नहीं इस विषय पर आलोचकों मे मतभेद है ।

२. ८४ वैष्णवन की वार्ता, पृ० ३५३

की थी । आचार्य जी से दीक्षा ग्रहण करने के उपरान्त कृष्णदास को सपूर्ण लीला का अनुभव हो गया और आचार्य जी की स्तुति मे उन्होने पद गाया ।[1]

सभवत उस समय कृष्णदास को सगीत का थोडा ज्ञान रहा होगा । शरणागति के समय कृष्णदास गान-विद्या मे प्रवीण नही थे इसीलिए आचार्य जी ने उन्हे कीर्तन का कार्य नही सौपा वरन् भेटिया[2] का कार्य दिया । पुष्टि-सम्प्रदाय मे दीक्षित होने के अनन्तर उनका समस्त जीवन पुष्टि-सम्प्रदाय के आचार्यो, विद्वानो, कवियो और कीर्तनकारों की सगति में व्यतीत हुआ । अत. नियमित शिक्षा प्राप्त होने का साधन न होने पर भी वे सत्सग से आवश्यक ज्ञान प्राप्त कर सके होगे और सूरदास जैसे परम भक्तो के ससर्ग से सगीत मे प्रवीण हो गए होगे । अपनी किशोरावस्था में ही पुष्टि-सम्प्रदाय मे सम्मिलित हो जाने के कारण उनके सगीत विषयक ज्ञान-वृद्धि का कारण साम्प्रदायिक विद्वानो का सत्संग ही कहा जा सकता है ।

नंददास

नाभादास जी ने नददास तथा उनके काव्य का वर्णन करते हुए कहा है —

लीला पद रस-रीति ग्रंथ-रचना में नागर ।
सरस उक्ति जुत जुक्ति भक्ति रस गान उजागर ॥[3]

'भक्ति रस गान उजागर' से प्रकट है कि नददास भक्ति रस के गाने मे प्रसिद्ध थे । भक्तमाल की इन पक्तियो से यह ज्ञात होता है कि नददास उच्चकोटि के कवि होने के साथ साथ कुशल गायक भी थे ।

ध्रुवदास ने भी नददास के काव्य की आलोचना करते हुए कहा है —

नंददास जो कुछ कह्यो रास रंग सौं पागि ।
अच्छर सरस सनेहमय, सुनत स्रवन उठ जागि ।

---

१. "पाछे कृष्णदास श्री आचार्य जी के पास मदिर में आये । तब आचार्य जी आपु कृष्णदास को श्री गोवर्द्धननाथ जी के सन्निधान बैठाय के नाम समर्पन करायो । सो कृष्णदास को श्री देवीजीव है, सो तत्काल सगरी लीला को अनुभव भयो । सो ताही समय कृष्णदास ने यह कीर्तन गायो 'सो ।" पद—राग सारंग 'वल्लभपतित उद्धारन जानो' । सो यह पद 'कृष्णदास ने गायो । सो सुनि के श्री आचार्यजी आपु बहोत प्रसन्न भये ।

८४ वैष्णवन की वार्ता, हरिराय, पृ० १०२

२. वही, पृ० १०२

३. भक्तमाल, भक्तिरस बोधिनी, छप्पय सं० ११०, पृ० ११५–१६

रसिक दशा अद्भुत हुती कर कवित्त सुढार।
सत प्रेम की सुनत ही छुटत मोह जलधार।
बावरो सो रस में फिरै खोजत नेह की बात।
आछे रस के वचन सुनि बेगि बिबस हो जात।।[१]

इसमे भी कवि के काव्य के सगीत-माधुर्य तथा गायन-कुशलता की ओर सकेत किया गया है।

नददास जी की बाल्यकाल से ही सगीत की ओर रुचि थी। "सो विनकू नाच तमासा देखबे को तथा गान सुनवे को शौक बहुत हतो।"[२] अष्टसखान की वार्ता से विदित है कि वल्लभ-सम्प्रदाय मे प्रवेश करने से पूर्व ही नंददास गाया करते थे। जिस समय नंददास क्षत्राणी का अनुसरण करते हुए गोकुल से एक कोस दूर गाव मे पहुँचे थे वहाँ यमुना पडी। वह क्षत्रिय अपनी पत्नी के साथ स्वय तो पार उतर गया किन्तु मल्लाहो को कुछ द्रव्य देकर उन्हे नंददास को पार उतारने से रोक दिया। वे लोग गोकुल मे श्री गोस्वामी विट्ठलनाथ जी के दर्शन को गए और लौकिक प्रेम में मुग्ध नददास यमुना के किनारे बैठ कर यमुना-स्तुति के पद गाने लगे। यह प्रसंग वल्लभ-सम्प्रदाय मे प्रवेश करने से पहले ही नददास के गायक होने का परिचय देता है।[३]

गोस्वामी विट्ठलनाथ जी से प्रथम साक्षात्कार होने पर भी नददास ने उन्हें पद गा कर सुनाए थे—

"जब श्री गुसाई जी ने एक मनुष्य पठाय के वा ब्राह्मण कू पार सो बुलाय लीनौ। जब वा नंददास जी ने आय के श्री गुसाई जी के दर्शन करे।······पाछे श्री गुसाई जी भोजन करके सब वैष्णवन कु पातर धराई। तब नंददास जी महाप्रसाद लेवे बैठे। तब महाप्रसाद लेत ही नंददास जी कु देहानुसधान रह्यौ नही। जब पातर पर बैठेई रहे। भगवल्लीला मे मग्न होय गयो। अनेक लीलान को अनुभव होवै लाग्यो। भरे घर के चोर की सी नाईं मोहित भये। ऐसे करते सवारो होय गयो। कछु सुद्धि रही नही। तब श्री गुसाई जी पधार के नददास जी के कान में कही के नददास जी उठो दर्शन करो। जब नंददास जी उठ के ठाढ़े भये। तब नंददास जी ने उठ के श्री गुसाई जी के दर्शन करके ये पद गायो। 'प्रात समय श्री वल्लभ सुत को उठतहिं रसना लीजिये नाम।' इत्यादिक पद गाय के श्री नवनीतप्रिया जी के दर्शन करे।"[४]

---

१. भक्तनामावली, पृ० ८
२. २५२ वैष्णवन की वार्ता, पृ० २८
३. अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय, डा० दीनदयालु गुप्त, भाग १, पृ० १४१–४३

इससे भी यही ज्ञात होता है कि नददास जी वल्लभ-सम्प्रदाय मे आने से पहले ही गाते थे। पुष्टि-सम्प्रदाय मे दीक्षित होने के अनन्तर इनके जीवन का क्रम पूर्णतया परिवर्तित हो गया। लौकिक बधनो को तोड कर वे भगवद्भक्त हो गए। संगीत मे स्वाभाविक रुचि होने, पुष्टि-सम्प्रदाय के विद्वानो के सत्सग तथा ठाकुर जी के कीर्तन मे सम्मिलित होने के सुअवसर मिलने के कारण नददास सुन्दर पदो की रचना कर शास्त्रोक्त विधि से उनका गायन करने लगे। सगीत और काव्य मे उनको प्रतिभा का इस प्रकार विकास हुआ कि शीघ्र ही वे पुष्टि-सम्प्रदाय के प्रमुख कीर्तनियो तथा कवियो मे गिने जाने लगे। पुष्टि-सम्प्रदाय मे स्थायी रूप से आने के बाद उनकी दिनचर्या केवल पद और छद रचना कर भगवान के समक्ष गाने मे थी।

नददास उच्चकोटि के सगीतज्ञ थे और पुष्टि-सम्प्रदाय मे दीक्षित होने के उपरान्त इनकी संगीत की ख्याति अत्यधिक फैल गई थी क्योकि स्वयं अकबर ने नददास का पद सुनकर इन्हे मिलने के लिए बुलाया था।[१]

चतुर्भुजदास

अष्टछाप के चतुर्भुजदास के विषय मे भक्तमाल तथा भक्तमाल की टीकाओ मे कोई वृत्तात नही दिया है। ध्रुवदास जी के वर्णन से यह ज्ञात होता है कि चतुर्भुजदास जी ने भगवान की भक्ति का गान वात्सल्य भाव से किया है –

परम भागवत अति भए भजन मांहि दृढ धीर,
चतुर्भुज वैष्णवदास की बानी अति गंभीर।
सकल देस पावन कियो भगवत जसहि बढ़ाई,
जहां तहां निज एक रस गाई भक्ति लड़ाई।[२]

२५२ वैष्णवन की वार्ता से विदित है कि चतुर्भुजदास के पिता कुभनदास अष्टछाप के प्रसिद्ध कवि तथा गायक थे। अस्तु चतुर्भुजदास को सगीत की विधिवत् शिक्षा बाल्यकाल से ही अपने पिता के द्वारा प्राप्त हुई थी।

---

१. "एक दिन पृथ्वीपति के आगे कोई मनुष्य ने पद गायो ··· या पद की शैली तुक में आवे है नंददास गावे तहां निपट। सो ये पद पृथ्वीपती नें सुन्यो। ···· तब पृथ्वीपती सहकुटंब ब्रज मे आये······और नंददास जी पास बीरबल कूं पठाये। ··· ··· तब नंददास जी ने कही हम परसूं के दिन मानसी गंगास्नान करवे कूं आवेंगे। सो उहां पादशाह कूं मिलेंगे। ······ फिर दूसरे दिन मानसी गंगा नहायबे कूं गये उहां पृथ्वीपती कूं मिले।" दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता, श्री गुसांई जी के सेवक रूपमंजरी की वार्ता, पृ० ३८६ – ८७

२. भक्तनामावली, छंद सं० ४८ – ४६, पृ० ५

वार्ता मे चतुर्भुजदास के बाल्यकाल से ही सगीत मे निपुण होने तथा सुन्दर पद गाने के कई प्रसग दिए हुए है। "वा दिन ते चतुर्भुजदास मे श्रीनाथ जी ने इतनी सामर्थ्य धरी जब इच्छा आवे तब मुग्ध बालक होय जाय और इच्छा आवे तो बोलवे चालवे सब अलौकिक बाते करबे लग जाय। जब कुभनदास जी एकात मे बैठे तब चतुर्भुजदास कुभनदास सों भगवद्वार्ता करें और पूछे और पद गावे और जब लौकिक मनुष्य आय जाय तब चतुर्भुजदास मुग्ध बालक बन जाय।"[१]

चतुर्भुजदास की प्रारम्भिक सगीत तथा काव्य-रचना का वर्णन करते हुए वार्ताकार कहते है –

"और जा दिन चतुर्भुजदास जी कु प्रथम लीला को अनुभव भयो वा दिन ते सर्वव्यापी वैकुठ सबंधी लीला सर्वत्र दर्शत्रे लगी। सो ये सामर्थ्य इनके भीतर श्री गोवर्द्धन-नाथ जी ने कृपा करिके धरी जब कुंभनदास जी कू पोढबे के दर्शन होने हते। तब कुभनदास जी कीर्तन गायवे लगे। सो पद। 'वे देखो बरन झरोखन दीपक, हरि पोढे ऊँची चित्रसारी'। सो इतनी तुक जब कुभनदास जी ने गाई तब चतुर्भुजदास जी गाय उठे 'सुदर बदन निहारन-कारन, बहुत यतन राखे कर प्यारी।' ये सुनि के कुभनदास जी ने निश्चय करयो जो इनकु श्री गुसाई जी की कृपा सो सपूर्ण अनुभव भयो।"[२]

इन प्रसगों से इस तथ्य की पुष्टि होती है कि चतुर्भुजदास मे दैवी प्रतिभा थी। इसी कारण प्रारंभ से ही वे भगवान की वन्दना अपने पिता का अनुकरण करते हुए गा गाकर करते थे। अपने पिता के सम्पर्क मे रहने से समय के साथ-साथ उनकी सगीत सबधी प्रतिभा प्रस्फुटित होती गई। वार्ता मे कई स्थलो पर उनके कीर्तन करने तथा गाने का उल्लेख किया गया है।[३]

हरिराय प्रणीत भाव प्रकाश वाली वार्ता मे कुभनदास जी के प्रसग मे कहा गया है –

"और एक समय श्री गुसाई जी के पास कुभनदास बैठे हुते और सगरे वैष्णवहू बैठे हते। सो श्री गुसाई जी आपु हसि के कुभनदास जी सो पूछे जो–कुभनदास! तिहारे बेटा कितने है? तब कुभनदास जी ने श्री गुसाई जी सो कह्यो जो महाराज! बेटा तो मेरे डेढ है।

तब श्रीगुसाईं जी कहे जो–हमने तो सात बेटा सुने है और तुम डेढ बेटा कहे, ताको कारन कहा? तब कुभनदास जी ने कह्यो जो महाराज। यों तो सात बेटा है तामे

१. २५२ **वैष्णवन की वार्ता**, पृ० २० – २१
२. **वही**, पृ० २१–२२

पांच तो लौकिकासक्त है जो बेटा काहे के है ? और पूरो एक बेटा तो चतुर्भुजदास है और आधो बेटा कृष्णदास है । सो श्रीगोवर्द्धन नाथजी की गायन की सेवा करत है ।

सो तहाँ सदेह होय—गायन की सेवा तो सर्वोपरि है और गायन की सेवा किये ते बहोत वैष्णव श्री ठाकुरजी को पाये है और कुभनदास जी कृष्णदास कों आधो बेटा क्यो कहे ? तहां कहत है जो—श्री आचार्यजी आपु यह पुष्टि मार्ग प्रकट किये है । सो पुष्टि मार्ग ब्रजजन को भावरूप मार्ग है सो भगवदीय गाये है जो—'सेवा रीति प्रीति व्रजजन की जनहित जग प्रगटाई ।' सो ब्रजभक्तन की कहा रीति है ? जो श्री ठाकुर जी के सन्निधान में तो सेवा करे सो स्वरूपानंद को अनुभव करि सयोग रस में मग्न रहै और श्री ठाकुर जी गोचारन अर्थ व्रज में पधारे तब व्रजभक्त विरह रस को अनुभव करि गान करे । सो या प्रकार संयोग रस और विप्रयोग रस को अनुभव जाको होइ सो पूरो वैष्णव होय और (जामें) एक न होय सो आधो वैष्णव है । सो कृष्णदास तो गायन की सेवा करत है । और श्री गोवर्द्धननाथ जी को दरसनहू होत है । परतु व्रजभक्तन की रहस्य लीला को अनुभव नाही है । तासो ये आधो है और चतुर्भुजदास संयोग और विप्रयोग दोऊ रस के अनुभवयुक्त सेवा करत है सो लीला संबंधी कीर्तन हू गान करत है तासों कुभनदास जी चतुर्भुजदास को पूरा बेटा कहे ।"[1]

इस प्रसंग से यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि चतुर्भुजदास संगीत में कुशल थे और भगवान की लीलाओं का अनुभव कर उनका गान किया करते थे ।

चतुर्भुजदास श्रीनाथजी को रिझाने के लिए ही पद गाया करते थे । वे सदैव श्रीनाथजी की कीर्तन-सेवा मे संलग्न रहा करते थे और उनके प्रेम में गाते-गाते मग्न हो जाते थे —

"एक दिन श्रीगुसाईंजी श्रीगोकुल बिराजते और श्रीगिरिधरजी सों लेके सब बालक श्रीजी द्वार बिराजते हते । तब उहां रासधारी आये । तब श्रीगोकुलनाथजी ने श्री-गिरिधरजी सो पूछ के परासोली में रास करायो । और रास में खूब गान भयो । जब चतुर्भुजदासजी सु श्रीगोकुलनाथजी ने आज्ञा करी जो तुम कछु गावो । तब चतुर्भुजदास जी ने कही जो मेरे सुनवे वारे श्रीनाथ जी नही पधारे है जासू मे कैसे गाउं ।...... श्रीनाथजी जाग के और श्रीगिरिधर जी कु जगाय के श्रीनाथजी परासोली पधारे और श्री गिरिधर जी पधारे और चतुर्भुजदास कूं और श्री गोकुलनाथ जी कू दर्शन भये । और कोई कु दर्शन भये नही । तब श्रीनाथ जी के दर्शन करके चतुर्भुजदास जी गावे लगे । .....वे चतुर्भुजदास जी ऐसे कृपापात्र हते के श्रीनाथजी के बिना दूसरे ठिकानें गान नही करत हते ।"[2]

---

१. ८४ वैष्णवन की वार्ता, हरिराय, पृ० ७९–८०

२. २५२ वैष्णवन की वार्ता, पृ० २३–२४

गृहस्थ होते हुए भी चतुर्भुजदास सदैव श्री नाथजी के कीर्तन में ही लीन रहे और उन्होंने कृष्ण की बाल लीला,[१] विनय[२] तथा विरह[३] के पद गाये।

गोविन्दस्वामी

भक्तमाल तथा भक्तमाल की टीकाओ मे गोविन्दस्वामी के संगीत-ज्ञान पर कोई प्रकाश नही डाला गया है। ध्रुवदास जी ने इनके कीर्तन की प्रशंसा करते हुए कहा है– "गोविन्दस्वामी, गंग और विष्णु ने प्रिय-प्यारी (कृष्ण और राधा) का यश विचित्र राग और रंग से संयुक्त कर गाया है–

गोविन्द स्वामी गंग अरु विष्णु विचित्र बनाइ।
प्रिय प्यारी को जस कह्यो राग रंग सो गाइ॥[४]

२५२ वैष्णवन की वार्ता मे इनके सगीत-ज्ञान पर विस्तार से लिखा है। वार्ताकार के कथन से ज्ञात होता है कि गोविन्दस्वामी पद बनाकर गाते थे। "प्रथम गोविन्ददास आंतरी गांम में रहते। तहां गोविन्दस्वामी कहावते और आप सेवक करते।"[५]

डा० गुप्त ने कहा है कि "वार्ता से यह स्पष्ट नही है कि सेवक गान-विद्या और काव्य-विद्या सीखने के लिए हुए थे अथवा गोविन्दस्वामी किसी सम्प्रदाय के आचार्य बनकर लोगों को दीक्षा देते थे। अनुमान है कि लोग उनके पास गान और कविता करने की शिक्षा लेने ही आते थे।"[६]

वार्ता से ज्ञात होता है कि गोविन्दस्वामी गायन-विद्या के आचार्य, परमोच्च श्रेणी के गायक और सुकवि थे। सगीत-शास्त्र का उन्होने विधिपूर्वक अभ्यास किया था। वे प्राय. महावन के ऊँचे टीलों पर बैठकर सगीत शास्त्रोक्त विधि से सस्वर गायन किया करते थे।*पुष्टिसम्प्रदाय मे सम्मिलित होने से पूर्व ही वे कवि और गायक के रूप मे प्रसिद्ध हो गये थे। अपनी गानविद्या के कारण वे महावन मे विख्यात थे और उनके अनेक शिष्य हो गए थे। इनके सिखाये हुये पदो को कुछ लोग गोकुल मे जा कर गोस्वामी विट्ठलनाथ जी को सुनाया करते थे–

---

१ अष्टछाप कांकरोली, पृ० ३१८–१९

२ "ऐसे प्रार्थना के चतुर्भुजदास ने बहुत कीर्तन करिके सूतक के दिन बितीत किये।"–
अष्टछाप कांकरोली, पृ० ३०९

३ चतुर्भुजदास के मन में बहुत विरह भयो, तब श्री गिरिराज के ऊपर बैठि के विरह के कीर्तन करन लागे।" –अष्टछाप कांकरोली, पृ० ३१२

४. भक्तनामावली, पृ० १०

५. २५२ वैष्णवन की वार्ता, पृ० १

"एक समय गोविन्ददास आतरी गाम ते ब्रज को आये और महावन मे आय के रहे। और गोविन्ददास कवि हते। सो आप पद कर्ते। सो जो कोऊ इनके पद सीख के श्री गुसाईजी के आगे आय के गावे तिनके ऊपर श्री गुसाई जी प्रसन्न होते।"[१]

"सो गोविददास महावन के टेकरा पर रहते हते और नये कीर्तन करके गावते हते।"[२]

वार्ताकार ने कई स्थलो पर इनकी गान-विद्या की प्रशंसा की है– "सो गोविन्ददास भैरव राग आलाप्यो, सो गोविन्ददास को गरो बहोत आछो हतो और आप गावत ही बहोत आछे हते, सो भैरव राग ऐसे जाम्यो जो कछू कहिबे मे नाही आवे।"[३]

वल्लभ-सम्प्रदाय मे प्रवेश करने के उपरान्त इनके गाने की ख्याति दूर-दूर तक फैल गई थी। वार्ता के प्रसग से यह स्पष्ट है कि गोविन्दस्वामी के गायन-कला की ख्याति अकबर बादशाह के पास तक पहुँची थी और और स्वय अकबर उनका गाना सुनने गया था। वार्ता मे दिया है कि एक दिन प्रात. गोबिन्द स्वामी गोकुल के यशोदा घाट पर बैठ कर भैरव राग का अलाप कर रहे थे। प्रात. काल के शात और सुखद वातावरण मे राग का ऐसा समा बँधा कि आने जाने वाले राहगीर भी मत्र मुग्ध से हो गए। उन्ही राहगीरो मे अकबर बादशाह भी वेष बदल कर गाना सुन रहे थे। उनके गान पर मोहित हो कर अकबर के मुख से 'वाह वाह' निकल पड़ा। गोविन्दस्वामी ने यह कह कर कि उनका राग यवन के स्पर्श से भ्रष्ट (छी गया) हो गया जीवन पर्यन्त उस राग को नही गाया।[४]

किसी भी सूत्र से यह पता नही चलता कि आपके सगीत गुरु कौन थे और आपने

---

१. २५२ **वैष्णवन की वार्ता**, पृ० १

२. **वही**, पृ० ३

३. **अष्टछाप काँकरौली**, पृ० २८५

४. "एक दिन आगरे में अकबर पातशाह ने सुन्यो जो गोविन्दस्वामी बहुत आछे गावत हैं और निरपेक्ष हैं और निशंक हैं। अब इनके मुख को राग कैसे सुन्यो जाय। विचार करके पातशाही वेष पलट के श्री गोकुल में इकेले आये। जब गोविन्ददास घाट पर भैरव राग अलापत हते तब वा पातशाह ने वाहवा वाहवा करी। जब गोविन्ददास ने कही ये राग छी गये। जब वाने कही जो मैं पातशाह हूं जब विन ने कही जो तुम पातशाह हो तो पातशाही करो। परंतु ये राग तो तुमारे सुनवेसूं छिवाय गयो तब पातशाह ने विचार करयो एक देश को मैं राजा हुँ और इनको तो तिलोकी को वैभव फीको लगे है। जासूं ये काहे कूं आपने हुकुम में रहेंगे। ये विचारि के पातशाह चले गये। और गोविन्दस्वामी ने वा दिन सूं भैरव राग गायो नहीं। वे गोविन्दस्वामी ऐसे टेकी भगवदीय हुते।"

२५२ वैष्णवन की वार्ता, पृ० ११

संगीत की शिक्षा कहाँ प्राप्त की थी किन्तु वार्ता से यह पता चलता है कि गान-कला मे आप तानसेन से भी अधिक कुशल थे । तानसेन स्वयं गोविन्दस्वामी से सगीत सीखने आते थे । तानसेन की वार्ता मे कहा गया है –

"एक दिन तानसेन श्रीगुसाई जी के पास गायवे कुं आये । सो गाये तब तानसेन कुं श्री गुसाई जी ने दसहजार रुपैया इनाम के दिये । और एक कौडी दीनी । तब तानसेन ने पूछ्यो जो दसहजार रुपैया तो ठीक परतु कौडी कैसी है । तब श्री गुसाई जी ने आज्ञा करी जो तुम पादशाह के कलावंत हो जाके दस हजार रुपैया है और तुमारे गावे की कीमत हमारे गवैयन के आगे कौडी है । तब तानसेन ने कही जो ये बात मैं कैसे मानू तब श्री गुसाई जी ने गोविन्दस्वामी कू आपके पास बुलाये और आज्ञा करी एक पद गावो । तब गोविन्दस्वामी ने एक पद सारंग राग मे गायो । सो पद । **'श्री वल्लभनंद रूप अनूप स्वरूप कह्यौ नहि जाई ।'** सो ये पद सुन के तानसेन चकित होय गये । और गोविन्दस्वामी को गान सुनके विचार कर्यो जो मेरो गान इनके आगे ऐसे है जैसे मखमल के आगे टाट है ऐसे है । सो ये कौडी की इनाम खरी । तब गोविन्दस्वामी सू तानसेन ने कही जो बाबा साहेब मोकू गान सिखावो । तब तानसेन श्री गुसाई जी के सेवक भये और पचीस हजार रुपैया भेट करे । और गोविन्दस्वामी के पास गायन विद्या सीखे ।" [1]

उक्त प्रसग से यह ज्ञात होता है कि तानसेन का संगीत सुनने के उपरान्त स्वामी विट्ठलनाथ ने तानसेन को दस हजार रुपये इसलिए दिए कि वह दरबारी गायक थे और कौडी इसलिए दी कि अष्टछाप के कवियो के समक्ष उनका संगीत बिल्कुल मूल्यहीन था । यद्यपि यह कथन अतिशयोक्तिपूर्ण है किन्तु इसमे तनिक भी संदेह नही कि गोविन्दस्वामी अवश्य सगीत के आचार्य रहे होगे । वार्ता से विदित है कि गोविन्दस्वामी का गाना सुनने के उपरान्त तानसेन को भी इस बात का दृढ विश्वास हो गया था और तभी तानसेन ने गोविन्दस्वामी के सेवक बन कर उनसे सगीत की शिक्षा ग्रहण की ।

राजा आसकरण की वार्ता मे यह प्रसग दिया हुआ है जिसमे स्वयं तानसेन ने गोविन्दस्वामी को अपना सगीत-गुरू माना है ।[2] एक बार तानसेन ने राजा आसकरण को गोविन्दस्वामी से सीखा हुआ एक पद सुनाया । राजा आसकरण के पूछने पर कि यह पद कहां से सीखा तानसेन ने कहा कि गोसाई जी के सेवक होने के उपरान्त उन्होने गोविन्दस्वामी से संगीत की शिक्षा पाई –

"तब तानसेन जी बोल श्री गोकुल मे श्री विट्ठलनाथ जी श्री गुसाई जी है विनके सेवक गोविन्दस्वामी है विनने ऐसे सहस्रावधी पद किये है परतु श्री गुसाईं जी के सेवक बिना वे और कू सिखावते नाही है । मैं हूं विनके संग ते श्री गुसाई जी को सेवक भयो हुं ।"

---

१. २५२ **वैष्णवन की वार्ता,** पृ० ३९७ – ९८

२. **वही,** पृ० १५८

वार्ता मे यह भी लिखा है कि तानसेन से गोविन्दस्वामी के गान की प्रशसा सुन कर राजा आसकरण भी उनके शिष्य हुए और उनसे सगीत विद्या सीखी ।[१]

गोविन्दस्वामी सगीत के आचार्य थे । वार्ता मे दिया है – " सो गोविन्दस्वामी नित्य जसोदा घाट पर जाय बैठते । सो उहा एक दिन एक बैरागी गायवे लग्यो । सो राग ताल स्वर हीन हतो । जब गोविन्दस्वामी ने कही जो तू मत गावै या गायिवे सों कहा होत है । तब वा वैरागी ने कही मै तो मेरे राम को रिझावत हो । जब गोविन्दस्वामी ने कही राम तौ चतुर शिरोमणी है सो कैसे रीझेंगे ।"[२]

इससे यही पता चलता है कि गोविन्दस्वामी स्वर, राग, ताल और लय की शुद्धता के समर्थक थे । सगीत के विविध अगो का उन्हे पूर्ण ज्ञान था । सगीत-शास्त्र का उन्होंने विधि-पूर्वक अध्ययन तथा अभ्यास किया था । वास्तव मे गोविन्दस्वामी शास्त्रीय सगीत के आचार्य थे ।

वल्लभ-सम्प्रदाय मे प्रवेश करने के उपरान्त गोविन्दस्वामी कुछ दिन महावन तथा गोकुल मे रहे । फिर वे गोवर्द्धन चले गए । वहाँ पर श्रीनाथ जी के मंदिर मे कीर्तन की सेवा आपको दी गई । वहाँ रह कर गोविन्दस्वामी जीवन पर्यन्त अपने इष्ट श्रीनाथ जी के समक्ष गानकीर्तन मे लीन रहे ।

छीतस्वामी

भक्तमाल तथा भक्तमाल की टीकाओ मे छीतस्वामी के सगीत-ज्ञान पर कुछ भी नही दिया है । ध्रुवदास ने भी भक्तमाल के रचयिता का ही अनुकरण किया है । 'भक्त नामावली' से भी उनकी गायन-कला पर कोई प्रकाश नही पड़ता । २५२ वैष्णवन की वार्ता तथा नागर-समुच्चय मे कवि का सगीत सबधी थोडा सा विवरण प्राप्त होता है ।

सगीत की ओर छीतस्वामी की रुचि बाल्यकाल से ही प्रतीत होती है । गोस्वामी विट्ठलनाथ से प्रथम भेट होने पर ही उन्होंने पद बना कर गाये थे । इससे ज्ञात होता है कि वल्लभ सम्प्रदाय मे प्रवेश करने से पूर्व ही वे गान विद्या जानते थे । वार्ता मे इस घटना का उल्लेख किया गया है–

"जब छीतस्वामी ने कही जो महाराज मोकु शरण लेओ । ··· तब छीतस्वामी ने बाहर आयके चारो चौबान से कही मोकु टोना लग गयो है तुम भाग जावो नाहि तो तुमको लग

---

१. २५२ वैष्णवन की वार्ता, पृ० १५८ – ५६, **(यह वार्ता इसी अध्याय में आगे राजा आसकरण के प्रसंग में दी गई है)**

२. **वही, पृ० १०**

जायगो। ये सुन के चारों चौबे भाग गये। छीतस्वामी ने एक पद करिके गायो। राग नट–भई अब गिरिधर सो पहेचान। ये पद सुन के गुसाई जी प्रसन्न भए।"[१]

नागरीदास जी ने भी छीतस्वामी की झगड़ालू प्रकृति का वर्णन करते हुए कहा है कि एक दिन छीतस्वामी थोथे नारियल मे राख भरकर गोस्वामी विट्ठलनाथ जी के सम्मुख ले गए और उन्हे भेट किया किंतु गोस्वामी जी के तुड़वाने पर उनके सामने ही उसमे से गरी निकली। यह चमत्कार देखकर छीतस्वामी बहुत लज्जित हुए और उसी समय उन्होने यह पद गाया–राग सारंग–जे बसुदेव किये पूरन तप तेई फल फलित श्री वल्लभदेव।[२]

उपर्युक्त प्रसग से भी इसी बात की पुष्टि होती हे कि ये वल्लभ-सम्प्रदाय मे आने से पहले कवि थे और पद गाया करते थे। आचार्य जी के सम्पर्क मे आने से पूर्व ही आपको सगीत का ज्ञान था। तभी तो छीतस्वामी ने गोस्वामी जी के समक्ष तत्काल पद बनाकर गाया था।

छीतस्वामी के किसी सम्प्रदाय की दीक्षा देने वाले स्वामी होने का कोई प्रमाण नही मिलता। कितु गोसाई जी की शरण मे जाने से पहले ही छीतस्वामी भी गोविन्दस्वामी की तरह 'स्वामी' कहलाते थे। अत संभव है कि गान विद्या तथा कविता सीखने के लिए इनके पास आनेवाले शिष्यों ने इनको स्वामी की उपाधि दे दी हो।

वार्ता अथवा अन्य किसी भी आधार से यह नही ज्ञात होता कि इन्होने सगीत की शिक्षा कब और कहाँ पाई। ऐसा ज्ञात होता है कि वल्लभ-सम्प्रदाय में आने से पूर्व आपको संगीत का थोड़ा ज्ञान था। कितु गोस्वामी विट्ठलनाथ जी की शरण मे आने के उपरान्त उनकी शिक्षा तथा अष्टछाप के अन्य कवियो के सम्पर्क से छीतस्वामी की सगीत विषयक प्रतिभा का और भी विकास तथा पूर्ण प्रस्फुटन हुआ। वार्ता मे लिखा है कि श्री गुसाई जी की कृपा से छीतस्वामी भगवदीय कवीश्वर और कीर्तनकार हुए।[३] वार्ता से ज्ञात होता है कि अकबर बादशाह ने भी उनका कीर्तन सुना था।

"और एक दिन बीरबल देशाधिपति सों रजा लेके श्री गोकुल मे जन्माष्टमी के दर्शनकु आयो। पाछे वेष पलटाय के देशाधिपतिहूं छाने छाने आयो। तब जन्माष्टमी के पालना के दर्शन करे। मनुष्यन की भीड मे। तब देशाधिपति कु श्री गुसाई जी बिना और कोई ने पहिचान्यो नही। तब छीतस्वामी कीर्तन करत हते। और श्री गुसाई जी श्री नवनीतप्रिया जी कु पालना झुलावत हते तब छीतस्वामी ने ये पद गायो।"[४]

---

१. २५२ **वैष्णवन की वार्ता, पृ० १६–१७**

२. **नागर समुच्चय, पद प्रसंग माला, सिंगार सागर, शिवलाल,** पृ० २०७

३. **'सो वे गुसांई जी की कृपा ते बड़े कवीश्वर भये, सो बहुत कीर्तन किये।'**
अष्टछाप कांकरोली, पृ० २५६

४. २५२ **वैष्णवन की वार्ता,** पृ० १६

पुष्टि-सम्प्रदाय मे दीक्षा लेने के अनन्तर वे स्थायी रूप से गोवर्द्धन पर श्रीनाथ जी के मदिर मे भजन-कीर्तन करने लगे और भक्ति मे लीन होकर उन्होने बहुत से पद बना कर गाए।

गदाधर भट्ट

भक्तमाल मे जो छप्पय दिया हुआ है उसमे गदाधर भट्ट के सगीत ज्ञान पर कुछ भी प्रकाश नही पडता। भक्तमाल की पंक्तियो–'भागवत सुधा बरखै बदन काहू को नाहिन दुखद, गुण निकर गदाधर भट्ट अति सबहिन को लागै सुखद।' [१] से यह अवश्य ज्ञात होता है कि गदाधर भट्ट जी भागवत सुनाया करते थे। भक्तनामावली मे कहा गया है –

भट्ट गदाधर नाथ भट्ट विद्या भजन प्रवीन।
सरस कथा बानी मधुर सुनि रुचि होत नवीन॥[२]

इससे भी इस बात का समर्थन होता है कि ये भजन मे प्रवीण थे और मधुर वाणी से कथा कहा करते थे। भक्तमाल की टीका मे एक निम्नलिखित प्रसग दिया हुआ है –

"स्याम रग रगी" पद सुनि कै–गुसांई जी व पत्र दै पढाये उभै साधु बेगि धाये है। "रग्नी बिन रग कैसे चढ्यो अति साच बढ्यो कागद मे प्रेम मढ्यो तहा लैके आये है। पुरढिग कूप तहाँ बैठ रस रूप लगे पूछिबे को तिन हो सो नाम ले बताये है। रह्यो कौन ठौर सिरमोर वृंदावन धाम नाम सुनि मुरछा ह्वै गिरे प्रान पाये है।"

काहू कही 'भट्ट श्री गदाधर जू एई जानौ' मानौ उही पाती चाह फेरि कै जिवाये है।
दियौ पत्र हाथ लियो, सीस सो लगाय चाय बाचत ही, चले बेगि वृन्दावन आये है।
मिले श्री गुसाई जू सो आंखे भरि आई नीर सुधि न शरीर धरि धीर वही गाये है।
पढ़े सब ग्रथ सग नाना कृष्ण कथा रग रस की उमग अंग-अग भाव छाये है।" [३]

इस प्रसंग से ज्ञात होता है कि जीवगुसाई जी के सम्पर्क मे आने से पूर्व ही गदाधर भट्ट जी पद गाया करते थे और उनके पदो की ख्याति दूर-दूर तक फैल गई थी।

गदाधर जी ने गायन-कला की विधिवत शिक्षा पाई थी अथवा नही तथा उनके जीवन से सबधित अन्य किसी संगीत संबंधी घटना का कोई विवरण नही प्राप्त होता।

---

१ **भक्तमाल, सुधा स्वाद तिलक, पृ० ७९३, छं० १३८**

२. **भक्तनामावली, पृ० ४**

३. **भक्तमाल, भक्ति सुधास्वाद तिलक, पृ० ७९४–७९५**

सूरदास मदनमोहन

सूरदास मदनमोहन जी गान-विद्या और काव्य-कला मे अति प्रवीण और चतुर थे। नाभादास ने आपके गायन तथा काव्य की प्रशसा करते हुए कहा है –

गान काव्य गुणराशि सुहृद सहचरि अवतारी।
राधाकृष्ण उपास्य रहसि सुख के अधिकारी॥
नव रस मुख्य शृंगार विविध भांतिन करि गायो।
वदन अचारत वेर सहस पांयनि ह्वै धायो॥
अंगीकार की अवधि यह जो आख्या भ्राता जमल।
श्री मदनमोहन सूरदास की नाम शृंखला जुरी अटल॥ [१]

इससे ज्ञात होता है कि ये राधाकृष्ण के उपासक तथा रासरस के अधिकारी थे। ये गान-विद्या तथा काव्य-रचना मे अत्यत प्रवीण थे। आपने शृगार रस के पदो को विशेष कर गाया। सगीत के कारण ही इनकी कविता बहुत अधिक प्रसिद्धि हो गई थी।

आइने अकबरी मे अकबर के दरबार के गवैयो का उल्लेख किया गया है। उसमे ग्वालियर निवासी रामदास नामक एक गवैये का वर्णन है। आइने अकबरी के वर्णन से ज्ञात होता है कि अकबर के दरबार मे सूरदास नामक गवैया था जोकि रामदास का पुत्र था और अपने पिता के साथ दरबार मे आया करता था। [२]

अलवदाउनी द्वारा लिखे गये मुन्तखिबउत्तवारीख ग्रथ मे भी सूरदास के पिता रामदास का उल्लेख है।[३] इसमे रामदास के विषय में कहा गया है –

"खानखाना के पास उस समय अधिक द्रव्य नही था फिर भी उन्होने रामदास लखनवी को जो सलीमशाही कलावन्तो मे से एक था और जो गाने की कला मे मियाँ तानसेन के समान था एक लाख सिक्के बख्शिश दिये।"

अलवदाउनी ने रामदास को तानसेन के सदृश उच्चिकोटि का गायक कहा है।

---

१ **भक्तमाल, भक्तिसुधा स्वाद तिलक, छंद सं० १२६, पृ० ७५१ – ५२**

२ **आइने अकबरी, एच ब्लोकमैन, पृ० ६१२**

३ **"ब खाना खाना हमीं तौर बावजूद आँकि दरखजीना हेच न दाश्त एकलक तनका ब रामदास लखनवी क अज कलावन्तान असलीम शाही दरवादी सरोद औरा सानी मियाँ तानसेन तवान गुफ्त व दर खिलवात व जलवात व खान हमदम व मुहरिम बूद व अज हुस्न सौत ओ पेवस्ता आबदरदीदा मेगरदानीद हर एक मजलिस अजनगदो जिन्स बख्शीदा।"**

अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय, डा० दीनदयालु गुप्त, भाग १, पृ० १६१

मुन्तखिबउत्तवारीख और आइने अकबरी दोनो के वर्णनों से यह निश्चित हो जाता है कि रामदास भी अकबर के दरबार से सबधित एक उत्कृष्ट गायक था। अत यह कहा जा सकता है कि सूरदास मदनमोहन ने संगीत की विधिवत शिक्षा बाल्यकाल से ही अपने पिता के द्वारा प्राप्त की होगी। अपने पिता के सम्पर्क मे रह कर सूरदास भी संगीत में पारगत हो गये होगे। नाभादास जी के वृतान्त से इस बात की पुष्टि हो जाती है कि सूरदास मदनमोहन संगीत मे अत्यधिक प्रवीण थे और अपने गायन तथा काव्य-कुशलता के कारण बहुत विख्यात हो गए थे।

हितहरिवंश

राधा-वल्लभीय सम्प्रदाय के प्रवर्तक श्री स्वामी हितहरिवश जी राधा-कृष्ण की सखी भाव से उपासना करते हुए भजन-कीर्तन मे मग्न रहा करते थे। नाभादास जी ने भक्तमाल में इनकी कृष्णोपासना-विधि का वर्णन करते हुए कहा है –

श्री हरिवंश गुसांई भजन की रीति सुकृत कोउ जानि है।[1]

इस पक्ति से स्पष्ट होता है कि हितहरिवश जी भजन गाया करते थे। प्रियादास जी ने इस पर विवेचना करते हुए लिखा है –

विधि औ निषेध छेद डारे प्राण प्यारे हिये।
जिये निज दास निशि दिन वहै गाइये।। ६४।।

× × ×

निशि दिन गान रसमाधुरी को पान।
उर अंतर सिहांत एक काम श्यामा श्याम को।। ६६।।[2]

इस वर्णन से भी यही ज्ञात होता है कि राधा-कृष्ण के भजन मे मग्न रहना तथा उनके गुणों का गान ही हितहरिवश जी का कार्य था। ये दम्पति-केलि का गान किया करते थे और रात दिन युगल रूप के यश गाते थे। श्री ध्रुवदास जी ने बहुत अधिक हितहरिवंश जी की प्रशंसा की है किंतु उनके वर्णन से हितहरिवंश जी के सगीत-ज्ञान पर कोई विशेष प्रकाश नही पड़ता क्योकि ध्रुवदास जी ने भी केवल उनके भजन-कीर्तन का ही वर्णन किया है –

धन चंद चरन अंबुज भजहि मन क्रम बचन प्रतीति।
वृन्दावन निज प्रेम की तब पावै रस रीति।
कृष्णचंद के कहत ही मन को भ्रम मिटि जाइ।
विमल भजन सुख सिंधु में रहै चित्त ठहराइ।[3]

---

१. भक्तमाल, भक्ति रस बोधिनी, छप्पय सं० ९०, पृ० ९३
२. वही, पृ० ९३
३. भक्तनामावली, ध्रुवदास, स० राधाकृष्ण दास जी, पृ० १.

अन्य वाह्य आधारो से हितहरिवश जी के सगीत-ज्ञान के विषय मे कोई विशेष विवरण प्राप्त नही होता।

हरिदास स्वामी

भक्तमाल मे नाभादास जी हरिदास स्वामी का वर्णन करते हुए कहते है –

युगल नाम सो नेम जपत नित कुंजबिहारी।
अवलोकत रहे केलि सखी सुख को अधिकारी॥
गान कला गंधर्व श्याम श्यामा को तोषै।
उत्तम भोग लगाय मोर मर्कट नित पोषै।
नृपति द्वार ठाढ़े रहे दर्शन आशा जास की।
आसधीर उद्योत कर रसिक छाप हरिदास की॥ [१]

उक्त छप्पय मे हरिदास स्वामी की गान-कला की अत्यधिक प्रशंसा की गई है। इससे ज्ञात होता है कि हरिदास जी के कीर्तन और गान-विद्या के सम्मुख गधर्व भी लज्जित थे और अपनी गान-कला से सखी की भाँति सेवा करते हुए श्याम और श्यामा को सतुष्ट करना ही आप का ध्येय था।

श्री व्यास जी ने हरिदास जी की गायन-कला की प्रशंसा करते हुए कहा है –

अनन्य नृपरते श्री स्वामी हरिदास।
श्री कुंजबिहारी सेये बिन छिन न करी काहू की आस।
सेवा सावधान अतिजान सुघर गावत दिन रात।
अैसौ रसिक भयो नहि ह्वै है भुव मंडल आकास।
देह विदेह भये जीवित ही विसरे विश्व विलास।
श्री वृंदावन रे तन मन भजि तजि लोक बेद की आस।
प्रीति रीति कीनी सबहिन सो किये खास खवास।
अपनौ व्रत इहि औरनि चाह्यौ जौ लौं कंठ उसास।
सुरपति भुवपति कंचन कामिन जनिके भाये घास।
अबके साधु व्यास हमहू से करत जगत उपहास। [२]

भक्तनामावली मे ध्रुवदास जी ने भी हरिदास स्वामी की सगीत-कला की ओर संकेत करते हुए कहा है कि वह श्यामा-श्याम के विहार का गान किया करते थे।

उपर्युक्त सभी वृत्तातो से यह निश्चित हो जाता है कि संगीत के क्षेत्र मे हरिदास

---

१. **भक्तमाल, भक्तिसुधास्वादतिलक, छप्पय सं० ९१, पृ० ६०७**
२ **पद संग्रह, हस्तलिखित प्रति सं० १६२०/३१७०, हिंदी संग्रहालय प्रयाग, पृ० ३५**

स्वामी का महत्व अतुलनीय है। यह भी ज्ञात होता है कि वे एकमात्र भगवान को रिझाने के लिए गाते थे और उनकी गान-कला की इतनी अधिक कीर्ति व्याप्त हो गई थी कि दूर-दूर से स्वय नृपति गण उनसे भेट करने आते थे। किंतु इन वर्णनो से यह नही पता चलता कि कहाँ कहाँ के राजा उनका संगीत सुनने के लिए आए थे।

भक्तमालहरिभक्तिप्रकाशिका,[1] भक्तमालभक्तिसुधास्वाद[2] और भक्त-कल्पद्रुम[3] मे उल्लेख किया गया है कि शहशाह अकबर हरिदास स्वामी का गाना सुनने के लिए आये थे। इनके वर्णन से ज्ञात होता है कि एक बार तानसेन की गायन-कला पर मुग्ध हो कर अकबर ने तानसेन से पूछा कि क्या इस विश्व मे उसके समान निपुण गायक अन्य कोई भी है। तानसेन ने कहा कि हरिदास स्वामी न केवल उसके समान निपुण ही है वरन् वे गान-विद्या मे उसे पराजित भी कर सकते है। यह जान कर कि हरिदास स्वामी दरबार मे नही आयेंगे अकबर तानसेन के साथ साधु वेष मे वृन्दावन उनका गाना सुनने गए। तानसेन के अत्यधिक आग्रह करने पर भी हरिदास जी ने गाना सुनाना स्वीकार नही किया। तब तानसेन ने अपने गुरू के सम्मुख एक राग जान बूझ कर अशुद्ध रूप मे गाया। गुरु हरिदास स्वामी ने तत्काल तानसेन का ध्यान इस ओर आकृष्ट किया और स्वय गा कर बताने लगे कि इस राग को किस प्रकार से गाना चाहिए। हरिदास स्वामी भावावेश मे गाते रहे और अकबर आनन्दातिरेक मे वही मूर्छित हो गया। चेतना आने पर अकबर ने तानसेन से पूछा कि तानसेन तुम इतना सुन्दर क्यो नही गाते। प्रत्युत्तर मे तानसेन ने कहा कि महाराज, मै पृथ्वी-सम्राट की आज्ञा पर गाता हूँ किंतु गुरुदेव अपनी आत्मा की आज्ञा पर गाते है।

डा० दीनदयालु गुप्त ने भी इस घटना का संकेत किया है।[4] श्री राधाकृष्णदास जी ने लिखा है कि तानसेन के साथ अकबर का नौकर के वेष मे जाकर स्वामी हरिदास से गाना सुनने का चित्र अब तक श्री वृन्दावन मे वर्तमान है।[5]

भक्तमालहरिभक्तिप्रकाशिका,[6] भक्तमालभक्तिसुधास्वाद[7] तथा भक्तकल्पद्रुम[8] के

---

१. भक्तमालहरिभक्तिप्रकाशिका, पृ० ५४१
२. भक्तमालभक्तिसुधास्वाद, पृ० ६०६
३. भक्तकल्पद्रुम, प्रताप सिंह, पृ० ३८०
४. "अकबर भी इनकी भक्ति, इनके संगीत शास्त्र तथा कला के गुणों की प्रशंसा सुनकर इनसे मिलने गया था।"

अष्टछाप और वल्लभसम्प्रदाय, डा० दीनदयालु गुप्त, भाग १, पृ० ६८

५. भक्तनामावली, प्रकाशक राधाकृष्णदास, पृ० १८
६. भक्तमालहरिभक्तिप्रकाशिका, पृ० ५४१
७. भक्तिसुधास्वाद, रूपकला जी, पृ० ६०६
८. भक्तकल्पद्रुम, प्रताप सिंह, पृ० ३८०

वर्णन से यह स्पष्ट होता है कि तानसेन ने एक बार अकबर से हरिदास स्वामी को अपना संगीत-गुरू[1] बताया था। श्याम सुदरदास,[1] रामचन्द्र शुक्ल,[2] रामकुमार वर्मा[3] तथा डा० दीनदयालु गुप्त[4] ने हरिदास स्वामी को तानसेन का सगीत-गुरू माना है। स्वयं तानसेन के पदों से स्पष्ट होता है कि स्वामी हरिदास इनके सगीत-गुरू थे।

तानसेन ने संगीत की शिक्षा हरिदास स्वामी से पाई इस संबंध मे कई किंबदन्तियाँ प्रचलित है। कहा जाता है कि एक बार जब तन्ना छोठे थे तो शेर के गर्जन की नकल करते हुए अपने बाग की रखवाली एक कोने मे बैठे कर रहे थे। इतने मे स्वामी हरिदास उधर से निकले और उनकी मधुर ध्वनि से अत्यधिक प्रभावित हुए। उन्होने तन्ना को उसके पिता से माँग लिया और वृन्दावन में तन्ना को संगीत की सीक्षा दी। तन्ना का नाम परिवर्तित करके तानसेन रख दिया। दूसरी किंबदन्ती के अनुसार स्वामी हरिदास का तन्ना के पिता मकरन्द पाडे से घनिष्ट परिचय था और मकरन्द पाडे भी हरिदास के परम भक्त थे। तभी हरिदास ने तानसेन को संगीत मे पूर्ण निपुण कर दिया था। यह भी कहा जाता है कि तानसेन पहले गौस मुहम्मद के शिष्य थे और फिर गौस मोहम्मद ने स्वत: इन्हे हरिदास स्वामी के पास दीक्षित होने के लिए भेज दिया था।

उक्त प्रसंगो से यह ज्ञात होता है कि स्वामी हरिदास संगीत शास्त्र के प्रकांड आचार्य तथा महान गायक थे और अकबरी दरबार के बिख्यात गायक तानसेन इन्ही के शिष्य थे। खेद का विषय है कि उस संगीतज्ञ कवि के विषय में जिसने तानसेन के सदृश्य गायक को उत्पन्न किया बहुत ही संक्षिप्त विवरण प्राप्त होता है। इतने महान संगीतज्ञ के जीवन की संगीत संबंधी घटनायें आज भी सदेहात्मक बनी हुई है। विश्वस्त सूत्रों के अभाव में इनकी सगीत संबंधी घटनाओं के कुछ तथ्यों के निर्द्धारण के लिए अनेक प्रचलित जनश्रुतियों पर ही आश्रित रहना पड़ता है।

मीराबाई

भारतीय संगीत और साहित्य के इतिहास मे किसी भी युग म पुरुष गायको एवं

---

१. 'अकबरी दरबार के प्रख्यात गायक तानसेन के और स्वयं अकबर के ये (हरिदास स्वामी) संगीत गुरु कहे जाते है।' हिन्दी भाषा और साहित्य, श्यामसुंदरदास, पृ० ४२०

२. 'प्रसिद्ध गायनाचार्य तानसेन इन (स्वामी हरिदास) का गुरुवत् सम्मान करते थे'
हिंन्दी साहित्य का इतिहास, पं० रामचन्द्र शुक्ल, पृ० १८५

४. 'ये प्रसिद्ध गायक भक्त थे। कहा जाता है कि ये तानसेन के गुरु थे।'
हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, डा० रामकुमार वर्मा, पृ० ७१४

५. 'अकबर के दरबार का प्रसिद्ध गवैया तानसेन इन्हीं स्वामी हरिदास जी का शिष्य था और इन्हीं से उसने गान-विद्या सीखी थी।'
अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय, डा० दीनदयालु गुप्त, पृ० ६८

ताल बजावे गोविंद गुण गावे लाज तजी बड-ल्होड़ा की।
निरतति करै नीकाँ होइ नाचै भगति कुमावै बाई चौड़ा की।
× × ×
हरिदास मीरा बड़ भागाणे सब राण्यां सिरमोड़ा की।[1]

इस पद से भी यही ज्ञात होता है कि मीरा सगीत-विद्या मे प्रवीण थी। वे भगवान कृष्ण की आराधना मे बेसुध होकर ताल-लय मे नाचा तथा गाया करती थी।

प्रश्न उठता है कि मीरा को सगीत की विधिवत् शिक्षा कहाँ प्राप्त हुई। अनुमान किया जाता है कि अन्य आवश्यक बातो के साथ मीरा को समयानुसार संगीत के अभ्यास का भी अवसर मिला था। मीरा के समय मे संगीत विशेषकर नृत्य तथा गान का अधिक प्रचार था। स्त्रियो को सगीत तथा नृत्य का ज्ञान होना आवश्यक समझा जाता था। राजकुल में राजकुमारियो को सगीत की शिक्षा दी जाती जाती थी।[2] मीरा का जन्म राजकुल मे हुआ था। फिर मातृविहीना मीरा तो अपने बाबा की अत्यधिक लाडली पौत्री थी। अत: मीरा की संगीत शिक्षा के प्रति उनके अभिभावको की उदासीनता सभव नही। मीरा का पालन-पोषण उनके बाबा राव दूदा जी ने किया था। राव दूदा जी वैष्णव थे। उनके यहाँ साधु-सतो का समागम तथा सत्सग होता रहता था। सत्सग के अन्तर्गत भजन तथा कीर्तन भी आवश्यक अंग है। भजन-कीर्तन मे सगीत का भी आयोजन रहता है। अत मीरा को संगीत के सम्पर्क में आने का सयोग मिला और सगीत के साथ उनका परिचय बहुत स्वाभाविक रूप से हुआ। विवाहोपरान्त अपने श्वसुर-गृह मे मीरा को यथासभव अपनी संगीत-प्रतिभा के विकास के लिए अनुकूल वातावरण प्राप्त हुआ। मीरा का विवाह मेवाड के सीसौदिया राजवंश मे हुआ था। सीसौदिया राजवश उन दिनो सगीत के अनन्य प्रेमी महाराणा कुम्भा के कारण पूर्ण विख्यात हो चुका था। महाराणा कुभा सगीत की अधिष्ठात्री देवी सरस्वती की वीणा के बहुत बड़े उपासक थे। उन्होंने सगीत का गहरा अध्ययन और अभ्यास किया था। संगीत पर महाराणा कुभा ने 'सगीत प्रदीपिका', 'सगीत सुधा' तथा 'सगीत राज' ग्रंथ लिखे थे। इसके अतिरिक्त सगीत-रत्नाकर तथा जयदेव के गीत-गोविंद की टीका 'रसिक प्रिया' नाम से भी की थी (यह ग्रथ निर्णय सागर मुद्रणालय बंबई से प्रकाशित हुआ है)। राणा कुंभा की पुत्री रमाबाई सगीत-पटुता के लिए अत्यन्त प्रसिद्ध थी।

अत. जिस राजवश मे सगीत का इतना प्रचार हो, जहाँ जयदेव की अष्टपदी सगीत की नवीन स्वरलहरियो से मिलकर वायुमडल को गुजायमान कर रही हो, उस घर मे बाल्यकाल से आई कृष्ण-प्रेम की मतवाली मीरा संगीत के प्रभाव से कैसे अछूती रह सकती थी। मीरा के काव्य में उनके ससुरालवालो की जो कहा सुनी हुई है वह संगीत और नृत्य-

१. राजस्थानी, जनवरी १९३९, पृ० ३८
२. मीरा-स्मृति-ग्रंथ, मीरा के पदों में सांस्कृतिक चित्र, पृ० १६१–६२

निषेध के विषय मे नही है वरन् समाज मे निम्न समझे जाने वाले समुदायों के मध्य जाकर नाचने-गाने के निषेध विषयक ही है। मीरा के समय मे स्त्रियाँ घर मे गाती थी। मदिर आदि वाह्य स्थानो पर वेश्याओ का ही सगीत प्रदर्शन होता था। अत. मीरा के ससुराल वाले यह कब देख सकते थे कि उनकी पुत्रवधू बाहर जाकर नाचे-गाये। जब मीरा के सगीत के साथ सतो का भी संगीत आ मिला तथा वे अपनी सुधबुध भूलकर बाहर मदिर और सत-मंडली मे नृत्य करने लगी तभी राज परिवार के लोगो ने उन्हे ऐसा करने से रोका होगा। किंतु न मानने पर ससुराल वालो के क्रोधित होने के कारण मीरा गृह छोडने के लिए विवश हुई होगी।

ससुराल छोडने के उपरान्त मीरा बृन्दावन मे निवास करने लगी। वहाँ उनकी सगीत-प्रतिभा को प्रस्फुटित होने का और भी सुयोग प्राप्त हुआ। बृन्दावन उस युग मे सगीत का प्रधान केन्द्र था। अतः यह स्वाभाविक है कि संगीत के केन्द्रस्थल वृन्दावन के सगीतमय वातावरण मे मीरा का सगीत-ज्ञान और भी अधिक विकसित हो गया होगा। इस प्रकार अनुकूल वातावरण पाकर मीरा अपने युग की सर्वश्रेष्ठ कवयित्री गायिका हो गई।

राजा असकरण

भक्तमाल तथा आइने अकबरी दोनो मे राजा आसकरण का वृत्तात मिलता है। किंतु किसी के भी वर्णन से उनके संगीत-ज्ञान पर कोई प्रकाश नही पडता। राजा आसकरण के सगीत-ज्ञान को जानने के लिए हमे एकमात्र २५२ वैष्णवन की वार्ता पर निर्भर रहना पड़ता है जिसमे निम्न प्रसग दिया गया है –

"सो वे आसकरण जी नरवरगढ मे रहते विनकू राग सुनवे को व्यसन बहुत हतो सो गान सुनायबे के लीये देश-देश के कलावंत गवैया उहां आवते हते और सबकू आदर पूर्वक सन्मान करते हते और राग की परीक्षा बहुत आछी हती।"[१]

इस प्रसग से यह ज्ञात होता है कि राजा आसकरण संगीत के अत्यन्त प्रेमी थे। उनको राग सुनने का व्यसन था और साथ ही वे सगीत के पारखी थे। इसी कारण दूर-दूर से गायक कलावंत उनके यहाँ आते थे। उनकी गान प्रियता की ख्याति सुन कर स्वय तानसेन भी उनके यहाँ आया था। "ये बात तानसेन जी ने सुनी तब तानसेन जी आसकरण जी के पास आए सो आसकरण जी के पास विष्णु पद गाये।"[२]

राजा आसकरण यह पद सुनकर मोहित हो गए और स्वय भी वैसा ही पद सीखने का आग्रह करने लगे। गोविद स्वामी को तानसेन का गुरू जान कर आसकरण गोविदस्वामी के सेवक हुए और उनसे सगीत की शिक्षा ग्रहण की।

---

१ २५२ **वैष्णवन की वार्ता**, पृ० १५७

२. **वही**, पृ० १५७

"ये पद सुनके राजा आसकरण बहुत प्रसन्न भये और तानसेन सु कही जो मैंने बहुत पद सुने है परन्तु ऐसौ विष्णुपद कोई दिन सुन्यों नही है सो तुमने ऐसे पद कहाँ ते सीखे है सो हम कुं शिखाओ। जब तानसेन जी बोले श्री गोकुल मे श्री विट्ठलनाथ जी, श्री गुसाई जी है विनके सेवक गोविंदस्वामी है विनने ऐसे सहस्त्रावधी पद किये है ···· तब तानसेन जी······थोड़े दिन पीछे राजा आसकरण जी कुं सग लेके श्री गोकुल गए ·····तब श्री गुसाई जी ने कही न्हाय के मदिर में आओ जब आसकरन जी न्हाय आये जब श्री गुसाई जी ने कृपा करके आसकरन जी कु नाम निवेदन करवायो······तब तानसेन ने कही ये गोविंद स्वामी है जब राजा आसकरन जी नित्य गोविद स्वामी जी के पास जाते रमणरेती मे हुं सग फिरचो करते।"[१]

वार्ता से यह तो ज्ञात होता है कि गोविदस्वामी के सम्पर्क मे आने से पूर्व ही आसकरण जी संगीत के प्रेमी तथा सच्चे पारखी थे। किंतु वार्ता अथवा अन्य किसी भी आधार से इस बात का कुछ पता नही चलता कि आसकरण जी गोविदस्वामी के सेवक होने से पूर्व स्वय भी पद बना कर गाया करते थे अथवा नही। सभव है कि संगीत मे अभिरुचि होने के कारण वे कलावतो को बुला कर गाना सुनते रहे हो और सच्चे कलाकार की परख भी जानते हों किंतु स्वय न गाते रहे हों। तानसेन के सम्पर्क से उन्हे सगीत सीखने की प्रेरणा मिली और तब गोविदस्वामी से उन्होने सगीत की विधिवत शिक्षा ग्रहण की। प्रारभ से ही सगीत मे अभिरुचि होने कारण गोविदस्वामी से संगीत सीख कर वे शीघ्र ही प्रसिद्ध हो गए। वार्ता में स्पष्ट रूप से उल्लेख है कि गोविदस्वामी के सम्पर्क मे आने के उपरान्त आसकरण जी स्वयं भी भजन-कीर्तन करने लगे थे।

संगीत तथा सेवा की विधि सीख कर आसकरन जी अपने देश लौट आए और वहाँ राज्य दीवान को सौंप कर स्वयं भगवान के भजन-कीर्तन मे लीन रहने लगे।[२]

"श्री मदनमोहन जी को स्वरूप राजा आसकरण ने श्री गुसाई जी के मुखते सुन के श्री मदनमोहन जी कुं पधराय के और तानसेन जी कु संग लेके राजा आसकरन अपने देश मे आये और ब्रज भक्तन के भाव से सेवा करने लगे राजकाज सब दिवान कु सौप दीये और श्री मदनमोहन जी की सेवा तथा कीर्तन करन लगे।"[३]

कुछ दिन पर्यन्त आसकरन जी नरवरगढ मे रह कर ही भजन-कीर्तन करते रहे। तत्पश्चात् राज्य-पाट से वैराग्य ले कर वे गोकुल में आ बसे। वार्ता से ज्ञात होता है कि इसके बाद से समय-समय पर आसकरण जी ब्रज के विभिन्न स्थानो परासौली,[४] दानघाटी,[५]

---

१. २५२ **वैष्णवन की वार्ता, पृ० १५७-५६**
२. **वही, पृ० १६६**
३. **वही, पृ० १७२**
४. **वही, पृ० १७३**
५. **वही, पृ० १७२**

गोकुल, श्रीजी द्वार[1], आदि मे जाकर भगवान की लीला का गान करते थे और जैसी-जैसी लीला का अनुभव होता उसी के अनुरूप पद बना कर गाते थे –

"अब मानसी सेवा श्री गुसाई जी की कृपा ते सिद्ध भई जब राज और घर कहा काम को है। ये विचार के भतीजे को राज्य दे दियो और श्री ठाकुर जी वस्त्र-आभूषण सब तथा पात्र श्री गुसाई जी के इहाँ पठाय दिये और आप श्री गोकुल में जाय के रहे। सब लीला के दर्शन साक्षात होवे लगे। जैसे लीला के दर्शन होवै तैसे पद करके गावन लगे।"[2]

गंग ग्वाल

भक्तमाल तथा भक्तमाल की टीकाओ मे गगग्वाल की बहुत अधिक प्रशसा की गई है जिनका वर्णन करते हुए नाभादास जी कहते है –

सखा श्याम मनभावतौ 'गंग ग्वाल' गंभीर मति।
श्यामा जाकी सखी नाम आगम बिधि पायौ।
ग्वाल गाय ब्रज गांव पृथक नीके करि गायौ ।।
कृष्ण केलि सुख सिंधु अघट उर अंतर धरई।
ता रस में नित मगन असद आलापन करई ।।
ब्रसबास आस 'ब्रजनाथ' गुरु भक्त चरण रज अननि गति
सखा श्याम मनभावतौ गंग ग्वाल गंभीर मति ।।[3]

ध्रुवदास ने भी गोविदस्वामी के साथ इनका वर्णन करते हुए कहा है –

गोविंदस्वामी गंग अरु विष्णु विचित्र बनाइ।
पिय प्यारी को जस कह्यौ राग रंग सो गाइ ।।[4]

भक्तमाल की टीकाओ, भक्तिसुधास्वाद,[5] भक्तकल्पद्रुम,[6] भक्तमाल-हरिभक्ति प्रकाशिका[7] के वृत्तात से यह ज्ञात होता है कि ब्रजनाथ जी के शिष्य गंगग्वाल जी श्यामसुदर के सखा-भाव के उपासक थे। कृष्ण भगवान की क्रीड़ा के आनंद-रस मे लीन रहते थे। ब्रज-भूमि से आप को अत्यधिक प्रेम था। भगवत् कीर्तन अर्थात् गन्धर्व-विद्या मे आप बहुत विख्यात

---

१. २५२ वैष्णवन की वार्ता, पृ० १७४
२. वही, पृ० १७४
३. भक्तमाल-भक्तिसुधास्वाद, पृ० ८६५, छप्पय सं० १६२
४. भक्तनामावली, पृ० ३
५. भक्तमाल-भक्तिसुधास्वाद, पृ० ८६५ छं० सं० १६२,
६. भक्तमाल-भक्तकल्पद्रुम, पृ० ३५२
७. भक्तमाल-हरिभक्तिप्रकाशिका, पृ० ६५६

थे। राधाकृष्णदास ने आप को महान कवि माना है। ऊपर लिखे ग्रंथों से इस प्रसंग की पुष्टि होती है कि इनकी गान-कला की ख्याति सुन कर अवनीश ने वृन्दावन मे इन्हें गाना सुनने के लिए बुलाया। एक वल्लभ नामक गुणी गायक भी साथ में आया। दोनों के स्वर भरते ही अतिशय रंग छा गया और सबके नेत्रो से प्रेमाश्रु बहने लगे। मोहित हो कर अवनीश ने इन्हें अपने साथ ले जाने का आग्रह किया किंतु मना करने पर बलात् इन्हें अपने साथ दिल्ली ले गया। पाटम नगर के राजा हरीदास तोमर जी राजपूत को जब यह वृत्तात ज्ञात हुआ तो उन्होंने अवनीश से प्रार्थना कर उन्हे बधन मुक्त कराया। तत्पश्चात् गंग ग्वाल पुन: वृन्दावन में आकर भजन-कीर्तन में लीन रहने लगे।

द्वितीय अध्याय

संगीत और साहित्य

संगीत क्या है ?

संगीत शब्द से भारतीय संगीत मे गायन[1], वादन तथा नर्तन तीन कलाओ का बोध होता है। इन तीनों के सम्मिलित रूप को संगीत कहते हैं अथवा संगीत के ये तीनो अंग माने गए हैं –

'गीतं वाद्यं तथा नृत्यं त्रयं संगीतमुच्यते'।[2]
'गीतं वाद्यं नर्तनं च त्रयं संगीतमुच्यते'।[3]
'गीत वादित्र नृत्यानां त्रयं संगीतमुच्यते'।[4]

अंग्रेजी भाषा मे संगीत शब्द का अनुवाद करने में म्यूजिक शब्द का व्यवहार होता है। किंतु यूरोपीय देशो मे म्यूजिक शब्द प्राय. कंठ-सगीत (Vocal Music) अथवा वाद्य-संगीत (Instrumental Music) के लिए ही व्यवहृत होता है। नृत्य, लास्य, हावभाव तथा ताल (Gesticulation) का अर्थ म्यूजिक शब्द से नही निकलता।

अब प्रश्न उठता है कि जब भारतीय सगीत-कला मे गायन, वादन तथा नर्तन तीनों ही अगों का समावेश है तो उसका नाम सगीत ही क्यों पडा। सगीत मे गायन कला का

---

१ संस्कृत साहित्य में गायन तथा गान शब्द में सूक्ष्म भेद माना जाता है। वहाँ गायन शब्द प्रशंसा के लिए तथा गान शब्द संगीत के अर्थ में प्रयुक्त किया जाता है।

२ संगीत-रत्नाकर, शार्ङ्गदेव, (प्रथम भाग), प्रथम प्रकरणम्, पृ० ६, छं० सं० २१

३. संगीत-दर्पण, पृ० ५, छं० सं० ३

४ संगीत-पारिजात, पृ० ६, छ० सं० २०

संबंध नाभि एवं कंठ से है, वादन का उसकी तन्त्रकारी से और नृत्य का शरीर की मुद्रण-कला से। स्वभावसिद्ध और निरावलम्ब होने के कारण कठ-सगीत को पूर्ण तथा सर्वप्रधान और यंत्र-संगीत तथा नृत्य को वाद्य-यंत्रों की आधीनता से सम्पादित होने के कारण मध्यम माना गया है। अत सगीत मे गाने की क्रिया को सबसे अधिक महत्व दिया जाता है तत्पश्चात् वादन और नृत्य को। गायन की प्रधानता होने के कारण तीनों को सगीत कहा गया है –

'गानस्याऽत्र प्रधानत्वात्तच्छंगीतमितीरितम्।' [१]

श्री भातखडे जी का कथन है –

"संगीत समुदाय वाचक नाम है। इस नाम से तीन कलाओं का बोध होता है। ये कलाएं गीत, वाद्य एव नृत्य है। इन तीन कलाओं मे गीत का प्राधान्य है। अतः केवल संगीत नाम ही चुन लिया गया है।"[२] किंतु जिस प्रकार साहित्य 'सत्यं-शिवं-सुन्दरम्' के सहयोग से निखर उठता है उसी प्रकार संगीत गायन, वादन एवं नृत्य के समन्वय द्वारा।"

संगीत के आधार

नाद–

सगीत का आधार नाद है। 'सब गीत नादात्मक (अर्थात् नाद पर अवलम्बित) हैं। वाद्यनाद उत्पन्नकर्ता होने से प्रशस्त है। नृत्य, गीत तथा वाद्य के आधार से होता है। अतः ये तीनों कलाएं 'नादाधीन' मानी गई है –

गीत नादात्मक वाद्यं नादव्यक्त्या प्रशस्यते।
तद्वयानुगतं नृत्य नादाधीनमतस्त्रयम् ॥१॥[३]

नाभि के ऊपर हृदयस्थान से ब्रह्मरन्ध्र-स्थित प्राणवायु मे एक प्रकार का शब्द होता है उसी को नाद कहते है –

'नाभेरुर्ध्वं हृदिस्थानान्मारुतः प्राणसंज्ञकः।
नदति ब्रह्मरन्ध्रान्ते तेन नादः प्रकीर्तितः ॥'[४]

ब्रह्माण्ड की चराचर वस्तुओं मे नाद व्याप्त है। अतएव इस नाद को नाद-ब्रह्म

---

१. सगीत-पारिजात, पृ० ६, छ० स० २०
२. सगीत-शास्त्र, पं० विष्णु नारायण भातखंडे, (प्रथम भाग), पृ० २
३. सगीत-रत्नाकर, शार्ंगदेव, (प्रथम भाग), द्वितीय प्रकरण, पृ० ११;
संगीत दर्पण, दामोदर, पृ० ८, श्लो० १३
४. संगीत-पारिजात, अहोबल. पृ० ६

ऐसी सज्ञा दी गई है। मूलभूत नाद-ब्रह्म ऊकारवाचक है और इसी नादब्रह्म से संगीत की उत्पत्ति है।

नाद के प्रकार –

नाद दो प्रकार का होता है–(१) अनाहत तथा (२) आहत –

'आहतोऽनाहतश्चेति द्विधानादोनिगद्यते ।'[१]

तथा–

'नादस्तु सद्विधः प्रोक्तः पूर्वानांदस्त्वनाहतः ।

×   ×   ×

आहतस्तु द्वितीयो सौ वाद्येष्वाघातकर्म्मणा ।।[२]

अनाहत नाद –

अनाहत नाद वह होता है जो कान के छेदो में उँगली लगाने पर सुनाई देता है।[३] अनाहत नाद बिना किसी आधार के उत्पन्न होता है। प्राचीन आचार्यो की कही हुई रीति के अनुसार मुनिजन अनाहत नाद की उपासना करते है। यह नाद मुक्तिदायक तो है परन्तु रजक नही है –

तत्राऽनाहतनाद तु मुनयः समुपासते ।
गुरूपदिष्टमार्गेण मुक्तिद न तु रंजकम ।।१६।।[४]

संगीत का प्रधान गुण रंजन प्रदान करना है अत. वह अनाहत नाद से असम्बद्ध है। हठयोगी मोक्ष प्राप्त करने के लिए अनाहत नाद की उपासना करते है।

आहत नाद –

शास्त्रोक्त सगीत मे जिस नाद का विवेचन है वह आहत नाद है। आघात स्पर्श या सघर्ष से अर्थात् दो वस्तुओ की रगड से अथवा टकराने से तथा वाद्ययंत्रो पर आघात करने से जो शब्द निकलता है उसे आहत नाद कहते है। नारद-संहिता मे कहा गया है कि इसी (आहत नाद) से सगीत के स्वरो की उत्पत्ति होती है अत. पृथ्वी पर ऐसे नाद की सदा जय बनी रहे –

---

१. **संगीत-दर्पण, दामोदर, पृ० ६**

२. **संगीत-पारिजात, अहोबल, पृ० ११**

३. **नादस्तु सद्विधः प्रोक्तः पूर्वानादस्त्वनाहतः**
कर्णरन्ध्रे तथा नद्यां निर्झरोऽपि भवेच्चयः ।।
संगीत पारिजात, अहोबल, पृ० ११

४. **संगीत-दर्पण, दामोदर, पृ० ६**

आहतस्तु द्वितीयो सौ वाद्येष्वाघातकर्म्मणा ।
तेन गीतस्वरोत्पत्तिः स नादो जयते भुवि ॥[1]

आहत नाद व्यवहार मे रंजक बन कर भव-भंजक भी बन जाता है –

स नादस्त्वाहतो लोके रंजको भवभंजक. ॥ १७ ॥[2]

नाद का ग्रहण ध्वनि से होता है । काव्यशास्त्रवेत्ताओ ने ध्वनि के चौदह सहस्र भेद किए हैं । किन्तु सगीतोपयोगी नाद का कुछ ही ध्वनियो से सबंध है । सभी पदार्थों के टकराने या संघर्ष होने से उत्पन्न हुई ध्वनि को सगीतपयोगी नाद नही कहा जा सकता । पत्थर पर चोट करने से, रेलगाड़ी की घड़घडाहट से तथा चपला की चमक से जो ध्वनि उत्पन्न होती है वह संगीतोपयोगी नाद नही कहला सकती क्योकि उस ध्वनि मे ठहराव एवं माधुर्य नही है । जिस ध्वनि मे ठहराव एवं मधुरता हो जो श्रवणेन्द्रिय को प्रिय लगे उसे ही संगीतोपयोगी नाद कहा जाता है ।

श्रुति –

'श्रु' धातु जो सुनने के अर्थ मे है उसमे 'क्ति' प्रत्यय लगाने से श्रुति शब्द बनता है –

इदानीं तु प्रवक्ष्यामि श्रुतीनां च विनिश्चयम् ।
श्रु श्रवणे चास्यधातोः क्तिप्रत्ययसमुद्भवः ॥ २६ ॥[3]

श्रुतियों का कारण श्रावणत्व कहा गया है । अर्थात् जो कान से सुनाई दे तथा जिसको श्रवणेन्द्रिय या कान का परदा ग्रहण कर सके या पकड़ सके उसे श्रुति कहते है ।[4]

संगीतदर्पणकार का कथन है कि प्रथमाघात से अनुरणन हुए बिना (अर्थात् बिना प्रतिध्वनित हुए) जो ह्रस्व (टकोर) नाद उत्पन्न होता है उसे श्रुति समझना चाहिये –

स्वरूपमात्रश्रवणान्नादोऽनुरणनं विना ।
श्रुतिरित्युच्यते भेदास्तस्या द्वाविंशतिर्मताः ॥ ५१ ॥[5]

---

१. संगीत-पारिजात, पृ० ११
२. संगीत-दर्पण, पृ० १०
३. बृहद्देशी, मंतग, पृ० ४
४ "श्रुतयः स्युः स्वराभिन्नाः श्रावणत्वेन हेतुना ॥ ३८ ॥
'श्रवणेन्द्रियग्राह्यत्वाद ध्वनिरेव श्रुतिर्भवेत् । (विश्वावसु)"; संगीत पारिजात, अहोबल पृ० १२-१३
५. संगीत-दर्पण, दामोदर, पृ० १७

कल्लिनाथ[1] ने भी कहा है–प्रथम सुनने से जो शब्द ह्रस्व-मात्रिक (सूक्ष्म) सुनाई देता है उसी स्वर को अवयवस्वरूप वाली श्रुति समझना चाहिये –

प्रथमश्रवणाच्छब्दः श्रूयते ह्रस्वमात्रक ।
सा श्रुतिः सम्परिज्ञेया स्वराऽवयवलक्षणा ॥[2]

अभिनवरागमजरी मे श्रुति की परिभाषा निम्नलिखित प्रकार से की गई है –

नित्यं गीतोपयोगित्वमीभज्ञेयत्वमप्युत् ।
लक्ष्ये प्रोक्तं सुपर्याप्तं संगीत श्रुतिलक्षणम् ॥[3]

वह ध्वनि जो गीत मे प्रयोग की जा सके और जो एक दूसरे से अलग तथा स्पष्ट पहचानी जा सके उसे श्रुति कहते है । श्रुति की परिभाषा समझने के लिए तीन बातो का ध्यान रखना अनिवार्य है—(१) आवाज़ सगीतोपयोगी हो , (२) ध्वनि साफ-साफ सुनाई दे और (३) ध्वनि एक दूसरे से अलग तथा स्पष्ट पहचानी जा सके । अतः श्रुति की परिभाषा इस प्रकार होगी––वह सगीतोपयोगी ध्वनि जो कानो को साफ सुनाई दे और जो एक दूसरे से अलग तथा स्पष्ट पहचानी जा सके उसे श्रुति कहते है ।

यदि किसी वीणा पर स्वरो के पर्दो को देखे तो प्रतीत होगा कि वे सटे हुए नही है वरन् विभिन्न दूरी पर है । यदि और पर्दो को हटाकर केवल सात शुद्ध स्वरो को रखे तो देखेगे कि सरे, मप, पध, पध के पर्दो के बीच मे जो जगह खाली है उसमे दो तीन जगह तार पर उंगली रखकर छेड़ने से वहाँ भी सुमधुर ध्वनियाँ होती हैं । इन्ही अंत स्थानो की ध्वनियो को श्रुति कहते है । श्रुतियों को अग्रेजी मे प्राय (Quarter tone) कहते हैं ।

श्रुतियाँ २२ मानी गई है । (१) तीव्रा (२) कुमुद्वती (३) मन्दा (४) छन्दोवती (५) दयावती (६) रंजनी (७) रक्तिका (८) रौद्री (९) क्रोधा (१०) वज्रिका (११) प्रसारिणी (१२) प्रीति (१३) मार्जनी (१४) क्षिति (१५) रक्ता (१६) सन्दीपिनी (१७) आलापिनी (१८) मदन्ती (१९) रोहणी (२०) रम्या (२१) उग्रा और (२२) क्षोभिणी ।[4]

---

१. "१५ वीं शताब्दि के प्रथम चतुर्थाश मे (सन् १४२५ के लगभग) विजयनगर के राजा देवराज के दरबार में लक्ष्मीधर पंडित के पुत्र प्रसिद्ध संगीतज्ञ और विद्वान कल्लिनाथ रहते थे । कल्लिनाथ ने शार्गंदेव के 'संगीतरत्नाकर' पर एक बड़ी टीका लिखी है ।" उत्तर भारतीय संगीत का संक्षिप्त इतिहास, भातखंडे, पृ० १३

२. संगीत-पारिजात, अहोबल, पृ० १४

३. अभिनवरागमंजरी, पं० विष्णुशर्मा विरचित, पृ० ३, छं० २९

४. संगीत-दर्पण, दामोदर, पृ० १७, श्लोक ५३-५६; संगीत पारिजात, अहोबल, पृ० १३-१४

स्वर –

जो नाद श्रुति उत्पन्न होने के पश्चात् तुरन्त निकलता है, जो प्रतिध्वनित रूप प्राप्त करके मधुर तथा रंजन करने वाला होता है, जिसे अन्य किसी नाद की अपेक्षा नही होती तथा जो स्वतः स्वाभाविक रूप से श्रोताओ के मन को आकर्षित कर ले उसे स्वर कहते है –

श्रुत्यनन्तरभावी यः स्निग्धोऽनुरणनात्मकः ।
स्वतोर रंजयति श्रोतृचित्तं स स्वर उच्यते ॥२६॥[1]
श्रुत्यनंतरभावित्वं यस्यानुरणनात्मकः ।
स्निग्धश्च रंजकश्चासो स्वर इत्यभिधीयते ॥५७॥
स्वयं यो राजते नादः स स्वरः परिकीर्तितः ॥५८॥[2]
रंजयन्ति स्वतः स्वान्तं श्रोतृणामिति ते स्वराः ॥६३॥[3]

ध्वनि मे निरंतर भनक या गुनगुनाहट से कोई ध्वनि किसी ऊँचाई पर पहुँच कर वहाँ स्थापित रहे उसे सगीत के स्वर कहते है । स्वरो का परस्पर स्थान निश्चित होता है । वे प्रत्येक अपने-अपने स्थान पर निरंतर बोलते रहते है तथा सुनने मे रजक और मधुर प्रतीत होते है ।

स्वरों की संज्ञा तथा सूक्ष्म नाम –

स्वर सात होते है---(१) षडज् (२) ऋषभ (३) गान्धार (४) मध्यम (५) पचम (६) धैवत (७) निषाद ।[4] इन स्वरों की दूसरी सज्ञा अथवा सक्षिप्त नाम क्रमश: स, रे, ग, म, प, ध, नि है ।[5]

अग्रेजी मे इन्हे Do, Re, Mi, Fa, Sol, La, Se, कहते है और इनके साके-तिक चिन्ह निम्नलिखित प्रकार से है –

स	रे	ग	म	प	ध	नि
C	D	E	F	G	A	B

---

१. संगीत-रत्नाकर, शार्ङ्गदेव, (प्रथम भाग), तृतीय प्रकरण, पृ० ४०
२. संगीत-दर्पण, दामोदर, पृ० १८
३. संगीत-पारिजात, अहोबल, पृ० १८
४. षड्जर्षभौ च गान्धारस्तथा मध्यमपचमौ ।
धैवतश्च निषादोऽयमिति नामभिरीरिताः ॥ संगीत-पारिजात, अहोबल, पृ० १८, छं० सं० ६३-६४
५. तेषां संज्ञाः सरिगमपधनीत्यपरामताः, संगीत रत्नाकर, शार्ङ्गदेव, (प्रथम भाग), तृतीय प्रकरण, पृ० ४०, श्लो० २५
सरी, गमौ, पधौ, निश्चस्वरा इत्यपि संज्ञिता. ॥६६॥ संगीत-पारिजात, पृ० १८

स्वर और श्रुति में अन्तर –

स्वर और श्रुति अलग-अलग नाम अवश्य है किंतु वास्तव मे है दोनो एक ही । स्वर श्रुति की समष्टि है और श्रुति स्वर का अंश है । श्रुतियो से ही स्वर की उत्पति होती है । षड्ज मे ४, ऋषभ में ३, गान्धार मे २, मध्यम मे ४, पचम मे ४, धैवत मे ३, और निषाद मे २ श्रुतियाँ रहती है ।[१] वे सुरीली ध्वनियाँ जिनका अन्तर (Interval) बड़ा और ठहराव अधिक होता है तथा जो एक दूसरे से अलग और स्पष्ट होती है स्वर कहलाती है किंतु जिनका अन्तर सूक्ष्म तथा ठहराव कम होता है वे ही श्रुति कहलाती है । श्रुतियो को तो स्पर्श मात्र ही ठहराते है परन्तु स्वरों का ठहराव अधिक होता है ।

अहोबल पडित के मतानुसार श्रुतियाँ स्वरों से पृथक नही है । स्वर तथा श्रुति में उतना ही भेद है जितना साँप और उसकी कुंडली मे –

श्रुतयः स्युः स्वराभिन्ना श्रावणत्वेन हेतुना ।
अहि कुण्डलावत्तत्र भेदोक्तिः शास्त्रसम्मता ।।३८।।[२]

सगीत-दामोदर मे कहा गया है कि जैसे पक्षियो की गति है ठीक उसी प्रकार स्वर मे श्रुति की गति कहलाती है । श्रुति नाद के बस मे तथा उसके आश्रित कला बताई गई है जो सूक्ष्म रूपेण स्वर मे स्थित है –

गगने पक्षिणां यद्वत्तद्वच्छ्वगता श्रुतिः ।
श्रुतिर्नादवशा प्रोक्ता तथाद्या च कला मता ।।[३]

तथा जिस प्रकार तेल मे चिकनाहट और लकडी मे अग्नि रहती है, आकाश मे वायु बहती है और विद्युत मे प्रकाश रहता है उसी प्रकार स्वर मे श्रुति है –

यथा तैलगता सर्पिर्यथा काष्ठगतोऽनलः ।
श्रुतिः स्वरगता तद्वक्ता च को वा वदिष्यति ।।
व्योम्नि वायुर्यथा वाति प्रकाशश्चैव विद्युति ।
ज्ञायतेऽत्रोपदेशेन तथा स्वरगता श्रुतिः ।।[४]

कुछ लोग श्रुति को अनुरणन विहीन ध्वनि भी मानते है । अर्थात् जब कोई नाद

---

१. चतुः श्रुति समायुक्ताः स्वराः स्युः स-म-पामिधाः ।।६६।।
गनी श्रुतिद्वायोपेतौ रि-धौ त्रिश्रुति कौ मतौ ।।६७।। संगीत-पारिजात, अहोबल, पृ० १८-१९

२. वही, पृ० १२

३. संगीत-पारिजात, अहोबल, पृ० १७

४. वही, पृ० १७

उत्पन्न होता है तो उसकी आँस निकलने से पूर्व उसका जो रूप ध्वनित होता है वही श्रुति है और आँस अथवा अनुरणन युक्त जो नाद उत्पन्न होता है उसे स्वर की संज्ञा दी गयी है।

स्वरों के भेद –

स्वर के दो भेद होते है– (१) शुद्ध और (२) विकृत। शुद्ध स्वर ७ होते है और विकृत २२ –

शुद्धत्वविकृतत्वाभ्यांस्वराद्वेधाः प्रकीर्तिताः ।। ६४ ।।
शुद्धाः सप्त विकाराख्याद्वयधिका विंशतिर्मताः ।। ६५ ।।[1]

शुद्ध स्वर– २२ श्रुतियों मे से १, ५, १०, १४, १८ और २१ पर जो स्वर होते है उन्हे शुद्ध स्वर कहते हैं। यथा –

स, रे, ग, म, प, ध, नि

किंतु शुद्ध मध्यम को कोमल मध्यम कहते हैं।

विकृत स्वर–विकृत स्वर दो प्रकार के होते है (१) कोमल और (२) तीव्र।

कोमल स्वर– शुद्ध स्वर से नीचे उतरने पर वह कोमल स्वर हो जाता है।

यथा– रे, ग, ध, नि

तीव्र स्वर– शुद्ध स्वर से ऊपर चढने को तीव्र कहते है। **यथा – मं**

स्वर प्रकार –

स्वर चार प्रकार के माने जाते है –वादी, संवादी, विवादी और अनुवादी –

चतुर्विधा स्वरावादी संवादी च विवाद्यपि।
अनुवादी च वादी तु प्रयोगे बहुलस्वरः ।। ४९ ।।[2]
वाद्यादिभेभिन्नाश्चतुर्विधास्ते स्वराः कथिताः ।। ६८ ।।[3]

वादी स्वर– राग मे जो स्वर अन्य-अन्य स्वरो की अपेक्षा अधिक महत्व का हो, राग के स्पष्टीकरण तथा उसकी सुन्दरता की वृद्धि करने में जिस स्वर का अत्यधिक प्रयोग हो और जिससे राग का स्वरूप प्रकट हो उसे वादी स्वर कहते है। राग मे वादी स्वर को राजा की उपाधि दी जाती है।[4] इसी स्वर से राग के नाम तथा गाने का समय निश्चित किया जाता है।

---

१. वही, पृ० १८
२. संगीत-रत्नकार, शार्ङ्गदेव, (प्रथम भाग), तृतीय प्रकरण, पृ० ४३
३. संगीत-दर्पण, दामोदर, पृ० २६
४. रागोत्पादनशक्तेर्वदनं तद्योगतोवादी ।। ६८ ।।

संवादी स्वर –राग मे जिस स्वर का प्रयोग वादी स्वर से न्यून तथा अन्य स्वरो की अपेक्षा अधिक हो उसे संवादी स्वर कहते है। इसको राग का प्रधान मत्री कहा जाता है।[1]

विवादी स्वर–जिस स्वर के प्रयोग से राग के रूप में अंतर पडता है अथवा जिससे हानि होने की सभावना होती है उसे विवादी स्वर कहते है। विवादी स्वर का अधिक प्रयोग राग की रंजकता, एकरूपता तथा उसके रस को भग करता है अत. इसे बैरी के सदृश्य कहते है। साधारणत ऐसे स्वर को वर्ज स्वर मानते है। कभी कभी रंजकता बढाने के लिए विवादी स्वर का तनिक सा पुट दे दिया जाता है।

अनुवादी स्वर–शेष स्वरों को अनुवादी स्वर कहते हैं। ये अनुयायियों के सदृश्य है जिनको प्रजा की उपाधि दी जाती है।

'भृत्य तुल्या अनुवादी'[2]

अचल स्वर –जो स्वर अपने निश्चित स्थान को नही त्यागते एक ही स्थल पर स्थिर रहते है और कभी विकृत नही होने वे अचल स्वर कहे जाते है। सगीत शास्त्र मे स और प अचल स्वर कंहे गये है।

ग्राम –

स्वरो के समुदाय को ग्राम कहते है। ग्राम मूर्च्छना के आधारभूत होते है –

ग्रामः स्वरसमूह. स्यान्मूर्च्छनादेः समाश्रयः ॥ १ ॥[3]
ग्रामः स्वरसमूह स्यात्मूर्च्छनादेः समाश्रयः ॥ ७५ ॥[4]
अथग्रामास्त्रयः प्रोक्ताः स्वरसन्दोहरूपिणः ॥ ९८ ॥
मूर्च्छनाधारभूतास्ते षड्जग्रामस्त्रिषूत्तमः ॥ ९८ ॥[5]

ग्राम तीन होते है – षड्ज, मध्यम तथा गांधार –

षड्जमध्यमगांधारसंज्ञाभिस्ते समन्विता ॥ ८० ॥[6]

बहुलस्वरः प्रयोगे भवातीहि राजा च सर्वेषाम् ॥ ६९ । संगीत-दर्पण, दामोदर, पृ० २८;
प्रयोगो बहुधा यस्य वादिनं तं स्वरं जगु ॥ ७९ ॥
राजत्वमपितस्येति मनुयः संगिरन्तिहि ॥ ८० ॥ संगीत-पारिजात, अहोबल, पृ० २१

१. तस्यामात्यस्तु संवादीवादिनो राजसंज्ञिनः ॥ ८३ ॥ संगीत पारिजात, अहोबल, पृ० २४
२. वही, पृ० २४, श्लो० ४८
३. संगीत-रत्नाकर, शार्ङ्गदेव, (प्रथम भाग), चतुर्थप्रकरण, पृ० ४५
४. सगीत दर्पण, दामोदर पृ० २६
५. संगीत-पारिजात, अहोबल, पृ० २८
६. वही, पृ० २८

गाधार ग्राम देवलोक में है ।[१] इस लोक मे दो ग्राम है—पहला षडज तथा दूसरा मध्यम ।[२]

मूर्च्छना –

सात स्वरों के क्रमान्वित आरोहण-अवरोहण को मूर्च्छना कहते हैं । मूर्च्छना ग्राम के आश्रित होती है । ग्राम को नीचे से ऊपर और ऊपर से नीचे तक बजाना ही मूर्च्छना कहलाता है ।

दर्पणकार का कथन है कि सात स्वरो का क्रम से आरोह तथा अवरोह करना मूर्च्छना कहलाता है; तीन ग्राम होते है और उनमे से प्रत्येक मे सात-सात मूर्च्छनाएं होती है –

क्रमात्स्वराणां सप्तानामारोहेश्चावरोहणम् ।
मूर्च्छनेत्युच्यते ग्रामत्रये ताः सप्तसप्त च ।। ९२ ।।[३]

अहोबल पण्डित मूर्च्छना का लक्षण निर्धारित करते हुए कहते हैं –

'जब स्वरो का अवरोहण (षड्ज से निषाद तक चढना) और अवरोहण (उसी भाँति ऊपर से नीचे उतरना) होता है तब लोक में उसे पंडितजन मूर्च्छना कहते है और वह ग्राम पर आश्रित होती है –

आरोहश्चावरोहश्च स्वराणां जायते यदा ।
तां मूर्च्छनां तदा लोके प्राहुर्ग्रामाश्रयं बुधाः ।। १०३ ।।[४]

तान –

रागो के स्वल्प स्वरूप को तानने, विस्तृत करने तथा फैलाने को तान कहते है । तान दो प्रकार की होती है—(१) शुद्ध तान और (२) कूटतान ।

शुद्ध तान –

जब शुद्ध मूर्च्छनाओं को षाडव (षट्स्वरोपेत) एवं औडव (पचस्वरोपेत) किया जाता है तब उन्हे शुद्ध तान कहते है –

---

१. संगीत-पारिजात, अहोबल, पृ० २९ तथा संगीत-दर्पण, दामोदर, पृ० ३०, श्लोक ८०

२ तौ द्वौ धरातले तत्र स्यात्षड्ज ग्राम आदिमः ।। १ ।।
द्वितीयो मध्यमग्रामस्तयोर्लक्षणमुच्यते ।। २ ।।
संगीत-रत्नाकर, शार्ङ्गदेव, चतुर्थ प्रकरण, पृ० ४५

३. संगीत-दर्पण, दामोदर, पृ० ३३

४. संगीत-पारिजात, अहोबल, पृ० ३३

यदा तु मूर्च्छनाः शुद्धाः षाडवौडाविती कृताः ।
तदा तु शुद्धतानाः स्युर्मूर्च्छनाश्चात्र षड्जगाः ।। १०६ ।।[1]

शुद्ध तानो को सरल तान भी कहते है । इनमे स्वरो का आरोह-अवरोह क्रम से नियमित होता है तथा उनका क्रम नही टूटता ।

कूटतान –

संपूर्ण तथा असंपूर्ण मूर्च्छनाओ के स्वर-क्रमो का भग करके जब उनका उच्चारण किया जाता है तब कूटतान की उत्पत्ति होती है –

असंपूर्णाश्च संपूर्णा व्युत्क्रमोच्चारित स्वराः
मूर्च्छनाः कूटतानाः स्युरिति शास्त्रविनिर्णयः ।। ११२ ।।[2]

कूटतान मे स्वरों के क्रम का कोई विशेष नियम नही होता । पूर्ण मूर्च्छना से उत्पन्न होने वाले को पूर्णकूटतान और असम्पूर्ण मूर्च्छना से निकलनेवाले को असम्पूर्ण कूट तान कहते हैं ।

सप्तक –

सात स्वरो के क्रमिक समूह (स, रे, ग, म, प, ध, नि) को भारतीय सगीत मे सप्तक कहते है । यूरोपीय सगीत मे आठ स्वरो 'स–स', 'म–म' या 'प–प' आदि का समूह लेते है और उसको अष्टक (Octave) कहते है ।

प्रत्येक सप्तक के दो भाग होते है । 'सा' से 'प' तक को पूर्वार्द्ध और 'म' से 'तार सा' तक को उत्तरार्द्ध कहते है । भारतीय सगीत मे सप्तक के तीन प्रकार माने जाते है –

(१) **मन्द्र सप्तक** –सबसे नीचे वाले को मद्र सप्तक कहते है । इसका उच्चारण हृदय से होता है । उदाहरणस्वरूप –

स़ रे़ रे़ ग़ ग़ म़ म़ प़ ध़ ध़ नि़ नि़

(२) **मध्य सप्तक** –मन्द्र सप्तक से ऊपर वाले को मध्य सप्तक कहते है । इसका सबध कठ से होता है । यथा –

स रे रे ग ग म म प ध ध नि नि

---

1. संगीत-दर्पण, दामोदर, पृ० ३९
2. वही, पृ० ४०

(३) **तार सप्तक**—मध्य सप्तक से ऊपर वाले को तार सप्तक कहते हैं। यह मूर्च्छना से सहायता लेता है। यथा—

सं रें रे गं ग मं मं प धं ध निं नि

गायन में मध्य सप्तक सबसे अधिक काम में आता है क्योंकि उसमें आवाज बहुत अधिक नहीं खीचनी पड़ती।

यूरोपीय वाद्य पियानो में सात सप्तक रखे जाते हैं जिनको भारतीय भाषा में मंद्रतम्, मद्रतर, मद्र, मध्य, तार, तारतर, तारतम् कहेंगे। इटालियन में मद्र, मध्य और तार स्थान के स्वरों को Voce-de-petto, Falsetto और Voce-de-testo कहते हैं।

वर्ण –

स्वरों को यथानियम उच्चारण अथवा विस्तार करने तथा गान-क्रिया को वर्ण कहते है। गायन में आवाज़ को स्वरों के कारण जो चाल मिलती है उसको गानक्रिया अथवा वर्ण कहते हैं। यह गान-क्रिया अथवा वर्ण चार प्रकार के हैं—

(१) स्थायी (२) आरोही (३) अवरोही (४) सचारी—

गान क्रियोच्यतेवर्णः स चतुर्द्धा निरूपितः।
स्थाय्यारोह्यवरोही, च संचारीत्यथलक्षणम् ॥[१]

स्थायी वर्ण[२]—एक ही स्वर की पुनरुक्ति को स्थायी वर्ण कहते हैं। यथा—'सासा', 'रेरेरे', 'गगगग' इत्यादि।

आरोही वर्ण—[३] निम्न स्वर से किसी उच्च स्वर पर जाने को आरोही कहते हैं यथा—स रे ग म आदि।

अवरोही वर्ण[३]—आरोही वर्ण की विपरीत गति अर्थात् ऊपर से नीचे क्रमानुसार आने को अवरोही वर्ण कहते हैं। यथा—नि ध प म, प म ग आदि।

संचारी वर्ण[३]—स्थाई, आरोही तथा अवरोही वर्णो के मिश्रण को सचारी वर्ण कहते है। यथा—सरेगम, रेगम, गरेस, सासा गरेम पमगरेरे आदि।

---

१. संगीत-दर्पण, दामोदर, पृ० ६७, श्लो० सं० १६०; संगीत-पारिजात, अहोबल, पृ० ५६
२. स्थित्वा-स्थित्वा प्रयोगः स्यादेकैकस्य स्वरस्य यः।
स्थायी वर्णः स विज्ञेयः परावन्वर्थ नाम कौ।
एतत्संमिश्रणावर्णः संचारी परिकीर्तितः ॥ १६१ ॥ संगीत-दर्पण, दामोदर, पृ० ६७
३. संगीत-दर्पण, दामोदर, पृ० ६७

अलंकार –

नियमित वर्ण समुदाय को अलकार कहते है। अलंकार मे क्रमानुसार स्वरों के सगुम्फन से राग की शोभा में वृद्धि की जाती है –

विशिष्टवर्ण संदर्भमलंकारं प्रचक्षते ॥ १६४ ॥[1]
क्रमेण स्वरसन्दर्भमलंकारं प्रचक्षते ॥ २२१ ॥[2]

पकड़ –

जिस स्वर समुदाय से किसी राग का बोध होता है उसे पकड कहते है। उदाहरण-स्वरूप –

राग यमन में– ग, रेसा, निरेग, रेसा।

राग आसावरी में– रे, म, प, निध, प।

जाति –

स्वरो के नाम वाली सात शुद्ध जातियाँ होती है। जिनके नाम है–(१) षड्जा (२) ऋषभी (३) गान्धारी (४) मध्यमा (५) पचमी (६) धैवती और (७) नैषादी।[3]

मेल या ठाट –

किसी भी प्रकार के स्वरो का एक समूह मेल (ठाट) कहलाता है। मेल राग को प्रकट करने की शक्ति रखता है –

मेल स्वरसमूहः स्याद्रागव्यञ्जनशक्तिमान।३२९।[4]

राग –

राग शब्द की उत्पत्ति रञ्ज धातु से हुई है जिसका अर्थ है प्रसन्न करना। मतंग मुनि ने अपने संगीत ग्रथ 'बृहद्देशी' मे राग का लक्षण इस प्रकार दिया है –

---

१. वही, पृ० ६९
२. संगीत-पारिजात, अहोबल, पृ० ५७
३. शुद्धाः स्युजतियः सप्तताः षड्जादिस्वराभिधाः।
आद्या षड्जा तु विज्ञेया द्वितीया चषिभी स्मृता ॥ २९७ ॥
गान्धारी तु तृतीया सा चतुर्थी मध्यमा परा।
पंचमी पंचमी ज्ञेयो षष्ठी तु धैवती पुनः ॥ २९८ ॥
सप्तमी स्यात्तु नैषादीतासां लक्ष्म च कथ्यते ॥ २९९ ॥ संगीत-पारिजात, अहोबल, पृ० ८५
४. संगीत पारिजात, अहोबल, पृ० ८९

स्ववर्णं विशेषेण ध्वनिभेदेन वा पुनः ।
रंज्यते येन यः कश्चित् स रागः संमतः सताम् ।।[1]

अर्थात–वह ध्वनि जो स्वर और वर्ण द्वारा शोभित हो और जिसमे रजकता हो उसे राग कहते है ।

सगीत-रत्नाकर मे राग की परिभाषा इस प्रकार की गई है –

योऽसौ ध्वनिविशेषस्तु स्वरवर्णविभूषितः ।
रंजको जनचित्तानां स रागः कथितो बुधैः ।।[2]

अर्थात्– ध्वनि की वह विशिष्ट रचना जिसे स्वर तथा वर्ण द्वारा सौदर्य प्राप्त हुआ हो और जो सुनने वालो के चित्त को प्रसन्न करे उसे राग कहते है ।

सगीत-पारिजात मे कहा गया है –

रंजकः स्वरसन्दर्भो राग इत्यभिधीयते ।।३३९।।[3]

अर्थात्– स्वरो का एक रंजक-संदर्भ (सुसंगठित समूह) राग कहलाता है ।

राधागोविंद-संगीत-सार ग्रंथ के सातवे रागाध्याय मे राग का लक्षण इस प्रकार प्रस्तुत किया गया है –

"तहा प्रथम राग को लछन लिख्यते । जो धुनि वीणानि ते अथवा कंठतै उत्पन्न होय और सातौ स्वर वै जुक्त होय अरु स्थायी आदि सातों स्वर के च्यारो वर्ण अलंकार जामे युक्त होय । या रीति सौ श्रोतान को चित्त को अनुरंजन करे सो राग जानिये ।

× × ×

अथ मतंग मुनि के मत सो राग को लछन कहत है । जो स्वर ध्वनिनियुक्त अपने भेदन सो मन को अनुरंजन करे ताको राग कहत है ।

× × ×

ऐसोई सोमनाथ मुनि सकल कला प्रवीण है सो राग लछन कहत है । इहा प्रसिद्ध स्वर ताल सो मिल्यो पुनि होय सो राग जानिये ।''''''या राग को सुनि के कोई प्रसन्न होत है अरु कोई ऐसे कहत है कि ऐ राग हमको रुचत नाही । याते अनुरजन तो आप अपनी

---

१. **बृहद्देशी, मतंग, पृ० ८१, छं० सं० २८०**
२. **संगीत-रत्नाकर, (भाग २), पृ० २**
३. **संगीत-पारिजात, अहोबल, पृ० ६१**

इच्छा सो होय है। यासो राग को स्वर तालयुक्त धुनि है। अपनी रुचि सो अनुरंजन है।"[१] सगीत-दर्पण के रचयिता भर्त्त बिहारी लाल ने राग का वर्णन करते हुए कहा है—"राग कहै जाके गान करे सै मन कौ अत्यन्त प्रसन्नता होवै और दुष्मन को सुननै सौ हट जावै सो राग।"[२]

श्री सोरीन्द्र मोहन टैगोर ने राग की परिभाषा बतलाते हुए कहा है—"जो ध्वनि विशेष स्वरवर्ण विभूषित होकर बराबर लय मे गमक, मूर्च्छनादि जोग से वादी, विवादी सम्बादी और अनुवादी के हिमाब से कण्ठ अथवा यत्र में पयदा होता, उसको राग कहते है। राग और रागिनी इन दोनो को अकसर राग कहते है।"[३]

राग उस गाने या बजाने को कहते है जो अपने माधुर्य से प्राणिमात्र के हृदय को आकर्पित कर ले चाहे वह कण्ठ से गाया जाय या किसी वाद्ययत्र पर बजाया जाय। कितु सौदर्य और आकर्पणरहित गायन अथवा वादन को राग नही कह सकते। स्वरों के कुछ मेल को जो माधुर्य उत्पन्न कर सके राग कहते है। राग की परिभाषा भलीभाँति हृदयगम करने के लिए तीन विशेपताओ का ध्यान रखना चाहिए –

१. ध्वनि अर्थात् आवाज़ की विशिष्ट रचना,
२. स्वर और वर्ण (गायन क्रिया) का होना तथा
३. रंजकता का होना।

अत राग की परिभाषा इस प्रकार होगी –

"ध्वनि अर्थात् आवाज़ की वह विशिष्ट रचना जिसे स्वर तथा वर्ण (गायन क्रिया) द्वारा सौदर्य प्राप्त हुआ हो और जो रचना सुनने वालो के चित्त को प्रसन्न करे उसे राग कहते है।"[४]

संगीत की व्यापकता

किसी ने एक रमणी से कहा—'God's rarest blessing is after all a good woman' (ईश्वर का सबसे बडा आशीर्वाद है सुशीला स्त्री)। उस स्त्री ने तत्काल उत्तर दिया—'Rather than that is good music' (उससे भी अधिक सुन्दर संगीत)।

---

१. राजस्थान में रचित हिंदी का सबसे बड़ा संगीत ग्रंथ-लेख, अगरचन्द नाहटा, संगीत, फरवरी–५३, पृ० १८२
२ संगीत-दर्पण, भर्त्त बिहारीलाल, हिंदी संग्रहालय, हिंदी-साहित्य-सम्मेलन में सुरक्षित हस्तलिखित प्रति
३. गीतावली, सोरीन्द्र मोहन टैगोर, पृ० १०
४. संगीत-कौमुदी, (प्रथम भाग), विक्रमादित्य सिंह निगम, पृ० ४२

अखिल विश्व ही संगीतमय है । संगीत का प्राण-बीज नाद है । यह उस अखिल ब्रह्माण्ड के प्रत्येक कण मे जिससे इसका निर्माण हुआ है उसी प्रकार व्याप्त है जिस प्रकार अग्नि में उष्णता निहित है । वाक्यप्रदीप के प्रणेता भर्तृहरि ने सृष्टि को नाद का विवर्त माना है ।[१] तांत्रिको का कथन है कि नाद से परे सृष्टि का निर्माण ही असंभव है । समस्त विश्व-ब्रह्माण्ड नाद और बिन्दु (Vibration and rotation) का परिणाम है । इस नाद मे ताल युक्त गति (Rhythmic movement) भी है । इस दृष्टि से देखने पर सगीत की व्यापकता का महत्व अनायास ही प्रकट हो जाता है ।

विश्व की उत्पत्ति के विषय में इस प्रकार का सिद्धांत केवल तांत्रिक मत सम्मत ही नहीं है वरन् भारतीय षट् दर्शनों में भी विविध स्थलों पर विश्वसृष्टि का विवेचन किया गया है और वह भी नामभेद को छोडकर प्राय कुछ ऐसे ही सिद्धातों को स्वीकार करता है । वैशेषिक दर्शन इस संबध मे विशेष रूप से उल्लेखनीय है जिसमें माना गया है कि पंचतत्वों का अग्नितत्व जो व्यक्त शक्ति का प्रादुर्भूत रूप है वही आदिनाद का मूल है और वही सृष्टि का भी मूल है ।

संगीत की इसी व्यापकता को लक्ष्य कर पं० ओंकारनाथ ठाकुर ने कहा है—"संगीत पृथ्वी का विषय नही है । शब्द आकाश का गुण है । जितना आकाश विशाल है नाद (संगीत) भी उतना ही विश्वव्यापी है । नाद की लहरें ही अमरीका से भी फैलती हुई हमारे कानों तक जाती है । भगवान कृष्ण के आदेश और उपदेश आज भी अनंत आकाश में गूँज रहे है ।"[२]

संगीत सृष्टि का सृजन-कर्ता है और प्रलय के उपरान्त सृष्टि के विनष्ट हो जाने पर संगीत का अस्तित्व रहता है । सन् १९५४ के अन्तर्राष्ट्रीय संगीत पुरस्कार मे सर्वश्रेष्ठ घोषित की जानेवाली कुमारी ह्वील्स योम का विश्वास है कि "संगीत अनादि है, इसका जन्म स्वर्ग के चारु प्रांगण मे हुआ है । इसीलिए इसमे स्वर्गीय तत्त्व है । जब सृष्टि की प्रलय होती है उस वक्त भी सगीत की मधुर ध्वनि समाप्त नही होती । संगीत के विशाल गर्भ से ही पुन नवीन सृष्टि का सृजन होता है ।"[३] मिल्टन ने "पैराडाइज लास्ट" मे सगीत से विश्व-सृजन की अनुभूति की है । स्टीवेंसन अपने "पेनसपाइप" नामक लेख मे सगीत से ससार की स्थिति स्वीकार करते है । ड्राइजन ने सेंट असीलिया मे सृजन और लय दोनो का संगीत द्वारा होना बताया है ।

न केवल चेतन सृष्टि ही प्रत्युत जड सृष्टि भी संगीतमय है । जड-जंगम जगत में जहाँ-जहाँ दृष्टि डालिए संगीत के सप्त स्वरों का समा-सा बँधा दिखाई देता है । कलियों

---

१. विक्रमस्मृति ग्रंथ, भारतीय संगीत का विकास, ठाकुर जयदेव सिंह, पृ० ७७७

२. संगीत, मार्च १९५३, पृ० २५६

३ संगीत, फरवरी १९५५, 'संगीत की स्वरलहरियों पर मुर्दे भी बोल उठते है', उमेश जोशी, पृ० ३०

की चिटकान, मलयानिल की सुकुमार गति, सरिताओं की कलकल ध्वनि, वायु के झोंको से आदोलित वृक्षावली के पत्तो की खडखडाहट, चचल समीर की सनसनाहट, अमावस्या की गहन निशा, समुद्र-गर्जन तथा विशाल आकाश के तारो की झिलमिलाहट मे दिव्य संगीत का अनुभव कर किसे आनद प्राप्त नही होता। "प्रकृति जब तरंग मे आती है तब वह गान करती है। उसके गीतो मे हृदय का इतिहास इस प्रकार व्याप्त रहता है जैसे प्रेम मे आकर्षण, श्रद्धा मे विश्वास और करुणा मे कोमलता।......प्रकृति सगीतमय है। ग्रह-गण एक नियत कक्ष मे फिरकर उस सगीत का कोई स्वर सिद्ध कर रहे है। झरनो का अविराम नाद पत्तो की मर्मर ध्वनि, चचल जल का कलकल, मेघ का गरजना, पानी का छमाछम बरसना, आँधी का हाहाकार, कलियो का चिटकना, विक्षुब्ध समुद्र का महारव, मनुष्य की भिन्न-भिन्न भाषाये और विचित्र उच्चारण, खग, पशु, कीट-पतग आदि की बोलियाँ ये सब प्रकृति के उस सगीत के सहायक मन्द्र और तार स्वर तथा लय है, वज्रपात थाप है और नदियो का प्रवाह मूर्च्छना है।"[1]

पशु-पक्षी जब आनंदविभोर हो जाते है तब उनका स्वर सगीतमय हो जाता है। भौरो की गुजार, बुलबुल की श्रुति-मधुर चहचहाहट, पक्षियो के साध्यगीत, कोयल की मधुर पचम तान और मोर की मादक गति में कितना सगीत निहित है। नारद-सहिता मे कहा गया है कि – 'चिडियाँ, भौरे, पतगे, हरिण आदि सभी जीव गाते है अत. संगीत सर्व दिशाओं मे व्याप्त है।'[2] सगीत-दर्पणकार के मतानुसार मयूर, चातक, बकरा, क्रौच, कोकिल, मेढक और हाथी ये क्रम से षड्जादिक सप्त स्वरो का उच्चारण करते है। अर्थात् मोर षड्ज का, चातक ऋषभ का, बकरा गांधार का, क्रौच मध्यम का, कोकिला पचम का, मेढक धैवत का और हाथी निषाद स्वर का उच्चारण करते है।[3]

पशु-पक्षियो मे ही नही प्रत्युत मानव समाज पर दृष्टिपात करे तो विदित हो जायगा कि प्रकृति की सुरम्य गोद मे क्रीड़ा करते हुए अरण्यवासियो से लेकर सुसंस्कृति तथा सभ्यता की गोद मे पले मानवो तक मे सगीत का अस्तित्व मिलता है। "मानव जीवन के तो प्रत्येक

---

१. कविता-कौमुदी, (तीसरा भाग), ग्रामगीत, रामनरेश त्रिपाठी, पृ० ६९

२. खगाः भृंगाः पतंगाश्च कुरंगाद्योऽपिजन्तवः
सर्व एव प्रगीयन्ते गीतव्याप्तिर्दिगन्तरे ॥ संगीत-पारिजात, अहोबल, पृ० २

३. मयूरश्चातकश्छागः क्रौंचकोकिलदर्दराः ।
गजश्च सप्त षड्जादीन् स्वरानुच्चारयत्यमी ॥
षड्ज वदति मयूरः पुनः स्वरमृषमं चातको ब्रूते ।
गांधाराख्यं छागो निगदति च मध्यम क्रौंचः ॥
गदति पंचममचितवाक् पिको रटति धैवतमुन्मददर्दर.
श्रृणिसमाहतमस्तककुन्जरो गदतिनासिकया स्वरसतिमम् ॥
संगीत-दर्पण, दामोदर पंडित, पृ० ७०, श्लो० सं० १६९-७१

क्षण मे सगीत भरा पडा है। शिशु के रोदन में स्वरो का चढाव-उतार है। उसके हावभाव मे नृत्य की असख्य मुद्राये भरी पड़ी है। लोरियो के स्वरो मे शिशु को सुलाने की शक्ति है। बालपन मे खेलकूद के गीत, कवायद के गीत, राष्ट्रीय के गान और इसी श्रेणी के अन्य अनेक क्रियाशील गीतो का महत्व रहता है। युवावस्था मे सूक्ष्म भावों की अभिव्यक्ति के लिए सगीत के बराबर किसी वस्तु में भी शक्ति नही है। थके हुए किसानों व मजदूरो को सगीत से ही सान्त्वना और नवोत्साह प्राप्त होता है। भारी बोझ उठाने या ढोने मे लय और स्वर के प्रभावशाली प्रयोग कितनी सहायता पहुँचाते है। लोकगीतो ने तो लोकजीवन का निर्माण किया है। गॉव वालो का तो भोजन और प्राण ही सगीत है। नागरिक जीवन मे सगीत के शास्त्रीय रूप की साधना भी होती है। मनोरजन का विषय तो वह है ही साथ ही कितने ही प्राणी उसके द्वारा जीविकोपार्जन भी कर रहे है।''[१] सगीत मानव-जीवन के रग-रग मे इतना व्याप्त है कि जब प्राणी हर्षातिरेक से प्रफुल्लित हो जाते है तब तो उनकी वाणी मे सगीत मुखरित हो ही जाता है वरन् करुणा के आवेश मे अपने प्राणप्रिय पति तथा अपने आत्मज के वियोग मे भी स्त्रियाँ सगीतमय विलाप करती है। नतमस्तक दीनों की करुण आह मे, वीरों के सिहनाद तथा रणघोष मे सगीत निहित है। यही नही रजनी के नीरव अंधकार मे नागरिकों की जनसम्पति की रक्षा करने वाले प्रहरी जब यह कहते है— 'सोने वाले जागते रहो' तब उनके इन शब्दों मे भी सगीत की ध्वनि का स्पष्ट अनुभव होता है।

जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त हिन्दुओं का समस्त सामाजिक जीवन संगीतमय है। भारतीय जीवन के प्रत्येक मंगलकार्य से सगीत की लडियाँ गुँथी हुई है। नवोदित शिशु के रोने की प्रथम ध्वनि के साथ ही ढोल-मजीरे की ताल पर उठते हुए सगीत के सामूहिक स्वर सुनाई देने लगते है और ऑगन के बाहर से शहनाई की मगल ध्वनि गुजरित होने लगती है। माँ की लोरियो की गुनगुन सम्पूर्ण घर मे व्याप्त होजाती है। जीवन के विकास के साथ साथ सगीत की झकार भी आगे बढती जाती है। नामकरण, अन्नप्राशन, मुडन, यज्ञोपवीत, पाणिग्रहण आदि सस्कारो तथा उपसस्कारो के मध्य सगीत के स्वर गूँजते रहते है।

मागलिक पर्वो तथा उत्सवो में मनोरंजन के लिए तो सगीत प्रमुख है ही, प्रत्येक परिश्रम के काम के साथ भी गीत लगा हुआ है। राही पथिक सगीत के स्वरो मे लीन हो कर अपनी थकान भूल जाते है। दुलहिन को पिया के देश पहुँचाने के लिए पालकी ले जाते हुए कहार गीत गा-गाकर राह काटते है, चरवाहा अपनी गौओं को चराते हुए सुनसान जंगल मे अपने गीतो से पेड-पत्तो तक को जगाता रहता है।

मानव ही क्यो स्वय जो मंगलमय रूप मे पूजित है, ऐसे मनुष्य के देवी-देवता भी संगीत-रस-सृष्टा, संगीत-रस-परिपोषक, संगीत-रस-पिपासु तथा सगीत-प्रेमी है। देवर्षि की

---

१. संगीत, जनवरी १९५५, संगीत और जीवन, श्री महेश नारायण सक्सेना, पृ० २४

वीणा की झंकार और देव-महिमा-संकीर्तन देवताओ के मनोरंजन का एक अपरिहार्य अग है। भिव जी का डमरू ताडव-नृत्य की आत्मा है, देवी सरस्वती अपनी मधुर वीणा के साथ सुशोभित हैं। ब्रजेश्वर श्रीकृष्ण की भुवन-मोहिनी मुरली तो सुविख्यात है ही। यह अकारण ही नही है। इसका यही तात्पर्य है कि मानवीय शिक्षा की कसौटी एकमात्र पुस्तकीय ज्ञान ही नही है। वरन् यह भी अनिवार्य है कि उसकी मानसिक वृत्तियो का ऐसा परिमार्जन हो गया हो कि उसे बेराग की कोई भी बात अच्छी न लगे, उसकी हृदयतत्री के तार सर्वदा ही मधुर राग से रजित रहे।

संगीत की महत्ता

सगीत की महत्ता किसी से छिपी हुई नही है। 'सगीत 'कं न मोहयेत्' सगीत किस को मोहित नही करता। अन्तर की सत्य भावना तथा अनुराग सहित यथार्थ स्वरूप मे गायन अथवा वादन द्वारा प्रस्तुत किया हुआ संगीत जड और चेतन दोनो पर समान रूप से प्रभाव डाले विना नही रह सकता। भागवत् मे कहा गया है कि श्रीकृष्ण के मुरली-वादन से यमुना का चंचल जल भी शात और स्थिर हो जाता था –

नद्यस्तदा तदुपधार्य मुकुन्दगीतमावर्त लक्षित मनोभवमग्न वेगाः।
आलिगनस्थगितमूर्मि भुजैर्मुरारेर्गृहणन्ति पादयुगलं कमलोपहाराः॥[1]

(भगवान श्रीकृष्ण की वशी का स्वर सुनकर अचेतन नदियाँ भँवर के रूप मे अपना कामोच्छ्वास प्रकट कर रही है। इसीलिए उनका वेग रुक गया है और वे आलिगन के लिए तरंग रूपी भुजाओ मे कमल के उपहार लेकर भगवान के चरण छू रही है।) इसमे चाहे काव्यकला का अतिरेक ही क्यो न हो किंतु वनस्पति-विज्ञान के आचार्य सर जगदीशचन्द्र वसु ने अपनी प्रयोगशाला मे ऐसे यंत्र बनाये हैं जिनसे भली-भाँति परीक्षा की जा सकती है कि संगीत सुनकर वृक्ष भी प्रफुल्लित होते है। इस प्रकार का एक प्रयोग श्री वसु की प्रयोगशाला मे सगीत मार्तण्ड श्री ओकारनाथ ठाकुर द्वारा हुआ था। श्री वसु ने ओकारनाथ जी से एक मुरझाये हुए पौधे के सन्मुख भैरवी गाने को कहा। भैरवी की ध्वनि को सुनकर पौधे मे इस प्रकार के चिन्ह दिखलायी दिये मानों उसे अपूर्व सात्वना मिली हो। ठाकुर जी ने वृक्षों पर किए गए सगीत के प्रयोगो की सफलता का वृत्तात वताते हुए लेखिका को यह भी वताया कि भैरवी राग गाते समय उन्होने देखा कि पौधो की कोपलो पर नवीन चमक आ गई थी। ठाकुर जी की यह सफलता कोई कपोल कल्पना मात्र ही नही है। हमारे भारतीय समाज मे तो सगीत की कसौटी ही यह है कि जडदीप तक उससे प्रदीप्त हो उठे।

सुन्दर स्वरो से बँधा हुआ तत्री का नाद जब रजक-राग बनकर प्रादुर्भूत होता है

---

१. श्रीमद्भागवत् महापुराण, महर्षि वेदव्यास प्रणीत, अनुवादक मुनिलाल, द्वितीय खण्ड, दशम स्कध, इक्कीसवां अध्याय, पृ० ३११, श्लोक सं० १५

उस समय उसके स्वरो में हृदय को झकृत करने की इतनी शक्ति होती है कि पशु-पक्षी भी उस पर मोहित हो जाते है। पशु मनुष्य की भाषा समझने मे असमर्थ है किंतु सगीत के स्वर-समुदायो का उन पर गहन प्रभाव पड़ता है। नाद के माधुर्य से ही तो रीझकर मृग बहेलियो का लक्ष्य बनता है।[१] क्रोध से फुफकारता हुआ सर्प महुअर की मधुर ध्वनि सुनकर आनद से फण निकाल कर डोलने लगता है। कहा जाता है कि श्रीकृष्ण ने मुरली की ध्वनि तथा नृत्य-संगीत के माध्यम से ही कालिय नाग को वश मे किया। उदयन ने अपनी वीणा के स्वरो से हाथियो को वशीभूत किया। बैजूबावरे ने तोड़ी राग गाकर मृगछौने वश मे किए। आधुनिक युग मे प्रसिद्ध है कि खान साहब बन्देअली खा ने रुद्रवीणा (बीन) के वादन द्वारा उद्दण्ड बारहसिगे को वश मे किया। बडौदा मे मृदगाचार्य खान साहब नासिरखान ने मृदगवादन से मदमत्त गजराज को वशीभूत किया। बन्देअली खा के शिष्य चुन्नाजी ने गौरी राग से पक्षियो को मोहित कर लिया। धरमपुर राज्य के स्व० श्री विजयदेव महाराज के काका स्व० श्री प्रभातदेव जी ने अपने वीन-वादन द्वारा शिवालय के चौक मे एक घंटे तक विशालकाय विषधर नागराज को मस्ती मे डुबाये रखा। पं० ओकारनाथ ठाकुर जी का कहना है कि काफी राग के कोमल स्वरों का प्रभाव जानवरों पर खूब पड़ता है।[२]

प्रयाग मे नैनी की पशुशाला मे यह प्रयोग किया गया था कि गायो का दूध दुहते समय गीतयत्र बजाया गया। उसका परिणाम यह हुआ कि गायों ने मत्रमुग्ध होकर दुहाना प्रारभ किया जिससे उनके दूध मे भी वृद्धि हुई। आस्ट्रेलिया की श्रीमती दियाना गोल्ड जंगली घोडो को अपने संगीत द्वारा मोहित कर लेती है। उनका कहना है कि घोड़ो को संगीत से प्रेम होता है और वे उनका संगीत सुनना पसंद करते है। हालीवुड की प्रसिद्ध फिल्म स्टार, प्रिस अली खॉ की भूतपूर्व पत्नी श्रीमती रीता हेवर्थ के पास गिल्डा नामक एक अत्यन्त सुन्दर कुत्ता है जो भोजन करने के पश्चात् रेडियो पर सगीत का आनंद लेता है। सगीत सुनते-सुनते वह इतना मस्त हो जाता है कि झूमने लगता है। प्रतिदिन सगीत सुनने का उसका नियम हो गया है। कभी-कभी वह अपनी स्वामिनी रीता से भी गाना सुनता है। उसको सगीत के स्वरो का इतना ज्ञान है कि यदि कभी रीता बेसुरा गाने लगती है तो वह उसके मुँह पर अपना मुँह रखकर तुरन्त रोक देता है। वायलिन की ध्वनि से वह विशेष आनंदित हो उठता है।

संगीत वह कला है जो विकलित हृदय मे आनंद का उद्रेक कर देती है। सगीत की स्वर लहरियाँ सुनते ही पाषाण हृदय भी सहसा झूम उठता है। सगीत मे वह नैसर्गिक शक्ति है जो मानव हृदय की कोमलतम् भावनाओ को स्पर्श कर उसकी सुप्त आशाओं को जगा

---

२ वनेचरस्तृणाहारश्चित्रं मृगशिशुः पशुः।
लुब्धो लुब्धकसगीते गीते त्यजति जीवितम्॥ संगीत-रत्नाकर, शार्गदेव, पृ० ७, श्लोक० स० २९

१. संगीत-मार्तण्ड प० ओंकारनाथ ठाकुर संगीत-कार्यालय में, सगीत, मार्च, १९५३, पृ० २५६

देती है और हृदय के किसी नीरव कोने में डूबी स्मृतियों को हरा-भरा कर देती है। कुमारी ह्वील्स योम का कथन है –

"सगीत हमारे जीवन को अनुप्राणित करता है। हमारे जीवन की निर्जीव शक्तियो को विनष्ट करके एक ऐसी अभिनव पृष्ठभूमि निर्माण करता है कि जिसमे सजीवन उत्साह के स्फुरण दीप्त होने लगते है और होने लगती है स्फूर्ति की उल्काये, जो जीवन को मगलमय एव स्वर्णिम बना देती है।"[1] हृदय को हिला देने वाले गान मृतप्राय हृदय मे सजीवन, नैराश्य मे आशा, चिता की प्रज्वलित ज्वाला मे शाति तथा दुखमय क्षणो मे आनद प्रदान कर सकते है। सगीत की ध्वनि के शीतल स्पर्श से व्यथित हृदय की कलुषित वेदनाये क्षण भर मे लुप्त हो जाती है। मोक्ष को प्रदान करने वाली संगीत-कला मनुष्य के भौतिक दुखो का अत भी करती है। यही कारण है कि आज के युग मे डाक्टर तथा मनोवैज्ञानिक भी संगीत मे छिपे हुए स्वास्थ्यदायक तत्वों की खोज करने मे प्रयत्नशील है। उनको गुलाबी और अल्ट्रावायलेट किरणो के समान सगीत मे भी आरोग्यदायक गुण मिल रहे है। सगीत चिकित्सा अब अधिक दुर्लभ नही कही जा सकती क्योकि रोग निवारणार्थ इसके बहुत से सफल प्रयोग हो चुके है। मनहट्टन अस्पताल के सख्या संकलन द्वारा सगीत-चिकित्सा का आश्चर्यजनक परिणाम प्रस्तुत हुआ है। संगीत के प्रयोग से ३८ प्रतिशत रोगी पूर्णरूपेण स्वस्थ हो गए, ३३ प्रतिशत आशिक सुधर गए और २८ प्रतिशत प्रभावहीन रह गए। ओकारनाथ ठाकुर जी का विचार है कि मारफिया के बजाय सगीत से पीड़ा कही शीघ्र कम हो सकती है। ठाकुर जी ने बतलाया कि उन्होंने इसका सफल प्रयोग भी करके देखा है। एक बीमार व्यक्ति को मारफिया का इन्जेक्शन देने के बाद भी जब नीद नही आई तो ठाकुर जी के गाने से उन्हे कुछ मिनट के अन्दर ही कुछ समय के लिए निद्रा आ गई। अपने गाने से मुसोलिनी को सुला देना तो ठाकुर जी के जीवन की एक सत्य तथा प्रसिद्ध घटना बन गई है। कुमारी ह्वीलस योम ने भी इस प्रकार के सफल प्रयोग किए हैं। उन्होने स्पेन के 'रेबीनर' पत्र के प्रतिनिधि को बतलाया कि "इटली के 'केरीगिस्टी' नगर में एक धनाढ्य व्यक्ति को नीद न आने का रोग था। वह रात को बिल्कुल सोता नही था, इसलिए उसका स्वास्थ्य दिन-व-दिन क्षीण पड़ता जा रहा था। कोई भी औषधि उस पर कारगर न हो रही थी। जब मैंने सुना और उसको देखा तो उसकी बडी बुरी दशा पाई। उसने मुझे बतलाया कि मैंने अपने इलाज मे धन को पानी की तरह बहाया है किंतु फिर भी मै स्वस्थ न हो सका और अब मै मौत की घडियां गिन रहा हूँ। ऐसे जीवन से तो मर जाना लाख दर्जे श्रेष्ठ है। उसकी इन बातो को सुनकर मैने उस पर सगीत का प्रयोग किया। मै आपसे सच कहती हूँ कि इस प्रयोग ने उस पर जादू-सा काम किया और तीन चार दिन मे वह पूर्ण स्वस्थ हो गया और इतनी गहरी नीद सोने लगा कि इटली के सब

---

१. संगीत की स्वर लहरी पर मुर्दे भी बोल उठते है, संगीत, फरवरी १९५५, पृ० २८

चिकित्सक भी विस्मय-सागर मे डूब गये। अब वह रोजाना सोने से पूर्व संगीत सुनता है तब उसको नीद आती है।"[१]

सन् १९४४ मे एक बार महात्मा गाधी के रोग पर भी मनहर बर्वे ने सगीत द्वारा आशातीत सफलता प्राप्त की थी। "सन् ४४ की बात है। गाधी जी उन दिनो अस्वस्थ थे। चिकित्सक अपना कार्य पूर्ण मुस्तैदी से कर रहे थे। श्री मनहर बर्वे ने भी अपनी सेवाये प्रस्तुत की। दूसरे दिन डाक्टरी रिपोर्ट सारे पत्रो में बैनर लाइन मे छपी। गाधी जी पर सगीत का आशातीत प्रभाव पडा था। गाधी जी का 'मौनव्रत' था पास पडे पुर्जे को उठाकर लिखा 'आप का यह सगीत तो मेरे लिए औषधि है।"[२]

ससार के प्रथम श्रेणी के सर्जन डा. जी. डब्ल्यू. क्रिल का कहना है कि अनेक उत्तेजक रोग विशुद्ध संगीत द्वारा ठीक किए जा सकते है। सगीत के द्वारा पाचक ग्रन्थियो को बल मिलता है। कुछ तार स्वर श्वासो की गति बढाते है, इकहरे स्वर हृदय की गति बढाते है। एक रूसी प्रोफेसर ने बतलाया है कि संगीत से २५ प्रतिशत नेत्र शक्ति बढ सकती है। एक प्यानोवादक को एक मस्तिष्क चिकित्सालय में कुछ प्रयोग करने भेजा गया तो ज्ञात हुआ कि सगीत से जिद्दी प्रकृति सरल की जा सकती है, स्मरणशक्ति वापस लाई जा सकती है और जीवन से पुन लगा व स्थापित किया जा सकता है। प० ओकारनाथ ठाकुर जी का दृढ विश्वास है कि सगीत के द्वारा रोग दूर किये जा सकते है। ३० जनवरी १९५३ को सगीत-कार्यालय, हाथरस मे भाषण देते हुए सगीत मार्तण्ड पं० ओकारनाथ ठाकुर ने संगीत के द्वारा रोगो को दूर करने के विषय मे कहा था—"शरीर मे सात धातु है जिनके सात रग है वही सात रंग स्वरो के है। वही रंग सूर्य की किरणों मे है। सप्त रश्मी सूर्य के सात घोडे होते हैं। जब सूर्य की सतरगी किरणो से प्रभावित पानी से ही रोग दूर हो जाते है तो क्या सप्त-स्वरो से ऐसा नही हो सकता? हमें जानना होगा कि कौन धातु रोगी के शरीर मे कम हो गई, उसका क्या रग है, उसी रंग के स्वर का सगीत रोगी को सुनाया जाय तो वह स्वस्थ हो सकता है।"[३]

मानसिक चिकित्साओ के लिए सगीत सर्वश्रेष्ठ औषधि है। मानसिक व्यथाओ से पीडित रोगियो पर संगीत के अनुपम प्रभाव का समर्थन तथा पुष्टि करती हुई ह्वीलस् योम कहती है—"आज अधिकतर मानव मानसिक चिन्ताओ के असहनीय बोझ से ग्रस्त है। ये मानसिक चिन्तायें ही मनुष्य को रोग ग्रस्त बना देती है। जवान व्यक्ति को एक दम बूढा बना कर उसके सम्पूर्ण शरीर को खोखला कर देती है। जो मानव मानसिक चिन्ताओ की पीडा से बीमार पडता है फिर उसकी औषधि से स्वस्थ होने की कम आशा रहती है। और

---

१. संगीत की स्वर लहरियों पर मुर्दे भी बोल उठते है, संगीत, फरवरी १९५५, पृ० ३१
२. संगीत, फरवरी १९५४, श्री मनहर वर्वे सत्य, पृ० २२२
३. संगीत, मार्च १९५३, पृ० २५६

अगर औषधि से स्वस्थ हो भी जाये तो फिर वह अधिक जीवन मार्ग पर चलने के योग्य नही रहता। चिन्ताओ के बोझ से उसका कचूमर निकल जाता है। प्राय· ऐसे लोग विक्षिप्त अथवा अर्ध-विक्षिप्त हो जाते है या उनमे ऐसी निर्जीविता आ जाती है कि वे मुर्दे के समान और असाध्य बन जाते है, चिकित्सको के पास ऐसे रोगियो के लिए कोई उपचार नही रहता। मेरा यह व्यक्तिगत अनुभव है कि जिन रोगियो पर औषधि असफल हुई है उनको संगीत से द्वारा ठीक कर लिया गया है।

इटली के 'सेबोला' नगर का एक रोगी मानसिक पीडाओ के असहनीय बोझ से गतिशून्य हो गया। उसकी नाडी की धडकन भी अवरुद्ध हो गई। लोग उसको मरा हुआ समझ कर दफनाने जा रहे थे, चिकित्सको ने जवाब दे दिया था। मैंने उसको देखा, उसकी चेष्टा की परीक्षा की। मुझे विश्वास हो गया कि इस पर मानसिक झंझावात का प्रबल धक्का लगा है जिससे यह चेतना शून्य हो गया है। मैंने तत्काल ही सगीत का प्रबध कराया और उसके सामने दो घटे तक 'लेविसहोरा' स्वर-लहरी झकृत की। इस स्वरलहरी के बजते ही उसके अन्दर शनै शनै गति आने लगी और दो घटे के पश्चात् वह पूर्ण स्वस्थ हो गया। उसके आनन पर हर्ष एवं आल्हाद की मंजुल रश्मियाँ क्रीडा कर रही थी। वह अब पहिले से कही अधिक शक्तिमय एव स्फूर्तिमय महसूस कर रहा था। मेरे इस प्रयोग को देखकर सब लोग चकित रह गए। वास्तव मे हम लोग संगीत की महान शक्ति को भूले हुए है। सगीत के द्वारा आप अपनी सुषुप्त वृत्तियो को जाग्रत कर सकते है और कर सकते है 'अस्वस्थ वातावरण' को दूर। 'अस्वस्थ वातावरण' ही मनुष्य को मुर्दा तक बना डालता है। यह दम घुटने वाला वातावरण ही मनुष्य की सम्पूर्ण शक्तियों को एक दम पंगु बना देता है। सगीत के द्वारा आप अपने जीवन को स्वस्थ और सुन्दर बनाइये। आपको मेरी बातों पर आश्चर्य तो अवश्य हो रहा होगा कि क्या संगीत के अन्दर विटामिन शक्ति है कि जिसके द्वारा शरीर स्वस्थ एवं सुन्दर बन सकें लेकिन जनाब इसमे आश्चर्य की बात नही। यह संगीत की सत्यता की पृष्ठभूमि है। आप विश्वास करिये। संगीत के गर्भ मे आपको विटामिन चाहे भले ही न मिले किन्तु आपको ऐसे सजीव तत्व अवश्य मिलेगे जो आपके मानसिक असन्तुलन को सन्तुलित करके आपके अन्दर उत्साह का प्रपात बहा देगे। यह सजीव तत्व जिसको 'डीसोल' और 'ओसल' कहते है, इसका महत्व विटामिन से भी अधिक मानव शरीर के लिए प्रमाणित हुआ है। सगीत की लहरियो से मानव के मस्तिष्क मे 'डीसोल' और 'ओसल' तत्वो का स्पन्दन होना प्रारम्भ हो जाता है जो मानव की चेतनाशून्य स्थिति को चेतनापूर्ण बनाता है। निकट भविष्य में वह दिन शीघ्र आने वाला है जब हम सगीत के उपचार से समस्त प्रकार के मुर्दो को प्राणदान दे सकेंगे और सगीत प्राणदान देने का महत्वपूर्ण अवलम्ब बन जायेगा। विश्व मे संगीत की यह महान विजय होगी। चूकि हमने सगीत के मौलिक आधारों को भुला दिया है अतएव हम उसके 'चमत्कारिक सत्य' को मान्यता देने मे आज हिचकचाते है। लेकिन एक न एक दिन अवश्य ही विश्व को सगीत के सामने नतमस्तक होना पड़ेगा।"[१]

१. संगीत, फरवरी १९५५, संगीत की स्वरलहरियों पर मुर्दे भी बोल उठते है, उमेश जोशी, पृ० २८-२९

चार्ल्स डारविन ने भी अपने जीवन के अंतिम क्षणो मे कहा था–"यदि मुझे यह जीवन दुबारा जीवित रहने को मिलता तो मै कम से कम सप्ताह मे एक बार कुछ कविता पढने और कुछ संगीत सुनने का एक नियम बना लेता। यह इसलिए कि शायद मेरे मस्तिष्क के हिस्से जो स्फूर्तिशून्य है काम मे आते रहने से वे स्फूर्तिमय रखे जा सकते थे। इन इच्छाओं का अभाव सुखी जीवन को हानि पहुँचाना है और यह मस्तिष्क की बुद्धि को भी चोट पहुँचा सकता है और इससे भी अधिक हमारी भावुक प्रवृत्तियो को सन्तुष्ट न कर हमारे आदर्श चरित्र को भी हानि पहुँचा सकता है।"[१]

बेवरिज (Beveridge) का कहना है कि संगीत की स्वरलहरियाँ उनकी निर्जीव शक्तियों को विनष्ट कर हृदय को पवित्र और सुन्दर भावों से भर देती है।[२] ए० हंट (A. Hunt) का विचार है कि निराश हृदय के लिए सगीत औषधि के सदृश्य है।[३] जार्ज इलियट का कथन है कि सगीत के माध्यम से प्राय· सभी प्रकार की भावनाओ का निराकरण किया जा सकता है।[४]

सगीत का सम्मोहन जनसमुदाय को आत्मविभोर कर देने की अपूर्व क्षमता रखता है। उसकी हृदयग्राही सौम्यता मे मनुष्य तन्मय एव आनदविभोर हो कर मस्त हो जाता है। गाधी जी के जीवन की एक सत्य घटना से संगीत की शक्ति का अनुभव किया जा सकता है–

"१९२१ ई० में अहमदाबाद में काग्रेस होने वाली थी। गांधी जी को उसमे शामिल होना था और वह उसके लिए चल पडे। पर पड गए भयंकर कठिनाई मे। लाखो की जनता चारो ओर से उन्हे घेर कर जय बोल रही थी और सारे मार्ग को बंद किए हुए थी। सब गांधी जी के पवित्र दर्शनो को उत्सुक थे और उनकी मोटर को आगे नही बढने दे रहे थे।

गांधी जी के लिए समय पर पहुँचना अतीव आवश्यक होता था। यह उनका विशेष गुण था। पर भीड उनकी सुनती ही न थी और हर तरह से कहने सुनने, चिरौरी

---

१. **संगीत, जुलाई १९५०, शास्त्रीय संगीत और फिल्म संगीत पर एक दृष्टि, पुरुषोत्तमदेव आर्य, पृ० ५१९**
2. "It calls in my spirit, composes my thoughts, delights my ear, recreates my mind and so not only fits me for after business but fills my heart, at the present with pure and useful thoughts; so that when the music sounds sweetest in my ears truth commonly flows the clearest into my mind."
 The New Dictionary of Thoughts, Page 413
3. "Music is the medicine of the breaking heart."
 The New Dictionary of Thoughts, Page 414
4. "There is no feeling, except the extremes of fear and grief that does not find relief in music."
 The New Dictionary of Thoughts. Page 415

करने पर भी रास्ता नही दे रही थी। गाधी जी ने प्रार्थना की, डाटा, फटकारा पर कोई असर न हुआ। गाधी जी निराश-से हो गए, पर तुरन्त ही उन्होने अपने पास के एक नवयुवक के कान मे कुछ कहा। वह नवयुवक काग्रेस पंडाल मे गया और थोडी देर मे अपने साथ एक भारी-भरकम शरीर और बड़ी मूँछोंवाले आदमी को साथ लेकर लौटा।

'यदि सचमुच तुम्हारे सगीत मे जादू है' गाधी जी ने उक्त सज्जन से कहा –'तो इस असंगठित एवं अनुशासनहीन भीड को प्रदर्शन से शात करो यही तुम्हारी परीक्षा है।' सगीत ज्ञाता वह सज्जन मान गए और उस असख्य भीड के सामने उन्होने अपना राग छेडा। अपनी मधुर वाणी से उन्होने भीड को शात और स्तब्ध कर दिया। भीड सब कुछ भूलकर सगीत मे मग्न हो गई। इस बीच मे गाधी जी चुपके से खिसक गए। और वाद्य-गायन खत्म होने पर ही भीड को अपनी भूल मालूम पडी।

दो दिन बाद गाधी जी ने सगीत सम्मेलन के अध्यक्ष पद से भाषण देते हुए कहा – 'सगीत लोगो को सकट से मुक्त करेगा' और उन्होंने उपर्युक्त घटना का वर्णन किया। और वह महान् सगीतज्ञ विष्णु दिगम्बर जी थे।"[१] यह है सगीत का आश्चर्यजनक प्रभाव।

इसी प्रकार की सगीत के महान् प्रभाव की अमिट सत्य घटना ग्वालियर के प्रसिद्ध गायक उस्ताद निसार हुसेन खॉ के जीवन मे भी घटित हुई थी –

"टिकट ?

खो गया।

तो नीचे उतरो–

अच्छी बात है–कहकर मुसाफिर निरुद्विग्न भाव से बिस्तर और तम्बूरा बगल में दबा अपने दो साथियो के साथ नीचे उतरा फिर वही प्लेटफार्म पर आसन जमाकर बैठ गया और तम्बूरे की तारे छेड खडी आवाज मे एक गीत गाने लगा। उस सुरीले गीत की मधुर ध्वनियाँ कानो पर पडते ही गाडी के और मुसाफिर भी नीचे उतर पड़े और उन्होने गाने वाले मुसाफिर को चारो ओर से घेर लिया।

इधर गाडी छूटने का समय हो गया तथा गार्ड और इंजन ने बारबार सीटियाँ बजाईं, किन्तु नीचे उतरे हुए अधिकांश मुसाफिर मधुर और मादक सगीत ध्वनियो की धारा मे इतना बह गए थे कि उन्हे गाडी छूटने की कोई फिक्र ही नही रही। यदि दो-चार मुसाफिर नीचे उतरे होते तो शायद गाडी छोड़ भी दी जाती पर वहाँ तो सैकडो की संख्या मे मुसाफिर उतरे हुए थे।

माजरा क्या है यह देखने के लिए जब गार्ड, स्टेशनमास्टर तथा अन्य रेलवे-अधिकारी

---

१. संगीत, जनवरी १९५०, संगीत से सब संकट टलेंगे, टी० एम० राव, पृ० १०३

भीड के पास आए तब उन्होने देखा कि एक खाँ साहब तम्बूरे पर गा रहे हैं और उनकी सुरीली ध्वनि मे मुसाफिर मदहोश है । जिस टिकट कलेक्टर ने खाँ साहब को नीचे उतारा था वह भी इतने मे वहाँ आ पहुँचा । और उसने उन्हे पहचान कर अन्य रेलवे अधिकारियों को सारी बात समझाई । रेलवे अधिकारियो ने देखा कि खाँ साहब को बिना गाड़ी मे बैठाए, मुसाफिर गाड़ी मे नही बैठेगे, फिर उन्हें मनाया गया और तब कही गाड़ी आगे चल सकी ।

यह कहानी नही, प्रत्यक्ष घटना है और उक्त खाँ साहब और कोई नही, ग्वालियर के प्रसिद्ध गायन कलानिधि खाँ साहेब निसार हुसेन ही थे ।"[१]

सगीत मे मानव-हृदय को निकट से स्पर्श करने की गहन शक्ति है । मनुष्य को आकर्षित करने के लिए सगीत की झकार अनिवार्य है । सगीत के इसी महान् प्रभाव को लक्ष्य कर 'स्कदगुप्त' की देवसेना के मुख से प्रसाद जी कहलाते है–"नये ढग के आभूषण, सुन्दर वसन, भरा हुआ यौवन, यह सब तो चाहिये ही । परन्तु एक वस्तु और चाहिये । सत्पुरुष को वशीभूत करने के पहिले चाहिए एक धोखे की टट्टी । मेरा तात्पर्य है–एक वेदना अनुभव करने का–एक विह्वलता का अभिनय उसके मुख पर रहे–जिससे कुछ आडी तिरछी रेखाये उसके मुख पर पड़े और मूर्ख मनुष्य उन्ही को लेने के लिए व्याकुल हो जाय । और फिर दो बूँद गरम-गरम आँसू और इसके बाद बागेश्वरी की करुण कोमल तान । बिना इसके सब रंग फीका ।"[२]

गाधी जी ने भी संगीत की आकर्षण शक्ति का उल्लेख करते हुए कहा है कि संगीत द्वारा उन्हे क्रोध पर नियत्रण करने की शक्ति तथा अपूर्व शांति प्राप्त हुई है । उनका विचार है कि सुन्दर गायन हृदय पर अपनी अमिट छाप लगा देता है ।[३]

---

१. **संगीत, मई १९५३, उस्ताद निसार हुसेन, श्रीमती 'सजीवनी', पृ० ३९६**

२. **स्कंदगुप्त विक्रमादित्य, प्रसाद, पृ० ५२-५३**

3. Music has given me peace. I can remember occasions when Music Instantly tranquillized my mind when I was greatly agitated over some thing. Music has helped me to overcome anger. I can recall occasions when a hymn sank deep into me, though the same thing expressed in prose had failed to touch me. I also found that the meaning of hymns discordantly sung has failed to come home to me and that it burns itself on my mind when they have been properly sung. When I hear Gita verres melodiously recited, I never grow weary of hearing and the more I hear, the deeper sinks the meaning into my heart. Melodious recitations of the Ramayan which I heard in my child-hood left on me an impression which have not obliterated or weakened.

I distinctly remember how when once the once the hymn, 'The

संगीत से सभी मनुष्य प्रभावित होते है । औरंगजेब के विषय मे यह कहा गया है कि सगीत की दुर्दशा पर व्यथित हो मानवो ने बादशाह के महल के नीचे से सगीत की अर्थी निकाली । पूछने पर जब औरगजेब को यह ज्ञात हुआ कि ये लोग संगीत के शव की अन्त्येष्टि क्रिया के लिये जा रहे है तो उसने तत्काल यही कहा वहुत अच्छा—कब्र अत्यधिक गहरी खोदना जिससे उसकी आवाज को गूँज कभी भी बाहर निकल कर न आ सके । कितु इसका यह अर्थ कदापि नही कि औरगज़ेब को सगीत के प्रति रुचि नही थी । उसकी धार्मिक कट्टरता ने, उसकी धार्मिक नीति ने अवश्य सगीत को कुचला किंतु उसका हृदय सगीत के आकर्पण से मुक्त न रह सका । अपनी धार्मिक रूढिवादिता के फलस्वरूप सगीत का कट्टर विरोध करने वाला औरगज़ेब स्वयं जैनाबादी के सगीत से मोहित हो गया था । जैनाबादी के सगीत की कोमल तानों ने उसके हृदय को भी बाँध लिया था ।[1]

सगीत की इस व्यापक महत्ता को लक्ष्य कर ही भर्तृहरि ने संगीत को मानव जीवन का अनिवार्य अग माना है –

साहित्य संगीत कला विहीनः ।
साक्षात्पशुः पुच्छविषाणहीनः ।।

---

path of the Lord is meant for the brave, not for the coward' was sung to me in an extra-ordinarily sweet tone, it moved me as it had never before. In 1907 while in Transval I was almost fatally assaulted the pain of the wounds was relieved when at my instance Olive Doke gently sang to me 'Lead kindly light'.

The Krishna Pushkaram Souvenir, 'Influence of Music'. M. K. Gandhi, Page 100

1. "Besides the above four, there was another woman whose supple grace, musical skill and mastery of blandishments, made her the heroine of the only romance in the puritan Emperor's life. Hirabai surnamed Zainabadi was a young slave girl in the keeping of Mir Khalil who had married a sister of Aurangzib's mother. During the viceroyalty of the Deccan the prince paid a visit to his aunt at Burhanpur. There while strolling in the park of Zainabad on the other side of Tapti he beheld Hirabai unveiled among his aunt's train ..... Hirabai was standing under a tree, holding a branch with her right hand and singing in a low tone. Immediately, after seeing her the prince hopelessly sat down there and then stretched himself at full length on the ground in a swoon."

   History of Auranzib. J. N. Sarkar, Vol. I, Page 65

तृण न खादन्नपि जीवमानः।
तद्भागधेय, परमं पशूनाम् ॥ [१]

शेखसादी ने कहा है—"सगीत के पीछे-पीछे खुदा चलता है, जिस दिल के दरिया को सगीत की बयार तरगित नही कर देती समझो कि उस दिल से शैतान भी डरता है।"[२]

महाकवि शेक्सपियर ने तो यहाँ तक कह दिया है कि वह मनुष्य जो न तो सगीत कला जानता है और न जिसके ऊपर सगीत का प्रभाव पडता है, राजद्रोह तथा अपकार के लिये उपयुक्त पात्र है।[३]

फ्रेडरिक ने जीवन की सार्थकता सगीत के ही कारण मानी है।[४]

स्काट का कहना है कि—"जिस मनुष्य का हृदय संगीत के मधुर स्वर से नही धडकता वह अपनी आत्मा के साथ मृत्यु की अतिम साँसे भरता है।"[५]

बोवी (Bovee) ने सगीत को जीवन के लिए अनिवार्य चार पदार्थों मे स्थान दिया है।[६]

प्रसिद्ध कवि पोप का कथन है कि "सगीत के कारण मनुष्य का स्वभाव न तो बहुत ऊँचा बन जाता है और न बहुत नीचा। सगीत से मनुष्य के स्वभाव मे समता आ जाती है।

---

१. **नीतिशतकम्, भर्तृहरि, श्लो० ११**
२. **नवनीत, जुलाई १९५२, पृ० १०**
3. The man that hath no music in himself,
   And is not moved with concord of sweet sound,
   Is fit for treasons, stratagems and spoils ;
   The motions of his spirit are dull as night,
   And his affections dark as Erebus :
   Let no such man be trusted —
   The Merchant of Venice. Shakespeare, Act V, Sec. 1, Page 83. lines 83-88
4. Without Music life would be a mistake.
   The Shorter Bartlett's Familiar Quotations, Page 273
5. "Breathes there the man with soul so dead,
   Whose heart has not throbbed at a sweet note of music."
   The Shorter Bartlett's Familiai Quotations, Page 328
6. "Music is the fourth great material want of our nature—first food, then raiment, then shelter, then music."
   The New Dictionary of Thoughts, Page 413

योद्धाओ के हृदय मे यह नवजीवन का सचार करता है और दुखी प्रेमियो के घावो मे औषधि का काम करता है ।"[१]

लूथर ने कहा है कि सगीत मनुष्य को दयालु, नीतिशील और बुद्धिमान बनाता है । सगीत खुदा की दी हुई कला है जो मनुष्य के कष्टो को दूर कर उन्हे शाति पहुँचाती है ।"[२]

हेनरीडेविड थोरो ने अपनी डायरी मे लिखा है –" .... तब सगीत इतनी गहराई मे उतर जाता है कि वह कर्णगोचर ही नही रहता । वह तो तत्वत समस्त जीवन और आत्मा से एकरूपता कर लेता है । वह कठिन समय मे भी कभी गलत कदम नही उठाने देता क्योकि वह अपनी मधुरता और शक्ति से उसका मार्ग आलोकित करता रहता है और उसकी गतिविधियों को प्रेरित करता है ।"[३]

कुमारी ह्वील्स योम का विश्वास है –"सगीत हमें जीवन देता है, लेता नही । सगीत विनाश का साधन नही हो सकता । वह मुर्दो मे जीवन फूँक सकता है लेकिन जीवन मे मुर्दनिगी नही फूँकता ।"[४]

कविवर बिहारी ने तो सगीत के अनुपम माधुर्य पर रीझ कर यहाँ तक कह दिया है –

तंत्री नाद कवित्त रस, सरस राग रति रंग ।
अनबूड़े बूड़े तिरे, जे बूड़े सब अंग ॥[५]

साहित्य में संगीत का स्थान

जब सम्पूर्ण सृष्टि और मानव के कण-कण मे सगीत व्याप्त है तो साहित्य मे भी संगीत का होना अनिवार्य है । साहित्य का निर्माण भी तो संगीतप्रिय मानवो ने ही किया है । साहित्य के समस्त अगों मे सगीत का किसी न किसी रूप मे थोडा बहुत योग अवश्य रहता है । दृश्यकाव्य मे संगीत उसके प्रभाव को बढाने के लिए उद्दीपन का कार्य करता है ।

---

1. "Music is one of the fairest and most glorious gifts of God, to which Satan is a bitter enemy for it removes from the heart the weight of sorrow and the fascination of evil thoughts "
"Music is a discipline and a mistress of order and good manners. She makes the people milder and gentler more moral and more reasonable,"
2. "Music is the art of the prophets. The only art that can calm the most magnificient and delightful presents God has given us."
The New Dictionary of Thoughts, Pp. 413 - 14

३. संगीत, जून १९५३, पृ० ४४३
४. संगीत, फरवरी १९५५, पृ० ३०
५. बिहारी-सतसई, सटीक श्री रामवृक्ष बेनीपुरी, पृ० २९३, दोहा ६१०

नर्तकियाँ सगीत के ताल-स्वर पर नृत्य करती है। अरस्तु ने अपने 'पोएटिक्स' ग्रंथ मे संगीत को भी नाट्य रचना का एक आवश्यक तत्व स्वीकार किया है।

कविता को सुन्दर बनाने के लिए, उसके सुन्दर पाठ तथा रसास्वादन के लिए संगीत अपेक्षित है। जब हम कवि-सम्मेलनो मे कवि की कविता सुनते है तब हमे सुन्दर काव्य तथा सगीत के अपूर्व समन्वय के कारण ही उसमे अधिक आनद आता है। पुस्तक की कविता पढने मे यद्यपि एक काव्य-मर्मज्ञ सगीत की स्पष्ट ध्वनि का अनुभव कर सकेगा तथापि सामान्य पाठक को उसमे निहित संगीत का अनुभव तभी होगा जब उसे श्रुति-मधुर स्वर मे सुनेगा। अत सभा मे तो सुन्दर काव्य बनाने के साथ-साथ सुन्दर पाठ की भी अत्यधिक आवश्यकता होती है। राजशेखर ने उस कवि को ही वाग्देवी का अत्यत प्रिय कहा है जो कविता को इस प्रकार पढ सके कि रस का आस्वादन गोपालो और अनपढ स्त्रियो तक को हो जाय –

आगोपालकमायोषिदास्यामेतस्य लेह्यता।
इत्थं कविः पठन्काव्यं वाग्देव्या अतिवल्लभः॥[1]

आज के इस क्रातिकारी युग मे भी प्रत्यक्ष रूप से देख सकते है कि कवि-सम्मेलन मे कवि की सफलता का रहस्य सुन्दर कविता के साथ ही अनेक अशो मे सगीत पर भी निर्भर करता है। कवि-सम्मेलन मे अच्छी कविता को जो कवि साभिनय गा सकता है तथा जिस कवि के कठ मे माधुर्य होता है प्राय· कीर्ति उसी का वरण करती है।

भावो की प्रधानता के फलस्वरूप पद्य मे गद्य की अपेक्षा संगीतात्मकता प्रधान रहती है। किंतु अनेक स्थलो पर गद्य भी ताल, लय तथा अलकार आदि सामग्री से युक्त होकर सगीतमय हो जाता है। "प्राचीन कथाओं की गद्य समझी जाने वाली भाषा मे भी एक प्रकार का छंद है। वे कहानी की इस सीधी सी बात को कि 'एक था राजा' इतने सरल ढंग से न कहकर कहेगे –"घनदर्प कंदर्प सौन्दर्य-सौन्दर्य रूपो भूपो वभूव"। यह कथन छंदयुक्त है, इसमें झकार है, लोच है, वक्रता है और है सगीत का मनोहारी प्रभाव।

Shenstone ने कहा है कि कविता तथा गद्य की वे ही पक्तियाँ सबसे अधिक स्मरण तथा उद्धृत की जाती है जो सगीतमय होती है।[2]

A. J. Ravan ने सगीतमय गीतो की महत्ता का उल्लेख करते हुए कहा है –

---

१ **काव्य मीमांसा, राजशेखर, सप्तम अध्याय, पृ० ३३, पंक्ति** २१-२२

2. "The lines of poetry, the periods, of prose and even the texts of scripture mostfrequently recollected and quoted, are those which are felt to be preeminently musical."
   The New Dictionary Of Thouthts, Page 414

When falls the soldier brave,
Dead at the feet of wrong,
The poet sings and guards his grave
With sentinels of song.[1]

यही नही किसी ने तो यहाँ तक कहा है कि –

"I have just heard a poem spoken with so delicate sense of the rhythm, with so perfect a respect for its meaning that if I were a wise man and could persuade a few people to learn the art, I would never open a book of verses again."

उपर्युक्त कथनो से साहित्य मे सगीत का महत्व स्पष्ट हो जाता है ।

✓ संगीत एवं काव्य में पारस्परिक संबंध

संगीत एवं काव्य मे घनिष्ट सम्बन्ध है । एडगर एलन पो कविता को सौदर्य की सगीतमय सृष्टि कहते है ।[२] कॉरलायल ने सगीतमय विचारो को ही काव्य कहा है । उसके शब्दो मे कविता मनोवेगमय और सगीतमय भाषा मे मानव अन्त. करण की मूर्त और कलात्मक व्यंजना करती है ।[३] आलफ्रेड आस्टिन का कहना है कि कविता मे और भी कितने ही गुण क्यो न हो पर यदि वह संगीत विहीन और अर्थ की रमणीयता से हीन है तो फिर वह कविता नही हो सकती ।[४] लार्ड बायरन का कथन है कि जब मनुष्य के भाव और इच्छाये अतिम सीमा पर पहुँच जाती है तब वे कविता का रूप धारण कर लेती है । वास्तव मे कविता राग के सिवा कुछ नही है ।[५] फूलर के अनुसार कविता शब्दो के रूप मे सगीत और संगीत ध्वनि के रूप मे कविता है ।[६] इ० पो० नामक अमरीकन साहित्यकार ने संगीतमय शब्दावली को ही कविता कहा है ।[७]

काव्य और सगीत के स्वाभाविक सामजस्य को श्री मैथिलीशरण गुप्त जी ने कितने सुन्दर रूप में प्रकट किया है –

केवल भावमयी कला,
ध्वनिमय है संगीत ।

---

१. The Pocket Book of Quotations, Edited by Henry David, Page 279
२. बारटलेट्स फैमीलियर कोटेशन्स, पृ० २६६ (जे)
३. बेस्ट कोटेशन्स फौर औल ओकेजन्स, पृ० १८५
४. प्रयाग संगीत समिति, प्रयाग, वार्षिक संस्करण १६५३, पृ० ११
५. माधुरी, (पौष ३१० तु० सं० १६६०), सन् १६३३, भाग १, पृ० ७३८
६. दि न्यू डिक्शनरी आफ थौट्स, पृ० ४७०.
७. विशाल भारत, नवम्बर १६४६, पृ० ३८७

भाव और ध्वनिमय उभय,
जय कवित्व जय नीति ।।

कविता और संगीत का समन्वय ही काव्य का श्रेष्ठतम रूप है । श्रेष्ठ काव्य मे सगीत का स्थान अत्यंत महत्वपूर्ण है । वस्तुत काव्य स्वत. सगीत है । "संगीत आकार प्रधान काव्य है,काव्य सार्थक सगीत है ।"[१] "संगीत, अस्फुट वेदना, लालित्य, शब्द, अर्थ, भाव, सदेश, सत्य, कल्पना, माधुर्य, प्रवाह, कला, रहस्योद्‌घाटन की प्रवृत्ति, चमत्कार, आकस्मिक उन्माद, हृदय की वासना एव उल्लास तथा धुँधली स्मृतियों से विलसित अचानक प्रस्फुटित होनेवाली रचना कविता के नाम से पुकारी जाती है ।"[२]

पं० रामचन्द्र शुक्ल ने काव्य मे सगीत का योग आवश्यक माना है—"काव्य एक बहुत ही व्यापक कला है । जिस प्रकार मूर्त्त विधान के लिये कविता चित्र-विद्या की प्रणाली का अनुसरण करती है उसी प्रकार नाद-सौष्ठव के लिए वह संगीत का कुछ-कुछ सहारा लेती है । नाद-सौदर्य से कविता की आयु बढती है । तालपत्र, भोजपत्र, कागज आदि का आश्रय छूट जाने पर भी वह बहुत दिनो तक लोगो की जिह्वा पर नाचती रहती है । बहुत सी उक्तियो को लोग उनके अर्थ की रमणीयता इत्यादि की ओर ध्यान ले जाने का कष्ट उठाए बिना ही प्रसन्न चित्त रहने पर गुनगुनाया करते है । अत. नाद-सौदर्य का योग भी कविता का पूर्ण स्वरूप खडा करने के लिए कुछ न कुछ आवश्यक होता है ।[३]

कलाओ मे काव्य-कला तथा संगीत-कला की श्रेष्ठता को स्वीकार करते हुए आचार्य ललिताप्रसाद जी सुकुल ने काव्य तथा संगीत को एक दूसरे का पर्यायवाची माना है—"कहते है, काव्य और संगीत कला की उत्कृष्ट सीमा है, साहित्य का सिरमौर है । आखिर काव्य और सगीत मे वह कौन सा तत्व है जो इन्हे यह प्रतिष्ठा कराता है । यदि कहे सुन्दर सरस शब्दावली तो यह तो काव्येतर साहित्य के अन्य रूपो मे भी संभव है । यदि कोई कहे भावनाओ का चुटीला चित्रण तो यह भी केवल काव्य का या संगीत का मुखापेक्षी नही । तब शायद कहना पडेगा कि सरस शब्दावली और भावनाओ के सजीव चित्रण जब ताल और स्वर मे बँध कर या किसी अन्य ऐसे ही विधान मे सजकर व्यक्त होते है जिनके द्वारा आन्तरिक समन्वय की प्रतिस्थापना हो जाती है और रस का प्रवाह उमडने लगता है तो उसे ही काव्य या सगीत कहते है ।"[४]

---

१. सिद्धांत और अध्ययन, गुलाबराय, पृ० १११
२. समाज और साहित्य, आनंद कुमार, पृ० २३
३. चिन्तामणि, (प्रथम भाग), रामचन्द्र शुक्ल, पृ० १७९–८०
४. साहित्य-जिज्ञासा, ललिता प्रसाद सुकुल, हिंदी और बंगला का साहित्यिक आदान-प्रदान, पृ० ५३

संगीतज्ञों का मत

इसी प्रकार सगीतज्ञो का कहना है कि सगीत को कविता से अलग करना मानो उसके प्रभाव तथा महत्व को बहुत न्यून कर देना है। काव्य मे निहित संगीत तत्व उसके आह्लादकारी प्रभाव और महत्व को द्विगुणित कर देता है। वह मानव-हृदय में अलौकिक आनद का उद्रेक करता है। अत कविता का सगीतमय रूप नष्ट कर देना उसकी दिव्य शक्ति का ह्रास कर देना है। गायनाचार्य पं० विष्णुदिगम्बर जी का मत है कि—"सगीत और काव्य का जब मेल होता है तब सोने मे सुगध आ जाती है। सरस्वती की वीणा-पुस्तक का मेल इसी का निदर्शन है।"[१] आकाशवाणी इलाहाबाद से श्री सुमित्रानदन पत ने प० ओंकारनाथ ठाकुर से प्रश्न किया था कि आपकी दृष्टि मे सगीत और काव्य का क्या संबध है? इसके प्रत्युत्तर मे पडित जी ने कहा था——"मेरी दृष्टि मे अकारादि व्यंजनों के साथ 'अ' आदि स्वर का जो सबंध है, देह के साथ आत्मा का जो सबध है वही सगीत का कविता से संबध है। काव्य गाने के लिए होना चाहिए यह प्राचीन मान्यता है। ऐसा 'छदो वाक्य प्रयोगेषु', 'काव्य छन्दसु गान काव्येषु', 'तान सलाघनं गानेषु उच्यते' इन उक्तियों से पता चलता है। काव्य और गान एक दूसरे से मिले हुए है। माता सरस्वती के ये दो स्तन साहित्य और सगीत है। उन्ही का दूध पी-पीकर साहित्यकार साहित्यकार वना है और सगीतकार सगीतकार।"[२]

यही नही रणजीतराम-स्मारक-सुवर्ण-चन्द्रक के अवसर पर 'अपनी सगीत संस्कृति' पर भाषण देते हुए ठाकुर जी ने सगीत तथा साहित्य के अविच्छिन्न संबध की पुष्टि का महत्वपूर्ण शब्दो मे समर्थन किया है। मै तो साहित्य को सदैव ही सहोदर मानता आया हूँ, कारण 'संगीतमय साहित्य सरस्वत्या कुचद्वयम्।' साहित्य जिसका जीवन है और संगीत जिसके जीवन का निष्कर्ष है ऐसी 'वीणा पुस्तक धारिणी भगवती भारती माता के युगल पयोधरो का ग्रहण करके ही जिसके जीवन की गठन गढी गई है। ऐसे साहित्यकार तथा सगीतकार के लिए······भाई के अतिरिक्त अन्य कौन सा सबंध योग्य गिना जाय। अपनी दो आखे जो कि साथ ही देखती है, हॅसती तथा रोती है, बिल्कुल ऐसा ही सबध साहित्य और सगीत का है।

"मै तो प्रतिपल अनुभव करता हूँ कि स्वरो के सम्वाद मे ही आनद है, हृदय के मिलन मे ही सुख है, सम्वाद उसी संगीत का जीवन-धर्म है। राग धर्म मे विसंवाद सर्वथा निषिद्ध है, त्याज्य है। दो नेत्र मिले, दो जीवन मिले, दो रंग मिले, दो स्वर मिले और नया जीवन

---

१. माधुरी, दिसम्बर १९२७, गायनाचार्य पं० विष्णुदिगम्बर जी से साक्षात्कार, मुकुटधर पांडेय, पृ० ७०२

२. संगीत, मार्च १९५२, कविता और संगीत, पं० ओंकारनाथ ठाकुर, पं० सुमित्रानंदनपंत तथा डा० रामकुमार वर्मा की अंतरवार्ता, पृ० २४८

जागे । एक और एक का सा ाम इसीलिए तो ग्यारह है । गगा और यमुना के संगम से ही प्रयाग को तीर्थराज का महान पद प्राप्त हुआ है यह किस से छिपा है । जहाँ द्वैत भाव है वही दु ख है । 'प्रेमगली अति साँकरी तामे दो न समायें' यही अद्वैत है और इसी लिए अद्वैत का अर्थ है सत्य, शिव, सुन्दरम् ।"

"मेरी समझ मे नही आता कि साहित्य-सगीत के उस ताने-बाने को किस प्रकार अलग किया जा सकेगा । दूध मे मिला पानी जब तक दूध मे मिला है तब तक दूध के मूल्य ही बिकता है और बिकेगा । किंतु विकृति से दूध फट जाय तो ? दूध और पानी अलग हो जाये तो ? तो साहित्य और संगीत के ऐसे अबेध सम्बन्ध में क्यो भेद पटका जाय ?"[१]

आकाशवाणी दिल्ली से श्री बी० एन० भट्ट ने ब्राडकास्ट करते हुए 'सगीत का मूल्याकन, नामक लेख मे सगीत तथा काव्य को अन्योन्याश्रित तथा पूरक स्वीकार किया है — "काव्य और संगीत परस्पर इतने अन्योन्याश्रित है कि काव्य को शब्दो मे सगीत और संगीत को स्वरों मे काव्य कहा जा सकता है । यह ललित कलाओ का पारस्परिक आदान-प्रदान है । रसोद्रेक मे यह विनिमय सहायक भी पर्याप्त होता है ।"[२]

श्री विट्ठल भूषण रा० शुक्ल सगीतरत्न ने साहित्य और संगीत को सहोदर मानते हुए एकदूसरे का पर्यायवाची माना है—"साहित्य और सगीत यद्यपि एक दूसरे के भाई भाई हैं क्योकि दोनो की उत्पत्ति नाद से है तथापि नाद के गुह्यतम अर्थ एवं व्यापकता का मनन किया जाय तो यह निर्विवाद सिद्ध होगा कि संगीत (नाद, ध्वनि, श्रुति, स्वर) स्वय काव्य है जो उर्मि तन्त्री को झकृत कर रागात्मक जीवन की पुष्टि करने की शक्तिमत्ता रखता है ।"[३]

।यद्यपि साहित्य और संगीत पृथक-पृथक भी सच्चे आनद को प्रदान करने वाले है । बिना संगीत के काव्य तथा बिना काव्य के उत्कृष्ट कोटि के सगीत का सृजन भी हो सकता है । जिस समय हम किसी सुन्दर कविता को पढते हैं तो उस समय हमारा हृदय आनंदविभोर हो जाता है । उसी प्रकार श्रवण-सुखद सगीत की सुमधुर ध्वनि कान मे पड़ने से प्रसन्नता का पारावार नही रहता । तथापि दोनो का सयोग सोने में सुगंध उत्पन्न कर देता है । साहित्य तथा संगीत-कला अपना स्वतत्र अस्तित्व रखते हुये भी अनेक अशो में अन्योन्याश्रित है । दोनो का पारस्परिक विरोध सर्वथा अवाछनीय है । सहयोग तथा एकता मे ही दोनो की उन्नति, प्रगति और उत्कर्ष निहित है । जहाँ साहित्य और संगीत दोनो मिलकर स्वर्गीय आनद प्रदान करते है वहाँ की छटा अनुपम हो जाती है । काव्य और सगीत की स्वतत्र सत्ता होते हुए भी दोनों का चोली दामन का साथ है ।\

---

१. संगीत, मार्च १९४७, अपनी संस्कृति, पं० ओंकारनाथ ठाकुर, पृ० १६५

२ संगीत, जून १९५०, पृ० ४०६

३. संगीत, मार्च १९५५, भारतीय संगीत, विट्ठल भूषण रा० शुक्ल, संगीत-रत्न, पृ० ६

संगीत-कला एवं काव्य-कला में समानतायें

यो तो विभिन्न कलाओ मे थोडी बहुत समानता तथा असमानता अवश्य होती है किंतु अन्य कलाओ की अपेक्षा साहित्यकला और सगीतकला की पारस्परिक विभिन्नतायें न्यून और महत्वहीन है तथा उनकी विशेषताओ और गुणो मे अत्यधिक ममानताये है ।

क्रोचे के कथनानुसार कला एक अखण्ड अभिव्यक्ति है । अत. कलाशास्त्र अथवा दार्शनिक किसी भी दृष्टि से कला का विभाजन नही किया जा सकता परतु जब हम विभिन्न कला-सृष्टियो पर विचार करते है और कलाओ के मूर्त रूप पर दृष्टि डालते है तब हमे कला की भिन्नता के दर्शन होते है । अस्तु कलाओ का वाह्य वर्गीकरण करना अनिवार्य हो जाता है ।

साहित्यकारो ने कला का विभाजन करते हुए उसके दो रूप ठहराए है—एक तो उपयोगी कला और दूसरा ललित कला । उपयोगी कला मे बढई, सुनार, लोहार, कुम्हार, राज आदि आते है और ललित कला के अन्तर्गत वास्तुकला, मूर्तिकला, चित्रकला, सगीत कला एव काव्यकला । सभी कलाये उन्नति एव विकास की द्योतक हैं । अंतर केवल इतना ही है कि एक का संबंध मनुष्य की शारीरिक और आर्थिक उन्नति से है और दूसरी का उसके मानसिक एव शारीरिक विकास से ।

ललित कला भी मुख्यत दो भागो मे विभक्त की जा सकती है—

१—जो नेत्रेन्द्रिय के सन्निकर्ष से मानसिक तृप्ति प्रदान करती है । जिसमे मूर्त आधार की आवश्यकता पडती है । इसमे वास्तु, मूर्ति और चित्र कलाये आती है ; २—जो कर्णेन्द्रिय के सन्निकर्प से इस तृप्ति का साधन बनती है । इसमे काव्य तथा सगीत-कला आती है । इस प्रकार काव्य तथा सगीत दोनो ही कलाये ललित कला के अन्तर्गत अमूर्त कला के मनोहर अंग है जिममे मधुरता, सुन्दरता और असीम आकर्षण है । दोनों का ग्रहण कर्णेन्द्रिय से ही होता है ।

श्री नलिनी मोहन सान्याल ने ललित कलाओ का श्रेणीविभाग करते हुए उसे प्रधानत दो भागो मे विभक्त किया है—(१) गतिशील, (२) स्थितिशील । स्थितिशील ललितकला निरनर एक ही स्थान पर स्थिर रहती है । स्थापत्यकला और चित्रकला इसके अन्तर्गत आती है । वास्तुकला पूर्णत स्थितिशील है । भास्कर्य तथा चित्रकला मे यदा कदा सचलन का सकेत रहने पर भी प्रतिकृतियाँ एक ही भाव मे उत्पन्न रहती हैं । चित्र-लिपि मे एक वार जिस स्थल पर जो वस्तु दिखा दी गई वह वहाँ से एक पग भी हट नही सकती ।

दुख-सुख-समाकुल दुरूह अनंत चिरचंचल गतिशील जीवन का चलचित्र जिस ललित-कला के अन्तर्गत प्रदर्शित होता है वह गतिशील कहलाती है । इसके अन्तर्गत नृत्य नाटच, सगीत और काव्य आते है । नृत्य-कला मे मनुष्य के अंग-प्रत्यग का पूर्ण संचलन होता है । नाटच-कला भी सचेष्ट कला है । संगीत मे विविध वाद्यो के वादन मे हस्त की विलबित

अथवा द्रुत गति रहती है । गायन मे वाग्यत्र तथा स्वरयत्र का संचलन होता है । इसमें मानसिक आवृत्ति पहले होती है तत्पश्चात् बाह्य क्रिया । यही बात काव्य मे दीख पडती है । रचनाकाल मे काव्य मूक है । उस समय उसकी गति दृश्य नही होती । ध्वनियुक्त आवृत्ति के समय वाग्यत्र की क्रियायें होती है । उच्चरित कविता अथवा गायन का कोई स्थायित्व नही । उच्चरित होने के साथ ही उनका लोप हो जाता है । इस प्रकार भी सगीत तथा काव्य दोनो ही कलाये गतिशील ललित-कला के अन्तर्गत आती है ।।

काव्य और सगीत दोनो कलाये स्थिर रूप मे एक ही बार नही ग्रहण की जा सकती । प्रत्येक पक्ति के साथ कविता का और स्वर के प्रत्येक आरोह तथा अवरोह के साथ सगीत का प्रभाव आगे बढता है । "चित्र को हम एक ओर से दूसरी ओर, दाये से बाये जिस प्रकार चाहे देख कर समान आनंद प्राप्त कर सकते है । पर कविता और सगीत मे गति आगे की ओर बढ़ती है । इसमे पीछे से आगे और आगे से पीछे बढकर एकसा आनद नही प्राप्त कर सकते ।"[१]

' गायक तथा कवि दोनो शब्दो का एक ही अर्थ है । गायक गाने वाले को कहते है । कवि शब्द का धात्वर्थ भी गानेवाला ही है । कवि शब्द "कु" धातु से सिद्ध होता है जिसका अर्थ ध्वनि करना है । ईश्वर का भी कवि नाम होने का एक कारण यह भी है कि उसने वेदमत्र ऋषियों के हृदय मे गाकर सुनाए । यही नही कवि और गायक दोनो दिव्यमानस-धारी असाधारण व्यक्ति होते है। पं० ओकारनाथ ठाकुर ने कहा है "जो कवि और गायक नही है फिर भी कवि और गायक होने का दावा रखते है उन्हे कवि और गायक का सा दिव्यमानस कहाँ से प्राप्त हो सकता है जो रहस्यो को प्रकाश मे लाये ।[२]

सगीत-कला का आधार नाद है । नाद का मुख्य उद्गम कठ है । इस नाद का नियम कुछ निश्चित सिद्धातो के अनुसार किया जाता है । संगीत के सप्तस्वर इन सिद्धातो के आधार है । ये ही सगीतकला के प्राणरूप है । नाद का आस्वादन कर्णेन्द्रिय की मध्यस्थता से होता है । अत यह स्पष्ट है कि सगीतकला का सवाहक नाद है । काव्य शब्दो का एक विशेष आरोह अवरोह, सगति, सक्रम या तारतम्य है । "शब्द एक ओर जहाँ अर्थ की भाव-भूमि पर पाठक को ले जाते है वहाँ नाद के द्वारा श्राव्यमूर्त विधान भी करते है । काव्य-कला का आधार भाषा है जो नाद का ही विकसित रूप है । अस्तु काव्य और सगीत दोनो के आस्वादन का माध्यम एक ही है । केवल अन्तर इतना है कि एक का आधार नाद का स्वरव्यजनात्मक स्वरूप है, दूसरे का आधार नाद का स्वरात्मक आरोह और अवरोह है ।"[३]

काव्य और सगीत दोनो ही लय पर अवलम्बित है । काव्य की रचना छदो मे होती

---

१. साहित्य का मर्म, हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृ० ११

२ संगीत, जुलाई १९५०, पृ० १६१

३. साहित्य का मर्म, हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृ० ११

आई है और छन्द ही के आधार पर कवि अपने भावो को काव्य का रूप देता है। छंद-लय[1] के ही आधार पर टिका हुआ नाद-विधान है। छंद मे प्राण-प्रतिष्ठा करने वाला यही तत्व है। छन्द और लय एक दूसरे के पूरक है। बिना एक के दूसरे की गति सभव नही। हमारी छदयोजना ही अपने मूल मे लयबद्ध है। छदो के नियम इस प्रकार है कि वे स्वत लय मे उतरते आते है। नवीन कलाकारो के हाथ मे कविता छंद के वर्णो एव मात्राओ से नही बँधी हुई है वरन् यह उन्मुक्त सरिता की भाँति अपनी ताल और लय के साथ बहती है।

सगीत का आधार भी लय है। सगीत वह ललित कला है जिसमे एक व्यक्ति अपनी भावनाओ को स्वर और लय के माध्यम से अभिव्यजित करता है। लय के सहयोग से ताल मे विभाजित करने के उपरान्त ही गायक अथवा वादक के पदो या गतो को स्वरो मे बाँध कर गाया जाता है। लय-ताल[2] ही भारतीय सगीत का प्राण है।

(प्राचीन युग मे छपाई की सुविधा तो थी नही। फलस्वरूप सगीतज्ञ स्वरो को लय में बाँध कर गाया करते थे और इसी लय के सहारे अपनी स्वर लिपि याद रखा करते थे।

---

१. "समय की समान चाल का नाम लय है। (लयः साम्यम्) शास्त्रकारों ने संगीत की लय तीन प्रकार की मानी है। यथा –'त्रयो लयास्तु विज्ञेसा द्रुत, मध्य, विलम्बिता' यानी लय के तीन भेद हैं द्रुत, मध्य तथा विलम्बित। इन तीनों प्रकार की लय की परिभाषा यह है –

"द्रुतो मध्यो विलम्बश्च द्रुतः शीघ्र मतो मतः।
द्विगुण द्विगणोज्ञेयो तस्मान्मदय विलिम्बितो ॥"

अर्थात् –विलम्बित लय की गति अत्यन्त मन्द होती है। विलम्बित लय की दूनी गति मध्य लय की होती है, तथा द्रुत लय की गति मध्य लय से दुगनी होती है। संगीत में गाते समय इन्हीं तीनों लय का प्रयोग होता है।" संगीत-सीकर, पृ० ११४

२ ताल—तालस्तलप्रतिष्ठाया मितिधातोर्घञ्जंस्मृतः।
गीतं वाद्यं तथा नृत्यं यतस्ताले प्रतिष्ठितम् ॥

गाना, बजाना तथा नाचना इन तीनों का आधार ताल है। ताल शब्द तल धातु से घंज प्रत्यय से बनता है।····· संगीत का एकमात्र अवलम्ब ताल है।······ 'तालः कालक्रियामानम्' इस दृष्टि से गाने बजाने अथवा नाचने में जो समय व्यय होता है उसकी नाप को ताल कहते हैं। यह गत तबला मृदंग इत्यादि वाद्यों की सहायता से नापी जाती है।

"लय.श्रोणित रूपेण, मात्रा नाड़ी स्वरूपत.।
घाताऽवयवाश्चैव, तालो वै पुरुषा कृति ॥"

ताल रूपी पुरुष का 'लय' रक्त है, मात्रा नाड़ी है और आघात ही अवयव है। इनमें से किसी एक का भी अभाव होने से इस ताल रूपी पुरुष का जीवित रहना अशक्य है।"

संगीत-सीकर, पृ० ११४

कविता भी कविगण लय के सहयोग से स्मरण कर लेते थे। लिखने की प्रथा न होने के कारण उन्हे स्मरण रखने की यही प्रणाली सरल प्रतीत हुई। लय की समानता के कारण ही छदो मे बँधी हुई कविता मे जो माधुर्य तथा ओजमयी अनुभूति होती है वही रसानुभूति सगीत की ताल मे भी प्रस्फुटित होती है।।

भारतीय संगीत तथा काव्य दोनो का विकास प्रकृति की क्रोड मे हुआ है। प्रकृति का विराटपट ही दोनो का आश्रयदाता है। कवि वही से सगीत के लिए प्रेरणा पाता है और सगीतज्ञ वही से सगीत की धुन। प्रकृति के अणु-अणु मे अव्यक्त नादाहारी नैसर्गिक सजीव सगीत व्याप्त है। अत प्रकृति सगीतज्ञ को सगीत की प्रेरणा देती है। भ्रमरो की गुजार, पवन का सचरण, पक्षियो का कलरव, झरने की कलकल आदि मधुर ध्वनियाँ सगीतज्ञ के सगीत की आधार-शिलाये है।।

प्राकृतिक सौंदर्य का रहस्योद्घाटन कर उसके रस मे डुबो देना ही साहित्य की सर्वोपरि विशेषता है। "काव्य मनुष्य और प्रकृति की छवि है। वह (कवि) मनुष्य और प्रकृति को मूलत परस्पर सामजस्य करते हुए मानता है और मानता है मनुष्य के मस्तिष्क को स्वभावत. प्रकृति के अत्यन्त सुन्दरतम तथा रोचक तत्वो का दर्पण।"[1] प्रकृति अवगुठनवती है। कवि कौतूहलपूर्ण है। इसी कौतूहलावृत्ति के कारण कवि प्रकृति की ओर आकर्षित होता है और उसके सौंदर्य पर रीझकर आत्मविभोर हो जाता है। कवि सुधबुध भूलकर उसी के गीत गाने लगता है। प्राकृतिक सौंदर्य से प्रभावित मनोभाव काव्य मे अपने सुन्दरतम रूप मे प्रगट होते है। प्रकृति-वर्णन भावो मे चार चाँद लगा देते है। प्रकृति का आधार अनेक कवियो ने लिया है। आदिकवि वाल्मीकि, कालिदास, वाणभट्ट, सूरदास, चंडीदास, वर्डसवर्थ आदि सभी ने प्रकृति से प्रेरणा पाई। सब के काव्यो मे प्राकृतिक सौंदर्य प्रस्फुटित हुआ है। हमारा दर्शन अरण्यो की देन है। हमारी शकुतला का अधिकाश जीवन हरिण शावकों तथा वनलताओं के सरक्षण ही मे व्यतीत होता हुआ कवियो ने दिखाया है। हमारे राम-लक्षण वशिष्ठ एव विश्वामित्र के आश्रमो मे शिक्षा प्राप्त करते दिखाए गए है। गोकुल मे गौये चराते हमारे कान्हा की भोली छवि पर कवि निछावर हुए है। सत्य तो यह है कि प्रकृति से पाए आनद, उल्लास तथा कौतूहल को प्रकट करने के लिए ही कवि ने काव्य की एव सगीतज्ञ ने सगीत की रचना की।

---

1. "Poetry is the image of man and nature..... He (poet) considers man and nature as essentially adapted to each other, and the mind of man naturally the mirror of the fairest and most interesting properties of nature."
Loci Critici, George Saintsbury ; Wordsworth on Poetry and Poetic Diction, Preface to Second Edition of Lyrical Ballads, 1800; P. p. 273-75

।सगीत और साहित्य का संबध मस्तिष्क से न होकर हृदय से है। साहित्यकार हृदय की उमडती तथा मचलती हुई भावनाओं को ही काव्य का रूप दिया करता है। कविता या किसी प्रकार का साहित्य मस्तिष्क से नही टकराया करता। उसका तो स्रोत हृदय है और वही से उमडकर वह काव्य का रूप धारण कर लेता है। यही बात हमे सगीत मे भी मिलती है। "मानव-हृदय की कोपलतम भावनाओ को जब स्वर और ताल के ढाँचे मे ढाल दिया जाता है तब उसकी सज्ञा सगीत होती है।"[१] गायक अपने मस्तिष्क से नही खिलवाड करता, वह तो भावनाओ का वदी होकर झूमता जाता है और उसी की प्रेरणा से राग-विस्तार करता है। अत साहित्य और सगीत यद्यपि मस्तिष्क को भी प्रभावित करते है किन्तु दोनो ही हृदय से उत्पन्न होते है। दोनो ही भाव प्रधान है। किसी विशेष मनोवृत्ति की अनुभूति मे हृदय के अन्तरतम से निकली हुई भावो की तीव्र धारा साहित्य तथा काव्य के सृजन का कारण होती है। हृदय के भावुक, सुकुमार और अंतरतम से उमडे हुए उद्‌गार सगीत और काव्य की छनछाया मे बिखर पडते है। जहाँ एक ओर भावो के सौदर्य से सगीत खिल उठता है और सगीत के सौदर्य से भाव, वही दूसरी ओर भावो को काव्य से अनुपम सौदर्य मिलता है और भावो के सुन्दर समन्वय से काव्य जगमगा उठता है।।

। जब हम साहित्य और सगीत के उद्देशो की ओर दृष्टि डालते है तो हमे दोनो का ध्येय एक ही मिलता है। मनुष्य जीवन का महत्तम ध्येय आनंद प्राप्त करना है। प्राणी-रूप मे मनुष्य का आनंद ऐन्द्रिय आनद होता है जो क्षणस्थायी है। किंतु इसी आनंद के अनुसंधान मे वह मानसिक और आध्यात्मिक आनंद की उपलब्धि का मार्ग भी प्रस्तुत कर लेता है। यह उसे साहित्य तथा सगीत दोनों ही कलाओं के द्वारा प्राप्त होता है। काव्य और सगीत का संबध चेतना-लोक से होने के कारण इसका मूल अव्यक्त रूप भी चेतना की भाँति ही अनत प्रकाशमय ब्रह्मतत्व है। /

। साहित्य और सगीत दोनो ही हमे रसानुभूति कराते है। 'रजको जन चित्तानाम स राग कथितो बुधै' के अनुसार सगीत का ध्येय मनुष्य के हृदय को प्रफुल्लित तथा आनदित करना है। जहाँ साहित्य हमे प्रकृति तथा कल्पनालोक के सुन्दर-सुन्दर आवरणो का दर्शन कराके एक लौकिक आनद का अनुभव कराता है वहाँ सगीत के मधुर स्वर हृदयतत्री को छेड़कर जो रसानुभूति कराते हैं वह अवर्णनीय है। अस्तु काव्य और सगीत दोनो ही सौदर्य और रमणीयता का सृजन करते है।।

।साहित्य और सगीत दोनों ही मे हँसाने-रुलाने की क्षमता है। दोनो ही शोकसागर मे डुबा सकते है, उससे उबार सकते है तथा हृदय मे शाति की अपूर्व धारा प्रवाहित कर सकते है। दोनो ही हमारे मन को इच्छानुसार चंचल-उन्मत्त कर सकते है। दोनो का उद्देश्य आत्मा को प्रभावित करना है। दोनों का प्रभाव अत्यन्त व्यापक है और निरंतर मनुष्य पर पड़ता चला आ रहा है।।

१. सगीत, जून १९५०, संगीत का मूल्यांकन, बी० एन० भट्ट, पृ० ४०५

संगीत और साहित्य की कोमल भावनाये एकमात्र पढे लिखे और विद्वानवर्ग तक ही सीमित नही है। सगीत और काव्य की मार्मिक उक्तियो का प्रभाव शिक्षित तथा अनपढ सभी मनुष्यो पर पड़ता है।

गायक तथा गुणग्राहक भी साहित्य और संगीत में समान रूप से लागू होते है। साहित्य अथवा संगीत को समझने के लिए उसी प्रकार का श्रोता होना चाहिये। यदि श्रोता गायक या कवि के समान भावना प्रधान नही है तो उसको पूर्णतय· रसानुभूति न प्राप्त हो सकेगी। कलाकार के हृदय से समरस हुए बिना श्रोता अथवा पाठक साहित्य तथा सगीत का रसास्वादन नही कर सकते। कवि तथा संगीतज्ञ दोनो ही आत्मानुभूत सौदर्य को अपनी कलाकृति से प्रगट करते है और श्रोता अपने हृदय के सामजस्य से उसका अनुभव कर उसकी लहरो मे झूमता-खेलता आत्मविभोर हो उसका रसास्वादन करता है। काव्य तथा सगीत का रसास्वादन करने के लिए पहले भावुक सहृदय बनना पडता है। यदि किसी अरसिक कोरे वैज्ञानिक को सगीत और साहित्य को सुनवाने के लिए बुला ले तो वह केवल उसका स्वरूप ही समझ सकेगा, उसे उसका नैसर्गिक आनंद किसी भी दशा मे प्राप्त न हो सकेगा। दोनो ही कलाये सहृदयता सापेक्ष है। अत. बिना सहृदयता के न साहित्य की ओर रुचि होती है और न सगीत की ओर।।

संगीत तथा साहित्य दोनो ही कलाओ में कलाकार अपनी कला की साधना में ज्यो-ज्यो वृद्धत्व को प्राप्त होता है त्यो-त्यो उसकी कला यौवनत्व को प्राप्त होती है।

कलाओं में संगीत कला की श्रेष्ठता

ललितकलाओ मे काव्यकला श्रेष्ठ है अथवा अन्य कला यह एक विवादग्रस्त प्रश्न रहा है। साहित्य के विविध रूपो की श्रेष्ठता पर समालोचको द्वारा विस्तृत विवेचना तथा समीक्षा की गई है किंतु संगीत की ओर उन्होने प्राय· पाठको का ध्यान आकर्षित नही किया। पाश्चात्य विद्वानो नैपोलियन,[१] हौग,[२] लूथर,[३] रिचर[४] (Richter), एलह्यू ब्यूरिट

1. "Music of all the liberal arts has the greatest influence over the passions and is that to which the legislator ought to give the greatest encouragement."
2. "Of all the arts beneath the heaven that man has found or God has given, none draws the soul so sweet away, as Music's melting, mystic lay, slight emblem of the bliss above, it soothes the spirit all to love.
3. "Next to theology I give to music the highest place and honour. And we see how David and all the saints have wrought their godly thoughts into verse, rhyme and song."

   The New Dictionary of Thoughts, Pp. 414-15
4. "Music is the only one of the fine arts in which not only man but all other animals, have a common property—mice and elephants, spiders and birds."

(Elihu Burritt)[1], एडिसन[2], लागफैलौ (Longfellow)[3], एच० गिल्स (H. Giles)[4], श्रीमती स्टोव (Mrs Stowe)[5] आदि ने अवश्य सगीत की महत्ता की ओर सकेत किया है किंतु सगीत अभी तक इतना उपेक्षित रहा है कि संभवत· समालोचको को इतना अवकाश ही नही रहा कि उसकी श्रेष्ठता का विवेचनात्मक रूप से प्रतिपादन करते लेकिन मनन पूर्वक सोचे तो यह ज्ञात होगा कि संगीत-कला भी कम महत्वपूर्ण स्थान नही रखती ।

यह नितांत सत्य है कि कला एक अखंड अभिव्यक्ति है किंतु विभिन्न ललित कलाओं के अभिव्यजक माध्यम की पृथकता के फलस्वरूप उनके मूल्याकन मे पारस्परिक अन्तर उपस्थित हो जाता है । माध्यम अथवा मूर्त आधार की मात्रा तथा सूक्ष्मता के अनुसार ललित कलाओ की श्रेणियाँ उत्तम और मध्यम स्थिर की जाती है । जिस कला मे मूर्त आधार जितना ही अधिक सूक्ष्म अथवा स्थूल होता है उसका स्तर उसी अनुपात मे उच्च अथवा निम्न होता है । वास्तुकला में मूर्त आधार निकृष्ट तथा स्थूलतम होता है । ईंट, पत्थर, लोहे आदि के द्वारा सौदर्य उत्पन्न किया जाता है । मूर्तिकला मे मूर्तिकार, मूर्त आधार पत्थर, प्रस्तर-खड, धातु, मिट्टी को काट-छाँट कर अथवा ढालकर छेनी तथा हथौड़ी आदि के माध्यम से अपने अभीष्ट आकार मे परिणित करता है, परिणामस्वरूप मूर्ताधार अपेक्षाकृत सूक्ष्म हो जाने से मूर्तिकला वास्तुकला से कुछ श्रेष्ठ मानी जाती है । चित्रकार के पास मूर्तिकार से मूर्त आधार का आश्रय कम रहता है । रंग, तूलिका, पट और रेखाओ के द्वारा चित्र अकित किया जाता है । अत: चित्रकला इन दोनो कलाओ से उच्च है । काव्य-कला शाब्दिक सकेत के आधार पर अपना अस्तित्व प्रदर्शित करती है । उसके अन्तर्गत भावनाओ का व्यक्तीकरण अक्षरो के सहयोग से निर्मित शब्दों के माध्यम से होता है । कवि गद्य लिखे अथवा पद्य शब्दो का आधार उसे ग्रहण करना ही होता है । इसमे सशय नही कि वर्णमाला के गिने चुने अक्षरो का मूर्ताधार अत्यधिक सूक्ष्म है । शब्द पहले की सभी सामग्री की अपेक्षा तरल और सूक्ष्म है किंतु संगीत-कला में मूर्ताधार सूक्ष्मतम स्वरूप को प्राप्त हो

---

1. "Among the instrumentalities of love and peace, surely there can be sweeter softer, more effective voice then that of gentle peace-breathing music."
2. "Music is the only sensual gratification in which mankind may indulge to excess without injury to their moral or religious feelings."
3. "Yes Music is the prophet's art, among the gifts that God hath sent, one of the most magnificent."
4. "The direct relation of Music is not to ideas but to emotions in the works of its greatest masters, it is more marvellous, more mysterious than poetry."
5. "Where painting is weakest, namely in the expression of the highest moral and spiritual ideas, there Music is sublimely strong."

   The New Dictionary of Thoughts, Pp 414-15

जाता है। संगीत मे नाद का परिमाण अर्थात् आरोह या अवरोह ही उसका आधार होता है। संगीत-कला के सवाहक या आधार स, रे, ग, म, प, ध, नि ये सप्त स्वर है। इन सप्त स्वरो का स्वरूप ही कितना होता है । सगीत के लिए न तो ईंट, पत्थर की आवश्यकता होती है, न छेनी हथौडी की, न रग तूलिका आदि की और न शब्द-भडार की । वास्तुकार जिस उल्लास भरी मुस्कान अथवा मादक यौवन की मूर्ति को ईंट-पत्थर से गढ कर प्रगट करता है, मूर्तिकार कठोर पत्थर को तराश कर रूप प्रदान करता है, चित्रकार जिसे रग और तूलिका के माध्यम से स्पष्ट करता है और कवि जिसे शब्दो के ताने-बाने से रचकर सजोता है उसे संगीतज्ञ एकमात्र अपने स्वर के उतार-चढाव से ही मूर्मितान कर सजीव बना देता है। अत. संगीत-कला मे मूर्ताधार सूक्ष्मतम् रूप को प्राप्त हो जाता है। भावनाओ के व्यक्तीकरण मे जहाँ कवि शब्दो का आश्रय ग्रहण करता है वहाँ सगीतज्ञ को एकमात्र गिने हुए संतुलित और सधे हुए सप्त स्वरो का ही अवलम्ब होता है। कवि सार्थक शब्दो की सहायता से तथा उपयुक्त वातावरण का सहारा ले कर अभीष्ट रूप अथवा रस की सृष्टि करता है, जिस प्रक्रिया को काव्यशास्त्र में आलम्बन, उद्दीपन इत्यादि के विधान से स्पष्ट किया गया है; किंतु सगीतज्ञ के लिए न तो अर्थ पूर्ण शब्दो का सहारा ही सुलभ रहता है और न वातावरण की सृष्टि का अवसर ही होता है, उसे केवल स्वरों की ध्वनि से ही वातावरण, रस और वाछित अर्थ की भी अवतारणा करनी होती है। स्वरो तथा ध्वनि की उच्चारण प्रक्रिया, स्वरपात एव स्वरों के कंपन मात्र से ही संगीतज्ञ कोमलतम भावनाओ के सूक्ष्मतम भेद प्रदर्शित करता है। सगीतज्ञ के सन्मुख केवल स्वरों का उतार-चढाव ही है। इन्ही सप्त स्वरो मे सगीतज्ञ को अपनी सम्पूर्ण कला का प्रदर्शन करना पडता है जब कि साहित्यकार के सम्मुख परिपूर्ण सामग्री उपस्थित रहती है। इस पक्ष को लेकर यह कहा जा सकता है कि सगीत-कला सर्वश्रेष्ठ कला है।

यों तो कवि बड़ा समर्थ कलाकार होता है। वह अपनी कल्पना के थिरकते पंखो पर बैठा कर स्वर्णिम लोक मे विचरण करता है। अन्य कलाएं अपने उपकरणो के कारण बद्ध है किंतु कवि के लिए भी एक बंधन है । उसका प्रभाव उसी व्यक्ति पर पड सकता है जो उसकी भाषा से परिचित हो। "कवि की सामग्री शब्द है। शब्द में जहाँ बडी तरलता है वहाँ एक यह दोष है कि वह उन्ही लोगों के काम का है जो उस भाषा को जानते हो जिसका वह अंग है। केवल कोष और व्याकरण से काम नही चलता क्योकि अपने सैकड़ों वर्षो के इतिहास मे शब्द अपने साथ ऐसा बहुत सा बारीक अर्थ समेट लेते है जो न तो व्युत्पत्ति से समझ मे आ सकता है न संधि-समास के नियमो से निकल सकता है। 'सती' या 'सहधर्मिणी' शब्द जो भाव हिन्दू संस्कृति मे निमग्न व्यक्ति के हृदय मे उत्पन्न करते है वह क्या किसी कोष मे मिल सकता है? गगा, यमुना, सरस्वती नदियों के नाम नही है आर्य जाति की सहस्र-सहस्र भावनाओं के नाम है । इसीलिए काव्य का पूरा आनंद अनुवाद में नहीं मिलता।"[1] किंतु सगीत इस बंधन से भी उन्मुक्त है। यह एक विश्वव्यापी कला है, जिसकी

१. दर्शन और जीवन, सम्पूर्णानद, पृ० १७४

सुरम्य तान सृष्टि के एक कोने से दूसरे कोने तक प्रत्येक को मुग्ध करती है । रोते हुए भोले अबोध शिशु को चुप कराने मे काव्य की सुन्दर, मधुर तथा भावुक उक्तियाँ काम ही नही दे सकती किंतु कोई भी नाद यथा बजने और झकृत होने वाले खिलौने तथा थाली, कटोरा, चम्मच आदि की ध्वनि पूर्णतया सफल हो जाती है । सगीत की इस महत्ता को प्रकट करते हुए ही कहा गया है –

अज्ञात विषयास्वादो बाल. पर्यकिकागत
रुदन्तगीतामृतं पीत्वा हर्षोत्कर्ष प्रपद्यते ।।[1]

अर्थात–पालने पर पडा हुआ रोता बच्चा जो कि अभी किसी विषय के स्वाद को नही जानता गीत के अमृत को पीकर अत्यन्त हर्ष को प्राप्त होता है । तथा –

दोलायां शायितो बालो रुदन्नास्ते यदा क्वचित् ।
तदा गीतामृतं पीत्वा हर्षोत्कर्षे प्रपद्यते ।।[2]

जब कही झूला मे लिटाया हुआ बालक रोता है तव गीतो के अमृत को पीकर ही प्रसन्न हो जाता है । सगीत की इसी विशेषता को लक्ष्य कर रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने कहा था– "जहाँ अभिव्यजना मे काव्य असमर्थ है वहाँ से सगीत की प्रथम सीढ़ी प्रारम्भ होती है ।"[3] जहाँ शब्दमयी लौकिक भाषा की गति अवरुद्ध हो जाती है वहाँ सगीत की दिव्य भाषा का प्रारम्भ होता है । सगीत के गान किसी भाषा विशेष के गान न होकर मानव हृदय के गान होते है जिनका प्रभाव नाद के सहारे किसी भी देश के निवासी पर सहज ही पड जाता है। लैंडन ने कहा है–"सगीत तो विश्व भाषा है । जहाँ वाणी मूक हो जाती है वहाँ सगीत फूट पडता है । सगीत हमारी भाषाओ की नैसर्गिक अभिव्यक्ति का माध्यम है । शब्दो मे जिनकी प्रखरता और गहराई समा नही सकती हमारी ऐसी अनुभूतियो को सगीत स्वरो का रूप देता है ।"[4] उच्च संगीत मे विश्व-रजन की अपूर्व क्षमता है । संगीत के इसी व्यापक प्रभाव की ओर इगित करते हुए साहित्य और संगीत के श्रेष्ठ समालोचक रोम्यांरोला (Romain Rolland) ने कहा है –"उच्चतम सगीत का प्रभाव देश, काल और व्यक्ति तक सीमित नही है । यह सबको अपने अक्षय भडार से कुछ न कुछ अवश्य देगा ।"[5]

माननीय डा० सम्पूर्णानंद जी का भी कहना है कि –"सगीत शब्दो से उठकर स्वरो से काम लेता है । शब्दो का प्रयोग होता भी है तो थोडा । ध्यान शब्दों पर कम,

---

१. संगीत-रत्नाकर, शार्गदेव, पृ० ७, छंद २८
२. संगीत-पारिजात, अहोबल, पृ० ४, छंद १२
३. संगीत, मार्च १९५५, पृ० ९
४. संगीत, जून १९५५, पृ० ५५, वर्तमान संगीत रत्न–बेगम अख्तर फैजाबादी
५. संगीत, जनवरी १९५०, राग और साम्प्रदायिकता, अरुणकुमार सेन, पृ० ५६

स्वर संचरण पर अधिक रहता है। ऊँचा सगीत चाहे वह गेय हो या वाद्य केवल स्वरों से काम लेता है। स्वरों की भाषा सार्वभौम है। इसीलिए अच्छा सगीत मनुष्यो को ही नही पशुपक्षी तक को आकर्षित करता है। भाषा के बंधन से मुक्त होकर वह मनुष्य के हृदय के गभीर प्रदेशो में प्रवेश करता है और चित्त की ऊँची भूमिकाओं को स्पर्श करता है।"

गायनाचार्य पं० विष्णुदिगम्बर जी भी संगीत के इस महत्वपूर्ण पक्ष का समर्थन करते हुए कहते हैं —"काव्य और संगीत में उतना ही अन्तर है जितना सगुण और निर्गुण मे है। काव्य सगुण है और सगीत निर्गुण। काव्य केवल चेतन पर प्रभाव डाल सकता है। भाषा-भेद इसमे भी प्रतिबंध है। एक आग्ल भाषानभिज्ञ पर आंग्ल काव्य का कुछ असर नही पड़ सकता। इसके विरुद्ध सगीत का प्रभाव सम्पूर्ण चेतन प्राणियो के साथ जड़ पदार्थ पर भी पड़ता है।"[१]

ठाकुर जयदेवसिह का भी कथन है कि—"संगीत की भाषा 'स्वर' की है। हिदी, अग्रेजी, फ्रासीसी, फारसी इत्यादि तो जन विशेष और देश विशेष की भाषाये है पर 'स्वर' मानवमात्र की मातृभाषा है।"[२]

मानव चिरकाल से आनंद तथा सौदर्य की खोज मे लीन रहा है। आनंद तथा सौदर्य की सुदरतम अभिव्यक्ति ही कला है। हृदय पर अकित सौदर्यमयी भावनाओ को मनुष्य विभिन्न रूपो द्वारा अभिव्यजित करता है। मूर्तिकला मे प्रस्तर खड द्वारा, चित्रकला में रंगों और रेखाओ के सहयोग से, काव्यकला मे शब्दों के द्वारा और सगीत मे नाद के माध्यम से सौदर्य की सृष्टि होती है। इस सौदर्य के प्रस्फुरण से समस्तकलाओ में आनंद का उद्रेक होता है किंतु आनंद की अधिकतम अनुभूति होती है सगीत में। सगीत का विषय श्रोता का अपना ही अन्त करण है। अन्य कलाओ मे कला विशारद हमारे सामने जो सत्य रखता है उससे तादात्म्य प्राप्त करना अथवा उसके सम्पर्क से अन्तर्मुख होना अनिवार्य नही है क्योकि उसकी अभिव्यक्ति का आधार प्राय स्वय सवेद्य न होकर परसवेद्य होता है अत. वह हमारी बुद्धिको अन्तर्मुख करने मे सदैव सफल नही होता। सगीत में किसी वाह्य आधार का आश्रय ग्रहण नही करना पडता। वास्तुकला, मूर्तिकला तथा चित्रकला मे किसी प्राकृतिक वस्तु के माध्यम से भावो को प्रगट किया जाता है। काव्य मे शब्दों के द्वारा उसका प्रतिबिंब खीचा जाता है किंतु सगीत मे अपने ही हृदय में उत्पन्न नाद द्वारा भक्ति, करुण, श्रृंगार आदि रसात्मक भावो को प्रगट किया जाता है। अन्यान्य कलाओं के विपरीत सगीत वाह्य आधार पर नितांत अवलबित न होने के कारण उसके निर्माण मे मनुष्य को एकमात्र अपनी आत्मा का प्रतिबिब सन्मुख रखना पड़ता है। वह हमारे भीतर की रागात्मिका वृत्ति पर आधारित

---

१. **माधुरी, दिसम्बर १९२७, गायनाचार्य पं० विष्णुदिगम्बर जी से साक्षात्कार, मुकुटधर पांडेय, पृ० ७०२**

२. **सारंग, संगीत सुनने की कला, ठाकुर जयदेवसिंह, ७ दिसम्बर १९५४**

होता हुआ भी इतना प्रबल संक्रामक होता है कि श्रोता के गुह्यतम अन्तर की रागात्मक चेतना को केवल उकसाता ही नही वरन् विकासोन्मुख भी कर देता है ।" सगीत के अन्दर ताल और लय के अनुसार चलनेवाली नियमित गतियो का आत्मा से अत्यन्त निकट सबंध है । गतियाँ आत्मिक जीवन की साक्षात् अनुकृतियाँ है और आत्मिक जीवन स्वय क्रिया रूप अथवा गतिरूप है ।"[१] सगीत मे जो लोच और माधुर्य है वह हमें सहसा बहिर्जगत से खीचकर अन्तर्मुख कर देता है । अन्तरतम-सत्ता का दिग्दर्शन कराने मे सबसे अधिक समर्थ होने के कारण सगीत मे आनद की अधिकतम अनुभूति होती है और हम चरम आनद मे लीन होकर अपने अस्तित्व को विस्मरण कर देते है ।

संगीत स्वर-प्रधान है, काव्य शब्द-प्रधान । साहित्यिक सौदर्य शब्द की विशेष योजना द्वारा ध्वन्यार्थ का आस्वादन है । शब्द की ध्वनि उसका विशेष अर्थ है जिसका आस्वादन रसिक कल्पना के बल से अर्थ के आनंदमय प्रकाश लोक मे पहुँच कर करता है । सगीत का सौदर्य स्वरो की विशिष्ट योजना से उत्पन्न होता है जिसमे ध्वनि, प्रवाह, ताल, लय और सतुलन आदि के कारण ही जीवन मे अनुकूल प्रभाव का उदय होता है । इस दृष्टि से सगीत का सौदर्य साहित्यिक सौदर्य की अपेक्षा अधिक स्वाभाविक है । इसी दृष्टिकोण से श्री सम्पूर्णानन्द जी सगीत को कलाओ मे सर्वश्रेष्ठ स्थान देते हुए कहते है –"कलाओ मे सगीत का स्थान सबसे ऊँचा है । सगीत साहित्य से भी ऊपर उठता है, कवि जिन शब्दो से काम लेता है वह अपने अर्थो और ध्वनियो को नही छोड़ सकते इसलिए बुद्धि उनमे कुछ न कुछ उलझ ही जाती है । सगीत मे स्वर और ताल से काम लिया जाता है । स्वर उस आदि शब्द स्फोट की आदि अभिव्यक्ति है जिससे इस भौतिक जगत का विकास हुआ है, इसलिए बैखरी, मुँह से निकलने वाली स्वप्न राशि का अग होते हुए भी वह परावणी के बहुत निकट है । अच्छे गाने या बजाने वाले को भाषा मे कुछ बतलाने की आवश्यकता नही होती । स्वरो का आरोहावरोह प्राणो को बाहर से खीचकर ऊर्ध्वमुख कर देता है, चित्त विक्षेप को छोडकर मंत्र मुग्ध सर्प की भाँति निश्चल हो जाता है, नानात्व दब सा जाता है, शरीर के भीतर-बाहर एक सा झंकृत हो उठता है । ऐसा प्रतीत होता है कि देह का बधन छूट गया । मै उठता फैलता सा जाता हूँ, रस का सागर उमड़ सा आता है, अपने मे एक अद्भुत आनद छा जाता है । सामवेद के उद्गाता और वीणा के कुशल बजानेवाले अनाहतनाद के स्वर मे स्वर मिलाते है । नटवर के पायल ब्रह्माण्डो के स्पन्दन को ताल देते है । क्षण भर की भी ऐसी समाधिकल्प-अनुभूति मनुष्य को पवित्र कर देती है ।"[२] सगीत मे प्रयुक्त भाव, शरीर-मुद्रा, मुखमुद्रा आदि भाव-प्रकाशन के ऐसे नैसर्गिक साधन है जिनका अर्थ लगाने के लिए किसी तद्विषयक ज्ञाता की आवश्यकता नही वे भाषा के सदृश्य कृत्रिम नही है ।

---

१. **प्रतीक, जून १९५१, कला के पांच भेद, विश्वम्भर प्रसाद शास्त्री, पृ० १४**

२. **भाषा की शक्ति और अन्य निबंध, सम्पूर्णानंद, सौन्दर्यानुभूति और कला शीर्षक लेख, पृ० ५२**

कलाओं मे संगीत-कला का प्रभाव सबसे अधिक व्यापक, विस्तृत तथा गहरा होता है। लेनिन सगीत को कला का सबसे अधिक रहस्यमय और प्रभावोत्पादक रूप मानते थे। यहाँ तक कि उसकी लहरियो से वे विचलित हो जाते थे और अपने कान मोम से बद कर लेते थे।[1] यह सत्य है कि काव्य के मार्मिक स्थलो को पढ कर नेत्रो से अश्रुकणो की अविरल झडी लग जाती है, उत्साहवर्द्धक शब्दो से पराजय जय मे परिणित हो जाती है। किंबदन्ती के अनुसार यह भी है कि बिहारी के द्वारा भेजे गए एक दोहे ने नवोढ़ा रानी के रूप-प्रेम-आकर्षण से मुक्त न हो सकने वाले राजा के हृदय को क्षणमात्र मे ही परिवर्तित कर दिया किन्तु क्या काव्य के द्वारा अग्नि प्रज्वलित की जा सकती है, आकाश से वृष्टि की झडी लगवायी जा सकती है, पत्थर को जल के रूप मे पिघलाया जा सकता है, काव्य के करुणतम तथा सुन्दरतम स्थलो के निरन्तर उच्चारण से भी क्या जगली हरिणो को वश मे किया जा सकता है, मुरझाये वृक्षो मे क्या चेतना का पुन. संचार किया जा सकता है। कितु प्रसिद्ध जनश्रुतियो के आधार पर यह मान्यता है कि सगीत के द्वारा यह सभव किया जा सकता है। कागरेव (Congreve) ने भी सगीत की इस महान शक्ति का जोरदार शब्दों मे समर्थन किया है।[2]

संगीत के आस्वादन के लिए 'शब्दार्थ पूर्ण' साहित्य का प्रयोग सर्वदा अनिवार्य नही है। "इसमें सन्देह नहीं कि गान मे हमे स्वर और काव्य दोनो का आनंद मिलता है पर सगीत के लिए शब्द आवश्यक नही है। यदि ऐसा होता तो वाद्य-सगीत असभव हो जाता।"[3] सगीत अर्थपूर्ण शब्द रचना के बिना भी सिद्ध हो सकता है। संगीत चाहे नि.शब्द हो, अभिधापूर्ण शब्द विहीन हो तो भी उसके गायन अथवा सुनने से भावनाजन्य आनद मे कोई न्यूनता नही आयेगी। एकमात्र ताल तथा स्वर के अस्तित्व पर निर्भर वाद्ययत्र, गीत तथा शब्दों से शून्य हो कर भी भावाभिव्यजना मे सफल हो जाते है। तराना गाते हुए 'तोम दिर दारा त न न' आदि ध्वनियो मे भी जब विभिन्न रागो मे गाये जाते है तब लय और ताल ही के द्वारा उनमे भी श्रोताओ का पूर्ण भावोद्दीपन और रसोद्रेक हो जाता है अत सगीत काव्य के अभाव मे भी अपना गौरव और महत्व घटने नही देता जब कि काव्य सगीत के कुछ तत्वों के संयोग के बिना संभव ही नही है। उसका अस्तित्व सगीत के पुट का आश्रय पा कर ही पनपता है। यह सत्य है कि भाव या मानसिक चित्र ही वह सामग्री है जिसके द्वारा काव्य-कला-विशारद दूसरे के हृदय से अपना संबंध स्थापित करता है कितु इस सबध स्थापना की वाहिका भाषा है जिसका कवि उपयोग करता है। सगीत का प्रादुर्भाव तो नाद से हो जाता है कितु काव्य का प्रादुर्भाव उस समय होता है जब नाद के आधार पर शब्द-रूप-भाषा बनती

---

१ **विशाल भारत, अगस्त १९४२, कला और जीवन का योगसूत्र, हंमकुमार तिवारी, पृ० ११३**

2. "Music has charms to soothe the savage breast, to soften rocks, and to bend the knotted oak."
The New Dictionary of Thoughts, Page 414

३. **संगीत सुनने की कला, ठाकुर जयदेव सिंह, सारंग, ७ दिसम्बर १९५४**

है। अतः काव्य के लिए संगीत का सहयोग अनिवार्य हो जाता है। "संगीत को काव्य की अपेक्षा नही रहती पर काव्य एक प्रकार से सगीत के गुणग्रहण किए बिना रह नही सकता। इसका कारण यह है कि सगीत को स्वर का आश्रय होता है और काव्य को वर्ण का। स्वर स्वतंत्र है पर वर्ण स्वर सापेक्ष है।"[१]

यह तो निश्चित है कि संगीत का क्षेत्र कविता की अपेक्षा कम विस्तृत है। जहाँ काव्य की पहुँच स्थूल, वाह्य और मनुष्य के आन्तरिक जीवन तक होती है वहाँ संगीत का क्षेत्र केवल मानव के आन्तरिक जगत की क्रियाओ और प्रतिक्रियाओ तक ही सीमित रहता है। सगीत केवल भाव और मानसिक परिस्थितियो को ही प्रकट कर सकता है। काव्य मे इसका क्षेत्र विस्तृत रहता है। काव्य वाह्य एव आन्तरिक दोनो ही दशाओ का वर्णन कर सकता है। विषय की विविधता जैसी काव्य मे रहती है सगीत मे नही होती। किंतु हमे यह भी स्मरण रखना चाहिये कि आन्तरिक जगत के अन्तर्द्वन्दो के शमन मे सगीत अपना प्रतिद्वन्दी नही रखता। आधार की सूक्ष्मता, आनद की विपुलता और सार्वभौमता के कारण सगीत सभी कलाओ से उत्कृष्ट है। कोई भी प्रगतिशील राष्ट्र अथवा व्यक्ति संगीत की उपेक्षा नही कर सकता।

संगीत एवं काव्य के पारस्परिक संबंध के उपादान

काव्य मानव-एकता की प्रतिष्ठा करने की एक साधना है जिसमे भावों एवं कल्पना का प्राधान्य रहता है। भावना द्वारा कवि संगीत की सृष्टि किया करता है और कल्पना द्वारा अपने वर्णवस्तु का चित्र उपस्थित करता है। इस प्रकार कविता की अभिव्यक्ति शब्दो मे संगीत और चित्र के द्वारा होती है।

संगीत के उपादान

राग—संगीत में राग एक ऐसा विधान है जिसके द्वारा प्रत्येक रस के विशिष्ट भावो का प्रकाशन किया जाता है। विभिन्न स्वरो के सुन्दर तथा समुचित मेल से विशिष्ट रागो के गाने से विशिष्ट चित्र अकित होते है। यथा—किसी की अटपटी अलके और क्लान्त-भ्रात मुद्रा, तो किसी के नयनों मे उल्लास का बसत, किसी के आनन पर उष.कालीन लालिमा, तो किसी के नेत्रों मे उमड़ी हुई दुख की काली बदरी, किसी के अधरो पर विहँसती ज्योत्स्ना तो किसी के अधकार मे चमकते अश्रुकण। स्वरो के अपूर्व सयोग से रागो के माध्यम द्वारा गायक प्रत्येक प्रकार के भाव का चित्र अंकित कर देता है। अत' यदि काव्य का भाव उसी भाव को प्रकट करने वाले राग में उतारा जाय तो इससे न केवल काव्य का सौदर्य ही द्विगुणित होता है वरन् काव्य मे जीवन प्रकट हो जाता है और भाव की सरल, स्पष्ट तथा उपयुक्त

---

१. **माधुरी, दिसम्बर १९२७, गायनाचार्य पं० विष्णुदिगम्बर जी से साक्षात्कार, मुकुटधर पांडेय, पृ० ७०३**

व्यजना के द्वारा उस भाव का स्वरूप मूर्तिमान होकर नेत्रो के सम्मुख अकित हो जाता है। साहित्य के भावों में संगीत के इस उचित सयोग से शब्दो के अर्थ तीव्रतम तथा सरलतम रूप में स्पष्ट होते चले जाते है और तब उसकी अनुभूति में मानव को नैसर्गिक आनंद प्राप्त होता है। संगीत के स्वरो से किस प्रकार भावो तथा रस का सृजन किया जा सकता है इसकी विवेचना आगे की जायगी।

संगीतमय भाषा

अपने काव्य को माधुर्य और सार्वभौमता के गुण से अलकृत करने के लिए कवि की भाषा संगीत का आश्रय ग्रहण करती है।

"भाषा संसार का नादमय चित्र है, ध्वनिमय स्वरूप है। यह विश्व की हृत्तन्त्री की झकार है जिसके स्वर में वह अभिव्यक्ति पाता है।"[1] भाषा भावो के अभिव्यजन का साधन है। भाषा ही वह माध्यम है जिसके सहयोग से कवि अपने अन्तरतम मे निहित भावानुभूति को अभिव्यक्त करने का प्रयास करता है। भाषा की इसी विशेषता को लक्ष्य कर कोन्स्तान्तिन फेदिन ने कहा था—"लेखक की कला की बात करते समय हमे सबसे पहले भाषा की बात करनी चाहिये। भाषा वह चीज है और सदा रहेगी जिससे लेखक अपनी इमारत खडी करता है। साहित्य की कला शब्दो की कला होती है। साहित्य के रूपगठन जैसा महत्वपूर्ण तत्व भी भाषा के महत्व से गौण होता है। कोई साहित्यिक कृति कभी अच्छी हो ही नही सकती अगर उसकी भाषा दरिद्र हो।"[2] भावों के अभिव्यंजन का अनिवार्य माध्यम होने के फलस्वरूप भाषा साहित्य मे अपना विशिष्ट महत्व रखती है।

यह नितान्त सत्य है कि कविता का भाव हृदय मे स्वतः ही उत्पन्न होता है किन्तु अनुभूत भाव कल्पना अथवा विचार को सुन्दर शब्दो में व्यक्त कर देना ही कला का कर्म है। पर कविता का वास्तविक प्रभाव डालने के लिए जितनी आवश्यकता अपूर्व भाव की है उतनी ही अधिक सुन्दर भाषा की भी। इसी लिए अलेक्सी टाल्स्टाय ने कहा था—"भाषा विचार का साधन है। भाषा का इस्तेमाल लापरवाही से करने का मतलब है विचार में लापरवाही करना।"[3]

जैसा कि पूर्व भी कहा जा चुका है काव्य केवल भाव ही नही है और न एकमात्र भावों की अभिव्यवित ही श्रेष्ठ तथा उत्कृष्ट काव्य-कृति कही जा सकती है। जब तक इस अभिव्यक्ति मे सौदर्य तथा माधुर्य नही होता तब तक वह वास्तविक काव्य का रूप धारण

---

१. गद्य-पथ, सुमित्रानंदन पन्त, प्रवेश, पृ० १४

२. लेखक और उसकी कला, कौन्स्तान्तिन फेदिन, (अनुवादक अमृतराय) आलोचना, अक्टूबर १९५१, पृ० ४९

३. वही, पृ० ५०

नही कर सकती । अत. सौदर्य तथा माधुर्यमय रूप प्राप्त करने के लिए कविता की भाषा को सगीत का आश्रय ग्रहण करना पडता है । कवि का हृदयगत भाव कल्पना से अनुरंजित हो संगीतमयी भाषा के द्वारा ही व्यक्त होकर काव्य का रूप धारण करता है । अत कविता की भाषा मे सगीत तत्व का समावेश अनिवार्य है। कविता की भाषा मे सगीत की उपादेयता को लक्ष्य कर ही प० रामचन्द्र शुक्ल ने कहा था—"कविता की भाषा मे इसके अलावा नाद-सौदर्य पर भी ध्यान रखना पडता है ।"[1] काव्य की भाषा मे संगीत के महत्वपूर्ण स्थान को स्वीकार करते हुये श्री रवीन्द्रनाथ ने भी कहा है–"असीम जहाँ सीमा हीनता में अदृश्य हो जाता है वही सगीत है । असीम जहाँ सीमा के भीतर रहता है वही चित्र है । चित्र है रूपराज्य की कला और सगीत अरूप राज्य की । कविता जो उभयचर है, चित्र के भीतर फिरती और गान के भीतर उडती है क्योंकि कविता का उपकरण है भाषा । भाषा मे एक ओर अर्थ है और दूसरी ओर स्वर । अर्थ की शक्ति से गठित होती है छवि और स्वर के योग से होता है गान ।"[2] सुकवि की भाषा मे संगीत का संयोग अनजाने ही स्वतः होता जाता है । अनुभूति की तन्मयता मे कलाओ का स्वरूप विभिन्न नही रहता । कवि संगीतज्ञ बन जाता है, प्रत्येक शब्द मे ध्वनि गूँजने लगती है । अक्षर-अक्षर गाने लगते है । यही कला का उच्चतम स्वरूप है । जहाँ सौदर्य अपने श्रेष्ठतम रूप में प्रस्फुटित होता है । मधुरिमा उसका गुण नही अनिवार्य अंग बन जाती है । काव्य और संगीत मौन होकर परस्पर एक दूसरे का आलिगन करते है । सौदर्य की इस सम्मिलित नूतन छटा मे दोनो एक दूसरे को अलग-अलग पहचान नहीं पाते । वस्तुत काव्य स्वत. संगीत बन जाता है । इसी को लक्ष्य कर कहा है–कविता शब्दों के रूप मे संगीत है और संगीत स्वर के रूप में कविता है।

काव्य की भाषा को संगीत-सौदर्य प्रदान करने के कौन-कौन से उपादान है तथा शब्द-सगीत को उत्पन्न करने के लिए क्या गुण अनिवार्य है । इसकी विवेचना कृष्णभक्तिकालीन सगीत की भाषागत विशेषताये शीर्षक अध्याय मे की जायेगी ।

लय–कविता मे लय का बंधन सगीत की महत्ता की स्वीकृति का ही लक्षण है। ताल, लय और स्वर द्वारा संगीत में हमारे मनोभावो को तरंगित करने की अद्‌भुत क्षमता है । अत कविता लय के माध्यम से सगीत का आश्रय ग्रहण करके हमारे मनोवेगों को तीव्र भाव से जागृत और उत्तेजित कर देती है । लय काव्य को स्वाभाविक रूप से सगीतात्मकता प्रदान करती है और अपनी इस किंचित् संगीतमयता के कारण माधुर्य और सरसता तो भावो के साथ लाती ही है साथ ही एक प्रवाह, शक्ति और लोच भी उत्पन्न कर देती है ।

काव्य के उपादान

शब्द–सगीत पर भी साहित्य का प्रभाव पद-पद पर देखा जाता है । सगीत का प्रधान

---

१. चिंतामणि, पं० रामचन्द्र शुक्ल, पृ० २४४

२. माधुरी, ज्येष्ठ १९३२, ललित कला क्या है, नलिनी मोहन सान्याल, पृ० ६०६

अग ध्वनि या स्वर है । दूसरे प्रधान अगो मे शब्द (गीत, बोल) और लय है । एकमात्र ध्वन्यात्मक सगीत वाद्ययत्रो मे ही होता है । कठ-सगीत साहित्य ही की नीव पर खड़ा रहता है ।

यद्यपि सगीत मे स्वर प्रधान है शब्द गौण किंतु फिर भी शब्दो की पूर्णतया उपेक्षा नही की जा सकती । गायन मे शब्द पर्याप्ति महत्व रखते है और रस-निष्पत्ति मे अत्यधिक सहायक होते है । कुछ गायको का सगीत समाप्त हो जाने पर भी यह ज्ञात नही हो पाता कि गायन के बोल क्या थे । यह महान त्रुटि है । शब्दो के स्पष्ट उच्चारण भाव समझाने मे सहायक होते है जिसके कारण गायन और भी मधुर, सरस और सरल प्रतीत होता है । संगीत जिस भाव को केवल स्वरो के सकेत मात्र से अवगत कराता है, कविता उसे रूप दे कर हृदय-पटल पर अंकित कर देती है । ध्वन्यात्मक रूप से संगीत जितना उपयोगी होता है, वर्णात्मिक काव्य का सयोग पाकर उसकी उपयोगिता और भी बढ जाती है । अत. संगीत में स्थायित्व उत्पन्न करने के लिए काव्य का सहारा लेना ही पड़ता है और सगीत-कला अपना अस्तित्व प्रदर्शित करने के लिए जब काव्य-कला का आश्रय ग्रहण करती है उसकी रमणीयता एव सौदर्य द्विगुणित हो उठता है । ।

साराश मे कह सकते है कि सगीत-कला और काव्य-कला मे अन्योन्याश्रय भाव है । संगीत साहित्य के लिए उतना ही उपयोगी और आनददायी है जितनी धरातल के लिए कुसुमावली और गगन तल के लिए आलोकमाला । सगीत के अनुशासन एव सगीत की शृंखलाओं को तोड कर चलने वाले कवि बहुत कम है और उनसे भी न्यून उन गायको की संख्या है जो शब्दविहीन तथा साहित्य रहित सगीत की अर्चना करते है । यों तो सगीत से हीन साहित्य भी दृष्टिगत होता है और साहित्य से हीन सगीत भी किंतु ऐसी अवस्था मे एक के बिना दूसरा अपूर्ण ज्ञात होता है । अनुमान है कि इसी संयोग के लिए देवी सरस्वती काव्य और सगीत दोनो की अधिष्ठात्री होकर पुडरीक के सिहासन पर एक हाथ मे पुस्तक और दूसरे मे वीणा के साथ सुशोभित की गई है ।

साहित्य मे संगीत का औचित्य

पिछले पृष्ठो पर की गई साहित्य तथा सगीत के संबध और समानताओं की विवेचना से यह स्पष्ट हो चुका है कि वही कविता अधिक प्रभावशालिनी तथा हृदयग्राहिणी होती है जिसमे सौन्दर्यमयी चेतना और सुकुमार भाव सगीत की स्वरलहरियों मे गुँथ कर आनन्दानुभूति को तीव्र करने वाले हो । कविता को सुन्दरतम रूप मे प्रकट करने के लिए संगीत एक अनिवार्य तत्व है इससे सभी कलाकार एकमत है । किंतु यह अनिवार्य रूप से स्मरणीय है कि काव्यत्व और सगीतत्व एक स्तर पर ही स्थित रहें ।

साहित्यकार के सम्मुख कभी-कभी ऐसी परिस्थिति भी आ जाती है जब शब्द और स्वर (सगीत) मे विरोध हो जाता है और संगीत का आधिपत्य कविता की भावाभिव्यजना

में बाधा उत्पन्न करने लगता है। ऐसे समय मे कुशल कलाकार को सगीत के नियमो को तनिक शिथिल कर देना चाहिए क्योकि काव्य का प्राथमिक आधार शब्द है स्वर गौण। काव्य मे जितना महत्व शब्द को दिया जा सकता है उतना स्वर को नही।

मराठी सगीत के प्रख्यात साधक श्री पडित रावनगरक का भी विचार है कि–"कविता को सगीत मे मुख्य रूप से नही लेना चाहिए। इसलिए कि कविता शब्द-चमत्कार पर आधारित है और संगीत राग पर। कविता एक हद तक ही सगीत मे महत्व रख सकती है अन्यथा स्वर अथवा शब्द भग का दोष बना ही रहता है।"[१]

अतः साहित्य तथा सगीत का समन्वय उस समय तथा उस सीमा तक ही करना चाहिये जहाँ तक संगीत के सम्पर्क से साहित्य मे रमणीयता और सौदर्य की वृद्धि हो।

---

१. **संगीत, दिसम्बर १९५३, पृ० ८२३**

तृतीय अध्याय

कृष्णभक्तिकालीन साहित्य में संगीत प्रेरणा के उपादान

आध्यात्मिक महत्ता तथा कवि रूप

जेम्स एच० कजिन्स का कथन है कि–"धर्म को भारत अपने जीवन का केवल एक अंग ही नही समझता है किन्तु वही उसका जीवन है।"[1] भारतीय संस्कृति धर्म का आश्रय लेकर उसी की छत्रछाया मे विकसित हुई है। भारतीय जीवन के अंगप्रत्यंग पर आध्यात्मिकता की अमिट छाप अंकित है। जीवन मे निहित इस आध्यात्मिक महत्ता के कारण ही भारतीय संस्कृति मे पनपने वाली प्रत्येक कला का उच्चतम-ध्येय आध्यात्मिक आनंद प्रदान करना रहा है। भारतीय कला का प्रधान लक्ष्य पार्थिव आनंद की तृप्ति अथवा कोई वैषयिक लाभ या शृंगारिकता को उद्दीप्त करना और विषयोपभोग मे प्रवृत्त कराना नही माना गया वरन् वह भक्ति, धर्म और उपासना प्रधान रही है। अस्तु उसके अन्तर्गत लोक-रंजन का दृष्टिकोण गौण रूप में ही निर्द्धारित होता आया है।

सभी कलाओ मे अध्यात्मपक्ष की प्रधानता होने के कारण हमारी भारतीय संगीत कला भी प्रारम्भ से ही धर्म का आधार ले कर चली है। हमारे यहाँ संगीत-कला का चरम आदर्श मोक्ष प्राप्ति, आत्मा से परमात्मा का मिलन तथा परम शांति को प्रदान करना माना गया है। संगीतरत्नाकरकार ने कहा है–"उस गीत के माहात्म्य की कौन प्रशंसा करने मे समर्थ है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को प्राप्त करने का यही एक साधन है।"[2]

जहाँ संगीत है वही ईश्वर निवास करते है। स्वयं विष्णु नारद जी से कहते है–"हे नारद! न तो मै वैकुण्ठ मे रहता हूँ और न योगियो के हृदय मे, अपितु मेरे भक्त जहाँ गान करते है वही मै निवास करता हूँ।"[3]

---

१. भारतीय कला के आदर्श, लक्ष्मीकांत त्रिपाठी, सरस्वती १९२५, पृष्ठ ५८८

२ तस्य गीतस्य माहात्म्यं कः प्रशंसितुमीशते।
धर्मार्थकाममोक्षाणामिदमेवैकसाधनम्॥
संगीत रत्नाकर, अध्याय ३०, प्रकरण १

३. नाऽहं वसामि वैकुण्ठे योगिनां हृदये न च।
मद्भक्ता यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद॥
संगीत–पारिजात, अहोबल, पृ० ५, श्लोक संख्या १६

ईश्वर प्राप्ति के लिए सगीत प्रधान साधन है क्योकि स्वय भगवान ने कहा है– हे वराननें मेरी जैसी प्रीति गधर्व-विद्या मे है वैसी न घी मे है, न नमक मे है और न गुग्गुल मे है ।[1]

पार्वतीपति महादेव गीत से अत्यन्त सतुष्ट होते है तथा गोपी-पति (भगवान कृष्ण) जो अनत है वे भी सगीत ध्वनि के वशीभूत है ।[2]

शास्त्रो मे कहा गया है कि मनुष्यो द्वारा गायन, वादन तथा नृत्य तल्लीनता से किया गया हो तो वह भगवान् विष्णु को प्रसन्न कर देता है ।[3]

यही नही वीणा बजाने के तत्व को जानने वाला, श्रुतियो तथा स्वरो के जाति-भेद को समझने वाला तथा ताल के 'काल माप' (मात्रा परिमाण) को जानने वाला अप्रयास ही मोक्ष-मार्ग की ओर अग्रसर होता है ।[4]

भागवत्कार ने सगीत की आध्यात्मिक महत्ता की ओर सकेत करते हुए कहा है– "दोष-निधि कलियुग मे महान गुण है कि भगवान कृष्ण के कीर्तन से मनुष्य लौकिक आसक्ति से छूट जाता है ।"[5]

श्री वल्लभाचार्य का मत है कि भगवान के गुणो के गान से भक्त मे ईश्वरीय गुण आ जाते है– "जब तक भगवान अपनी महती कृपा भक्तो को दे तब तक साधन-दशा में ईश्वर के गुण-नाम के कीर्तन ही आनन्द देनेवाले होते है । ईश्वर के गुणगान मे जो आनन्द है वह लौकिक पुरुषों के गुणगान मे नही तथा जैसा सुख भक्तो को भगवान के गुणगान मे होता है वैसा सुख भगवान के स्वरूप ज्ञान की मोक्ष-अवस्था मे भी नही होता । इसलिए सदानन्द

---

१. न घृते तादृशी प्रीतिर्नक्षारे न च गुग्गुले ।
यादृशी चैव गांधर्वे मम प्रीतिर्वरानने ।।
The Krishna Pushkaram Souvenir, 'Hindu Music a Survey, Polavarapu Ramchandra Rao, Page 92

२. गीतेन प्रीयते देवः सर्वज्ञः पार्वतीपतिः ।
गोपीपतिरनंतोऽपि गीतध्वनिवंशगतः ।। स्वरमेलकलानिधि, रामामात्य, पृ० ११

३. देवस्य मानवो गानं वाद्यं नृत्यमतन्द्रितः ।
कुर्याद्विष्णोः प्रसादार्थमिति शास्त्रे प्रकीर्तितम् ।।
संगीत–पारिजात, अहोबल, पृ० ५, श्लोक १५

४. वीणवादनतत्वज्ञः श्रुतिजाति विशारदः ।
तालज्ञश्चाप्रयासेन मोक्षमार्गं नियच्छति ।।
संगीत–पारिजात, अहोबल, पृ० ६, श्लोक १८

५. कलेर्दोषनिधे राजन्नस्ति ह्येको महान्गुणः ।
कीर्तनादेव कृष्णस्य मुक्तसंग परं व्रजेत् ।। भागवत, दशमस्कंध, अध्याय ३, श्लोक ५१

ईश्वर मे भक्ति करने वाले भक्तो को सब लौकिक साधन छोडकर भगवान के गुणो का गान करना चाहिए । ऐसा करने से भक्त मे ईश्वरीय गुण आ जायेगे ।''[१]

राग-दर्पण ग्रंथ मे फकीरुल्ला ने कहा है कि संगीत की ध्वनि भक्ति का सदेश सुना कर उचित मार्ग की ओर जाने के लिए प्रेरित करती है—''और प्रशसा का गान उस वादक (रसूल पैगम्बर) के प्रति अर्पित करना उचित है जिसकी हिदायत (मार्गनिर्देश) रूपी सितार की उच्च ध्वनि ने भटकते हुओ को ठीक मार्ग पर आने की आकाक्षा उत्पन्न कर दी और असीम भक्ति के लक्ष्य पर पहुँचा दिया ।''[२]

रवीन्द्रनाथ ठाकुर का विचार है कि संगीत मे ईश्वर से साक्षात्कार कराने की असीम शक्ति निहित है । संगीत की आध्यात्मिक महत्ता पर मुग्ध होकर उनके हृदय के भावुक उद्गार गा उठते हैं—

जानि आमि एइ गानेर बले
बसि गए तोमारि सम्मुखे
प्रान दिए जार नागाल नाइ पाइ
गान दिए सेइ चरण छुए जाइ ।[३]

अर्थात्—मै यह जानता हूँ कि इसी गान के बल से मै तुम्हारे सम्मुख बैठने के योग्य होता हूँ । प्राण और मन देकर भी जिसके समीप मै नही आ सकता था गान देकर उसी के चरण छू लेता हूँ ।

यही नही भारतीय संगीत की धार्मिक महत्ता पर प्रकाश डालते हुए रवीन्द्रनाथ कहते है—''मुझे ज्ञात होता है कि भारतीय सगीत धार्मिक व्याख्या से परिपूर्ण मानवी अनुभवों की अपेक्षा दैनन्दिन अनुभूति से अधिक सबंध रखता है । संगीत का आध्यात्मिक मूल्य है । यह

---

१. महतां कृपया यावद्भगवान् दययिष्यति ।
तावदानंदसंदोहः कीर्त्यमानः सुखाय हि । ४
महतां कृपया यद्वत्कीर्तनं सुखदं सदा ।
न तथा लौकिकानां तु स्निग्धभोजनरुक्षवत् । ५
गुणगाने सुखवाप्तिर्गोविदस्य प्रजायते ।
यथा तथा शुकादीनां नैवात्मनि कुतोन्यतः । ६ ।
तस्मात्सर्वं परित्यज्य निरुद्धैः सर्वदा गुणाः ।
सदानंद परैर्गेयाः सच्चिदानंदता ततः । ९
निरोध–लक्षण–षोडश ग्रंथ, भट्ट रमानाथ शर्मा ।

२. मार्नासह और मानकुतूहल, हरिहर निवास द्विवेदी, पृ० ५३–५४

३. गीतांजलि, रवीन्द्रनाथ ठाकुर

दैनन्दिन घटनाओ से आत्मा को मुक्त करता है और आत्मा एव परमात्मा के सबध का गीत गाता है।...... हमारा सगीत श्रोता को दिन-दिन के मानवीय सुख-दु ख से दूर हटाकर, सृष्टि के मूल विश्रान्ति और त्याग की ओर ले जाता है।"[१]

गायनाचार्य प० विष्णु दिगम्बर जी सगीत को मोक्ष प्राप्ति का साधन मानते है–

"संगीत भी एक स्वर्गीय वस्तु है। यदि उसे 'वसुधा की सुधा' कहा जाय तो अत्युक्ति न होगी। सत्सगीत मनुष्य की आत्मा को इस तापत्रयपूर्ण नरधाम से ऊँचा उठाकर क्षण काल के लिए ऐसे अमरलोक मे ले पहुँचाता है जहाँ चारो ओर सुख-शाति का साम्राज्य छाया हुआ होता है।[२]

ठाकुर जयदेव सिंह जी का भी विचार है कि सगीत ईश्वर प्राप्ति का साधन है।[३]

कत्थक शैली के सुप्रसिद्ध नर्तक श्री लच्छू महाराज ने अनत सौदर्य की प्राप्ति को ही कलाकार के जीवन की सफलता कहा है –

"आत्मा के समीप पहुँच कर सौदर्य पर्यवेक्षण के चरम आनद को प्राप्त करने में यदि कोई नृत्यकार अथवा कलाकार सफल नही हो सका हो, तो मैं उसकी सारी कला के प्रति, प्राप्त प्रशंसा के प्रति खेद ही प्रगट करूँगा।"[४]

प्रसिद्ध संगीतज्ञ श्री सियाराम जी तिवारी भी मानते है कि "सगीत दैवी विद्या है। यह चचल चित्तवृत्ति के निरोध के द्वारा योग-साधन का सा आनद देती है।"[५] उनकी दृष्टि मे भारतीय शास्त्रीय सगीत का लक्ष्य आत्मशाति होना चाहिये। इस विद्या के द्वारा उच्चतम आध्यात्मिक आनंद प्राप्त होता है और अंततोगत्वा मुक्तिलाभ होता है।

श्री कानन भी सगीत को दिव्यकला मानते है।[६]

---

१. संगीत, मार्च १९४९
२. गायनाचार्य पं० विष्णु दिगम्बर जी से साक्षात्कार, मुकुटधर पांडेय, पृ० ७००, माधुरी, दिसंबर १९२७
३. संगीत सम्बन्धी वार्ता करते हुए ठाकुर जयदेव सिंह जी ने लेखिका के सम्मुख यह विचार व्यक्त किया था।
४. संगीत, नवम्बर १९५३, कत्थक शैली के सुप्रसिद्ध नर्तक–श्री लच्छू महाराज श्री सत्य, पृ० ७६२
५. संगीत, मई १९५५, पृ० ३०
६. संगीत, फरवरी १९५५, पृ० ४३

श्री प्रानलाल देवकरन नान्जी सगीत को ईश्वर का दिया हुआ वरदान कहते हैं ।[१]

महाराज श्री शिरीशचन्द्र नदी का कथन है कि रस की अनुभूति करा कर सगीत ब्रह्मानंद प्रदान करता है ।[२]

पं० ओंकारनाथ ठाकुर का तो विचार है कि साध्य के साथ एकाकार होने के लिए भक्त का स्वर में तल्लीन होना अनिवार्य है । यही कारण है कि भक्तो की कविता मे संगीत घुल मिल गया है ।–"भक्त के लिये सगीत मुख्य साधन है । भक्ति मे तन्मयता, तद्रूपता पाने के लिये स्वर मे तल्लीन होना पडता है, भक्तो की कविता मे संगीत घुलमिल गया है ।[३]

न केवल भारतीय वरन् पाश्चात्य कलाकारो ने भी संगीत को ईश्वर से सम्बद्ध माना है । कुमारी ह्वील्स योम का कहना है–" मै सगीत को मनोरजन का साधन मात्र नही मानती बल्कि जीवन के निर्माण का एक प्रधान उपकरण मानती हूँ । अगर हमे ईश्वर मे विश्वास है तो वह भी इसी सगीत की विराट धारा मे व्याप्त है । आप सगीत की वेगमयी धाराओ मे अपने को डुबो दीजिये और इतना डुबोइए कि फिर आपको विश्व के प्रत्येक पदार्थ से संगीत की मधुर ध्वनि ही फूटती हुई सुनाई पडे तब उस उच्च स्वर पर आपको ईश्वर के विराट एव दिव्य रूपो के दर्शन होगे । हमारा ईश्वर सगीत से परे नही है । वह संगीत की स्वर लहरियो मे ही रम रहा है, इसलिए ही संगीत मे संजीवनी शक्ति प्रच्छन्न है, जो मुर्दो मे भी प्राण प्रतिष्ठा करा सकती है ।"[४]

कुमारी एलबोल ने कहा है–"संगीत ही स्वयं ईश्वर है और ईश्वर ही संगीत है । दोनों एक दूसरे से अलग नही किए जा सकते । जिसने संगीत की अमर साधना कर ली मानो उसने सर्व शक्तिमान ईश्वर को भी प्राप्त कर लिया ।"[५]

---

1. "God has bestowed Music upon us as a gift together with its manifold blessings. Like a true friend it enhances our happiness and curtails our sorrows. It pleases and soothes both the rich and the poor, men and women, and castes and creeds without distinction."

   The Krishna Pushkaram Souvenir, 'Music', D.P. Nanjee, Page 136

2. "By clearly expressing the Rasa and enabling men to taste there of it gives the wisdom of Brahma, whereby they may understand how every business is unstable, from which indifference to such business and therefrom arise the highest virtues of peace and patience and thence again may be won the bliss of Brahma."

   The Krishna Pushkaram Souvenir, 'Synthesis of Musical Cultures,' Maharaja Srischandra Nandy, Page 99

३. संगीत, मार्च १९४२, पृ० २४६

४. संगीत, फरवरी १९५५, पृ० २६

५. संगीत पर जिन्दा रहने वाली विश्व की प्रथम महिला कुमारी एलबोल लोरा–उमेश जोशी, संगीत, पृ० ६०६, सितंबर १९५३

मिल्टन ने ईश्वर-ज्ञान को संगीतमय माना है –"ईश्वरीय ज्ञान कैसा मनोहर है। न कठोर है और न कटु जैसा कि मद बुद्धि के लोग सोचते है वरन् वह सगीतमय है जैसी एक पोलोट की वीणा होती है।"[1]

मिल्टन सगीत का सबध ईश्वर से जोड़ता है और उसे अत्यधिक पवित्र समझता है –

In song and dance about the sacred hill
Mystical dance which yonder story sphere
Of planets and of fixed in all her wheels,
Resembles nearest, mazes intricate,
Eccentric, intervolved yet regular
Then most, when most irregular they seem;
And in their motions harmony divine
So smooths her charming tones, the God's own ear
Listens delighted. [2]

सगीत-कला आध्यात्म की ओर उन्मुख करती है। यह एकमात्र कल्पना ही नही है वरन् इसमे महान् सत्य छिपा हुआ है। जीवन का उच्चतम ध्येय होता है आत्मा का परमात्मा से सामंजस्य होना। परमतत्व के इस साक्षात्कार के लिये यह अनिवार्य है कि हृदय की चंचल-वृत्तियो को सासारिक वैभव तथा वासनाओ से मोड कर उस ओर उन्मुख कर दे जो इन सांसारिक बंधनों से कही अधिक आकर्षक तथा मोहक है। चिंतन, श्रवण तथा गुरु उपदेश परब्रह्म के उस अनंत सौदर्यशील रूप की झाँकी दिखा देते है जिससे कि मनुष्य की वृत्ति उस ओर भी अग्रसर होने लगती है। किन्तु यहाँ यह आवश्यक होता है कि उसकी चचल वृत्तियो को बढाने के लिए सुगम पंथ प्राप्त हो और उसमे इतनी शक्ति हो कि वह उन चचल-वृत्तियों को पुन किसी ओर उन्मुख न होने दे वरन् उनको निरन्तर उसी ब्रह्म की सौदर्य-साधना मे लीन करके स्थिर रखे।

सगीत मे जनरजन की अद्भुत शक्ति है जिससे कि मनुष्य उस ओर प्रेरित हो जाता है। संगीत-साधना के लिए तन्मयता अनिवार्य है। संगीत के स्वरो को साधने के लिए अहंभाव तथा अन्य वाह्य भावनाओं को त्याग कर, मन को एकाग्र कर सभी इन्द्रियो को उसी मे केन्द्रीभूत करना होता है जिसके कारण तन्मयता की अवस्था प्राप्त होती है। इस तन्मयता मे संगीतज्ञ अन्तर्मुख होकर इतना लीन हो जाता है कि उसे वाह्य जगत पर दृष्टि डालने का अवकाश ही नही मिलता। वाह्य आडबरो तथा बधनो की उपेक्षा कर वह संगीत के स्वरो

---

1. How charming is Divine philosophy. It is not harsh and crabbed as dull fools suppose but musical as is a Pollot's lute.
   Bartlett's Familiar Quotations, John Bartlett, Page 254
2. Milton, Book V, Page 155

में आत्मविस्मृत हो इतना खो जाता है कि समस्त संसार तथा उसकी विघ्नबाधाओं के मध्य रहता हुआ भी वह उनको देख अथवा सुन नही सकता।

प्राय. देखा जाता है कि सगीतज्ञ गाते-गाते जब किसी स्वर विशेष पर स्थिर हो जाता है तो श्रोतागण की करतलध्वनि गूँजने लगती है तथा ताल की कितनी ही मात्राये निकल जाती है किन्तु संगीतज्ञ उनसे तनिक भी विचलित न होकर उसी स्वर पर स्थिर रहता है। उसका स्वर तनिक भी कंपित नही हो पाता। इसका यही रहस्य है कि श्रोतागण के मध्य बैठा हुआ भी संगीतज्ञ सगीत के स्वरों मे इतना बॅध जाता है, आत्मविस्मृत होकर इतना खो जाता है कि सगीत के स्वरों के अतिरिक्त अन्य कोई वाह्य ध्वनि उसे सुन ही नही पडती। यही वह अवस्था है जिसको योगी परमानद में लीन होना कहते है।

उक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो गया है कि संगीत मे इतनी शक्ति है कि वह मन को एकाग्र करके इतना स्थिर कर दे कि हृदय की चंचल वृत्तियाॅ केन्द्रीभूत हो जाये और इधर उधर न भाग सकें।

जैसा कि पूर्व कहा जा चुका है कि शिव तथा शक्ति के सयोग का परिणाम नाद है और उसी नाद से संगीत की उत्पत्ति होती है जिसके कारण सगीत के प्रत्येक स्वर से 'ऊँ' की दिव्य ध्वनि झकृत होती है। अत संगीत-साधना के द्वारा मनुष्य उसमे अप्रत्यक्ष रूप से निहित ब्रह्म से एकता सन्तुलित कर सकता है। ठाकुर जयदेव सिह जी का कथन है कि— "नाद ही ईश्वर का दूसरा नाम है। नाद को नाद ब्रह्म की सज्ञा दी गई है। जब ब्रह्म का स्वरूप ही नाद है तो नाद-साधना के द्वारा मनुष्य बहुत सरलता से ब्रह्म को प्राप्त कर सकता है।"[१]

पं० ओकार नाथ ठाकुर का भी मत है कि —"प्रकाश से ही परम प्रकाश दिखाई देता है। रूप से ही परम रूप नजर आता है। तद्वत् नाद ब्रह्म से ही परब्रह्म की प्राप्ति हो सकती है।"[२]

रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने भी इसी भाव को व्यक्त करते हुए कहा था-"ध्वनि की भाषा अनत के मौन जगत का एक क्षुद्रतम विन्दुमात्र है। विश्व की अमर भाषा तो उनके इगित द्वारा ही व्यक्त होती है। वह सदा चित्रो और नृत्य की भाषा मे बोलता है।"[३]

फकीरउल्ला ने भी इस ओर सकेत करते हुए कहा है कि —"स्तुति का तराना प्रथमत·

---

१. लेखिका के साथ संगीत संबंधी वार्ता करते हुए ठाकुर जयदेव सिंह जी ने उक्त कथन किया था।

२. सूर संगीत, भाग १, प्राक्कथन, पं० ओंकारनाथ ठाकुर, पृ० ३

३. विशाल भारत, जनवरी १९४२, मेरे चित्र और उनका अर्थ, रवीन्द्रनाथ, पृ० ९

उस भक्त प्रतिपालक महान सगीतज्ञ की सेवा मे समर्पित करना उचित है जिसके कृपा रूपी सगीत के उपकरण आनद-शोकमय है, जिसने प्रलय और सृष्टि रूपी दो तारो वाली बीणा को निनादित कर विश्व का कल्याण किया और उसे अपनी गुण-गाथा से भर दिया।"[१]

वैज्ञानिक दृष्टिकोण से भी सगीत आध्यात्मिक कसौटी पर खरा उतरता है। जीवन की गति श्वास प्रक्रिया से है। हृदय की गति शून्य होते ही सम्पूर्ण शरीर निष्प्राण तथा चेतना रहित हो जाता है। श्वास की गति के द्वारा हृदय समस्त शरीर की रग-रग पर नियत्रण रखता है। सगीत की स्वरसाधना के लिए श्वास-क्रिया पर नियत्रण करना पडता है। श्वासक्रिया पर नियन्त्रण करते ही मनुष्य का अपने शरीर तथा उसकी गतिविधियों पर पूर्ण अधिकार हो जाता है जिसके कारण वह अपने विचारो को सन्तुलित कर सकता है। विचारो पर नियंत्रण करने के उपरात ही मनुष्य को अनत आनंद की प्राप्ति होती है।

कृष्णभक्तिकालीन कवि उच्च कोटि के भक्त थे। उनका ध्येय अपने आराध्य की उपासना मे पूर्णत. लीन हो कर उनको प्राप्त करना था। अस्तु सासारिक बंधनों को भूलकर अपने आराध्य के साथ एकाकार होने के लिये उन्होने संगीत की शरण ली। "हमारे मध्यकालीन साहित्य की विभूतियाँ उस समय के युग-प्रवाह की उपज नही थी वरन् उनका निर्माण उन प्राचीनतम भारतीय परिवर्द्धनशील दार्शनिक परम्पराओं की ही सुदृढ़ भित्ति पर हुआ था जो न कभी बँधी थी उत्तर, दक्षिण, पूर्व या पश्चिम की भौगोलिक परिधि मे और न कभी म्लान या पल्लवित हुई थी किसी राजसत्ता विशेष के बनने या बिगड़ने से।"[२] "हिन्दी साहित्य के किसी भी विद्यार्थी से छिपा नही कि पूर्व मध्यकाल का हमारा अधिकाश साहित्य कहलाने वाला अंग दार्शनिक चेतना से भरपूर है। उसके प्रस्तुत करने वाले पेशेवर कवि नही थे और न किसी राजा या रईस के आदेश पर या उसकी काव्य पिपासा शात करने के लिए अपनी लेखनी रँगनेवाले थे। काव्य-साधना के निमित्त कुछ भी लिखना उनके जीवन का ध्येय नही था। वे तो विशुद्ध अर्थो मे तत्वदर्शी मानवता का पाठ पढानेवाले ईश्वरीय सन्देशवाहक थे। उनकी वाणी से अमर काव्य की मन्दाकिनी प्रवाहित अवश्य हुई और ऐसी हुई कि जिसकी तुलना कदाचित देशदेशान्तरो के, युगयुगान्तरो के काव्य-साहित्य मे भी ढूँढ़े न मिलेगी।"[३] किन्तु "गहराई तक पैठ कर यदि देखा जाय तो इनका यह संदेश भी किसी जाति या देश विशेष के लिए नही था वरन् वह था देशदेशान्तर व्यापी मानव कल्याण के लिए। क्षुद्र सकीर्णताओ से उन्मुक्त मानवता का यह सदेश प्राचीनतम परम्परागत सतत उन्नतिशील मानव जागरण के आन्दोलन की एक महाप्रबल लहर थी।"[४] "अत: स्पष्ट है कि इस अज्ञेय तत्व का अन्वेषण जब रसस्रोत के माध्यम से किया गया और उसकी अनु-

---

१. मानसिंह और मानकुतूहल, हरिहर प्रसाद द्विवेदी, पृ० ५३
२. मीरा-स्मृति-ग्रंथ, कृष्णभक्ति परंपरा और मीरा, आचार्य ललिताप्रसाद सुकुल, पृ० १८६
३. काव्यचर्चा, ललिताप्रसाद सुकुल, रहस्यान्वेषण में छाया की प्राप्ति, पृ० १८५
४. मीरा-स्मृति-ग्रंथ, कृष्णभक्ति परंपरा और मीरा, आचार्य ललिताप्रसाद सुकुल, पृ० १८६

भूति की अभिव्यक्ति रसयुक्त हुई तब वह काव्यक्षेत्र का अंग बन गया ।"[1] देश देशान्तर व्यापी मानव कल्याण के निमित्त भक्ति भावना की अनुभूति का प्रतिफल होने के फलस्वरूप कृष्णभक्तिकालीन साहित्य के निर्माण मे सगीत अपनी धार्मिक प्रवृत्ति तथा पूर्व बतलायी गई विश्वव्यापी महत्ता के कारण प्रमुख माध्यम, आधार तथा उपादान बना साथ ही निम्न-लिखित परिस्थितियाँ, वातावरण तथा विशेषताये कृष्णभक्तिकालीन कवियो के साहित्य मे सगीत की प्रेरणा के लिये विशेषरूप से सहायक तथा उद्दीपक हो गई ।

पूर्व परम्परा

यो तो भारतीय वाङ्मय मे अग उपागो से परिपूर्ण सगीत की पुनीत एव अनिवार्य प्रतिष्ठा आदि से ही मिलती है । भारत के पुरातन ग्रथ तथा भारतीय सभ्यता, सस्कृति, धर्म और साहित्य के आधारस्तम्भ चारो वेदो मे से एक सामवेद गान के विशिष्ट रूप मे ही प्रकट हुआ था । किन्तु हिन्दी साहित्य भी अपने शैशव से ही सगीत की क्रोड मे पला है । राग-रागिनियो मे पदो को बद्ध कर गाने की प्रणाली जो कृष्णभक्तिकालीन कवियो के काव्य मे प्रस्फुटित हुई है सिद्ध कवियो के समय से ही अपनाई गई है । विक्रम की नवी शताब्दी के लगभग होने वाले सिद्ध तथा नाथपंथी कवियो ने भी अपने पदो को राग-रागिनियो मे बाँध कर गाया है । जयदेव तथा विद्यापति ने भी अपने पदो मे सगीत की राग-रागिनियो को आश्रय दिया । किन्तु हिन्दी साहित्य मे संगीत की राग-रागिनियो की कड़ियाँ क्रमबद्ध नही मिलती । वीरगाथा-काल के कवियों तथा प्रेमकाव्य के रचयिताओ ने इस परिपाटी का अनुसरण नहीं किया । वीरगाथा-काल मे राजपूताने के चारण भाटों मे समस्त काव्य को गा-गा कर सुनाने की प्रथा प्रचलित थी । परंपरा से चारण और भाट लोग ऐसी गाथाओ को कठस्थ रखते थे और राजदरबारो मे गा-गा कर सुनाया करते थे । इस कारण वीर-काव्य गाये जाने के लिये ही लिखा गया किन्तु उसमे राग-रागिनियो का विधान नही है । सूफी-काव्य मे सगीत का समावेश भाषा और शैली के कारण सहज रूप मे तो हुआ और वाह्य साक्ष्यो[2] से भी इस तथ्य की पुष्टि होती है कि सूफी कवि अपनी रचनाओं को गा-गा कर सुनाते थे किन्तु किस धुन मे अथवा किन राग-रागिनियों मे वे अपने काव्याशो को बाँधते थे इसका कोई विवरण अथवा उल्लेख नही मिलता । सूफी कवियो ने भी विशिष्ट राग-रागिनियो के अन्तर्गत अपने काव्याशों की अवतारणा नही की । सिद्धो और नाथपंथियों के साहित्य का विकसित रूप सतकाव्य मे पल्लवित हुआ । सिद्ध कवियो का अनुकरण करने के कारण सगीत संत कवियों का भी पथ प्रदर्शक बना । सत-काव्य मे रागों की व्यवस्था है । इसी के समसामयिक राम काव्य मे एक तो श्रेष्ठ कवि ही दो चार हुए है उनमे भी तुलसी ही राग-रागिनियो के दृष्टि-कोण से महत्वपूर्ण है । किन्तु हिन्दी साहित्य के आदिकाल से प्रचलित पदों को राग-रागिनियो मे बद्ध करके गाने की प्रणाली का सफल विकास कृष्णभक्तिकालीन कवियों के काव्य मे हुआ ।

---

१. काव्यचर्चा, ललिताप्रसाद सुकुल, रहस्यान्वेषण मे छाया की प्राप्ति, पृ० १८६
२. जायसी ग्रंथावली, रामचन्द्र शुक्ल, भूमिका पृ० १२

समय के प्रवाह मे सगीत को जीवनदान मिला और कृष्णभक्ति-कालीन प्राय. सभी कवियो के काव्य मे पूर्णतया लग्न होकर राग-रागिनियो के रूप मे सगीत बिखर ही तो पडा। कृष्णभक्ति कालीन अधिकाश कवियो का प्राय समस्त काव्य विभिन्न राग-रागिनियो मे गाया गया है।

यद्यपि कृष्णभक्तिकालीन कवियो द्वारा प्रयुक्त राग-रागिनियो मे पदो को बद्ध कर गाने की प्रणाली का प्रचलन सिद्ध नाथपथी तथा सत कवियो मे भी था किन्तु यहाँ यह न विस्मरण कर देना चाहिए कि उनके सगीत के आधार मे एकता न थी। उनके इष्ट, लक्ष्य, उपासना, भावना, अनुभूति तथा अभिव्यक्ति मे पर्याप्त अन्तर था। सिद्ध तथा नाथपंथियो ने निराकार की साधना की थी। अतः उनका लक्ष्य अनाहत नाद का सुनना था। उन्हे जिस अनाहत नाद की अन्तर मे अनुभूति हुई उसी की उन्होने सगीत के द्वारा अभिव्यक्ति की। अतः यह कहा जा सकता है कि सिद्धो का संगीत उच्छ्वसित हुआ था आतरिक अनाहत नाद की प्रेरणा से। सत कवि कबीर भी निर्गुण उपासक थे। किन्तु उन्होने अनाहत नाद की अभिव्यक्ति सगीत के माध्यम से उसे साकार रूप का रूपक प्रदान कर की। कृष्णभक्त कवि भगवान के साकार रूप के उपासक थे। अत उनका क्षेत्र अनाहत नाद से सबधित नही था। इन कवियो ने अपने दिव्य चक्षुओ से विविध क्रीडा तथा लीला करते हुए भगवान के जिस साकार रूप का अनुभव किया उसमे उन्हे जिस आहत नाद की अनुभूति हुई उसकी अभिव्यक्ति उन्होने सगीत के द्वारा की।

कवियों के आराध्य, विषय तथा दृष्टिकोण

कृष्णभक्तिकालीन गायक कवियो के काव्य मे सगीत प्रेरणा के प्रधान उपादान है उनके आराध्य तथा उनकी रसवती लीलाये। इन गायक कवियो के इष्ट स्वय सिद्ध मुरलीधर अर्थात् स्वरो के अधिष्ठाता है। अतः उनके जीवन की रग-रग तथा उनका प्रत्येक क्षण संगीतमय है। सिद्ध संगीतज्ञ होने के कारण उनके जीवन की विविध क्रीडाओ मे सगीत एक अनिवार्य तथा प्रमुख अग है। उनकी प्राय समस्त क्रियाओ से संगीत संबधित है। उनकी प्रत्येक लय मे सगीत की ध्वनि झकृत होती है। कृष्णभक्तिकालीन भक्तो ने भगवान की जिस लीला का अपने दिव्य चक्षुओ से आनंद प्राप्त किया उसी को उन्होने पदों मे गाकर साकार रूप प्रदान किया है। अत. कृष्ण की उपासना करने के कारण सगीत का समावेश कृष्णभक्तिकालीन साहित्य मे स्वाभाविक रूप से स्वत. ही हो गया है।

कृष्ण-काव्य मे कृष्ण की लीलाओ का गान पारलौकिक दृष्टिकोण से प्रमुख रहा है। भगवान कृष्ण के लोकरंजक और लोकरक्षक दोनो ही रूप कृष्ण-साहित्य मे मिलते है। कृष्ण के इन दोनो रूपों के वर्णन के कारण उसमें सभी रसो का समावेश हो गया है जिसके फल-स्वरूप प्रायः प्रत्येक रस से संबंधित सगीत की राग-रागिनियो को कृष्ण-साहित्य में स्थान मिल सका है। सभी प्रकार की राग-रागिनियो के लिए स्थान होने के कारण भी संगीत कृष्ण-भक्त कवियो को विशेष रूप से आकर्षित कर सका।

कृष्णभक्तिकालीन कवियो की वृत्ति कृष्ण के लोकरजन रूप का वर्णन करने मे ही अधिक लीन हुई है । उनके वर्णन का विषय प्राय कृष्ण-जन्म की वधाई, रास, होली, वसन्त, वर्षा, मल्हार आदि है । प्रथमत ये सभी लीलाये आदि से अन्त तक इतनी सरस और मानव-हृदय की विविध रागात्मिका वृत्तियो को उत्तेजित करने वाली है कि उनके गुण-गान के क्षणो मे वैविध्यपूर्ण सगीत का सहसा प्रवहमान हो जाना पूर्णरूप से नैसर्गिक है । साथ ही इन सभी लीलाओ मे सगीत का प्रमुख रूप से समावेश होता है । कृष्ण-जन्म के साथ ही गोपग्वालो द्वारा वाद्ययत्रो की सगीत मे नृत्य करते हुए मागलिक गीतो का गायन गूँजने लगता है । आश्विन की पीयूषवर्षिणी पूर्णिमा के दिन चन्द्रमा की विहँसती ज्योत्स्ना मे गोपी तथा कृष्ण के पैरो के घुँघरुओ की झंकार समस्त वातावरण मे झकृत हो जाती है । आषाढ की घनघटाओ के बरसते ही राधा-कृष्ण तथा गोपियाँ हिडोला झूलते हुए मल्हार गाने लगते है । वसन्त की सुषमा विकीर्ण होते ही झाँझ, मँजीरे, डफ लेकर उन्मत्त होकर नाचते-गाते कृष्ण तथा ग्वाल-बाल होली की धूम मचा देते है । इस प्रकार इन सभी लीलाओ तथा उत्सवो मे गान, वादन तथा नृत्य का विशेष रूप से आयोजन होता है । मागलिक तथा आनदप्रद गीतो के साथ बाँसुरी, पखावज, डफ, महुवरि आदि विविध वाद्ययत्र बजते है । इन सगीतमय प्रसगो का आधार लेने के कारण कृष्णभक्ति कालीन साहित्य मे भी सगीत का समावेश प्रचुर मात्रा मे हुआ है ।

कृष्णभक्तिकालीन साहित्य मे प्रेम-भाव का व्यापक चित्रण हुआ है । जहाँ तक वात्सल्य मे सने मातृ हृदय के प्रेम और दुलार भरे भावों का प्रश्न है उसमे तो संगीत एक प्रधान तत्व है ही । प्रत्येक माँ के हृदय का ममत्व, अनुराग तथा दुलार सगीत की लोरियो मे ही साकार रूप प्राप्त करता है किन्तु रसराज शृगार प्रेम के रतिभाव के सयोग-विप्रलभ दोनो अगो मे सगीत प्रवाहित रहता है । मिलन के क्षणो मे भावुक हृदय का तार-तार झन-झना उठता है, कोमल कल्पना राग के स्वरो मे प्रवाहित होने लगती है । विरहिणी महादेवी जी तभी तो मिलन-सुख के मधुरिम गीतों को स्मरण कर कहती है –

जो तुम आ जाते एक बार
कितनी करुणा कितने संदेश
पथ में बिछ जाते बन पराग
गाता प्राणों का तार तार
अनुराग भरा उन्माद राग ।[1]

वियोग मे सगीत का स्वर और भी निखर उठता है । वेदनामय सगीत जीवन का मधुरतम सगीत होता है । अत्यन्त विषादपूर्ण भावो मे ही मधुरतम सगीत की सत्ता स्वीकार करने वाले पाश्चात्य कवि शेली ने कहा है –

---

१. यामा, महादेवी, पृ० ६५

Our sweetest songs are those,
That tell of saddest thoughts.[1]

(विरहीजन की सिहरन, टीस और उद्‌गार जब इतने प्रबल हो जाते है कि नन्हें से हृदय की सीमाओ मे सीमित रह पाना उनके लिये असंभव हो जाता है तब वह संगीत का रूप ग्रहण कर गान या कविता बन कर बिखर पडते है -)

वियोगी होगा पहिला कवि
आह से उपजा होगा गान
उमड़ कर आँखों से चुपचाप
बही होगी कविता अनजान ।[२]

पुराकाल मे आदि कवि की करुणा जब विगलित हो गई थी तब अनायास ही उनका संगीत निम्नलिखित छन्द के रूप मे मुखरित हो उठा था -

मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः ।
यत्क्रौंचमिथुनादेकमवधीः काममोहितम् ।।[३]

यशोधरा की वेदना चरम सीमा पर पहुँच कर रागमय होकर बह निकलती है और राष्ट्रीय कवि मैथिलीशरण गुप्त के शब्दो मे वह कह उठती है -

रुदन का हँसना ही तो गान ।
गा गा कर रोती है मेरी हृत्तन्त्री की तान ।
मीड़ मसक है कसक हमारी और गमक है हूक ।

चातक की हुत-हृदय-हूति जो, सो कोयल की कूक ।।
राग है सब मूर्च्छित आह्वान
रुदन का हँसना ही तो गान ।।[४]

कारुण्य और सगीत का चिरकाल से संबंध रहा है। इसी भावना को प्रकट करते हुए साकेत मे गुप्त जी ने कहा है -

---

1. To a Skylark, Percy Bysshe Shelley, Golden Treasury, Palgrave, Page 245.
२ आधुनिक कवि (२), सुमित्रानंदन पंत, 'आँसू से', पृ० १५
३. रामायणम्, वाल्मीकि, निर्णयसागर मुद्रणयन्त्रालय से प्रकाशित, बालकाण्ड, द्वितीय सर्ग, पृ० ११, श्लोक १४
४. यशोधरा, मैथिलीशरण गुप्त, पृ० ९८

मेरा रोदन मचल रहा है, कहता है कुछ गाऊँ।
उधर गान कहता है, रोना आवे तो मैं आऊँ ॥[1]

प्रथमतः कृष्ण, गोपियों तथा राधा के अनुराग के कारण कृष्ण-चरित्र मे संयोग तथा वियोग दोनों पक्षो का मधुर सम्मिलन हुआ है साथ ही स्वयं भक्त-गायक कवियो ने भक्ति की तन्मयता में अपने इष्ट के संयोग तथा वियोग दोनों रूपो की अनुभूति की अत· कृष्णभक्ति कालीन साहित्य मे श्रृंगार रस के सयोग और विप्रलभ दोनों अंगों का व्यापक समावेश हुआ है। श्रृगार तथा उसकी क्रोड़ मे करुण रस भी पल्लवित हुआ है। श्रृंगार तथा करुणा दोनो भावनाओं के संयोग के कारण कृष्णभक्तिकालीन साहित्य में संगीत के लिए विशेष आग्रह है। श्रृंगार के साथ करुणा का मेल अत्यंत हृदय द्रावक और मर्मस्पर्शी हो जाता है। प्रेम और सौन्दर्य के अप्रतिम गायक कविवर प्रसाद जी ने भी लिखा है –

श्रृंगार चमकता उनका मेरी करुणा मिलने से।[2]

पुष्टिमार्गीय सेवाविधि

यो तो कृष्णभक्तकालीन सभी सम्प्रदायो मे कीर्तनभक्ति मान्य थी। सभी गायक भक्त कवि सुन्दर-सुन्दर पदो के कीर्तन से अपने आराध्य को रिझाने की चेष्टा किया करते थे। ईश्वर का कीर्तन करते-करते लीन होकर बेसुध बन नाचने वाले महाप्रभु चैतन्य ने कीर्तन-भक्ति का अत्यधिक प्रचार किया किन्तु पुष्टिमार्गीय सेवाविधि के विधान मे एक नियमित क्रम तथा व्यवस्थित रूप में निर्द्धारित अष्टप्रहर की नित्य कीर्तन-प्रणाली तथा उत्सव आदि नैमित्तिक आचार साहित्य तथा संगीत के अपूर्व समन्वय तथा उच्च संयोग मे विशेष रूप से सहायक हुए।

पुष्टिमार्ग का अर्थ है कि जीव की आत्मा का पोषण परमतत्व के द्वारा होता है। अत· जीव का निरंतर पास रह कर उस परमतत्व के आचरणो तथा क्रियाओ के गुणगान में संलग्न रहना अनिवार्य है। इसी भावना के कारण पुष्टिमार्गीय भक्ति मे अष्टप्रहर की नित्य सेवाविधि तथा वर्षोत्सव सेवाविधि का विधान स्वीकृत हुआ जिसके अन्तर्गत प्रतिदिन प्रात· काल से सायंकाल पर्यंत आठ बार आठ सेवाओ और वसन्तोत्सव, हिंडोल तथा रासलीला आदि नैमित्तिक आचारों तथा लोक-त्यौहार और वैदिक पर्वो के उत्सव, षड्ऋतुओं के उत्सव तथा श्रीकृष्ण की नित्य और अवतार लीलाओ के उत्सव का आयोजन किया गया। अष्टप्रहर की सेवाओ का क्रमविधान निम्नलिखित प्रकार से था –[3]

---

१. साकेत, नवमसर्ग, पृ० २३६

२. आँसू, जयशंकर प्रसाद।

३. अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय, डा० दीनदयालु गुप्त, भाग २, पृ० ५६८–६९

श्री वल्लभ-सम्प्रदायी आठ समय की सेवा–

सेवा	समय
१. मंगला	प्रात· ५ बजे से ७ बजे तक
२. श्रृंगार	प्रात ७ बजे से ८ बजे तक
३ ग्वाल	प्रात. ९ बजे से १० बजे तक
४. राजभोग	प्रात· १० बजे से मध्याह्न १२ बजे तक
५. उत्थापन	दिन के ३।। बजे से ४।। बजे तक
६. भोग	लगभग सायं ५ बजे से
७. सन्ध्यार्ति	साय लगभग६।। बजे से
८. शयन समय	रात्रि के ७ बजे से ८ बजे तक।

श्रीनाथ जी के स्वरूप-पूजन मे श्रृगार, भोग तथा राग द्वारा की गई सेवाविधि के अन्तर्गत संगीत तथा संकीर्तन को प्रमुख स्थान प्राप्त था। प्रत्येक समय तथा उत्सव की झाँकी मे कीर्तन की व्यवस्था थी। अष्टप्रहर की नित्यसेवा तथा वर्षोत्सव सेवाओ मे विविध राग-रागिनियो में बद्ध विशिष्ठ वाद्ययत्रों की संगत मे उस समय से संबधित भावानुकूल पदो के गायन की सम्यक् आयोजना की जाती थी। मंगला की सेवा में अनुराग, खंडिताभाव जगाने तथा दधिमंथन के; श्रृंगार में बालरूप की सुन्दरता, वेषभूषा, बालक्रीड़ा के; ग्वाल मे सख्यभाव तथा कृष्ण के खेल चौगान, चकडोरी, गोचारण, गोदोहन, माखनचोरी, पालना, घैया, अरोगन के; राजभोग मे छाक के; उत्थापन मे गोटेरन तथा बन्यलीला के; भोग मे कृष्णरूप, गोपी दशा, मुरली, रूपमाधुरी, गाय, गोप आदि के; सध्यार्ति मे गोग्वाल सहित, वन से आगमन, गोदोहन, घैया, वात्सल्य भाव से यशोदा का बुलाना आदि के और शयन समय अनुराग, गोपी भाव से निकुंज लीला तथा संयोग श्रृगार के पदों का तथा वसंत हिंडोल, रासलीला आदि उत्सवो में इन क्रीड़ाओ से संबधित पदो का गायन कुशल संगीतज्ञों, कीर्तनकारो तथा गायनाचार्यो द्वारा किया जाता था। अत पुष्टिमार्गीय सेवाविधि मे संगीत को इतनी प्रधानता देने के फलस्वरूप भक्ति के कीर्तन-साधन के रूप मे वल्लभसम्प्रदायी भक्तों के द्वारा सुन्दर-सुन्दर पदो का गायन किया गया और ये ही पद अपने दिव्य गुणों के कारण 'काव्य' की संज्ञा से विभूषित हुए।

कृष्ण भक्ति कालीन कवियो का उद्देश्य अपने आराध्य देव की लीला का गान करना था। भक्ति की तन्मयता मे ये कवि मौज मे आकर कृष्ण की लीलाओ के पद गाया करते थे। जैसा कि पूर्व सिद्ध किया ज़ा चुका है कि वार्ता साहित्य से भी यही ज्ञात होता है कि अष्टछाप के कवियो के जीवन का चरम ध्येय श्रीनाथ जी के समक्ष समय-समय पर कीर्तन तथा अपने पदों का गायन करना ही था और श्रीनाथ जी की पूजा तथा अर्चना के लिए ही वे अपने पदो का निर्माण करते थे। अत. यदि यह कहा जाय कि पुष्टिमार्गीय सेवाविधान में मान्य, प्रचलित तथा निर्द्धारित कीर्तन-प्रणाली अष्टछाप-कवियो की संगीत प्रेरणा का न

केवल एक प्रधान उपादान ही बनी वरन् उसी के परिणामस्वरूप प्रायः समस्त अष्टछाप साहित्य की सृष्टि हुई तो अत्युक्ति न होगी ।

कृष्णभक्तिकालीन साहित्य में संगीत का स्वरूप

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि कृष्णभक्तिकालीन साहित्य मे सगीत का अपूर्व सामंजस्य है । कृष्णभक्तिकालीन कवियो के साहित्य-निर्माण मे सगीत साधना प्रमुख रूप से सहायक हुई है । स्वर-साधना अपनाने के कारण कृष्णभक्तिकालीन साहित्य के अन्तर्गत संगीत-सौन्दर्य निम्नलिखित तीन रूपो मे प्रस्फुटित हुआ है –

१. संगीत तथा उससे संबधित सामग्री का उल्लेख ।
२. संगीत की विभिन्न राग-रागिनियो का प्रयोग ।
३. कृष्णभक्तिकालीन कवियों की भाषा तथा शैली मे सगीत का समावेश ।

उपर्युक्त इन्ही तीन दृष्टिकोणों से आगे के पृष्ठो मे 'कृष्णभक्तिकालीन साहित्य' मे सगीत की समीक्षा की जायगी ।

चतुर्थ अध्याय

कृष्णभक्तिकालीन साहित्य में संगीत संबंधी उल्लेख

जिस प्रकार मनुष्य के मस्तिष्क मे उसके पूर्वसंचित विचारो, प्रचलित सास्कृतिक प्रणालियों एवं भावनाओ का समष्टि रूप विद्यमान रहता है उसी प्रकार साहित्य मे मनुष्य जाति के समस्त अनुभव, क्रियाओ, सांस्कृतिक मान्यताओ तथा विचारो का भंडार सुरक्षित रहता है। किसी देश या समाज की चित्तवृत्ति तथा सस्कृति का प्रतिबिब उसका साहित्य ही कहा जा सकता है। समाज की नीति-अनीति की मान्यताओं, रीतिरिवाज, खानपान, वेश-भूषा, आमोद-प्रमोद, सास्कृतिक अंगों तथा उत्सवों आदि साधनों की ज्यों की त्यो स्वीकृति साहित्य में प्रतिबिबित दीखती है, क्योकि साहित्य रचयिता समाज के ही व्यक्ति होते है। साहित्य समस्त जनता का अथवा समाज की सस्कृति तथा विचारादि का एक व्यवस्थित रूप ही तो है अतः देश के इतिहास मे जिस प्रकार की प्रणालियाँ प्रचलित होती है, जिस प्रकार की संस्कृति तथा सभ्यता मान्य होती है उनका साहित्य मे झंकृत होना स्वाभाविक ही है। सामाजिक संस्कृति का एक महत्वपूर्ण अंग होने के कारण संगीत के गायन-वादन तथा नृत्य इन तीनो अंगो संबधी सामग्री का भी साहित्य मे निरतर उल्लेख तथा विवरण मिलता है। साहित्य के अन्तर्गत संगीत सबधी ये उल्लेख अथवा विवरण दो प्रकार से प्राप्त होते है –

(१) संगीत संबंधी ग्रन्थों को रच कर उनका विस्तृत विश्लेषण।

(२) सगीत के भेद-प्रभेदो, अग-उपागो, राग-रागिनियो, वाद्ययंत्रो, नृत्य, संगीत की महत्ता आदि का साहित्य के कथानक सम्बन्धी विविध प्रसगो के अन्तर्गत यदा-कदा उल्लेख मात्र।

संगीत संबंधी ग्रन्थों की रचना तथा उनका विस्तृत विश्लेषण

हिन्दी साहित्य मे प्रथम दृष्टिकोण से कृष्णभक्तिकालीन कवियों में हरिराम व्यास

का महत्व अतुलनीय है। व्यास जी कृत 'रागमाला' भारतीय संगीत-शास्त्र पर रचित अप्रकाशित ग्रंथ है। इसकी रचना दोहा-छन्दों मे की गई है। 'रागमाला' मे सरस्वती मतानुसार छै राग तथा प्रत्येक राग की पॉच-पॉच भार्याओं का वर्णन किया गया है।[1]

व्यास जी के समय तक संस्कृत साहित्य मे संगीत पर अनेक ग्रन्थ प्राप्त होते है। ब्रजभाषा के व्यापक प्रचार के उस युग मे उस समय के सगीत-ज्ञान तथा प्रचलित राग रागिनियो के अध्ययन के लिये हमे सस्कृत तथा फारसी ग्रन्थो का ही आश्रय ग्रहण करना पडता है। हिन्दी मे व्यास जी कृत 'रागमाला' प्रथम उपलब्ध[2] प्रामाणिक रचना है[3] जिससे, संगीत की राग-रागिनियो पर व्यापक प्रकाश पड़ता है। इस ग्रन्थ द्वारा हमारे हिन्दी साहित्य की बहुमुखी प्रवृत्ति लक्षित होती है और उस युग मे भी हिन्दी साहित्य के व्यापक और विस्तृत दृष्टिकोण का परिचय मिलता है।

जिस प्रकार हिन्दी के रीति काल मे बिहारी के पश्चात् शृंगार-सतसई लिखने की एक परपरा सी चल पड़ती है उसी प्रकार व्यास जी के पश्चात् आगे चल कर हिन्दी साहित्य में संगीत तथा रागमाला संबधी ग्रन्थों के लिखने की एक परिपाटी सी चल पडती है। व्यास जी के समय के बाद से हिन्दी साहित्य मे संगीत सबधी कुछ ग्रन्थ उपलब्ध होते है।[1] इस दृष्टिकोण से हिन्दी साहित्य में रागमाला की महत्ता और भी अधिक बढ़ जाती है।

---

१. भक्त कवि व्यास जी, वासुदेव गोस्वामी, पृ० १४३ तथा १४६

२. संगीतशास्त्र पर तानसेन (१५८८–१६४६) कृत दो रचनाये (१) रागमाला तथा (२) संगीतसार कही जाती हैं। रागमाला ग्रंथ अभी तक प्राप्त नहीं है। संगीतसार डा० सरयू प्रसाद अग्रवाल लिखित 'अकबरी दरबार के हिन्दी कवि' नामक ग्रंथ के परिशिष्ट भाग में प्रकाशित हुआ है। किन्तु इसकी प्रामाणिकता के संबंध में संगीताचार्यो तथा विद्वानों मे मतभेद है।

३. भक्तिकवि व्यास जी, वासुदेव गोस्वामी, पृ० १४३–४६

१– हिन्दी-संग्रहालय प्रयाग तथा प्रयाग-संग्रहालय में संगीत सबंधी हिन्दी मे लिखित कुछ ग्रंथ सुरक्षित है। लेखिका ने स्वयं वहॉ जा कर निम्नलिखित ग्रन्थों का अवलोकन किया है।

हिन्दी संग्रहालय, हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग में सुरक्षित –

(अ) राग रत्नाकर, रचयिता राधाकृष्ण, लिपिकर्ता माधवप्रसाद दुबे, रचनाकाल १८५३, लिपिकाल १९२६, लिपि-नागरी, भाषा-ब्रजभाषा, विषय-रागों का वर्णन।

(ब) संगीत-दर्पण, भर्त्त बिहारीलाल ; ग्रन्थकाल (म० भवानी सिंह का समय), विषय–संगीत

संगीत संबंधी साहित्य में प्राप्त उल्लेख

सगीत और साहित्य के अध्येताओ से यह छिपा नही है कि इन दोनो की परपरायें जितनी प्राचीन है, इनसे सम्बद्ध विविध तत्वो के उल्लेख भी कम प्राचीन नही है। यदि भारतीय संगीत का आदि स्रोत सामवेद माना जाता है तो परवर्ती साहित्य के क्रमिक अध्ययन के बाद यह भी देखने को मिलता है कि प्राचीनतम रचनाओ के निरन्तर उल्लेख के साथ ही साथ समय-समय पर होने वाली नवीन स्थापनाओ के उल्लेख भी विविध प्रसगो मे साहित्यिक ग्रंथो मे बिछे पड़े है।

सामवेद मे उदात्त, अनुदात्त तथा स्वरित तीन स्वरो का वर्णन है। ऋग्वेद मे गर्गर, गोध, पिंग आदि वाद्ययत्रो का उल्लेख है। रामायण मे राग की सात जातियो का विवरण मिलता है। वाद्ययत्रो के अन्तर्गत भेरी, धुनधुभी, मृदग, पटाहा, घट, पन्नव, डिमडिमा, मुद्दुका, अडम्बरा तथा वीणा का विशेष रूप से उल्लेख मिलता है। महाभारत में सप्तस्वर तथा गाधार का उल्लेख किया गया है। अश्वघोष ने तूर्य, सोने के पत्ते से मढ़ी वीणा, वेणु, मृदंग, परिवादिनी (बड़ी वीणा), पणव (छोटा ढोल) आदि वाद्ययंत्रो का वर्णन किया है। कालिदास ने मेघदूत मे नृत्य का वर्णन करते हुए लिखा है –

पादन्यासैः क्वणितरशनास्तत्र लीलावधूतैः –

(मेघदूत १-३६)

प्रयाग संग्रहालय में सुरक्षित–

(अ) प्रति स० १०७/२१७, ग्रंथ का नाम 'संगीत प्रबंध सार भाषा' हरिवल्लभ। 'संगीत प्रबध सार भाषा' भारतीय संगीत शास्त्र पर संगीत दर्पण (संगीत दर्पण १६२५ के लगभग लिखा गया है– उत्तर भारतीय संगीत का संक्षिप्त इतिहास, भातखंडे, पृ० ३२) के अनुसार लिखा गया हिन्दी में ग्रंथ है।

(ब) प्रति नं० २०६/२१–) ग्रंथ का नाम 'रागमाला'
(स) प्रति न० २३२/२१ – ग्रंथ का नाम 'रागमाला'
} जीर्ण अवस्था मे होने के कारण दोनों ग्रन्थों के रचयिता तथा रचनाकाल के विषय में कुछ भी ज्ञात नहीं होता।

डा० रामकुमार वर्मा ने हिन्दी साहित्य मे संगीत संबधी निम्नलिखित चार पुस्तकों का उल्लेख किया है।

(अ) सभाभूषण, गंगाराम, संवत् १७४४
(ब) रागरत्नाकर, राधाकृष्ण, संवत् १७६६
(स) रागमाला, रामसखे, संवत् १८०४
(द) रागमाला, यशोनंद, संवत् १८१५, हि० सा० आ० इतिहास, पृ० २०, (विषय प्रवेश)

अर्थात् संध्या समय नृत्य करती हुई वेश्याओं की करधनी के घुँघुरू बड़े मीठे शब्द से बज रह होगे । कालिदास के विरही यक्ष की काता घुँघुरूदार कडेवाले हाथों से साँझ के समय ताली बजा-बजा कर मयूर को नचाती थी –

तालैः शिञ्जावलय सुभगैर्नर्तितः कांतया मे
यामध्यास्ते दिवसविगमे नीलकंठः सुहृद्वः ॥

(मेघदूत २,१६)

कालिदास के ग्रथों मे तूर्य, वल्लकी, आतोघ, मृदग, वीणा, वशकृत्य, वेणु तथा दुन्दभी वाद्ययंत्रो के नाम भी प्राप्त होते है । जातको मे राजाओ के गन्धर्वो से घिरे रहने का उल्लेख है । उस समय के सगीताचार्य गुत्तिल, मुसिल और सग्ग का नाम जातको मे आया है । महाजनक जातक मे चार नादो का उल्लेख है । जातको मे वीणा, पाणिस्सर, सम्मताल कम्भथूण, भेरी, मूतिगा, मुरज, आलम्बर, आनक, शख, पवनदेण्डिमा, स्वरमुख, गोधापीखा-देन्तिका, कुटुम्बतिण्डिम वाद्ययत्रो का वर्णन है । वीणा और वेणु की सगति मे नृत्य करने का विवरण भी प्राप्त होता है ।

हिन्दी साहित्य मे भी सगीत का उल्लेख स्थल-स्थल पर किया गया है । वीर-गाथा-काव्य मे वीर रस प्रधान है । "भक्ति रस का काव्य तो भारतवर्ष के प्रत्येक साहित्य मे किसी न किसी कोटि का पाया जाता है । राधा-कृष्ण को लेकर हर एक प्रान्त ने मंद या ऊँची कोटि का साहित्य पैदा किया है । लेकिन राजस्थान ने अपने रक्त से जो साहित्य निर्माण किया है उसकी जोड का साहित्य और कही नही मिलता ।"[1] देश के वीरो का यशोगान के साथ स्वागत करने के निमित्त राजस्थान के चारण, कवि तथा भाटो की वाणी मुखरित हुई । युद्ध के लिए वीरो को प्रोत्साहित करने और वीर-गति पाने पर उनकी प्रशस्तियाँ निर्मित करने के लिए चारणो की वीरोल्लासिनी कवितायें गूँज उठी अस्तु वीर-गाथा-काव्य के अन्तर्गत युद्ध का मार्मिक तथा सजीव वर्णन किया गया है । युद्ध-क्षेत्र मे भी सगीत का विशिष्ट महत्व रहा है । युद्ध प्रारम्भ होने से पूर्व वाद्यों के तार झनझना उठते थे और उनकी झकार वीर पुगवों को उत्साहित और उत्तेजित करती थी । शख और नगाड़ो की ध्वनि से समस्त वातावरण गुजायमान हो जाता था । वाद्यो के साथ नृत्य सा करते हुये राजपूत वीर अपनी वीरता का प्रदर्शन करते थे । वाद्यों की ध्वनि युद्ध मे और तीव्रता लाती थी । सगीत के इस सहयोग के कारण साहित्य मे भी युद्ध प्रसगो से संबंधित स्थलो पर अनेको वाद्ययत्रो का उल्लेख मिलता है । पृथ्वीराज-रासो मे कवि चन्द वरदायी ने पंग सेना के रणवाद्यो के वर्णन मे निशान, उपंग, मृदग, विषतार, बाँसुरी, शहनाई, नफेरी, नवरंग, भेरी, श्रृग, घन, घटा, शंख, आदि वाद्यो का परिचय दिया है । नरपतिनाल्ह कृत वीसलदेव-रासो मे ढोल, बाँसुरी, नगाडे का उल्लेख है । पृथ्वीराज कृत 'वेलिक्रिसन रुक्मिणी री' मे मृदंग, वीणा, डफ, अलगूँजा, बाँसुरी,

---

१. राजस्थान का पिंगल साहित्य, पं० मोतीलाल मेनारिया, पृ० ८

नसतरंग आदि वाद्ययंत्रो का विवरण है। पृथ्वीराज रासो में ध्रुपद, आलाप, तान, ग्राम, ताल, आरोह, अवरोह, उरप, तिरप, आदि शब्दों तथा नृत्य के बोलो का प्रयोग भी किया गया है। वीरगाथा-काव्य में वीर रस के साथ शृंगार रस भी सहायक के रूप में प्रयुक्त हुआ है। शृंगार तथा प्रेम के पुट के कारण रासो मे नृत्य का भी सजीव चित्रण किया गया है।

सूफी कवि जायसी ने भैरव, मालकोश, हिंडोल, मेघ मल्हार, श्री और दीपक इन छः रागों तथा कल्याण, कान्हरा, बिहाग, केदारा, प्रभाती, बगाली, आसावरी, गुनकली, मालीगौरा, धनाश्री, सूहा, बिलावल, मारू, रामकली, नट, गौरी, खमाच, सुघराई, सामंत, सारंग, गूजरी, सारग, विभास, पूर्वी, सिन्धी, देस, बैराटी, टोड़ी, गोड और निरारी इन ३० रागिनियो का वर्णन किया है। बसंत-खड के अन्तर्गत बसन्त ऋतु मे गाए जाने वाले पंचम राग का भी उल्लेख मिलता है। वाद्ययंत्रो मे पखावज, रवाब, वीणा, बेनु, कमाइच (सारगी बजाने की कमान), अमृत कुडली, मुहचंग, उपग, तुरही, बाँसुरी, हुडुक, डफ, झाँझ, मजीरा, ढोल, दुदुभी, भेरी, किगरी, शृंगी, मृदग और यंत्र का प्रमुख रूप से उल्लेख किया गया है।

सूफी कवि आलम ने षडज, ऋषभ, गान्धार, मध्यम, पंचम, धैवत और निषाद—सगीत के सातो स्वरो, झपताल, एकताल, ध्रुवपद, धुन, देसी आदि शब्दो का वर्णन किया है। कवि ने ६ राग तथा ३० रागिनियो का वर्गीकरण भी निम्नलिखित प्रकार से प्रस्तुत किया है—

राग—	रागिनियाँ—				
भैरव	(१) भैरवी,	(२) बिलावली,	(३) बंगाली,	(४) आसावरी,	(५) बेरारी
मालकोस	(१) गौड़ी,	(२) काटी,	(३) देवगंधारी,	(४) गंधारी,	(५) धनाश्री
हिंडोल	(१) तेलंगी,	(२) देवगिराई	(३) बासंती,	(४) सिंदूरी,	(५) सुघराई
दीपक	(१) क्काछाली,	(२) पटमंजरी,	(३) टोड़ी,	(४) कामोद,	(५) गूजरी
श्री	(१) बैराटी,	(२) करनाटी,	(३) गौरी,	(४) आसावरी,[1]	(५) सिंधवी
मेघ	(१) सौर,	(२) गौडमल्हार,	(३) आसा,	(४) गुनकली,	(५) सूहो।[2]

६ राग और ३० रागिनियो के अतिरिक्त कवि ने प्रत्येक राग के ८ पुत्र तथा इस प्रकार ४८ पुत्रों का वर्णन भी किया है। वाद्ययत्रो मे वीणा तथा मृदंग का विशेष रूप से उल्लेख है। नृत्य का सुन्दर वर्णन भी किया गया है।

रामायण में रामविवाह, रामविलास, वसन्तविहार, राज्याभिषेक आदि आनन्दमय स्थलों पर मांगलिक गीतो के साथ वाद्ययंत्रो का भी उल्लेख है। जिस प्रकार तुलसीदास भगवान राम के प्रत्येक मंगल कार्य पर देवताओं के द्वारा पुष्प वर्षा करवाते है उसी प्रकार

---

१. आलम ने आसावरी रागिनी का दो बार उल्लेख किया है। आसावरी रागिनी का भैरवराग तथा श्रीराग दोनों की भार्याओं के अन्तर्गत उल्लेख हुआ है।

२. प्रेम-गाथा-काव्य-संग्रह, गणेश प्रसाद द्विवेदी, पृ० १९३–९४

वे प्रत्येक मांगलिक पर्व पर झाँझ, मृदंग, ताल, शंख, शहनाई, डफ, निसान, दुन्दुभी, वीणा, वेणु आदि वाद्ययंत्रों को अवश्य बजवाते है ।

कृष्णभक्तिकालीन साहित्य में संगीत का उल्लेख प्रचुर मात्रा मे मिलता है । कृष्ण-भक्तिकालीन प्राय सभी कवियों ने संगीत तथा उसके भेद-प्रभेदो, अग-उपागो आदि का यत्र-तत्र पर्याप्त वर्णन किया है । यद्यपि संगीत सबधी ग्रंथ तो इन कवियो मे से केवल व्यास जी ने ही लिखा किन्तु उत्कृष्ट संगीत गायक होने के नाते इन सभी कवियों के भक्ति के आवेश में गाये पदों मे संगीत से संबंधित सामग्री पर्याप्त मात्रा मे उपलब्ध होती है ।

संगीत के भेद-प्रभेदों, अंग-उपांगों तथा पारिभाषिक शब्दों का उल्लेख

कृष्णभक्तिकालीन साहित्य मे नाद, ग्राम, २२ श्रुति, २१ मूर्च्छना, ४९ कूटतान, सप्तस्वर, सातों स्वरों के नाम—षडज, ऋषभ, गान्धार, मध्यम, पचम, धैवत, निषाद—सप्तक सरगम, तान, ओडव षाडव, आरोही, अवरोही आदि शब्दो का स्पष्ट उल्लेख मिलता है। इससे संबधित कृष्णभक्तिकालीन कवियो के पदो की कुछ पक्तियाँ नीचे उद्धृत की जाती है—

मुरलिया बाजति है बहुबान
तीन ग्राम, इकईस मूर्छना, कोटि उनचास तान ।[1]
बंसी री बन कान्ह बजावत······
सुरश्रुति तान बंधान अमित अति सप्त अतीत अनागत आवत ।[2]
नंद नँदन सुघराई बाँसुरी बजाई ।
सरगम सुनी कै साधि सप्त सुरनि गाई ।
अतीत अनागत संगीत बिचतान मिलाई ।
सुरतालऽरु नृत्य ध्याइ, पुनि मृदंग बजाई ।
सकल कला गुन प्रबीन, नवल बाल भाई ।
सूरज प्रभु अरस परस रीझि सब रिझाई ।।[3]
कबहूं गान करत अपनी रुचि करतल तार बजावत······
कबहुँक नृत्य करत कौतूहल सप्तक भेद दिखावत ।[4] (सूरदास)
खेलत गिरिधर रँगमगे रंग ·····

---

१. सूरसागर, (भाग–१), पृ० ७३१, पद सं० १६७१
२. वही, पृ० ४८९, पद सं० १२६६
३. वही, पृ० ६५५, पद सं० १७६६
४. वही, पृ० ७३८, पद सं० १६६४

पिचकारी नीके करि छिरकत गावत तान तरंग ।[१]

मदन गोपाल बेनुं नीकौ बाजत मोहन नाद सुनत भई बावरी ।[२] (परमानंददास)

गावति गिरिधरन संग परम मुदित रास-रंग · ···

सरि-गम-पध-धनि-गम-पधनि, उघटित सप्त सुरनि ।[३]

हिंडोरें व झुलवन आई·· ···

तान, मान, बंधान, भेद, गति, ताल, मृदंग बजावें ।[४] (कुंभनदास)

निकुंज में बेनु मधुर कल गावे ।

सप्त सुरन में रसिकराय पिय, रसिकिनि तोय बुलावै ॥··· ··

औघर तान मान संपूरन संगीत सुर उपजावै ।[५] (कृष्णदास)

मधूरे सुर गावति उपजावे आधी आछी तानन मनुहारी ।[६]

सप्त सुरन साज मिल सुलप बजाइ री ।[७] (नंददास)

सरस मुरली धुनि सों मिले सप्त सुर

रास रंग भीने गावे और तान बंधान ।[८]

ऐसेहि मोहू क्यों न सिखावेहु······

सारंग राग सरस नंदनंदन, सजि सप्तक सुर गावहु ।······

श्रुति संगीत करी परिमिति तो ताहू में अतित बढ़ावहु ।[९] (चतुर्भुजदास)

महिमा धनि तुव मति श्रेष्टतुव परम निपुन नृत्त तेरो बन्यो स्यामा वृन्दावन रीझे बीसो बिसा । सप्त सुर तीन ग्राम इक्कीस मूर्छना बाइस सित मति राग मध्य रग रंग राख्यो स र ग–

---

१. अष्टछाप परिचय, प्रभुदयाल मीतल, पृ० १६६, पद सं० ७०
२. वही, पृ० २०१, पद सं० ८५
३. कुंभनदास, काँकरौली, पृ० २२, पद सं० ३५
४. वही, पृ० ५०, पद सं० ११६
५. अष्टछाप परिचय, प्रभुदयाल मीतल, पृ० २३३, पद सं० ३८
६. नंददास, उमाशंकर शुक्ल, पृ० ३३६, पद सं० १६१
७. वही, पृ० ३७४, पद सं० ३६
८. अष्टछाप परिचय, प्रभुदयाल मीतल, पृ० २८८, पद सं० ५६
९. वही, पृ० २८६, पद सं० ६३

म प ध नि सा स स स स न न न न ध ध ध ध प प प प म म म म ग ग ग ग री री सा सा ।[१]

गोप वृन्द संग निर्त्तत रंग
स रि ग म प ध नी अलाप करत उपजत तान तरंग ।[२]
ए री ह्यां वृन्दावन रंग
सकल कला प्रबीन सा रि ग म प ध नी अलाप करत है उपजत तान तरग ।[३]
नदलाल संग नाचत नवल किसोरी
षडज्, ऋषभ, गंधार सप्त सुरनि मधिम तार लेत ग्र ग्र त त त त होरी ।[४]
झूलत सुरंग हिंडोरे राधा मोहन······
राग मलार अलापति सप्त सुरनि तीन ग्राम जोरे ।[५] (गोविंदस्वामी)
लाल संग रास-रंग लेत मान रसिक रमन······
स रि ग म प ध नि, ग म प ध नि धुनि सुनि
ब्रजराज तरुनि गावत री, अति गति यति भेद सहित
ता न न ना न न न न न न न न अति गति असलीने ।[६]
श्री राग में कान्ह मुरली बजावे ।
सप्त सुर भेद अवघर तान बिकट सो गति मधुर धर मोद मनसिज उपजावें ।[७]
(छीतस्वामी)

आज माई रिझाई सारंग नैनी
अतिरस मीठी ताननि काननि काननि में अमृत सो बरसत ।[८]
आज मोहन रची रास रस मंडली······

---

१. गोविंदस्वामी, कॉकरौली, पृ० १६८, पद सं० ४२३
२. वही, पृ० १५३, पद सं० ३६६
३. वही, पृ० १३८, पद सं० ३२०
४. वही, पृ० २६, पद सं० ६३
५. वही, पृ० १०३, पद सं० २१०
६. अष्टछाप परिचय, प्रभुदयाल मीतल, पृ० २६७, पद सं० १५
७. हस्तलिखित पद-संग्रह, छीतस्वामी, डा० दीनदयालु गुप्त, पद सं० २८
८. मोहनी वाणी श्री गदाधर भट्ट जी को, प्रकाशक कृष्णदास, पृ० ३१

गान रस तान के बान वेध्यौ विश्व जानि अभिमान मुनिध्यान रतिदल मली ।[1]
(गदाधर भट्ट)

नंद नंदन सुघर राय मोहन बंसी बजाइ सारीगमपधनी सप्त सुरन मिलि गावे ।
अति अनाधाति संगीत सरस सुर नीके अवघर तान मिलावे
सुराध्याय तालाध्याय न्रित्याध्याय निपुन लघु गुरुतजि पुलकभेद म्रिदंग बजावे ।

सूरदास मदनमोहन सकल कलागुन प्रवीन आपुन रिझ रिझावे ।[2]
(सूरदास मदनमोहन)

लागि कटुर उरप सप्त सुर सौं सुलप लेति सुन्दरि सुघर राधिका नामिनी ।[3]
(हितहरिवंश)

अपनैं बृंदावन रास रच्यौ नाँचत प्यारी पिय संग ।
सब्द उघटत स्याम नटवर मनौं कल मुखचंग ।।
बिबिध बरन संगीत-अभिनय-निपुन-नखसिंग अंग ।
सा रे ग म प ध नी सप्तम सुर गान तार तरंग ।।[4]
नाँचति नागरि सरस सुधंग······
सप्त सुर गान रागिनि-राग-सागर मान-नागर
तान पद-बंधान धुनि सुनि विगत गर्व अनंग ।।[5] (व्यास)

तीनहूं सुर के तान बंधान धुर धुरपद अपार ।[6] (हरिदास)

राग-रागिनियों का उल्लेख

कृष्णभक्तिकालीन साहित्य मे 'राग रागिनी' शब्दो का उल्लेख किया गया है। उदाहरणस्वरूप कतिपय पंक्तियाँ उद्धृत की जाती है –

'राग रागिनी' मूरतिवंत दुलह दुलहिनि सरस वसंत ।[7]

---

१. श्री गदाधरभट्टजी महाराज की बानी, बालकृष्णदास जी की हस्तलिखित प्रति, पृ० २३, पद सं० १
२. अकबरी दरबार के हिन्दी कवि, सरयूप्रसाद अग्रवाल, पृ० ४४९, पद सं० ९
३. चौरासी पद हितहरिवंश, प्रति सं० ३८/२१५, प्रयाग संग्रहालय, पद सं० ६८
४. भक्त कवि व्यास जी, वासुदेव गोस्वामी, पृ० ३९७, पद स० ६४४
५. वही, पृ० ३९२, पद सं० ७२४
६. पद संग्रह, प्रति सं० ३७१/२६९, का० ना० प्र० सभा, पृ० श्री स्वा० १९, पद स० ३
७. सूरसागर, (भाग १), पृ० ६७२, पद सं० १७९८

'राग रागिनी' प्रकट दिखायौ गायौ जो जिहि रूप ।[१]

नाना 'राग रागिनी' गावत धरे अमृत मृदु बैननि में ।[२] (सूरदास)

कमल नयन प्यारे अवधर तान जानत

अलग सों लग, अरु 'राग सों रागिनी' बहुत अनागत आनत ।[३] (कंभनदास)

सुंदर नंदनंदन जो हौं पाऊँ .....

'राग रागिनी' उरप सुरप गति सुर सच मधुरे गाऊँ ।[४] (कृष्णदास)

'राग रागिनी' गावत हरषत वरषत सुख की ढेरी ।[५]

'राग रागिनी' की रानी ततथेई की कल बानी ।[६]

अनेक भांत 'राग रागिनी' अनुराग भरे उपजावे ।[७] (नंददास)

नवल किसोर औ नवल किसोरी 'राग रागिनी' गावें ।[८]

नेंकु सुनावे हो मोहन मुरली तान । .....

अपुने कर ले धरत लालन 'राग रागिनी' गान ।[९] (गोविंदस्वामी)

मुदित अनुराग सब 'राग रागिनी' तान मान गत गर्व रभादि सुरबाल ।[१०]

(गदाधर भट्ट)

'राग रागिनी' जमी विपिन बरषत अमी

अधर बिंब निरमी मुरली अभिरामिनी ।[११]

'राग रागिनी' तान मान संगीत मत थकित राकेश नभ सरद की जामिनी ।[१२]

(हितहरिवंश)

---

१. सूरसागर, पृ० ६५३, पद स० १७६२

२. वही, पृ० ७३४, पद स० १९८३

३. कुंभनदास, विद्याविभाग काँकरौली, पृ० १९, पद सं० २८

४. अष्टछाप-परिचय, प्रभुदयाल मीतल, पृ० २३३, पद सं० ३४

५ वही, पृ० ३१८, पद सं० ६

६. वही, पृ० ३७० पद सं० २५

७. वही, पृ० ३७४, पद सं० ६४

८. गोविंदस्वामी, काँकरौली, पृ० ५२, पद सं० १०९

९. वही, पृ० १६७ पद सं० ४१९

१०. श्री गदाधर भट्ट जी महाराज की बानी, बालकृष्णदास जी की प्रति, पत्र २३-२४, पद सं० ३

११. चौरासी पद हितहरिवंश, प्रति सं० ३८।२१५, प्रयाग संग्रहालय, पद सं० ६८

१२. वही, पद सं० ७१

'राग रागिनी' तान मान महिं लालन लगतें आवत ।[1]
अद्भुत 'राग रागिनी' घन वरषत आनंद सिंधु बढ़ावति ।[2]
'राग रागिनी' गान, सप्तसुर पट ताल, सूलक लगिनि मान रग रासे ।[3]
(व्यास)

हाथ किन्नरी मधि सच पाइ सुलप 'राग रागिनि' सों मिलि गावत ।[4]

इन उद्धरणो से ज्ञात होता है कि कृष्णभक्तिकालीन कवियो के समय मे 'राग-रागिनी-वर्गीकरण' की पद्धति प्रचलित थी और इनके द्वारा भी यही प्रणाली मान्य थी ।

सूरदास के पदो मे राग-रागिनियो की संख्या की ओर भी सकेत किया गया है । सूरदास ने एक स्थल पर लिखा है –

छहों राग छत्तीसों रागिनि, इक इक नीकें गावें री ।[5]

इससे ज्ञात होता है कि सूरदास के द्वारा ६ राग तथा प्रत्येक की ६-६ रागिनियो वाला वर्गीकरण मान्य था । कौन से ६ राग थे तथा प्रत्येक की रागिनियो के क्या नाम थे इसका उल्लेख सूरदास ने नही किया । सूरसारावली मे श्याम-श्यामा की क्रीड़ा का वर्णन करते हुए सूरदास कहते है –

ललिता ललित बजाय रिझावत मधुरबीन कर लीने ।
जान प्रभात राग पंचम षट मालकोस रस भीने ॥
सुर हिंडोल मेघ मालव पुनि सांरग सुर नट जान ।
सुर सांवत भुपाली ईमन करत कान्हरौ गान ॥
ऊंच अडनि के सुर सुनियत निपट नायकी लीन ।
करत विहार मधुर केदारौ सकल सुरन सुखदीन ॥
सोरठ गौर मलार सोहावन भैरव ललित बजायौ ।
मधुर विभास सुनत बेलावल संपति अति सुख पायौ ॥
देवगिरि देसाक देव पुनि गौरी श्री सुखबास ।
जैतश्री अरु पूर्वी टोडी आसावरी सुखरास ॥
रामकली गुनकली केतकी सुर सुघराई गाये ।
जैजैवंती जगतमोहनी सुर सों बीन बजाये ॥

---

१. भक्त कवि व्यास जी, वासुदेव गोस्वामी, पृ० २४०, पद सं० १९१
२. वही, पृ० ३३४, पद सं० ५३८
३. वही, पृ० ३४०, पद सं० ५५९
४. पद संग्रह, प्रति सं० ३७१।२६९, का० ना० प्र० सभा, पृ० १९, पद सं० ८
५. सूरसागर, (भाग पहला), पृ० ६९८, पद सं० १८५६

सूआ सरस मिलत प्रीतम सुख सिंधुवार रस मान्यौ।
जान प्रभात प्रभाती गायौ भोर भयौ दोउ जान्यौ ॥[1]

इस उद्धरण के अन्तर्गत निम्नलिखित रागिनियों के नाम आए है –

(१) ललित (२) पंचम, (३) खट, (४) मालकोष, (५) हिंडोल,
(६) मेघ, (७) मालव, (८) सारंग, (९) नट, (१०) सावत,
(११) भूपाली, (१२) ईमन, (१३) कान्हरौ, (१४) अडाना, (१५) नायकी,
(१६) केदारौ, (१७) सोरठ, (१८) गौडमल्हार, (१९) भैरव, (२०) विभास,
(२१) बिलावल, (२२) देवगिरि, (२३) देशख, (२४) गौरी, (२५) श्री,
(२६) जैतश्री, (२७) पूर्वी, (२८) गोडी, (२९) आसावरी, (३०) रामकली,
(३१) गुनकली, (३२) सुघराई, (३३) जैजैवती, (३४) सूहा, (३५) सिन्धूरा,
(३६) प्रभाती।

अष्टछाप-परिचय मे श्री प्रभुदयाल मीतल इस उद्धरण तथा उसमे आई इन ३६ राग-रागिनियो की ओर इगित करते हुए कहते है –"सगीत का आधार सप्तस्वरो पर है।" इन स्वरो से मूलत हिंडोल, दीपक, भैरव, मालकोस, श्री और मेघ इन छ रागो की उत्पत्ति हुई है। प्रत्येक राग की पॉच-पॉच स्त्रियाॅ मानी गई है जिनको रागिनियाॅ कहते है। ये रागिनियाॅ तीस है।"[2] आगे मीतल जी कहते है –"राग-रागिनियो की छत्तीस सख्या सर्व सम्मति से निश्चित है किन्तु इनके नामो के सबध मे मतभेद है। सूरदास ने इन राग-रागिनियो के नामो का इस प्रकार कथन किया है ....।"[3]

मीतल जी के इस विवरण से यह प्रकट होता है कि सूरदास के द्वारा ६ राग तथा प्रत्येक की ५-५ भार्याओं इस प्रकार कुल मिलाकर ३६ राग-रागिनियो वाला वर्गीकरण मान्य था और इन ३६ राग-रागिनियो के नाम ऊपर लिखित क्रम से थे। किन्तु लेखिका का इससे मतभेद है। इसी अध्याय में पीछे पृष्ठ १२६ पर कहा गया है कि कृष्णभक्तिकालीन कवियों के द्वारा राग-रागिनियों के वर्गीकरण की पद्धति मान्य थी। 'कृष्णभक्तिकालीन साहित्य मे प्रयुक्त राग-रागिनियाँ' शीर्षक अध्याय मे 'राग का विकास' नामक प्रकरण मे दिखाया गया है कि कृष्णभक्तिकालीन कवियों के समय मे ६ राग तथा उनकी रागिनियो वाली पद्धति मान्य हो गई थी। किन्तु प्रत्येक राग की रागिनियो की संख्या तथा उनके नाम के संबध मे विभिन्न मत थे। कुछ लोगो को ६ राग तथा ३० रागिनियो का वर्गीकरण मान्य था। इसके विपरीत कुछ लोग ६ राग तथा ३६ रागिनियो वाली पद्धति को मानते थे। अत. निश्चित रूप से यह कह देना कि सूरदास ने ६ राग तथा ३० रागिनियों वाली पद्धति कों

१. सूरसारावली, सूरदास, वें० प्रे०, छं० सं० १०१२ से १०१८ तक
२. अष्टछाप-परिचय, प्रभुदयाल मीतल, पृ० ३६२
३. वही, पृ० ३६३

ग्रहण कर ऊपर के उद्धरण मे ३६ राग-रागिनियो के नाम गिनाये है केवल भ्रम मात्र ही है। सूरदास के पदो में कही भी ६ राग तथा प्रत्येक की ५–५ रागिनियो वाले वर्गीकरण की ओर इंगित नही किया गया है वरन् इसके विपरीत जैसा पृष्ठ १२६ पर कहा जा चुका है सूरदास के पद मे ६ राग तथा ३६ रागिनियो की ओर सकेत किया गया है। इससे स्पष्ट रूप से प्रकट होता है कि सूरदास ६ राग तथा प्रत्येक की ६–६ भार्याओ वाले सिद्धात के समर्थक थे। सूरसारावली के उक्त प्रसंग मे जो ३६ राग-रागिनियो के नाम आये है वे किसी सिद्धात के अनुसार नही है क्योकि उसमे प्रत्येक राग तथा उससे सम्बन्धित रागिनियो का अलग-अलग स्पष्ट उल्लेख नही किया गया है। सूरदास भावुक भक्त तथा एक महान संगीतज्ञ थे किन्तु उनका ध्येय अपनी संगीत विद्वत्ता का प्रदर्शन करना नही था। उनके आराध्य सगीत के कुशल कलाकार थे और कृष्ण की विनोद-क्रीडा मे संगीत का प्रमुख स्थान रहा है इसीलिए सारावली में श्याम-श्यामा की संयोग-क्रीड़ा मे प्रसंगवश कुछ राग-रागिनियो के नामो का उल्लेख मात्र हो गया है।

कृष्णभक्तिकालीन साहित्य मे यत्र-तत्र संगीत की विविध राग-रागिनियों के नामो का उल्लेख हुआ है। इनमे प्रमुख रूप से सारग, गौरी, हिडोल, सुघराई, नटनागर, मलार, आसावरी, ललित, भैरव, विभास, बसंत, केदारी, कल्याण, कान्हरो राग-रागिनियों का बार-बार नाम आता है।

इन राग-रागिनियो से सम्बन्धित कृष्णभक्तिकालीन कवियों के काव्य की पंक्तियाँ उदाहरणस्वरूप अगले पृष्ठ पर उद्धृत की जाती हैं –

जेंवत गावत है 'सारंग' की तान कान्ह सखिन के मध्य छाक लेत कर छीनें ॥[१]
अधर धर मुरली स्याम बजावत।
'सारंग' 'गौड़ी' 'नटनारायन', 'गौरी' सुरहि सुनावत।[२]
केकी-पच्छ मुकुट सिर भ्राजत 'गौरी' राग मिलै सुर गावत।[३]
अधर अनूप मुरलि सुर पूरत 'गौरी राग' अलापि बजावत।[४]
मंद-मंद सुर पूरत मोहन 'राग मलार' बजावत।[५] (सूरदास)
आजु नीकौ बन्यौ 'राग आसावरी'।[६]
या हरि को संदेश न आयौ ·····

---

१. सूरसागर, (भाग पहला), पृ० ४२०, पद सं० १०८५
२. वही, पृ० ६६३, पद सं० १८३८
३. वही, पृ० ४३६, पद सं० ११२४
४. वही, पृ० ७३५, पद सं० १९८६
५. वही, पृ० ८७९, पद सं० २४२६
६. अष्टछाप-परिचय, प्रभुदयाल मीतल, पृ० २०१, पद सं० ८५

'राग मल्हार' सह्यो नहिं जाई, काहू पंथि कहि गायौ ।[१] (परमानन्ददास)

नीको मोहि लागै श्री गिरिधर गावै
ततथई, ततथेई, ततथेई 'भैरव राग' मिलि मुरली बजावै ।[२]
करहिं केल बन-बिहार, निरखि जोट लजित नारि
गावत मिलि बदन चारु, 'ललित राग' री ।[३]
गावें तहां कृष्णदास गिरधर गोपाल पास,
राग धम्मार, 'राग मलार' मोद मन माँचे ।[४] (कृष्णदास)

या तें तू भावति मदन गोपालै ।
'सारंग रागै' सरस अलापति, सुघर मिलत एकतालै ॥[५]
आई रितु चहुं दिसि फूले द्रुम कानन,
कोकिला समूहनि गावति 'बसंतहिं' ।[६]
गावत 'नटनाराइनराग' मुदित देत चैन ।
फाग चहुं दिसा जुरि ग्वालबाल-वृंद टोलनां ॥[७]
सरस सरोवर मांझ देखियतु फूले कुमुद कल्हार,
तान, मान, सुगान गावें जम्यौ 'राग मल्हार' ।[८] (कुंभनदास)

मुरली मधुर 'मलार' सुगावत उघरे अंबुद फिरि घिरि आवत ।[९]
बन तें आवत गावत 'गौरी' ।[१०] (नंददास)

गरजत गगन दामिनी दमकत, गावत 'मलार' तान लेत न्यारी ।[११]
'सारंग राग' सरस नँद नंदन, सजि सप्तक सुर गावहु ।[१२]
हिंडोरना माई झूलन के दिन आए,
गरज-गरज गगन दामिनि दमकत, 'राग मलार' जमाए ।[१३]

---

१. अष्टछाप-परिचय, प्रभुदयाल मीतल, पृ० २०४, पद सं० १००
२. वही, पृ० २३२, पद सं० ३३
३. वही, पृ० २३८, पद सं० ६४
४. वही, पृ० २३६, पद सं० ६७
५. वही, पृ० ११३, पद सं० ४४
६. वही, पृ० ११३, पद सं० ४०
७. कुंभनदास, विद्याविभाग कांकरौली, पृ० ३६, पद सं० ७४
८. वही, पृ० ५१, पद सं० १२०
९. नंददास, उमाशंकर शुक्ल, पृ० २८८, पद सं० ५०
१०. वही, पृ० ३३२, पद सं० ८४
११. अष्टछाप-परिचय, प्रभुदयाल मीतल, पृ० २८८, पद सं० ५६
१२. वही, पृ० २८६, पद सं० ६३
१३. वही, पृ० २६३, पद सं० ८०

खेलत, नंद किसोर ब्रज में हो-हो होरी
'गौरी राग' अलापत गावत, मधु मुरली कल घोरी ।[१] (चतुर्भुजदास)

मच्यौ 'राग बसंत' तिहि ओसर गावत तान भली ।[२]
बीरी खात खबावत मुदित मन गावत,
'सारग राग' तान ही सो मन ही मन फूलें ।[३]
गोविंद बलि सुघर दोउ गावत, 'केदारो राग' तान अति सरसे ।[४]
रसिक सिरोमनि 'राग कल्यान' गावे ।[५]
बन तें बने माई आवत ब्रजनाथ ।
गावत 'गौरी राग' बल्लब बालक साथ ।[६]
गावत 'राग मलार' भामिनि, पहिरे झूमक सारी ।[७]
'राग कान्हरो' सप्त सुर राजत गावत गीत रसाल ।[८] (गोविंदस्वामी)

नंदनंदन गोधन संग आवत ।
सखा मंडली मध्य विराजत 'राग गौरी' सरस सुर गावत ।।[९]
'श्री राग' में कान्हा मुरली बजावें ।[१०] (छीतस्वामी)

ऊँची ध्वनि सुन चक्रित होत मन सब मिलि गावत 'राग हिंडोल ।[११]

(सूरदास मदनमोहन)

युवतिनि मंडल मध्य श्यामघन 'सारंगराग' जमायो ।[१२]
दोऊ मिलि चाचर गावत 'गोरी राग' अलापि ।[१३]
नव मुरली जु 'मल्लार' नई गति श्रवण सुनत आये घन घोरी ।[१४]

---

१. अष्टछाप-परिचय, प्रभुदयाल मीतल, पृ० २६४, पद सं० ८५
२. गोविंदस्वामी, विद्याविभाग काँकरौली, पृ० ५०, पद सं० १०३
३. वही, पृ० ७५, पद सं० १४१
४. वही, पृ० ६०, पद सं० १७६
५. वही, पृ० १६८, पद सं० ४२४
६. वही, पृ० १५६, पद सं० ३८०
७. वही, पृ० ६८, पद सं० १६८
८. वही, पृ० १०३, पद सं० २११
९. हस्तलिखित पद-संग्रह, छीतस्वामी, डा० दीनदयालु गुप्त, पद सं० २५
१०. वही, पद सं० २८ .
११. अकबरी दरबार के हिन्दी-कवि, सरयू प्रसाद अग्रवाल, पृ० ४५०, पद सं० १२
१२. चौरासी पद हितहरिवंश, प्रति सं० ३८/२१५, प्रयाग संग्रहालय, पद स० ३६
१३. वही, पद सं० ५७
१४. वही, पद सं० ५४

'गौरी' गान सु तान ताल गहि रिझवत क्यों न गुपालहि ।[1]
जै श्री नटवत हरिवंस गान 'रागिनी कल्यान' तान सप्त सुर निकलइ ते पर
मुरिलका वरषी ।[2] (हितहरिवंश)

नागरी 'नट नारायण' गायौ ।[3]
सारंग नैनी चली अलि संग, सुनि 'सारंग' की तान[4]
कृष्न भुजंगिनि बैनी नाँचति, गावति गोरी 'आसावरी' ।[5]
सिद्ध रागिनी, 'राग सारंग' सहित, सरस सुधंग ।[6]
नाँचति गावति 'राग बसंतहि' सुनि फूली मोहन की छतियाँ ।[7]
तब 'राग मलारनि' बाजति है, तब मोर मंडली नाचति जु सुहाई ।[8]
(व्यास)

प्यारी पियहि सिखावत वीना तान वंधान 'कल्यान' ।[9]
सौंधै भीजलिट छूटी पिय के अंस भुजा पाछै सखी सुघर 'विभासहि' गावति ।[10]
(विट्ठलविपुल)

सब सखी मिलि 'सुघराई' गावती बीन बजावत सब सुख मिलि संगीत पगे ।[11]
श्री हरिदास के स्वामी स्यामा कुंजबिहारी के गावत 'राग मलार' जम्यो
किसोर किसोरिनि ।[12] (हरिदास स्वामी)

विहरत वन वन बूंदनि में गावत 'राग मलार' मिले मन ।[13]
श्री विहारिन दासि गाई गूढ़ ओढ़नी उठाई
रीझि रहे अंग भीजि मिल 'मलार' गाई ।[14] (विहारिनदास)

---

१. चौरासी पद हितहरिवंश, प्रति सं० ८५/२१६, पद सं० ८
२. वही, (फुटकर पद), पद सं० १३
३. भक्त कवि व्यासजी, वासुदेव गोस्वामी, पृ० २९४, पद सं० ३९७
४. वही, पृ० ३२९, पद सं० ५२१
५. वही, पृ० ३३६, पद सं० ६२९
६. वही, पृ० ३६७, पद सं० ६४४
७. वही, पृ० ३७४, पद सं० ६६४
८. वही, पृ० ३७९, पद सं० ६८५
९. पद-संग्रह, प्रति सं० १६२०/३१७०, हिन्दी संग्रहालय, पद सं० २९
१०. वही, पद सं० २
११. वही, पृ० २७, पद सं० २
१२. वही, पृ० २८, पद सं० २
१३. पद-संग्रह, प्रति सं० ३७१/२६९, का० ना० प्र० सभा, पत्र १३१, पद सं० ३
१४. वही, पत्र १३१, पद सं० २

परसराम प्रभु असल भक्त क्यों मोर 'मलार' सुणावै ।[1]
हो सुनि व्रजराज 'राग सारंग' सुर-गावत्त गुण व्रज नारी ।[2] (परशुराम)

गायन के प्रकारों का उल्लेख

कृष्णभक्तकालीन साहित्य में गायन के प्रकारो मे से ध्रुपद तथा धमार का उल्लेख मिलता है। उदाहरणस्वरूप निम्नलिखित पक्तियाँ दृष्टव्य होगी –

स्यामा स्याम रिझावत भारी…… (हितहरिवंश)
दोहा–छंद–'**ध्रुपद**' जस हरि कौ, हरिही गाइ सुनावति ।[3]
छद '**ध्रुवनि**' के भेद अपार । नाचति कुंवरि मिले झपताल ।[4]

इक गावत है '**धमारि**' ,इक एकनि देत गारि,
दई सबनि लाज डारि बाल पुरुष तोरी ।[5] (सूरदास)

गावै तहाँ 'कृष्णदास' गिरिधर गोपाल पास
राग '**धम्मार**' राग मलार मोद मन माँचै ।[6] (कृष्णदास)

डोल झुलावत सब ब्रज सुदरि, झूलत मदन गोपाल ।
गावत फाग '**धमार**' हरषि भर, हलधर और सब ग्वाल ।[7] (नन्ददास)

कोकिल धुनि बाजित्र बजावहि गावहिं सरस '**धमार**' ।[8] (गोविदस्वामी)
गावत सुदर हरि रस '**धमारि**' ।[9] (हितहरिवश)

गावत नाँचत हो–हो होरी, हो '**धमारि**' जमी ।[10]
सनमुख आवत '**होरी**' गावत सखन सहित बलबीर ।[11] (व्यास)
परस्पर राग जम्यो समेत किन्नरी मृदग सो तार ।
तीनहूं सुर के तान बंधान धुर '**ध्रुपद**' अपार ।[12] (हरिदास)

---

१. **रामसागर, परशुराम,** ६८०/४६२, **का० ना० प्र० सभा, रा० साग०** १०३, **पद सं०** ७
२. **वही, रा० साग०** ७६, **पद सं०** ४५
३ **सूरसागर, (भाग** १ **),** पृ० ६३४, **पद सं०** १६६७
४. **वही,** पृ० ६७२, **पद सं०** १६६८
५. **वही, (भाग** २ **),** पृ० १२२७, **पद स०** ३५०६
६. **अष्टछाप-परिचय, प्रभुदयाल मीतल,** पृ० २३६, **पद सं०** ६७
७. **वही,** पृ० ३२६, **पद स०** ४२
८. **गोविंद स्वामी, कॉकरौली,** पृ० ७६, **पद सं०** १४३
६ **चौरासी पद, प्रति सं० ३८।२१५, प्रयाग संग्रहालय, पद सं०** २७
१०. **भक्त कवि व्यास जी, वासुदेव गोस्वामी,** पृ० ३७०, **पद सं०** ६५४
११. **वही,** पृ० ३७१, **पद सं०** ६५८
१२. **पदसंग्रह, प्रति सं० ३७१।२६६, का ना० प्र० सभा, श्री स्वा० पृ०** १६, **पद सं०** १६१

होरी पिया बिण म्हाणे णा भावा घर आगणा णा शुहावः। ......
वा विरयां कब होशी म्हारी हंस पिय कण्ठ डगावा
मीरा 'होड़ी' गावा।[1] (मीरा)

वाद्ययंत्रों का उल्लेख

कृष्णभक्तिकालीन साहित्य मे कृष्ण-जन्म तथा उससे सबधित उत्सवों, श्याम, श्यामा, गोप और गोपियो की विनोद-क्रीड़ा, वसन्त, फाग, होली, हिडोल आदि विविध उत्सवो तथा रास-लीला, जलविहार-क्रीड़ा, वर्षा आदि प्रसंगो मे बार-बार निम्नलिखित वाद्ययंत्रों का उल्लेख किया गया है –

रुंज, मुरज, ढफताल, बाँसुरी, झालर, बीन, रबाब, किन्नरी, अमृतकुंडली, यत्र, स्वरमंडल, जलतरंग, पखावज, उपंग, सहनाई, सारगी, कसताल, कठताल, मुहचग, खंजरी, पटह, निसान, मृदंग, डफ, झाँझ, तूर, वीणा, घन, शंख, शृंगी, भेरि, नगाड़ा, हुड्डुक, डमरू, कुंडली, दुदुभी, घंटा, तानतरग, ढोल, वेणु, ताल, अधौटी, ढप, पिनाक, मदनभेरि, थारी. महुवरि, मजीरा, सहदाना, दमामा, आवज, करताल, मुरली, तालतंत्र, बेना, पचसव्द, तार, और बीना चीन।

वाद्ययंत्रों से सबंधित कृष्णभक्तिकालीन कवियो के काव्य की कुछ पक्तियाँ उदाहरणस्वरूप नीचे उद्धृत की जा रही है–

पंचमि पंच शब्द करि साजे सजि वादित्र अपार।
रुंज मुरज ढफताल बाँसुरी झालर को झंकार ॥
बाजत बीन रबाब किन्नरी अमृत कुंडली यंत्र।
सुर सुरमण्डल जलतरंग मिल करत मोहनी मंत्र ॥
विविध पखावज आवज संचित बिच बिच मधुर उपंग।
सुर सहनाई सरस सारंगी उपजत तान तरंग ॥
कंसताल कटताल बजावत शृंग मधुर मुहचंग।
मधुर खंजरी पटह प्रणव मिल सुख पावत रतभंग ॥
निपटन केरी श्रवणन धुनि सुनि धीर न रहे ब्रजबाल।
मधुर नाद मुरली को सुन के भेटे श्याम तमाल ॥[2] (सूरदास)
बने बन आवत मदन गोपाल ·····
बेनु, मुरज, उपचंग, चंग मुख, चलत विविध्र सुर-ताल
बाजे अनेक बेनु-रव सों मिलि, रनित किंकिनी-जाल।[3]

१. मीरा-स्मृति-ग्रंथ, मीरा-पदावली, पृ० २०, पद सं० ७०
२. सूरसारावली, (श्री वेंकटेश्वर प्रेस से प्रकाशित), पृ० ३७, छद स० १००२ से १०७६ तक
३. अष्टछाप-परिचय, प्रभुदयाल मीतल, पृ० १८९, पद सं० ३३

लालन सग खेलन फाग चलीं ·· ··
बाजत तालमृदंग बांसुरी, गावत गीत सुहाए ।[१]
खेलत गिरिधर रँगमगे रँग ·····
बाजत ताल मृदंग झाँझ डफ, मुरली मुरज उपंग
अपनी अपनी फेंटन भरि-भरि, लिए गुलाल सुरंग ।[२] (परमानद)
जुवतिनि संग खेलत फागु हरी
बाजत डफ, मृदंग, बांसुरी, किन्नरि सुर कोमल री ।[३]
गिरिधर लाल रस भरे खेलत विमल वसत राधिका संग
बाजत ताल, मृदंग, अधौटी वीना, मुरली तान तरंग ।[४]
जुवति-जूथ-संग फाग खेलत नंदलाल
बाजत आवज, उपंग, बांसुरी, सुर, वेनु, चग
संख, बंस, झांझि, डफ, मृदंग, ढोलनां ।।[५]
खेलत फाग गोवर्द्धन धारी 'हो होरी' बोलत ब्रज बालक सगे ।
बाजत ताल, मृदंग, अधौटी, बाजत डफ, सुर, बीन उपंगे ।[६]
माई हो हो होरी खिलाइए ।
झांझ, वीन, पखावज, किन्नरी, डफ, मृदग बजाइए ।[७]
झूलें भाई स्याम-स्याम हिंडोरैं
बाजत ताल, मृदग, झांझ रुचि और बांसुरी थोरैं ।[८]
नवल हिंडोरना हो । साज्यो नवल किसोर
बेनु, बीना, ताल, उघटित, मुरज, मृदंग रबाव
महुवरी, किन्नरि, झांझ बाजत शंख ढप पिनांक ।[९] (कुंभनदास)
बाजत ताल मृदंग मुरज ढफ कहि न परत कछु बात ।[१०]
ताल मृदग मुरज ढफ बाजैं ढोल टनक नव घन ज्यों गाजै ।[११]

---

१. अष्टछाप-परिचय, प्रभुदयाल मीतल, पृ० १६६, पद सं० ७६
२. वही, पृ० १६६, पद सं० ७७
३. कुंभनदास, विद्याविभाग काँकरौली, पृ० ३४, पद सं० ६६
४. वही, पृ० ३५, पद सं० ७२
५. वही, पृ० ३६, पद सं० ७४
६. वही, पृ० ३७, पद सं० ७६
७. वही, पृ० ३७, पद सं० ७७
८. वही, पृ० ४७, पद सं० १११
९. वही, पृ० ५१, पद सं० १२०
१०. नंददास, उमाशंकर शुक्ल, पृ० ३३६, पद सं० १९३
११. वही, पृ० ३३७, पद सं० १९४

बाजत ताल मृदंग झांझ डफ सहनाई अरु ढोल ।[1]
ताल मृदंग मिलि बजावैं बीन बेनु रसाला ।[2]
घट आवज सुर बीन अनाघात गति गाजहीं ।[3]
ताल मृदग उपंग रुज मुरज डफ बाजहीं ।[4]
बाजत दुंदभी भेरी पटह नीशान सोहाय ।[5]
बाजत ढोल दमामा चहुँ दिशि ताल मृदंग उपंगा ।[6]
सुर मंडल डफ बीना झीना बाजत रस के एना ·····

बन्यो है चटक कटताल तार ओर मृदग मुरज टंकार
तिन संग रंग रंगीली मुरली बीच अमृत की धार ।[7] (नंददास)
खेलत नंदकिसोर ब्रज में हो हो होरी ।······

दुंदुभी, झांझ, मुरज, डफ, बीना, मृदंग, उपंगें तार
दुहुँ दिसि खेल मच्यौ जु पुरस्पर घोषराय दरबार ।[8] (चतुर्भुजदास)
विविध सुरनि गावत सकल सुन्दरी ताल कठताल बाजत सरस मृदंगे ।
तीन वेना अमृत कुंडली किन्नरी झांझ बहु भाँति आवत उपगे ।[1]
ताल मृदंग रबाब झांझ डफ मृदंग मुरली धुनि थोरी ।[2]
डिम डिम दुन्दुभी झालरी रुंज मुरज डफताल ।[3]
ताल पखावज रवाब झांझ डफ बेनां वेनु रसारी ।[4]
प्रफुलित सुरपति तूर बजाए बरखन लागे फूल ।[5] (गोविंदस्वामी)
आयौ ऋतुराज साज पंचमी बसंत आज
बाजत आवज उपंग बांसुरी मृदंग चंग

---

१. नंददास, उमाशंकर शुक्ल, पृ० २०५, पद सं० २०६
२. वही, पृ० ३३६, पद सं० २२५
३. वही, पृ० ३३६, पद सं० २३४
४. वही, पृ० ३३६, पद सं० २३५
५. वही, पृ० ३६४, पद सं० ६
६. वही, पृ० ३७४, पद सं० ३७
७. वही, पृ० ३७४, पद सं० ६५
८ अष्टछाप-परिचय, प्रभुदयाल मीतल, पृ० २६४, पद सं० ८५
९. गोविंदस्वामी, विद्याविभाग-कॉकरौली, पृ० ५२, पद सं० १०८
१०. वही, पृ० ५३, पद सं० ११०
११. वही, पृ० ६०, पद सं० १२१
१२. वही पृ० ६१, पद सं० १२२
१३. वही, पृ० ८०, पद सं० १५३

यह सब सुख 'छीत' निरखि इच्छा अनुकूली ।[1]
आरति करत जसोमति निरखि ललन मुख अतिहि आनंद भरि प्रेम भारी ।
बजत घंटा, ताल, बीन, झालरी, संख, मृदंग, मुरली बिबिध नाद सुखकारी ।[2]
(छीत स्वामी)

ढोल कटोल निसान मुरज डफ बाजहीं
मैंन के मेघ मनोरस वृष्टि सों गाजहीं ।
ताल पखावज आवझवा जंत्र सौं
गान मनोहर मोहन मैंन के त्रहैं ।[3]

बाजत बांसुरी चंग उपंग पखावज आवज ताल
गावत गारी दै दै करतारी मनोहर गीत रसाल ।।[4]
आलि नू वूका चंदन रोरी हरह गुलाल
बाजत मधुर महुवरि मुरली अरु ढफ ताल ।।[5]
पटह निसान भेरि सहनाई महागरज की घोर रे ।[6]
संगीत रस कुसल नृत्य आवेश वश लसति राधा रास मंडल विहारिनी
मृदंग वीना ताल सुर संच संचारु चा ता चातुरी सार अनुसारिनी ।[7]
(गदाधर भट्ट)

झूलत जुग कमनीय किसोर सखी चहुँ ओर झुलावत डोल .....
भेरी झांझ दुन्दुभी पखावज औ डफ आवज बाजत ढोल
आए सकल सखा समूह गुर हो हो होरी बोलत बोल ।[8]
(सूरदास मदनमोहन)

मंजीर मुरज डफ मुरली मृदंग
बाजत उपंग वीणा बर मुख चंग ।[9]
ताल मृदग उपंग मुरज डफ मिलि रस सिंधु बढ़ायौ
विविधि विशद वृषभान नंदिनी अंग सुधंग दिखायौ ।[10]

---

१. अष्टछाप-परिचय, प्रभुदयाल मीतल, पृ० २६७, पद सं० १७
२. हस्तलिखित पद-संग्रह, छीतस्वामी, डा० दीनदयालु गुप्त, पद सं० २१
३. श्री गदाधर भट्ट जी महाराज की वानी, बालकृष्णदास जी की प्रति, पत्र १५, पद सं० १
४. वही, पत्र २६, पद सं० २
५. वही, पत्र २६, पद सं० ३
६. वही, पत्र २२, पद सं० १
७. वही, पत्र २३, पद सं० २
८. अकबरी दरबार के हिन्दी कवि, सरयू प्रसाद अग्रवाल, पृ० ४५०, पद सं० १२
९. चौरासी पद, हस्तलिखित प्रति, सं० ३८।२१५, प्रयाग-संग्रहालय, पद सं० २७
१०. वही, पद सं० ३६

मधुर मधुर मुरली कल बाजै……
बाजत ताल मृदंग उपंगा ।[1]
ताल वीणा मृदंग सरस नाचत सुधंग एकतें एक संगीत की स्वामिनी ।[2]
ताल रबाब मुरज डफ बाजत मधुरि मृदंग
सरस उकति गति सूचत बर बांसुरी मुख चंग ।[3]
मंजीर मुरज डफ मुरली मृदंग
बाजत उपंग बीणा बर मुख चंग ।[4]
मृदुल मृदंग मुरज भेरी डफ दिव दुन्दभि रवकार ।[5] (हितहरिवंश)
सहज दुलहिनी श्री राधा सहज साँवरो दूलहु
सहज व्याहु वृन्दावन, निरखि-निरखि किन फूलहु ।।……
बाजे बाजत बैनु धुनि सुनि मुनि मोहै जू ।
ताल, पखावज, रुंज, ढॉंझ, झप, झिरनौ-रव सोहै जू ।[6]
चलहु भैया हो ! नंद महर घर, बाजति आजु बधाई ।…. .
बाजत झांझ, मृदंग, चंग, डफ, बीना, बैनु सुहाई ।
बाजत ढोल, मृदंग, रुंज, आवज, उपंग सहनाई ।……
राइगिरी गिरी अरु निसान-धुनि तिहूँ लोक मे छाई ।।[7]
भैया आज रावल बजति बधाई ।
ढोल, भेरि, सहनाई धुनि सुनि, खबर महावन आई ।[8]
खेलति राधिका, गावति बसंत …..
बाजत ताल, मृदंग, झांझ, डफ, आवज, बीन, बीन सुकंत ।।[9]
ये चलि, लखन भरहिं मिलि चलि हो, चलि अलि बेगि गिरिधरन भरहिं मिलि ।।
महुवरि, चंग, उपंग, बांसुरी, बीना, मुरज, मृदंग
ढोलक, ढोल, झांझ, डफ बाजत कह्यौ न परत सुख रंग ।।[10]
फूली फिरति राधिका प्यारी, पहिरें फूलन की डँडिया……

---

१. चौरासी पद, हस्तलिखित प्रति सं० ३८।२१५, प्रयाग संग्रहालय, पद सं० १८
२. वही, पद सं० ६८
३. वही, पद सं० ५७
४. वही, पद सं० २७
५. वही, प्रति सं० ८५।२१६, (फुटकर पदों में), पद सं० ७
६. भक्त-कवि व्यास जी, वासुदेव गोस्वामी, पृ० ३५३, पद सं० ५९७
७. वही, पृ० ३५४-५५, पद सं० ६०१ व ६०२
८. वही, पृ० ३५७, पद सं० ६१०
९. वही, पृ० ३६६, पद सं० ६४६
१०. वही, पृ० ३७१, पद सं० ६५६

बजत मृदंग, उपंग, ताल, डफ, रवाब, झांझि, डफिया ।[१] (हरिराम व्यास)
बाजत ताल रवाब और बहु तरुनि तनया कूलहु ।[२]
डोल झूलत है विहारी विहार निरागुर मिरह्यौ
काहू के हाथ अधौटी, काहू के वीन काहू के मृदंग कोनु गहे तार ।[३]
परस्पर राग जम्यों समेत किन्नरी मृदंग सों तार ।[४]
हाथ किन्नरी मधि सच पाइ सुलप राग रागिनीं सो मिलि गावत ।[५] (हरिदास)
प्यारी पियहि सिखावत वीना तान बंधान कल्यान ।[६] (विट्ठलविपुल)
राजत रास रसिक रस रासे .....
बाजत ताल मृदंग अंग संग मंद मधुर मृदु हासै ।[७]
प्रात समै नव कुंज द्वार ह्वै ललिता ललित बजाई वीना ।[८] (बिहारिनदास)
जै जै सुर करताल बजावें गीत वाद सुचाल मिलावे ।[९]
गावत सहित मिलत गति प्यारी मोहनी मुख मुरली सु वाजें ।[१०] (श्रीभट्ट)
नाना धुनि वंसिका बजावत ।[११]
देखि सघण घण अरिवलि वरखति इंद निसांण बजावै ।[१२]
लीनी कर मुरली हरि हितकारी हित सों ओसर अधर निजुं धरण कूं ।[१३]
(परशुराम)
ताड़ पखावजा मिरंदग बाजां साधां आगे णाचां ।[१४]
होड़ी पिया बिण लागां री खारी ।......
बाज्यां झांझ मिरदंग मुरड़ियां बाज्यां कर इकतारी ।[१५]

---

१. भक्त कवि व्यासजी, वासुदेव गोस्वामी, पृ० ३७४, पद सं० ६६४
२. पद संग्रह, प्रति सं० १६२०।३१७०, प्रयाग-संग्रहालय, पृ० १७, पद सं० १८
३. वही, पृ० २०, पद सं० ६
४. वही, प्रति सं० ३७१।२६६, का० ना० प्र० सं० पृ० श्री स्वा० १६, पद सं० ३
५. वही, पद सं० २
६ वही, १६२०।३१७०, प्रयाग-संग्रहालय, पद सं० २६
७. पद-संग्रह, प्रति सं० ३७१।२६६, का० ना० प्र० सभा पत्र १४८, पद सं० २२
८. वही, पत्र संख्या १२१, पद सं० १
९. युगलशत-श्रीभट्ट, प्रति सं० ७१२।३२, का० ना० प्र० सभा, पत्र २, पद सं० ६
१०. वही, पत्र ३, पद सं० १७
११. राम-सागर, परशुराम, प्रति सं० ६८०।४६२, रा० सा० ६८, पद सं० १४८
१२. वही, १०३, पद सं० ३१७
१३. वही, पद सं० २०
१४ मीरा-स्मृति-ग्रंथ, मीरा-पदावली, पृ० १४, पद सं० ४८
१५. वही, पृ० २६, पद सं० १०२

अधर मधुर जंसी बजावां रीझ रिझावां व्रजनारी जी ।[1]
मुरड़िया बाजां जमणा तीर ।[2] (मीरा)
रजनी मुख आवत गायन संग मधुर बजावत बैना ।[3]
नाचत किस्न नचावत गोपी कर कटताल बजावनं कूं ।[4] (आसकरण)

तालों का उल्लेख –

कृष्णभक्तिकालीनसाहित्य मे तालो का उल्लेख प्राय नगण्य सा ही है। कही-कही चर्चरी ताल, एकताल, ध्रुवताल, झपताल का उल्लेख हुआ है। इनसे सबधित पंक्तियाँ नीचे उद्धृत की जाती है –

छंद धुवनि के भेद अपार । नाचति कुंवरि मिले 'झपताल' ।[5] (सूरदास)
गावति गिरिधरन संग परम मुदित रास-रंग ।
उरप तिरप लेत तान नागर नागरी ।......
चर्वन ताम्बल देत, 'ध्रुवतालहिं' गतिहिं लेत ।
गिड़गिड़ तत थुंग थुंग अलग लाग री ।[6]
या ते तू भावति मदन गोपालै ।
सारंग रागै सरस अलापति, सुघर मिलत 'इकतालै ।[7] (कुंभनदास)
नीकौ मोहि लागे श्री गिरिधर गावै ।
सुरति देत मधु मत्त मधुप कुल 'एकताल' सब के जिय भावै ।[8] (कृष्णदास)
दूसरे कर चरन सों कठताल त्रिकटि झंझं ।
'झपताल' मे अवघर गति उपजावे ।[9] (गोविंदस्वामी)
श्री राग मे कान्ह मुरली बजावें......
बजत नूपुर धरत चरन अवनी चतुर 'ताल चर्चरी' सो मन लावें ।[10]
(छीतस्वामी)

---

१. मीरा-स्मृति-ग्रंथ, मीरा-पदावली, पृ० २, पद सं० ४
२. वही, पृ० २७, पद सं० ६४
३. अकबरी दरबार के हिन्दी कवि, सरयू प्रसाद अग्रवाल, पृ० ४५१, पद सं० ७
४. वही, पृ० ४५२, पद सं० ११
५. सूरसागर, (भाग १), पृ० ६७२, पद सं० १७६८
६. कुंभनदास, कॉकरौली, पृ० २२, पद सं० ३५
७. वही, पृ० २४, पद सं० ४१
८. अष्टछाप-परिचय, प्रभुदयाल मीतल, पृ० २३२, पद सं० ३३
९. गोविन्द स्वामी, कॉकरौली, पृ० २६, पद सं० ५८
१०. हस्तलिखित पद-संग्रह, छीतस्वामी, डा० दीनदयालु गुप्त, पद सं० २८

करत हरि नृत्य नवरंग राधा संग लेत नव गति भेद 'चर्चरी ताल' के ।[1]

(गदाधर भट्ट)

वृषभान नंदिनी मधुर कल गावै

विकट अवघर तान 'चर्चरी ताल' सों नंदनंदन मनसि मोद उपजावै ।[2]

(हितहरिवंश)

गावत मनि-मंजीर बजावत मिलवत गति 'झपताल' ।[3]

रसिक सुंदरी बनी रास-रंगे

'चरचरी' ताल मै तिरप बांधति बनी, तरकि टूटी तनी, बर सुधंगे ।[4]

(व्यास)

नृत्य का उल्लेख तथा वर्णन –

"लय और ताल के साथ अग सचालन करते हुए हृदयगत भावनाओ को शरीर की चेष्टाओ द्वारा प्रकट करना"[5] नृत्य कहा जाता है। वाद्यादि सयुक्त अग-विक्षेप का नाम नृत्य है।

नृत्य के प्रकाश –

नृत्य के दो भेद है –(१) ताडव और (२) लास्य । नृत्य उत्कट हो तो ताडव और मधुर तथा सुकुमार हो तो लास्य कहलाता है। ताण्डव पुरुषत्व का और लास्य नारीत्व का द्योतक है। ताण्डव नृत्य मे वीर तथा रौद्र रस का प्रदर्शन किया जाता है। इसमे मृत्यु की भीषणता, संहार की भयंकरता, क्रोध की विकरालता, वीरत्व और भव्यता प्रदर्शित करने वाली मुद्रायें दिखाई जाती है। ताण्डव नृत्य मे अगों की मरोड अत्यधिक ज़ोरदार तथा अंगचापल्य और अभिनय विशेष रूप से गभीर व आवेशपूर्ण होता है।

लास्य श्रृगाररस प्रधान नृत्य है। इसमे शरीर के अवयवो के लावण्यमय संचालन–विशेप रूप से मस्तक के मोहक, मृदु, भाववाहक दोलन से प्रेम तथा श्रृंगारमय भावो की अभिव्यक्ति की जाती है। लास्य नृत्य मे अगविक्षेप अत्यन्त कोमल, मधुर और मृदुल होता है।[6]

---

१. श्री गदाधर भट्ट जी महाराज की बानी, बालकृष्ण दास जी की प्रति, पत्र २३-२४, पद सं० ३

२. चौरासी पद, प्रति सं० ३८।२१५, प्रयाग-संग्रहालय, पद सं० ८१

३. भक्तकवि व्यास जी, वासुदेव गोस्वामी, पृ० ३०७, पद सं० ४३८

४. वही, पृ० ३६०, पद सं० ६१६

५. नृत्यशाला, अक १, पृ० १६

६. "ताण्डव–वीर रसे महोत्साहो पुरुषो यत्र नृत्यंति।
रौद्रभावरसो पत्तिस्त त्ताण्डवमिति स्मृतं ॥ (संगीत-नृत्याकर)

कृष्णभक्तिकालीन साहित्य में नृत्य का उल्लेख –

गायन और वादन का उल्लेख तो भक्तिकालीन सभी धाराओं के साहित्य के अन्तर्गत मिलता है किन्तु नृत्य का समावेश कृष्ण-काव्य की अपनी विशेषता है। भक्तिकालीन सूफी कवि आलम ने अवश्य 'माधवानल कामकंदला' ग्रंथ मे नृत्य का सुन्दर वर्णन प्रस्तुत किया है। 'माधवानल कामकंदला' की सम्पूर्ण कथा सगीत पर आश्रित है और सगीत के माध्यम से ही वह आगे बढती है। कथा के नायक और नायिका भी कही के राजकुमार या राजकुमारी न होकर सगीत के कलाकार है। नायक माधव कुशल वीणावादक है और नायिका कामकंदला नृत्य विद्या मे अद्वितीय। अस्तु 'माधवानल कामकदला' मे स्थल-स्थल पर ऐसे प्रसंग आते है जहाँ नृत्य-कला अपने लालित्यपूर्ण उच्च रूप मे चित्रित की जाती है। आलम के अतिरिक्त भक्तिकालीन अन्य अन्य सूफी, सत तथा रामभक्त कवियों के काव्य मे प्राय. नृत्य-वर्णन का अभाव सा ही है। इसके विपरीत भक्तिकालीन कृष्णभक्त कवियो ने अपने काव्य मे गायन-वादन एवं नृत्य तीनो के सफल समन्वय द्वारा सगीत की परिभाषा सार्थक कर दी है। इन कृष्ण कवियो के काव्य के आराध्य नटनागर नंदकिशोर नृत्य के भी आचार्य है। अत' नटवर वेपधारी कन्हैया की नृत्य-क्रीडाए इन कवियो के आकर्षण का प्रमुख केन्द्र वन गई और उनको नृत्य-मुद्राओ का सफल अकन इन कवियो के काव्य मे हुआ।

नृत्य के प्रकारों का उल्लेख –

कृष्णभक्तिकालीन साहित्य मे ताण्डव तथा लास्य दोनो प्रकार के नृत्यो का उल्लेख किया गया है। उदाहरणस्वरूप कृष्णभक्तिकालीन कवियो की निम्नलिखित पक्तियाँ दृष्टव्य होगी –

उरप तिरप "ताण्डव" करे, ता-थेई रचि उघटि तान,
सुधंग चाल लेत है संगीत स्वामिनी ॥[1] (कुंभनदास)
गोविंद करत मोहन गान ।……
राग गुर्जरि समुद्र "ताण्डव लास्य" कलानिधान ।
ब्रज वधू संग मुदित नाचत लेत अवघर तान ॥[2]…… (कृष्णदास)

लास्य–लास्यते सुकुमारिणां गमकध्वनिवर्धनि ।
हशशब्दास्यः प्रसन्नस्योमुखरागोभवेदिधा ॥ (संगीत-रत्नाकर)
यौवनस्त्री बिलासिन्यः कामभावविचक्षणां ।
पदंगहारवैदध्यात् कुर्यलास्यमदीरितम् ॥ (नृत्य-पारिजात)
नतनंतनुयात्पात्रं कान्ताहास्यादिदृष्टिजं ।
नानागतिलसद्भाव मुखरागादिसंयुतः ॥ (अशोकमल्ल का नृत्याध्याय)
नृत्य-अंक, नृत्यसागर के कुछ पृष्ठ, बा० कृष्णचन्द्र निगम, पृष्ठ ७१–७३

१. कुंभनदास, कॉकरौली, पृ० २६, पद सं० ४५

२. हस्तलिखित पद संग्रह, कृष्णदास, डा० दीनदयालु गुप्त, पद सं० ३०

नचत गोपाल फणिफणारंगे ।......
बहुरि फिरि झगरि चढ़ि सीस "ताण्डव" रच्यौ परसि पदतलनि मनि रंगु सुहायो ।[1]
(गदाधर)

कुंजविहारी नाचत नीकें लाडिली नचावत नीके ।
औघर ताल धरे श्री स्यामा मिलिवत तातथे गावत संग पीके ।
'ताण्डव लास्य' और अंग को गनें जे जे रुचि उपजत जी कें ।।[2] (हरिदास स्वामी)

नृत्य का वर्णन –

नृत्य-वर्णन भक्तिकालीन कृष्ण कवियो के काव्य का अनिवार्य अंग बन गया है। कृष्ण की बाल्यावस्था और किशोर अवस्था दोनों ही समय के तथा ताडव और लास्य सभी प्रकार के नृत्य-चित्रण कृष्ण-काव्य के अन्तर्गत आये है ।

बाल नृत्य –

बाल-क्रीड़ा के प्रसग मे बालक कृष्ण का नृत्य वर्णन अत्यधिक स्वाभाविक तथा हृदयग्राही है । कान्हा अभी छोटे है । नृत्य का विधिवत् ज्ञान उन्हे कहाँ ? किन्तु जीवन की उमग स्वत. स्वाभाविक नृत्य के रूप मे अवतरित होती है और कृष्ण अपनी इच्छानुसार टूटे-फूटे शब्दो में गा-गा कर नाच-नाच कर हर्षित हो रहे है –

हरि अपनै आंगन कछु गावत ।
तनक तनक चरननि सों नाचत, मनहीं मनहिं रिझावत ।[3]

बालक के इस भोले रूप को देख कर मातृ-हृदय विभोर हो जाता है । माता यशोदा ताली बजा-बजा कर गाती है और कृष्ण को नचाती हैं । कृष्ण भी माँ के गाने तथा करतल-ध्वनि का अनुकरण करके गाते, ताली बजाते तथा अपने नन्हे-नन्हे पैरो से घुँघुरू बजाते हुए नाचते है –

आंगन स्याम नचावहीं जसुमति नंदरानी ।
तारी दै-दै-गावहीं, मधुरी मृदु बानी ।।
पाइन नूपुर बाजई, कटि किंकिनि कूजै ।
नान्हीं एड़ियन अरुनता, फल बिंब न पूजै ।।
जसुमति गान सुनै स्रवन, तब आपुन गावै ।
तारी बजावत देखई, पुनि आपु बजावै ।।......
जसुमति सुतहिं नचावई, छबि देखति जिय तैं ।
सूरदास प्रभु स्याम कौ मुख टरत न हिय तैं ।।[4]

---

१. मोहिनी वाणी श्री गदाधर भट्ट जी की, प्रकाशक कृष्णदास, पृ० ३२
२. पद संग्रह, प्रति सं० १६२०/३१७०, प्रयाग–संग्रहालय, पृ० २०, पद सं० ८
३. सूरसागर, (भाग पहला), दशमस्कंध, पृ० ३१०, पद सं० ७६५
४. वही, पृ० ३०६, पद सं० ७५२

ताण्डव नृत्य –

नृत्य, गान आदि विविध क्रीडा करते हुए शिशु कृष्ण का शैशवकाल बीत जाता है और वे कुछ बड़े हो जाते हैं। सखाओ के साथ कृष्ण यमुना-तट पर खेल खेलने लगते हैं। खेल-खेल मे गेद यमुना मे गिर जाती है और कृष्ण काली नाग का वध करने के लिए जल मे कूद पडते है। शिशुकाल मे किया गया कृष्ण का बाल-नृत्य वय तथा परिस्थिति के साथ ही प्रचड रूप धारण कर लेता है और कालिय नाग-नाथन के मिस रौद्र मुद्रा मे कृष्ण का ताण्डव नृत्य होता है –

सबै ब्रज है जमुना के तीर।
कालीनाग के फन पर निरतत, संकर्षन कौ बीर।
लाग मान थेइ-थेइ करि उघटत, ताल मृदंग गंभीर।
प्रेम मगन गावत गंध्रब गन व्यौम बिमाननि भीर।
उरग नारि आगै भई ठाढ़ी, नैननि ढारति नीर।
हमकौं दान देइ पति छाँड़हु, सुदर स्याम सरीर।
आए निकसि पहिरि मनि भूषन, पीत बसन कटि चीर।
सूर स्याम कौं भुज भरि भेंटत, अंकम देत अहीर ॥[1] (सूरदास)

नचत गोपाल फणिफणारंगे।
मनहु मनि नील के खंभ ऊपर सिखी नृत्य आरम्भ किय अति उतंगे ॥
प्रथम तरुतुग चढ़ि झंप यमुना लई सुभग पट पति कटितट लपेटे।
एक घनतें निकासि और घनकौ चल्यौ श्यामघन मनहु चपलाहि भेंटे ॥
बहुरि फिरि झगरि चढ़ि सीस ताण्डव रच्यौ परसि पदललनि मनि रंगु सुहायो।
चरण पटतार विषझार झरहत जतुते लतपतेक हू नीरनायो ॥
दुसह हरि भारतें कंठ आये लटकि परसि करै कवि सकल उपमा विचारा।
मनहु नखचन्द्र की चन्द्रिका त्रासते उरपि नीची धसी तिमिर धारा।
गगन गुणगननि गुण गान गंधर्व करै जै करै देव मुनि पहुप वरषै।
तरनिजा तीर भरभीर आभीर कुल धीर मन माझ धरि अधिक हरषै ॥
दिवश भूषण बसन सिथिल रसना कसन शरण आई जबहिं नागनारी।
कान्ह करुणा करी चिन्ह पद सिरधरे मेटि खगराज की त्रास भारी ॥
पूजि हरि कों चल्यौ नाग रमणकदीप श्यामजु मुदित जलतीर आये।
कहि गदाधर जु आनन्द कुलाहल भयौ सकल व्रजजन निकिरि प्राणपाये ॥[2]
(गदाधर)

---

१. सूरसागर, (पहला भाग), दशमस्कंध, पृ० ४५७, पद सं० ११६३
२. मोहिनी वाणी श्री श्री गदाधर भट्टजी की, प्रकाशक कृष्णदास, पृ० ३२–३३

कमल दड़ ड़ोचणां थ णाथ्यां काड़ भुजंग ।
काड़िन्दी दह णांग णाथ्यां काड़ फणफण निरत करत ।
कूदाँ जड़ अन्तर णा डर्यां थे एक बाहु अगणंत ।
मीरा रे प्रभु गिरधर नागर ब्रज वणतां रो कंत ।।[१] **(मीरा)**

श्रृंगार तथा प्रेम-भाव की अभिव्यजना के अतिरिक्त नृत्य द्वारा वीर, रौद्र तथा अद्‌भुत रस की अभिव्यजना भी होती है । रोमन प्रजा मे वसन्तारम्भ के समय स्थल-स्थल पर युद्ध-नृत्य का उत्सव होता है । आज भी अफ्रीका और ब्रह्मा की अनेक जातियो भीलो, किरातो आदि मे युद्ध-नृत्य अत्यधिक लोकप्रिय है । ढाली, काढी, रायबसी और किरात नृत्य बगाल में अत्यधिक प्रचलित है । व्याधि नृत्य आज भी विशेष प्रिय माना जाता है । भारतीय दार्शनिक साहित्य मे प्रलय तक मे ताण्डव नृत्य की कल्पना की गई है । शिव का ताण्डव नृत्य सत् की सृष्टि और असत् के संहार करते हुए विश्व के लय ताल संयुक्त विकास का प्रतीक है । ताण्डव नृत्य के समय डमरू का नाद ससार की उत्पति, हस्तमुद्रा संसार के रक्षण, अग्नि-संहार क्रिया और उठा हुआ पैर मोक्ष को प्रगट करता ।[२] रौद्र रूप मे किया हुआ नटराज शिव का यह ताण्डव नृत्य विश्व की सृष्टि, स्थिति, संहार, तिरोभाव, आविर्भाव और अनुग्रह इन पॉच क्रियाओ का द्योतक है ।[३] कृष्णकालीन कवियो के द्वारा वीरं परिस्थिति मे चित्रित किया हुआ कृष्ण का काली-मर्दन नृत्य, आसुरी भावना की पराजय, दैवी भावना की विजय तथा परब्रह्म के अनिर्वचनीय आनद का द्योतक माना जाय तो अत्युक्ति न होगी ।

रास नृत्य –

नृत्य मानव-जीवन के आनंदमय उल्लासपूर्ण क्षणो मे स्वयं ही उत्पन्न होने वाली स्वाभाविक भावाभिव्यक्ति है । जीवन की उमंग मे विभोर मानव-हृदय जिस समय झूमने लगता है उस समय हर्षातिरेक की असह्य धारा मे डूबता-उतराता वह नृत्य करने के लिए विवश हो जाता है । यही कारण है कि संयोग श्रृगार के रस की सृष्टि के लिये नृत्य एक नैसर्गिक तथा स्वाभाविक प्रवृत्ति बन गई है है । फ्रायड हैवेल नृत्य को संयोग भावना का आविष्कार मानते है । जगली जातियो में नृत्य के द्वारा अपनी प्रेयसी को आर्कषित करके वरण करने की प्रथा प्रचलित रही है । न केवल पुरुषो वरन् पशु-पक्षियो मे भी नृत्य की यह प्रवृत्ति समागम तथा संयोग के समय लक्षित होती है । उत्तर अमेरिका में ग्राउज नामक पक्षी संयोग के दिनो मे प्रतिदिन प्रातःकाल पखो को चक्राकार बनाकर नाचता है । वसन्त ऋतु मे ह्वाइट् थ्रोट नामक पक्षी हवा मे उडकर विचित्र क्रियाओ के साथ पख फडफडाता हुआ गाता और फिर बैठ जाता है । मोर मे भी यह प्रवृत्ति स्पष्ट लक्षित होती है ।

---

१ **मीरा-स्मृति-ग्रंथ, मीरा-पदावली, पृ० ६, पद सं० ३२**

2. "Creation arises from the drum, protection proceeds from the hand of hope, from fire proceeds destruction, the foot held aloft gives release."
The Dance of Shiva by Ananda Coomaraswamy.

३. **नृत्य-अंक, नृत्यसागर के कुछ पृष्ठ, कृष्णचन्द्र निगम, पृ० ६६**

नृत्य प्रेम की पराकाष्ठा है। नृत्य ही अनुराग की चरमसीमा है। प्रेम की अंतिम अभिव्यक्ति नृत्य ही तो है। यही कारण है कि यौवन के पदार्पण के साथ ही प्रणय की की उन्मत्त अवस्था मे कृष्ण गोपियो को रिझाते वृदावन की कुजगलियो मे नृत्य करते दीख पडते है –

मोर मुकुट पीतांबर सोहै कुंडल की झकझोर।
वृंदावन की कुंज गलिन में नाचत नंद किसोर ॥[1]

यमुना के कछार कुजो मे राधा, कृष्ण तथा गोपियो का मधुर मिलन होता है। शरद की ज्योत्स्ना विकीर्ण हो जाती है। कुजो मे नवीन सौन्दर्य छा जाता है। प्रकृति गा उठती है तथा यमुना का कलकल निनाद करता हुआ जल वातावरण को और भी उद्दीप्त कर सगीत के अनुकूल बना देता है। कृष्ण तथा गोपियो की मिलन क्रीडा 'रास-लीला' का रूप धारण कर नृत्य मे परिणत हो जाती है। यही रासलीला-नृत्य कृष्णभक्तिकालीन कवियो के जीवन का पाथेय बन जाता है। अत रास-लीला-नृत्य का वर्णन इन कवियों के काव्य का एक प्रमुख अंग बन गया है।

रास नृत्य का स्वरूप –

"रसो वै सः" अर्थात् परमात्मा रस है। "रसस्याम् इति रस." अर्थात् रस (परमात्मा) से जो सम्बद्ध है वह रास कहलाता है तथा "रसाना समूह रास" अर्थात् रस समूह को रास कहते है।

रास-नृत्य हल्लीश-नृत्य का ही रूप है।[2] मडलीकार रूप में अनेक नर्तकियों सहित नृत्य करने को रास-नृत्य कहते है।[3] रास नृत्य मे चहुँ ओर गोपियाँ, मध्य मे कृष्ण और उनके पास राधा रहती है। आध्यात्मिक दृष्टिकोण से कृष्ण ब्रह्म के तथा राधा और गोपियाँ जीव का प्रतीक है। परमात्मा जीव को अपनी ओर खींचता है। इसी भावना को व्यक्त करने के लिये रास-नृत्य मे केन्द्र मे स्थित कृष्ण के चहुँ ओर गोपियाँ नृत्य करती दिखाई जाती है। राधा सबसे अधिक आकर्षित होकर खिंच आई है अस्तु वह मध्य मे कृष्ण के पास सुशोभित होती है।

---

१ मीरां-माधुरी, ब्रजरत्नदास, पृ० ३४, पद सं० १२६

२ हरिवंशपुराण, नीलकण्ठ टीका, पृ० १६८–६६

३. "श्रीधर स्वामी ने भागवत की टीका में 'रास' का परिचय इस प्रकार दिया है – 'बहुनर्तकियुक्तो नृत्यविशेषो रासः' अर्थात –'बहुत सी नर्तकियों सहित विशेष नृत्य का नाम रास है।'

श्री चैतन्य सम्प्रदायी श्री जीवगोस्वामी जी ने अपनी भागवत की टीका बृहत क्रम संदर्भ में रास की व्याख्या इस प्रकार की है –

शृंगार रस से परिपूर्ण तथा कोमल और मधुर प्रकृति का होने के कारण रास-नृत्य लास्य-नृत्य का ही एक प्रकार माना जाता है।

कृष्णभक्तिकालीन साहित्य में रास-नृत्य का वर्णन

कृष्णभक्तिकालीन साहित्य में रास-नृत्य के अन्तर्गत संयुक्त रूप से राधाकृष्ण तथा गोपियो के मंडलाकार नृत्य का वर्णन किया गया है। कृष्णभक्तिकालीन प्राय. सभी कवियो ने रास से सम्बद्ध पदो मे ताताथेई, ततथेई, ततगथेई, ततथे, थेइततथेइ, गिडगिड तत, थुगथुग थे, तकिट, गिडित, धिधद्रण, द्रण, तत तत, ग्र, त्र, लागदाट, उरप तिरप, उपज, हस्तकभेद आदि नृत्य के बोल तथा नृत्य की परिचित पदावली का प्रयोग करके अपने नृत्य-ज्ञान का सुन्दर परिचय दिया है। उदाहरणस्वरूप इनके कतिपय पद दृष्टव्य होंगे –

आजु निसि रास रंग हरि कीन्हौ।
ब्रज बनिता बिच स्याम मंडली, मिलि सबकौं सुख दीन्हौ।
सुर ललना सुर सहित बिमोहीं, रच्यौ मधुर सुर गान।
नृत्य करत, उघटत नानाबिधि, सुनि मुनि बिसरचौ ध्यान।
मुरली सुनत भए सब व्याकुल, नभ-धरनी-पाताल।
सूर स्याम को कौन किये बस, रचि रस-रास रसाल ॥[1] (सूरदास)

ब्रजबनिता मधि रसिक राधिका, बनी सरद की राति हो।
ततथेई ततथेई गिरिधर नागर, गौर-स्याम अंग कांति हो ॥
इक-इक गोपी, बिच-बिच माधौ, बने अनूपम भांति हो।
जै-जै सब्द उचारत नभ सुर, नर-मुनि कुसुम बरषत न अघात हो ॥
निरखि थक्यौ ससि आइ सीस पर, क्यों नहिं होत प्रभात हो।
'परमानंद' मिले यहि औसर, बनी है आज की बात हो ॥[2]
(परमानंददास)

'नटैर्गृहीतकंठेन अन्योन्यातकरिश्रियाम्,
नर्तकीनां भवेत् रासो मंडलीभूय नर्तनः।
नट के साथ गले में बाँह डालकर मण्डलाकार होकर नाचना 'रास' कहलाता है। श्री वल्लभाचार्य जी ने सुबोधिनी टीका में इस विषय पर लिखा है कि जिसमें बहुत सी नर्तकियां हों और नाच करें, उसमें रस की अभिव्यक्ति होती है, इसी रस-युक्त नाच का नाम रास है।"
अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय, डा० दीनदयालु गुप्त, (भाग २), पृ० ४९८

१. सूरसागर, (भाग १), दशमस्कंध, पृ० ६५३, पद सं० १७६०
२. अष्टछाप-परिचय, प्रभुदयाल मीतल, पृ० २००, पद सं० ८२

गावत गिरिध न-संग परम मुदित रास-रंग,
उरप तिरप लेत तान नागर नागरी ।।
सरि-गम-पध-धनि, गम-पधनि उघटति सप्त सुरनि,
लेनि लाग, दाट कल अति उजागरी ।।
चर्वन ताम्बूल देत, ध्रुवतालहिं गतिहिं लेत,
गिडि-गिडि तत-थुंग-थुंग अलग लाग री ।।
सुरति-केलि रास-विलास बलि-बलि 'कुंभनदास'
श्री राधा नंद-नंदन वर सुहाग री ।।[1]
रास में गोपाल लाल नाचत, मिलि भामिनी ।
अंस-अंस भुजनिमेलि, मंडल-मधि करत केलि,
कनक-बेलि मनु तमाल स्याम-संग स्वामिनी ।।
उरप, तिरप, लाग, दाट ग्राग-ताता थेई-थेई थाट,
सुधर सरस राग तैसी-ए-सरद-जामिनी ।।
कुंभनदास, प्रभु गिरिधर नटवर-वपु-भेष धरें,
निरखि-निरखि लज्जित कोटि काम-कामिनी ।।[2] (कुंभनदास)

निरतत गोपाल संग राधिका बनी ।
बाहु दंड भुजन मेलि, मंडल मधि करत केलि,
सरस गान स्याम करै संग भामिनी ।।
मोर मुकुट कुंडल छवि, काछिनी बनी विचित्र,
झलकत उर हार विमल, थकित चांदनी ।।
परम मुदित सुर नर मुनि, बरषत सब कुसुम माल,
बारति तन मन प्रान, 'कृष्णदास' स्वामिनी ।।[3]

नाचत गोपाल लाल अद्भुत नट भेख धरे गान करति ब्रज सुंदरि रास रागिनी ।
अति कोमल बन्यो कूलमल्ली बहु भांति फूल जल सीकर हरत पवन तट तरंगिनी ।
सरद सर्वरी सुहव्व कित मधुप जूथ श्रुति मिलवत बिलसत पिय संग चपल दृष्टि कुरंगिनी ।
गिडिगतां गिडिगिडितां गिडित कटि तारावली, धि धं द्रण द्रण द्रणवर मृदांगिनी ।
तत थेई थेई उच्चार तिरप बंध टूटे हार नृतति बाम भाग कुच उतंगिनी ।
कृष्णदास प्रभु गिरिधर मुरलो नाद वित चोरत संसृत हरि साधु साधुतरउपंगिनी ।[4]
(कृष्णदास)

१. कुंभनदास, काँकरौली, पृ० २२, पद सं० ३५
२. वही, पृ० २४, पद सं० ४२
३. हस्तलिखित पद-संग्रह, कृष्णदास, डा० दीनदयालु गुप्त, पद सं०, ११६
४. वही, पद सं० ९९

देखो री नागर नट निरतत कालिंदी तट,
गोपिन के मध्य राजै मुकुट की लटक। देखो०
काछनी किंकिनी कटि पीतांबर की चटक-मटक,
कुंडल किरन रवि रथ की अटक। देखो०
ततथेई थेई सबद सकल घट,
उरप तिरप मानों पद की पटक।
रास मध्य राधे, राधे मुरली में येई रट,
'नंददास' गावै तहां निपट निकट। देखो ०।[1] (नंददास)

प्यारी भुजग्रीवा मेलि नृत्यत पीय सुजान।
मुदित परस्पर लेत गति में सुगति,
रूप-रासि राधे, गिरिधरन गुन-निधान ॥
सरल मुरली-धुनिसों मिले सप्त सुर,
रास-रंग भीनें गावैं और तान बंधान।
'चतुर्भुज' प्रभु स्याम-स्यामा की नटनि देखि,
मोहे खगमृग अरु थकित व्योमविमान ॥[2] (चतुर्भुजदास)

नाचत गोपाल-संग गोप कुंवरि अति सुधंग-
तथेई तथेई तथेई तथेई मंडल मधि राजे।
संगीत गति भेद मान लेत सप्त सुर बंधान-
धिधि कटि धिधि कटि मृदंग मधुर मधुर बाजे ॥
मुरली रटनि रस को रटन मटकनि कटक मुकुट-
चटक पिय प्यारी लटकि लपटि उरसि राजे।
'गोविंद' प्रभु पिय की छबि देखत रस बस मंत्र मगन-
जमुना तट काछे नट अद्भुत छवि छाजे ॥[3]

गिड़गिड़ थुंग थुंगनि तकिटि थुंगनि –
एक चरन कर सों भलें भले बहु मृदंग बजावें।
दूसरे कर चरन सों कठताल त्रिकटि झं झं–
झपताल मे अवघर गति उपजावे ॥
कठ सरस सुरहि गावें मोहन मधुरी तान लावें–

---

१. वही, पद सं० १६
२. अष्टछाप-परिचय, प्रभुदयाल मीतल, पृ० २२८, पद सं० ५६
३. गोविंदस्वामी, काँकरौली, पृ० २८, पद स० ६२

सकल कला गुन पूरन ब्रषभानुनंदिनी पीय मन भावें ।
गोविंद प्रभु रीझि रहे मुसिकाई रसन-दसन धरिके रहसि उरसि लपटाव ।'[1]
(गोविंदस्वामी)

लाल संग रास-रंग लेत मान रसिक रमन,
गिड़-गिड़ता, गिड़-गिड़ता, त त्त त्त त्त त्त थेई-थेई गति लीने ।
स रि ग म प ध नि, ग म प ध नि धुनि सुनि,
ब्रजराज तरुनि गावत री, अति गति यति भेद सहित,
ता न न नां न न न न न न न न अति गति असलीने ।।
उदित मुदित सरद-चंद्र, बंद छुटे कंचुकी के,
वैभव भव निरखि-निरखि कोटि काम हीते ।
बिहरत बन रस-बिलास, दंपति वर ईषद् हास,
'छीतस्वामी' गिरिवरधर, रसबस कर लीने ।।[2] (छीतस्वामी)

करत हरि नृत्य नवरंग राधासंग लेत नव गति भेद चर्चरी ताल के ।
परस्पर दर्श रसमत्त भये तत्त थेई बचन रचना सुसंगति सुरसाल के ।
फरहरत बर्हिवर ढुरहरत उरहार भरहरत भ्रमर वर विमल बन माल के ।
खिसत सित कुसुम शिर हसत कुंतल मनौ हुलस कल झलमलनि स्वेदकण माल के ।
अंग अंगनि लटक मटक भंगुर भ्रकुटि पट कपट ताल कोमल चरण चाल के ।
चमक चल कुंडलनि दमक दशनावली विविध व्यंजित भाव लोचन विशाल के ।
बजत अनुसार दृमिदृमि मृदंग निनाद झमकि झंझकार किंकिणी जाल के ।
तरल ताटंक तडकित तडित नील नव जलद पै यों विराजति प्रिया पास गोपाल के ।
बृजयुवती जूथ अगणित वदन चंद्रमा चंद भये मंद उद्योत तिहिं काल के ।
मुदित अनुराग बस राग रागिनी तान गान गत गर्ब्व रंभादि सुरबाल के ।
गगन चर सघन रस मग्न वर्षत फूल वारि डारत रत्न यत्न भरि थाल के ।
येक रसना गदाधर न वरनत बने चरित अद्भुत गिरिधरन लाल के ।[3] (गदाधर)

आली रासमंडल नृत्य करत मदनमोहन अधिक सोहन लाडिली रूप निधान ।
चरण चारु हस्त भेद नृत्यत आछी भाँति न मुख हास भुव विलास लेत नैन ही मे मन ।।
गावत वेणु बजावत दौड़ रीझ परस्पर रिझवत आको भरि भरि लेत रीझ रीझ ।
अंक भरे तत्ताथै तत्ताथै करत कहत मगन मन ।।
सूरदास मदनमोहन रासमंडल में प्यारी के अंचल लै पोंछत है श्यामघन ।।[4]
(सूरदास मदनमोहन)

१. वही, पृ० २६, पद सं० ५८
२ अष्टछाप-परिचय, प्रभुदयाल मीतल, पृ० २६७, पद सं० १५
३. श्री गदाधर भट्टजी महाराज की बानी, बालकृष्ण दासजी की प्रति, पत्र २३-२४, पद सं० ३
४. वाणी श्री श्री सूरदास मदनमोहन की, प्रकाशक कृष्णदास, पृ० १०, पद सं० २८

आजु बन नीको रास बनायौ ।
पुलिन पवित्र सुभग यमुना तट मोहन बेनु बजायौ ।
कल कंकन किंकिणी नूपुर धुनि सुनि खग मृग सचु पायौ ।
युवतिनि मंडल मध्य श्यामघन सारंग रागु जमायौ ।
ताल मृदंग उपंग मुरज डफ मिलि रस सिंधु बढ़ायौ ।
विविध विशद बृषभान नंदिनी अंग सुधंग दिखायौ ।
अभिनय निपुन लटकि लट लोचन भृकुटि अनंग नचायौ ।
तात्ता थेई ता थेई धरति नौतन गति पति व्रजराज रिझायौ ।।[1] (हितहरिवंश)

स्याम-बाम अंग संग, नाचति गति वर सुधंग,
रास-लास रग भरी सुभग भामिनी ।
तरनि-तनया-तीर खचित, मृदुल कनक रचित हीर,
त्रिगुन सुख समीर, सरद-चंद जामिनी ।।
चरन रुनित नपुर, करकंकन, कटि किंकिनि धुनि,
सुनि खग-मृग मोहि गिरत काम-कामिनी ।
पंचम सुर गान तान, गगन सघन भये आन,
मगन मगन जान, गिरत मेघ-दामिनी ।।
झपतालै चालि उरपि, लेति तिरप मान सुर्खाहिं,
चंद सुघर औघर वर सुलप गामिनी ।
नयन लोल, मधुर बोल, भृकुटि भंग, कुच उतंग,
हंसति पियहिं बिबस करति 'व्यास' स्वामिनी ।।[2]

स्याम-नटवा नटत राधिका संगे ।
पुलिन अद्भुत रच्यौ, रूप-गुन-सुख रच्यौ, निरखि मनमथ-बधू मान भंगे ।।
तत्त थेई-थेई, मान सप्तसुर षट गान, राग-रागिनी, तान स्रवन भंगे ।
लटकि मुँह मटकि, पद पटकि, पटु झटकि, हंसि बिबिध कल माधुरी अंग अंगे ।।
रतन कंकन क्वनित किंकिनी नूपुरा, चर्चरी ताल मिलि मनि-मृदंगे ।
लेति नागर उरपि, कुवरि औघर तिरप, 'व्यासदासि' सुघर बर सुधंगे ।।[3] (व्यासजी)

अद्भुत गति उपजत अति नाचत दोऊ मंडल कुवर किसोरी ।
सकल सुधंग अंग भरि मोरी पिय नृतत मुसकनि मुख मोरी परिरंभन रस रोरी ।
ताल धर वनिता मृदग चंडागत घात बजै थोरी थोरी ।
सप्त भाइ भाषा विचित्र ललिता गाइनि चित चोरी ।

---

१. चौरासी पद, हितहरिवंश, प्रति सं० ३८/२१५, पद सं० ३९
२. भक्तकवि व्यासजी, वासुदेव गोस्वामी, पृ० ३१४, पद सं० ४६४
३. वही, पृ० ३१६, पद सं० ४७१

श्री वृंदावन फूलनि फूल्यौ पूर्न ससि त्रिविध पवन बहै थोरी ।
गति विलास रसहासि परस्पर भूतल अद्भुत जोरी ।
श्री जमुनाजल विथकित पहुपनि वरिषा रति पति डारत तन तोरी ।
श्रीहरिदास के स्वामी स्यामा कुज बिहारी जू को रस रसना कहै कोरी ।[1] (हरिदास)

राजत रास रसिक रस रासे ।
आस पास जुवती मुखमडल मिलि फूले कमलासे ।
मध्य मराल मिथुन मन मोहन चितवत आतुरता से ।
वचन रचत सुरसप्त नृत्यगति मदन मयंक विकासे ।
बाजत ताल मृदग अंग संग मंद मधुर मृदु हासे ।
घूंघट मुकुट अटक लटकत नट अभिनय भ्रकुट विलासे ।
वारति कुसुम सुगंध देखि सखि आनंद हियें हुलासे ।
त्रिनु तोरति रति रति जोरति छिन छिन बिपुल बिहारनि दासे ।[2]
(बिहारिनदास)

हरि रास रच्यो केलि करण कौ ।
वृन्दावन जमुना तट मोहोन प्रगट करण ब्रज सरण कौं ।
लीनी कर मुरली हरि हितकरि हित सों ओसर अधर निजु धरण कूं ।
सुंनि सुंनि धुंनि आई ग्रह ग्रह तें सब गोपीपति पाय परण कूं ।
थकित पवन सुणि जांणि पर्मसुष जातनि चलि जल जल विभरण कूं ।
मोहे पसु पंखी थिरचर सुर लोचन सकल सरोज चरण कूं ।
सोभित अति सखी सरद निसा सुख देखौ स्याम स्नेह वरण कूं ।
परसराम प्रभु सब सुखदाइ कहरि मंगल पद दो ·· · रण कूं ॥[3] (परशुराम)

नृत्य से सम्बद्ध रूपक तथा उत्प्रेक्षा –

कृष्णभक्तिकालीन कवियो ने नृत्य संबधी रूपक तथा उत्प्रेक्षाये भी प्रस्तुत की है । यथा –

कवि सूर ने अपने पूर्व कृत्यों का दिग्दर्शन करते हुए एक स्थल पर सांगरूपक द्वारा नृत्य का ठाठ बाँधा है –

अब मै नाच्यौं बहुत गुपाल
काम क्रोध को पहिरि चोलना, कंठ विषय की माल ।
महामोह के नूपुर बाजत, निंदा-सब्द-रसाल ।

---

१. पदसग्रह, प्रति स० ३७१/२६६, काशी नागरी प्रचारिणी सभा, पृ० १२, पद स० ३
२. पद-संग्रह, प्रति सं० ३७१।२६६, काशी नागरी प्रचारिणी सभा, पत्र सं० १४८, पद सं० २२
३. राम-सागर, परशुराम, प्रति सं० ६८०।४६२, काशी नागरी प्रचारिणी सभा, पद सं० २०

भ्रम भोयौ मन भयौ पखावज, चलत असंगत चाल ।
तृष्ना नाद करति घट भीतर, नाना बिधि दै ताल ।
माया को कटि फेंटा बांध्यौ, लोभ तिलक दियौ भाल ।
कोटिक कला काछि दिखराई जल-थल सुधि नहिं काल ।
सूरदास की सबै अविद्या दूरि करौ नंदलाल ॥[1]

उत्प्रेक्षा के माध्यम से नृत्य का वर्णन करते हुए नददास कहते है –

साझ समैं बन तें हरि आवत, चंद मनौं नट-नृत्य करन,
उडगन मांनों पुहुप-अंजुली, अम्बर असन बरन ।
नंदी-मुख सनमुख है बामैं-देव मनावन बिघन हरन,
'नंददास' प्रभु गोपिन के हित बंसी धरी श्री गिरिधरन ।[2]

व्यासजी ने नेत्रो की गति तथा संचालन के द्वारा नृत्य का सुन्दर रूपक प्रस्तुत किया है –

नटवा नैन सुधंग दिखावत ।
चंचल पलक सबद उघटत है ग्रंग्रं तत्र थेई थेई कल गावत ॥
तारे तरल तिरप गति मिलवत, गोलक सुलप दिखावत ।
उरप भेद भ्रू-भंग संग मिलि, रतिपति कुलनि लजावत ।
अभिनय निपुन सैन सर ऐंननि, निसि वारिद बरषावत ।
गुनगन रूप अनूप 'व्यास' प्रभु निरखि परम सुख पावत ॥[3]

संगीत की व्यापकता का उल्लेख

पूर्व कहा जा चुका है कि प्रकृति तथा पशु पक्षियो के कण-कण मे सगीत निहित है। कृष्णभक्तिकालीन कवियो ने प्रकृति तथा पशु पक्षियो के माध्यम से सगीत सबधी अत्यन्त सुन्दर रूपक तथा उत्प्रेक्षाये प्रस्तुत की है। उदाहरणस्वरूप इन कवियों के कतिपय पद दृष्टव्य होंगे –

गावत स्याम स्यामा-रंग ।
सुघर गति नागरि अलापति, सुर भरति पिय-संग ॥
तान गावति कोकिला मनु, नाद अलि मिलि देत ।
मोर संग चकोर डोलत, आपु अपने हेतु ॥[4]

---

१. सूरसागर, (भाग १), प्रथमस्कंध, पृ० ५१, पद सं० १५३
२. हस्तलिखित पदसंग्रह, नंददास, डा० दीनदयालु गुप्त, पद स० ३५
३. भक्तकवि व्यासजी, वासुदेव गोस्वामी, व्यासवाणी, पृ० २७६, पद सं० ३४२
४. सूरसागर, (पहला खंड), दशम स्कंध, पृ० ६३५, पद सं० १७०१

सिखिन सिखर चढ़ि टेर सुनायौ ।
बिरहिन सावधान ह्वै रहियौ सजि पावस दल आयौ ।।
नव बादर बानैत, पवन ताजी चढ़ि, चुटक दिखायौ ।
चमकत बीजु सेल्हकर मंडित, गरज निसान बजायौ ।।
चातक, पिक, झिल्ली गन दादुर, सब मिलि मारू गायौ ।।[1] (सूरदास)

इन मोरन की भाँति देखि नाचे गोपाला ।
मिलवत गति भेद नीके मोहन रिपुसाला ।।
गरजत घन मंद मंद दामिनी दरसावें ।
झुमकि झुमकि बूंद परे गौड़मलार गावे ।।
चातक पिक सिखर कुंज बारबार कूजे ।
वृंदावन कुसुम माल चर्ण कमल पूजें ।।
सुर नर मुनि काम-धेनु, देखन कोतक आवें ।
भक्त उचित वारि फेरि परमानंद पावे ।।[2] (परमानंददास)

ब्रज पर नीकी आजु घटा हो ।
नन्हीं नन्हीं बूँद सुहावनी लागति, चमकति बिज्जु छटा हो ।।
गरजत गगन मृदंग बजावत, नाचत मोर नटा हो ।
तैसेई सुर गावत चातक, पिक, प्रगटयो है मदन भटा हो ।।
सब मिल भेट देत नँदलालहिं बैठे ऊँचे अटा हो ।
कुंभनदास लाल गिरिधर सिर कुसूंभी पीत पटा हो ।।[3] (कुंभनदास)

माई मोरन सग मदनमोहन लिए तरंग नाँचै ।
दच्छिन अंग टेढ़ौ, सिर टेढ़ौ तैसेई धर,
टेढ़े किऐं चरन-जुगल नृत्य-भेद साँचै ।।
मृदंग मेघ बजावें दादुर सुर-धुनि मिलावे,
कोकिला अलाप गावै, वृंदावन रंग राँचै ।।
गावें तहाँ 'कृष्णदास' गिरिधर गोपाल पास,
राग धम्मार, राग मलार मोद मन माँचै ।।[4] (कृष्णदास)

कान्ह कुंवर के कर-पल्लव पर, मानों गोवर्द्धन नृत्य करै ।
ज्यों ज्यों तान उठत मुरली की, त्यों त्यों लालन अधर धरै ।।

---

१. वही, (दूसरा खंड), पृ० १३८८, पद सं० ३९४६
२, हस्तलिखित पद-संग्रह, परमानन्ददास, डा० दीनदयालु गुप्त, पद सं० ७०
३. कुंभनदास, काँकरौली, पृ० ४४, पद सं० ६७
४. अष्टछाप-परिचय, प्रभुदयाल मीतल, पृ० २३९, पद सं० ६७

मेघ मृदंगी बजावत, दामिनी दमक मानों दीप जरै ।
ग्वाल ताल दै नीके गावत, गायन के सँग सुर जु भरै ।।
देत असीस सकल गोपी-जन, बरसा कौ जल अमित झरै ।
अति अद्भुत अवसर गिरिधर कौ, 'नंददास' के दुःख हरै ।।[१] (नंददास)

ब्रज पर उनई आजु घटा ।
नई नई बूंद सुहावनी लागति, चमकति बिज्जु छटा ।।
गरजत गगन मृदंग बजावत, नाँचत मोर नटा ।
गावत ही सुर देत चातक-पिक, प्रगट्यौ मदन-घटा ।।
सब मिलि भेंट देत नँदलाले, बैठे ऊंचे अटा ।
'चतुर्भुज' प्रभु गिरिधरन लाल सिर, कसूंभी पीत पटा ।।[२] (चतुर्भुजदास)

पावस नट नट्यो अखारो वृन्दावन अवनी रंग ।
नित गुन रासि बरुहा पपैया सब्द उघटत कोकिला गावति तान तरंग ।
जलधर तहाँ मंद मंद सुलप संच गति भेद-उरपि तिरपि मानु लेत मधुर मृदंग ।
'गोविंद' प्रभु गोवर्द्धन सिंघासन पर बैठे सुरभी सखा मध्य रीझे ललित त्रिभंग ।।[३]

मदनमोहन बन देखत अखारो रंग ।
सुलप संच गति भेद बरुहा निर्त करें कोकिला कुहु कुहु तान तरंग ।।
उघटत सब्द पपैया पियु पियु करै मधुव्रत गुंजमाल सरस उपंग ।
गोविंद प्रभु रीझे सकल सभा सहित जलधर सुघर बजावत मृदंग ।[४]

(गोविंदस्वामी)

अद्भुत शोभा वृन्दावन की देखो नन्दकुमार ।
बालक बिहग अनंग रंग भरि बाजत मनो बधाई ।
मंगल गीत गायबे को जानो कोकिल वधू बुलाई ।।[५]

निज सुख पुंज वितान कुंज हिंडौरना झुलत स्याम सुजान ।......
गरजत तरजत मधुर राग लिये केकी शब्द सुहाए । .....
मधुर मंजीर गगन उघटत सम सुभट पखावज बाजें ।।[६]
दुलह सुदर श्याम मनोहर दुलहिनि नवल किशोरी जू ।

---

१. अष्टछाप-परिचय, प्रभुदयाल मीतल, पृ० ३१९, पद सं० १०
२ वही. पृ० २९३, पद सं० ४८
३. गोविंदस्वामी, काँकरौली, पृ० ९२, सं० १८१
४. वही, पृ० ९२, पद सं० १८२
५. मोहिनी बानी श्री गदाधर भट्ट जी की, प्रकाशक कृष्णदास, पृ० ४२
६. वही पृ० ९२

शारद निशा दिशा सब निर्मल डहडहे पूरण चन्दा जू ।
यमुना पुलिन नलिन रासरजित सुभग संवारी चौरी जू ।
बोलत मधुर वेदवाणी सी मिले भौंर अरु भौंरी जू ।।
गोपी जुरी जनु कज कलिनि को आमर मोर बनायौ जू ।
मधुर कंठ कोकिला सवासिनि गीत सरस स्वर गावै जू ।......
नाचत मयूर नौंछावरि करि करि द्रुम निज फूलनि डारैं जू ।।[1] (गदाधर भट्ट)

नाचत मोरनि संग स्याम मुदित स्यामाहिं रिझावत,
तैसीयै कोकिला अलापति पपीहा देत सुर तैसीई मेघ गर्जित मृदंग बजावत ।
तैसी यै स्यामघटा निसि कारी तैसी ये दामिनि कोधि दीप दिखावत ।
श्री हरिदास के स्वामी स्यामा कुजबिहारी रीझि राधे हँसि कंठ लगावत ।।[2]
राधे चलिरी हरि बोलत कोकिला अलापत सुर देत पंछी राग बन्यों ।
जहां मोर काछ बांधे नृत्य करत मेघ पखावज बजावत बंधान गन्यों ।
प्रकृति की कोऊ नाही याते श्रुति के उनमान गहि हौं आई में जन्यों ।
श्री हरिदास के स्वामी स्यामा कुजबिहारी की अटपटी और कहत कछु औरैं भन्यों ।[3]
(हरिदास)

धूमरे गगन गरजत घन मदमंद बरसत वृंदावन सघन सरस पावस रितु सुहाई ।
चातक पिक मोर मुदित नाचत गावत मेरे निरषिनिरषि दंपति सब संपति
सुखदाई ।[4] (बिहारिनदास)

संगीत की महत्ता का उल्लेख

जैसा कि पहिले भी कहा गया है संगीत की महत्ता असीम है । सगीत की स्वर लहरियाँ जड़ तथा चेतन सभी को आर्कषित करती है । कृष्णभक्तिकालीन साहित्य मे अनेक स्थलों पर विशेष रूप से मुरली तथा रासलीला सम्बन्धी प्रसंगो मे संगीत की महिमा तथा सगीत के प्रभाव का वर्णन किया गया है । उदाहरण स्वरूप कृष्णभक्तिकालीन कवियो के संगीत की महत्ता तथा प्रभाव संबंधी कतिपय पद तथा पक्तियाँ दृष्टव्य होगी –

दूरि करहि बीना कर धरिबौ ।
रथ थाक्यौ, मानौ मृग मोहे, नॉहिन होत चंद्र कौ ढरिबौ ।।[5]

---

१. मोहिनी बानी श्री गदाधर भट्ट जी की, प्रकाशक कृष्णदास, पृ० ३६
२. पद-संग्रह, प्रति ३७१/२६६, का० ना० प्र० सभा, पृ० श्री स्वा० २४, पद सं १
३. वही, पृ० ७, पद सं० १४
४. वही, पत्र सं० १३१, पद स० २
५. सूर-सागर, (दूसरा खंड), दशम स्कंध, पृ० १३६७ पद सं० ३६०५

सुनहु हरि मुरली मधुर बजाई ।
मोहे सुर-नर-नाग निरंतर, ब्रज बनिता उठि धाई ।।
जमुना नीर-प्रवाह थकित भयौ, पवन रह्यौ मुरझाई ।
खग-मृग-मीन अधीन भए सब, अपनी गति बिसराई ।।
द्रुम, बेली अनुराग-पुलक तनु ससि थक्यौ निसि न घटाई ।
सूर श्याम वृंदावन-बिहरत, चलहु सखी सुधि पाई ।।[1]

आजु हरि अद्‌भुत रास उपायो ।
एकहिं सुर सब मोहित कीन्हे मुरली नाद सुनायौ ।।
अचल चले, चल थकित भए, सब मुनिजन ध्यान भुलायौ ।
चंचल पवन थक्यौ नहिं डोलत, जमुना उलटि बहायौ ।।
थकित भयौ चंद्रमा सहित-मृग, सुधा-समुद्र बढ़ायौ ।
सूर स्याम गोपिन सुखदायक, लायक दरस दिखायौ ।।[2]

मुरली सुनत अचल चले
थके चर, जल झरत पाहन, बिफल बृच्छ फले ।।
पय स्रवत गोधननि थन तैं, प्रेम पुलकित गात ।
झुरे द्रुम अंकुरित पल्लव बिटप चंचल पात ।।
सुनत खग-मृग मौन साध्यौ, चित्र की अनुहारि ।
धरनि उमंगि न माति उर में, जती जोग बिसारि ।।[3] (सूरदास)

मदन गोपाल बेंनु नीकौ बाजत, मोहन नाद सुनत भई बावरी ।
बछरा खीर पीवत थन छाँड्यौ दंतन तृन खंडित नहिं गावरी ।
अचल भए सरिता मृग पंछी, खेवट चकित चलत नहीं नांव री ।।[4]
(परमानददास)

हरि कर पल्लव लोल बिराजत ।
राग रागिनी के उपजावत बेनु मधुर धुनि बाजत ।
देव मनुज मुनि खग मृग मोहैं जब गूजरीनि बाजत ।
नाचत मोर मौनधरि कोकिल मेघ अकासनि गाजत ।
ब्रज बनिता मनि परी चटपटी बिस भए लोचन आंजत ।
परमानंद काम रति बाढ़ी भूषन बने न साजत ।।[5] (परमानददास)

---

१. सूरसागर (पहला खंड), दशम स्कंध, पृ० ६०३, पद सं० १६०८
२ वही, पृ० ६५४, पद सं० १७५८
३. वही, पृ० ६२८, पद सं० १६८६
४. अष्टछाप-परिचय, प्रभुदयाल मीतल, पृ० २०१, पद सं० ८५
५. हस्तलिखित पद-संग्रह, डा० दीनदयालु गुप्त, पद सं० ८९

गोविंद करत मुरली गान ।
अधर कर धरि स्याम सुंदर सप्त सुर बंधान ।
विमोही ब्रज-नारि, पसु, पंखि सुनैं दैं धरि कान ।
चर स्थिर ह्वो फिरत चल, सब की भई गति आन ।।
तजि समाधि जु मुनि रहे थके व्योम विमान ।
'कुंभनदास' सुजान गिरिधर रची अद्‌भुत ठान ।[१]

रास रच्यौ नंदलाला
बृंदावन सोभा बढ़चौ ता पर व्योम विमाननि सों मढ़चो ।
दुंदुभी देव बजावैं फूलनि अंजुलि बहु बरखावैं ।
बरखैं जु फूलनि अंजुली बहु अंबर घन कौतुक पगे ।
विवस अंकनि निज-वधू लिए निरखि मनमथ-सर लगे ।
ह्वै गए थिर चर, उचर चर, सरद-पूरन ससि चढ़्यौ ।
'दासकुंभन' रास-औसर बृंदावन सोभा बढ़चौ ।[२] (कुंभनदास)

गोविंद करत मोहन गान
बसीकृत नग सिंधु सुर गन थकित व्योम विमान ।[३]
खग मृग पसु सुनत नाद पिवत अधर सुधा स्वाद ।
'कृष्णदास' बदत बाद सुफल भाग री ।[४] (कृष्णदास)

बृंदाबन बसी बट कुंज जमुना के तट
रास में रसिक प्यारौ खेल रच्यौ बन मैं
राधा माधौ कर जोरे रबि-ससि होत भोरे
मंडल मैं निर्त्तत्त दोऊ सरस सघन मैं
मधुर मृदंग बाजैं मुरली की धुनि गाजैं
सुधि न रही री कछु सुर मुनि जन मैं
नंददास प्रभु प्यारौ रूप उजियारौ कृष्न
क्रीड़ा देखि थकित सब जन मन मे ।[५] (नददास)

बेनु धरचौ कर गोविंद गुन निधान
जाति हुती बन काऊ सखिन संग, ठगी धुनि सुनि कान

---

१. कुंभनदास, काँकरौली, पृ० २०, पद सं० ३१
२. वही, पृ० २५, पद सं० ४३
३. हस्तलिखित पद-संग्रह, कृष्णदास, डा० दीनदयालु गुप्त, पद सं० ३०
४. अष्टछाप-परिचय, प्रभुदयाल मीतल, पृ० २३८, पद सं० ६४
५. नंददास, उमाशंकर शुक्ल, पृ० ३३३, पद सं० ११५

मोहन मोहे कल खग मृग, पसु बहु बिधि सप्तक सुर-बंधान
'चतुर्भुजदास' प्रभु गिरिधर तन-मन, चोरि लियौ करि मधुर गान ।[१]

प्यारी के गावत कोकिला मुख मूंदि रही
पिय के गावत खग नैना मूंदि रहे सब ।[२] (चतुर्भुजदास)

नाचत लाल गोपाल रास मे सकल ब्रज बधू संगे । ......
सिव बिरंचि मोहे सुर सुनि सुनि सुर नर मुनि गति भंगे ।।[३]
उमगत रस ग्रीव भुजा नाचें स्यामा स्याम .....
बिथकित चंद सखी लोक लयौ काम । ....
'गोबिंद' प्रभु लाग लेत ब्रह्मादिक लखि अचेत
जै जै करि पुहुप अंजुली छोड़त सुखधाम ।।[४] (गोविंदस्वामी)

मुरली सुनत गई सुधि मेरी ।
ग्रह काज सब भूलि गयो, मोहि सपति करिहों तेरी ।
एकटक लागि सुनत श्रवनन पुट जेसे चित्त चितेरे ।
छीतस्वामी गिरधर मन करख्यो इत उत चले ने फेरी ।[५]
लाल संग रास-रंग लेत मान रसिक रमन... ..

उदित मुदित सरद-चंद बंद छुटे कंचुकी के,
वैभव भव निरखि-निरखि कोटि काम होते ।[६] (छीतस्वामी)

करत हरि नृत्य नवरंग राधा संग लेत नव गति भेद चर्चरी ताल के ।
बृजयुवती जूथ अगणित वदन चन्द्रमा चन्द भये मन्द उद्योत तिहि काल के ।
मुदित अनुराग वस राग रागिनि तान गान गतगर्व्व रंभादि सुरबाल के ।
गगन चर सघन रस मग्न वर्षत फूलवारि डारत रत्न यत्न भरि थाल के ।[७]
(गदाधर भट्ट)

बांसुरी बजाई आज रंग सो मुरारी ।
सिव समाधि भुल गई मुनि जन की नारी ।।
वेद भनत ब्रह्मा भूले भूले ब्रहचारी ।

---

१. अष्टछाप-परिचय, प्रभुदयाल मीतल, पृ० २८६, पद सं० ६१
२. वही, पृ० २६०, पद सं० ७४
३. गोविंदस्वामी, काँकरौली,-पृ० २६, पद सं० ५७
४. वही, पृ० २८, पद सं० ६१
५. हस्तलिखित पद-संग्रह, छीतस्वामी, डा० दीनदयालु गुप्त, पद सं० २३
६. अष्टछाप-परिचय, प्रभुदयाल मीतल, पृ० २६६, पद सं० १५
७ गदाधर भट्ट जी महाराज की बानी, बालकृष्ण दास जी की प्रति, पत्र २३-२४, पद स० ३

रंभा सब ताल चूकी भूलि नृत्यकारी ।
जमुना जल उलटि बह्यो सुध ना संभारी ।।
वृंदावन बंसी बजी तीन लोक प्यारी ।
ग्वालबाल मगन भये ब्रज की सब नारी ।।[१] (सूरदास मदनमोहन)

रसिक-सिरोमनि ललना-लाल मिले सुर गावत ।
मत्त मधुर बिबि धुनि सुनि कोकिल कूजत तन मन ताप बुझावत ।
मोर मंडली नाँचति प्रमुदित, आनँद नैननि नीरु बहावत ।
मंद-मंद घनवृंद-गाज लजि, सीतल जल-सीकर बरसावत ।।
नाद स्वाद मोहे गो, गिरि, तरु, खग, मृग, सर, सरिता सचुपावत ।
वृंदाविपिन-बिनोदीराधा-रवन बिनोद, 'व्यास' मन भावत ।[२]

प्यारी के नाँचत रंग रह्यौ ।
पिय के बैनु बजावत गावत, सुख नहिं परत कह्यौ ।
कोमल पुलिन नलिन, मंडल मँह, त्रिविध समीर बह्यौ ।
बिथकित चंद मंद भयौ, पथ चलिबे कहूँ रथ न रह्यौ ।
कंकन-किंकिनि नूपुर सुनि, मुनि कन्यनि कौ मन उमह्यौ ।
उलट बह्यौ जमुना कौ जल, सब ही के नैननि नीर बह्यौ ।
अंग सुधंगनि देखत, गर्व पर्वत तें मदन ढह्यौ ।
तिरप उरप, सुलपनि की गति कौ, पति नहिं मरम लह्यौ ।।[३]

दुलहिन दूलहु खेलत रास ।......
थके बिमान गगन धुनि सुनि-सुनि, ताननि कियो विसास ।
मोहन मुरली नैक बजाई, श्रीपति लियो उसास ।
नूपुर धुनि उपजाइ विमोह्यौ, संकर भयौ उदास ।
कंकन किंकिन धुनि सुनि नारद, कीनौ कहूँ न बास ।[४]

बजावत स्यामहिं बिसरी मुरली ।
मोहन सुर अलाप जब गायौ, राधा चित चुरलीं ।
अरुन बरुन दिसि, निसि ससि बिकसित, सकुचत कमल कली ।
तमचुर-सुर सुनि मिलि बिछुरी, चकवनि की जोट छली ।।
फूली धरनि सदा गति भूली तरनिसुता न चली ।
बिकल-भँवर, पिक पथिक अचल पथ, रोकत कुंजगली ।।

---

१. वाणी श्री श्रीसूरदास मदनमोहन की, प्रकाशक कृष्णदास, पृ० ७, पद सं० १७
२. भक्त कवि व्यास जी, वासुदेव गोस्वामी, प० २९३, पद सं० ३९१
३. वही, पृ० ३७७, पद सं० ६७५
४. वही, पृ० ३६५, पद सं० ६३५

स्थावर-जंगम, संगम बिछुरे, सब की गति बदली ।
कैं यह मरम जानि है महलनि, कैरु 'व्यास' बृषली ॥[१] (व्यास)

अद्भुत गति उपजत अति नाचत दोऊ मंडल कुंवर किसोरी ।
श्री जमुना जल विथकित पहुपनि बरिषा रति पति डारत तृन तोरी ॥[२]
(हरिदास)

हरि रास रच्यो केलि करण कौं ।
लीनी कर मुरली हरि हितकरि हित सों ओसर अधर निजु धरण कूं ।
सुंनि सुंनि धुंनि आई ग्रह ग्रह तें सब गोपी पति पाय परण कूं ।
थकित पवन सुंणिजांणि पर्मसुख जा तनि चलि जल-जल विभरण कूं ।
मोहे पसु पंछी थिरचर सुर लोचन सकल सरोज चरण कूं ।[३] (परशुराम)

म्हारो परनाम बांके बिहारी जी ।
अधर मधुरधर बंसी बजावां रीझ रिझावां ब्रजनारी जी ।[४]
नागर णंद कुमार लाग्यो थारो णेह ।
मुरड़ी धुण सुण बीसरां म्हारो कुणबो गेह ।[५]

मुरड़िया बाजां जमणा तीर ।
मुरड़ी म्हारो मण हर ड़ीन्डो चित्त धरांणा धीर ।
धुण मुरड़ी शुण शुध बुध बिशरां जर-जर म्हारो सरीर ।[६] (मीरां)

कीर्तन और भजन गायन की महिमा तथा उसमें मन को लीन रखने के लिए दी गई चेतावनी सम्बन्धी उल्लेख

संगीत-कुशल मुरलीधर नटवर कृष्ण संगीत के वशीभूत है । सगीत की ध्वनि सुनकर वे प्रफुल्लित होते है । अत. भक्तजन, गधर्व तथा देवता गान और नृत्य के द्वारा अपने आराध्य को रिझाने की चेष्टा करते है –

गावत गोपी मृदु मधु बाँनी ।
जाके भुवन बसरत त्रिभोवनपति राजा नंद यशोदा रानी ।
गावत गुनि गंधर्व काल सिव गोकुल नाथ महा तुम जानी ॥

---

१. भक्तकवि व्यास जी, वासुदेव गोस्वामी, पृ० ३१२, पद सं० ४५६
२. पद-संग्रह, प्रति सं० ३७१।२६६, का० ना० प्र० सभा, पृ० १२, पद सं० ३
३. राम-सागर, परशुराम, प्रति सं० ६८०-४६२, का० ना० प्र० सभा, पद सं० २०
४. मीरा-स्मृति-ग्रंथ, मीरा-पदावली, पृ० २, पद सं० ४
५. वही, पृ० २२, पद सं० २७
६. वही, पृ० २७, पद सं० ६४

गावत चतुरानन जगनायक गावत सेस सहस मुख रास ।
मन कर्म बचन पीति पद अंबुज अब गावत परमानंददास ।।[1] (परमानंददास)

ध्यावत कान्ह विमल जस तेरो ।
गावत सिव-सारद मुनि नारद प्रान जीवन धन मेरौ ।।
गावत वेद बंदि जन निसिदिन अरु मुनि-जूथ घनेरौ ।
गावत सेष महेस विविध विधि रस रसि कहि सुख केरौ ।।
गिरधर पिय गावत ब्रजवासी मिले प्रेम के घेरौ ।
'कृष्णदास' द्वारे दुलरावत श्री वल्लभ को चेरौ ।।[2] (कृष्णदास)

नाचत गावत हरि सुख पावत ।
नाँचि-गाइ लीजै द्विन द्वै, पुनि कठिन काल-दिन आवत ।
नाँचत नाऊ, जाट, जुलाहौ, छीपा नीके गावत ।
पीपा अरु रैदास, विप्र जयदेव सु भले रिझावत ।
नाँचत सनक, सनंदन अरु सुक नारद मुनि सचु पावत ।
नाँचत गन गंधर्व-देवता 'व्यासहि' कान्ह जगावत ।[3] (व्यास)

कृष्णभक्तिकालीन कवि बार-बार कीर्तन, भजन, गायन की महिमा तथा प्रभाव की ओर संकेत करते है और हृदय को चेतावनी देते हैं कि भगवद् भजन, कीर्तन तथा गायन करते हुए अपना समय व्यतीत करो । कीर्तन की महिमा तथा हृदय को दी गई चेतावनी को व्यक्त करने वाली कुछ पंक्तियाँ नीचे उद्धृत की जाती है –

है हरि-भजन कौ परमान ।
नीच पावै ऊँच पदवी, बाजते नीसान ।
भजन कौ परताप ऐसौ, जल तरै पाषान ।
अजामिल अरु भीलि गनिका, चढ़े जात बिमान ।
चलत तारे सकल मंडल, चलत ससि अरु भान ।
भक्त ध्रुव कौं अटल पदवी, राम के दीवान ।
निगम जाकौ सुजस गावत, सुनत संत सुजान ।
सूर हरि की सरन आयौ, राखि ले भगवान ।।[4]

नीकैं गाइ गुपालहिं मन रे ।
जा गाए निर्भय पद पाए अपराधी अनगन रे ।

---

१. हस्तलिखित पद-संग्रह, परमानंददास, डा० दीनदयालु गुप्त, पद सं० २
२. अष्टछाप-परिचय, प्रभुदयाल मीतल, पृ० २४०, पद सं० ७१
३. भक्त कवि व्यास जी की वानी, वासुदेव गोस्वामी, पृ० २५२, पद सं० ३२४
४ सूरसागर, (पहला खंड), प्रथम स्कंध, पृ० ७६, पद सं० २३५

गायौ गीध अजामिल, गनिका, गायौ पारथ-धन रे ।
गायौ स्वपच परम अघ-पूरन, सुत पायौ बाम्हन रे ।
गायौ ग्राह-ग्रसत गज जल मे, खंभ बँधे तै जन रे ।
गाए सूर कौन नहिं उबरचौ, हरि परिपालन पन रे ।[१]
जो सुख होत गुपालहि गाये ।
सो नहि होत जप तप के कीने कोटिक तीरथ न्हाये ।[२]
सोइ रसना, जो हरि-गुन गावे ।[३]
दिन दस लेहि गोविंद गाइ ।[४]
दिन द्वै लेहु गोविंद गाइ ।[५]
गाइ लेहु मेरे गोपालहि ।[६]
भजि मन नंद नंदन चरन ।[७]
मन तो सों किती कही समुझाई ।
नंदनंदन के चरन कमल भजि, तजि पाखंड चतुराइ ।
सूरदास भगवंत-भजन बिनु, जै है जनम गँवाइ ।[८]
भजन बिनु कूकर-सूकर जैसौ ·····
सूरदास भगवंत भजन बिनु, मनौ ऊँट-बृष भैंसौ ।[९]
भजन बिनु जीवन जैसै प्रेत ।[१०]
जिहिं तन हरि भजिबौ न कियौ ।
सो तन सूकर-स्वान-मनि ज्यौं, इहिं सुख कहा जियौ ।[११]
सकल तजि भजि मन चरन मुरारि ।[१२]

---

१. सूरसागर, (पहला खंड), प्रथम स्कंध, पृ० २२, पद सं० ६६
२. वही, पृ० ११६, पद सं० ३४९
३. वही, पृ० ११६, पद सं० ३५०
४. वही, पृ० १०४, पद सं० ३१५
५ वही, पृ० १०४, पद सं० ३१६
६. वही, पृ० २४, पद सं० ७४
७. वही, पृ० १०१, पद सं० ३०८
८. वही, पृ० १०४, पद सं० ३१०
९. वही, पृ० ११९, पद सं० ३५७
१०. वही, पृ० ११९, पद सं० ३५८
११. वही, पृ० ११९, पद सं० ३५९
१२. वही, पृ० १२४, पद सं० ३७४

भजि मन, नंद-नंदन-चरन ।[१]
भजहु न मेरे स्याम मुरारी ।[२] (सूरदास)
तुम्हारो भजन सब ही कौ सिंगार ।[३]
हरि के भजन में सब बात ।
ज्ञान कर्म सो कठिन करि कत देत हो दुख गात ।
बदत बेद पुरान छिनु-छिनु सांझ अरु परभात ।
संत जन मुख द्रवत हरि जसु नदलाल पद अनुरात ।
नाहिंन भव जलधि कोउ औरों बिघन के सिरलात ।
दास परमानंद प्रभु पें मारि मुख ए जात ।[४] (परमानंददास)
श्री विट्ठल जू के चरनकमल भजि रे मन ! जो चाहत परमारथ ।[५]
(कुंभनदास)

सब तजि भजि गोपिन सुख दायक ।[६]
भजहि सखी मोहन नंदनंदनाहि ।[७] (कृष्णदास)
श्री वल्लभ-सुत के चरण भजों,
अति सुकुमार भजन-सुख-दायक, प्रति-तन-पावन-करन भजो ।
दूर किये कलि-कपट वेद-बिधि, मत्त, प्रचंड बिसतरन भजों ।
अतुल प्रताप महा महिं सोभा, ताप-सोक-अघ हरन भजों ।
'नंददास' प्रभु प्रगट भये दोउ, श्री बिट्ठलेस, गिरिधरन भजों ।[८]
(नंददास)

रे मन भजि श्री विट्ठलनाथे ।[९] ......
निसि दिन वल्लभवल्लभ कहिए ।......
श्री हरि बदन बहोत सुखदायक श्रीबल्लभ गुन गइए ।[१०] (गोविंदस्वामी)
श्री विट्ठलनाथ रस अमृत पान सदा तू करि, रे रसना ।

---

१. वही, पृ० १०१, पद सं० ३०८
२. वही, पृ० ७०, पद सं० २१२
३. हस्तलिखित पद-संग्रह, परमानंददास, डा० दीनदयालु गुप्त, पद सं० ३०८
४. वही, पद सं० ३११
५. कुंभनदास, काँकरौली, पृ० ३२, पद सं० ६३
६. हस्तलिखित पद-संग्रह, कृष्णदास, डा० दीनदयालु गुप्त, पद सं० १८
७. वही, पद सं० १०४
८. वही, नंददास, पद सं० २
९. गोविन्दस्वामी, काँकरौली, पृ० २१४, पद सं० ५७०
१०. वही, पृ० २१०, पद सं० ५६२

जो तू अपनो भलो चाहतो यहै बात जिय धरि, रे रसना ।
हरि को विमल यश गावत निरंतर जा, रे रसना ।[1] (छीतस्वामी)
दुलह सुंदर श्याम मनोहर दुलहिनि नवल किशोरी जू ।......
इहि विधि सदा विलास रास रस अगणित कल्प बिताय जू ।
ते सुख शुक शिव शारद शेष सहस्र मुख गाये जू ।
और कहां कहि सकै गदाधर मोहन मधुर विलासा जू ।
रसना सहज शुद्ध करिवै कौं गावत हरि के दासा जू ॥[2]
वरनौं कहा यथामति मेरी वेदहु पार न पावै जू ।
भट्ट गदाधर प्रभु की महिमा गावत ही उर आवै जू ॥[3] (गदाधर भट्ट)
गाइ मन-मोहन नागर-नटहिं ।......
'व्यास' आस तजि भजि यहु, रसिक अनन्यनि के संघटहिं ।[4]
गाइ लै गोपालै दिन चारि ।[5]
गाइ लेहु गोपालहिं, यह कलिकाल बृथा न बितीजै ।[6]
हरि गावत कलिजुग रहियौ ।[7]
सुन विनती मेरी तू रसना, राधा वल्लभ गाइ ।[8]
बृथा काल खोवहिं, जिन सोवहि, छिन भंगुर तन आइ ।
सुनहि श्रवन रति भवन किसोरहि गावत नैकु सुनाइ ।......
सुन सुत नवलकिसोर-दासहू, हरि गुन गाव-गवाव ।[9]
गावत मन दीजै गोपालहिं ।
नाँचत हरि पर चितु दीजै तो प्रीति बढ़ै प्रतिपालहिं ।[10] (व्यास)
मन हरि भजि हरि भजि हरि भजि भाई ।[11]
भजिए श्री गोपाल कलपतरु ।[2] (परशुराम)
मीरां रे प्रभु गिरधर नागर भजण बिणा नर फीकां ।[12] (मीरा)

---

१. छीतस्वामी पद-संग्रह, डा० दीनदयालु गुप्त, पद सं० ६२
२. मोहनी वाणी श्री गदाधर भट्ट जी की, प्रकाशक कृष्णदास, पृ० ३५–३६
३. वही, पृ० ५८
४. भक्त कवि व्यास जी, वासुदेव गोस्वामी, पृ० २२३, पद स० १२५
५ वही, पृ० २२३, पद सं० १२६
६ वही, पृ० २३६, पद सं० १८७
७. वही, पृ० २३६, पद सं० १८८
८. वही, पृ० २५४, पद सं० २५०
९. वही, पृ० २५४, पद सं० २५१
१०. राम-सागर, प्रति सं० ६८०/४९२, का० ना० प्र० सभा, पृ० रा० साग० ५१, पद सं० ३
११. वही, पद सं० ८
१२. मीरा-स्मृति-ग्रंथ, मीरा-पदावली, पृ० ३, पद सं० ८

संगीत संबंधी आत्मविषयात्मक उल्लेख

(अ) गायन सबंधी आत्मविषयात्मक उल्लेख –

कृष्णभक्ति कालीन साहित्य मे कही-कही कुछ पदो के अन्तर्गत ऐसी पंक्तियाँ आई है जिनसे ज्ञात होता है कि कृष्णभक्तिकालीन कवि अपने पदो को गाया करते थे। कृष्ण-भक्तिकालीन साहित्य मे उपलब्ध इस प्रकार के संगीत सबधी आत्मविपयात्मक उल्लेख नीचे दिए जा रहे है –

अविगत गति कछु कहत न आवै।······
सब विधि अगम विचारै ताते सूर सगुन लीला पद गावै।[1]
व्यास कहे शुकदेव सों द्वादश स्कन्ध बनाइ।
सूरदास सोई कहै पद भाषा करि गाइ।[2]
मेरी तो गति-पति तुम अनतहिं दुख पाऊँ।······
सूर कूर आँधरौ मैं द्वार परचौ गाऊँ।[3]
स्याम बलराम कौं सदा गाऊँ।[4]
प्रभु तुम दीन के दुख-हरन। ·· ··
सूर प्रभु कौ सुजस गावत नाम-नौका तरन।[5]
व्यास कह्यौ जो सुक सौं गाइ। कहौं सो सुनौ संत चित लाइ।······
जैसैं सुक कौं व्यास पढ़ायौ। सूरदास तैसैं कहि गायौ।[6]
सूरदास प्रभु नन्द-नंदन-गुन गावत निसि दिन रोवे।[7]
जोग पंथ करि उन तनु तजे। सूर सबै तजि हरि पद भजे।[8] (सूरदास)
मनिमय आंगन नंद के खेलत दोऊ भैया।······
बाल लीला विनोद सों परमानंद गावै।[9]
पीताम्बर को चोलना, पहिरावत मैया।······

---

१. सूरसागर, (भाग १), पृ० १, पद सं० २
२. वही, पृ० ७३, पद स० २२५
३. वही, पृ० ५५, पद सं० १६६
४. वही, पृ० ५५, पद सं० १६७
५. वही, पृ० ६६, पद सं० २०२
६. वही, पृ० ७४, पद सं० २२६
७. वही, पृ० ८३, पद सं० २५६
८. वही, पृ० ९३, पद सं० २८८
९. अष्टछाप-परिचय, प्रभुदयाल मीतल, पृ० १९४, पद सं० ८

जोई सुनै ताकौ मन हरै 'परमानंद' गावै ।[1]
मोहन मान मनायौ मेरौ । ·· ··
परमानंद भोर भयौ, गावें विमल जस तेरौ ।[2]
मदन मोहन-राधा रस लीला, कछु 'परमानंद' गाई ।[3]
जै जै कृष्न जै जै श्री राधे, जस गावत 'परमानंद, सार ।[4] (परमानंददास)
माई गिरिधरन के गुन गाऊँ ।।[5]
लाडिली लाल-पदरज उर राखि गावै 'कुंभनदास' ।[6]
गोप ग्वाल संग लियें परस्पर, 'कुंभनदास' गुन गाई ।[7]
रथ बैठे श्री त्रिभुवन-नाथ ।
'कुंभनदास' लाल गिरिधर कौ जसु गावत न अघात ।[8]
श्री गिरिधरन-छबि सुजस चित धरि गाइ 'कुंभनदास' ।[9] (कुंभनदास)
रसिक राय गिरिवरधर मिलतहिं 'कृष्णदास' गावत तब गीति ।[10]
नव विलास सों गिरिधर कीरति 'कृष्णदास' हँसि गाई री ।[11]
गावें तहाँ 'कृष्णदास' गिरिधर गोपाल पास
राग धम्मार, राग मलार मोद मन मॉचै ।[12]
जय जय श्री वल्लभ नंदन······
कृष्णदास गावत श्रुति छन्दन ।[13]
जै श्री वल्लभ नंदन गाऊँ ।[14] (कृष्णदास)
प्रात समय श्री वल्लभ सुत को पुण्य पवित्र विमल जस गाऊँ ।[15]
रास में राधे राधे मुरली मे एक रट, 'नंददास' गावै तहाँ निपट निकट ।[16]

---

१. वही, पृ० १६४, पद सं० ६
२. वही, पृ० १६१, पद सं० ४१
३–४. अष्टछाप-परिचय, प्रभुदयाल मीतल, पृ० १६५, २०० पद सं० ६०, ८४ क्रमशः
५–६. कुंभनदास, कांकरौली, पृ० ८४, ७, पद सं० २२८, १० क्रमशः
७. वही, पृष्ठ ३१, पद सं० ५८
८. वही, पृ० ४१, पद सं० ६०
९. वही, पृ० ६२, पद सं० १५७
१० अष्टछाप-परिचय, प्रभुदयाल मीतल, पृ० २३४, पद सं० ४३
११. वही, पृ० २३५, पद सं० ४५
१२. वही, पृ० २३६, पद सं० ६७
१३. हस्तलिखित पद-संग्रह, कृष्णदास, डा० दीनदयालु गुप्त, पद सं० १३२
१४. वही, पद सं० ११३
१५. नंददास, उमाशंकर शुक्ल, भाग २
१६. अष्टछाप-परिचय, प्रभुदयाल मीतल, पृ० ३२५, पद सं० ३३

सीतल भोग धरि करत आरती 'नंददास' गुन गावै ।[१] (नंददास)
गिरिधर कुंवर जननी दुलरावै । 'चतुर्भुजदास' बिमल जस गावै ।[२]
दै बीरा आरति वारति है 'चतुर्भुज' गावत गीत रसाल ।[३]
श्री वल्लभ सुजसु सन्तत नित्य गाऊँ ।[४] (चतुर्भुजदास)

वल्लभ श्री वल्लभ श्री वल्लभ गुन गाऊँ ।[५]
निज जन निरखि निरखि कें श्री मुख 'गोविंद' हरषि गुन गावत ।[६]
जै जैकार भयौ तिहि औसर 'गोविंद' तहाँ विमल जस गावत ।[७]
देत असीस सदा चिरुजीयो 'गोविंद' विमल विमल जसु गावति ।[८]
श्री वल्लभ पद-रज-महिमा ते 'गोविंद' यह जसु गाई ।[९]
भक्तनि मन आनंद भयो 'गोविंद' इह जसु गायो हो ।[१०] (गोविंदस्वामी)

'छीतस्वामी' गिरिधर श्री विट्ठल पद-पदम-रेनुं ।
वर प्रताप महिमा तें कीयौ कीरति-गान ।[११]
गाऊँ श्री बल्लभ नंदन के गुन, लाऊँ सदा मन अंग-सरोजन ।
पाऊँ प्रेम-प्रसाद तितच्छन, गाऊँ गोपाल गहें चित चोजन ।[१२] (छीतस्वामी)

मेरी मति अतिथोरी बरनत अतिहि अपार ।
तदपि गदाधर गावत उपजत आनंद की धार ।[१३]
यह सुख देख देख सखी सुख पावे ।
कवि को बरण सके गदाधर गावे ।[१४] (गदाधर भट्ट)
सेष असेस पार नहिं पावत, गावत सुक-'व्यासादि' ।[१५]

---

१. वही, पृ० ३२६, पद सं० ४१
२. वही, पृ० २७६, पद सं० ४
३. वही, पृ० २७७, पद सं० ८
४. हस्तलिखित पद-संग्रह, चतुर्भुजदास, डा० दीनदयालु गुप्त, पद सं० ६५
५ गोविंदस्वामी, काँकरौली, पृ० २१०, पद सं० ५६३
६ वही, पृ० २३, पद सं० ५१
७. वही, पृ० ३२, पद सं० ६९
८. वही, पृ० ४०, पद सं० ८०
९. वही, पृ० ४५, पद सं० ८९
१० वही, पृ० ५४, पद सं० १११
११ अष्टछाप-परिचय, प्रभुदयाल मीतल, पृ० २६७, पद सं० १६
१२ वही, पृ० २७०, पद सं० २८
१३. मोहनी बाणी श्री गदाधार भट्ट जी की, प्रकाशक कृष्णदास, पृ० ५६
१४. वही, पृ० ६३
१५ भक्त कवि व्यास जी, वासुदेव गोस्वामी, पृ० २०१, पद सं० ३८

'व्यास' स्वामिनी की छबि निरखति बिमल बिमल जस गाऊँ।[१]
'व्यासदास' आसा चरननि की, बिमल बिमल जस गाये।[२]
'व्यास' स्वामिनी के गुन गावत, रसिक अनन्य सुढाढ़ी।[३] (व्यास)
श्री बिहारनिदासि गाई गूढ़ ओढ़नी उठाई रीझि रहे अंग भीजि मिलि मलार गाई।[४]
(बिहारिनदास)
म्हाणे चाकर राखां जी गिरधारी ड़ाड़ा चाकर राखां जी।
ब्रिन्दावण री कुंज गंड़ माँ गोविन्द डीड़ा गाइयूं।[५]
माई सांवरे रंग राँची। .....
गायां गायां हरि गुण णिसदिण काड़ व्याड़ री बांची।[६]
माई म्हा गोविन्द गुण गाणा।[७]
माई म्हा गोविन्द गुन गाश्यां।[८] (मीरा)

(ब) नृत्य सबंधी आत्मविषयात्मक उल्लेख –

भक्तिकालीन प्रायः सभी कृष्ण भक्त कवियों ने अपने काव्य मे आराध्य कृष्ण की नृत्य-मुद्राओ, उस समय की छवि, नृत्य के बोलो तथा संगीत आदि का इतना पूर्ण तथा सजीव वर्णन किया है कि पढने पर नटनागर की नृत्य-क्रियाएँ नेत्रो के सम्मुख चलचित्र की भाँति सामने ही होती दीख पडती है। कवि-साधको की गहरी अनुभूति के मध्य साध्य की मनोहारिणी नृत्य-मूर्ति सगीत की लय मे साकार हो उठती है। किन्तु क्रियात्मक नृत्य के साधकों मे एक मात्र मीरा का नाम ही विशेषरूप से उल्लेखनीय है। यो तो जैसा कि पूर्व भी कहा जा चुका है वार्ता-साहित्य आदि वाह्य आधारों से ज्ञात होता है कि परमानन्ददास भी कभी-कभी भक्ति के आवेश मे प्रेम-विभोर हो सुध-बुध खोकर भगवान के सम्मुख नाचने लगते थे। स्वयं परमानन्ददास जी ने भी अपने एक पद मे इस ओर सकेत किया है।[९] किन्तु नृत्य के माध्यम से निरन्तर कृष्ण को रिझाने का प्रयास केवल मीरा ही ने किया है अत मीरा के काव्य मे नृत्य सबंधी आत्मविषयात्मक उल्लेख पग-पग पर मिलते है।

---

१. वही, पृ० २५८, पद सं० २६६
२ वही, पृ० २६६, पद सं० २६६
३. वही, पृ० २८८, पद सं० ३७२
४. हस्तलिखित पद-संग्रह, प्रति सं० ३७१।२६६, का० ना० प्र० सभा, पत्र १३१, पद सं० २
५. मीरा-स्मृति-ग्रंथ, मीरा-पदावली, पृ० १०, पद सं० ३५
६. वही, पृ० २३, पद सं० ८३
७. वही, पृ० १७, पद सं० ६१
८. वही, पृ० २८, पद सं० १०१
९. नांचत हम गोपाल भरोसे।
गावत बाल विनोद कान्ह के नारद के उपदेसे।
हस्तलिखित पद-संग्रह, परमानंददास, डा० दीनदयालु गुप्त, पद सं० ३०७

मीरा प्रेम की पुजारिन थी। विरह-बाण से विंधे उनके अंगों की व्याकुलता तथा दर्द छिपाये नही छिपता था। प्रेमानुभूति की तीव्रता मे हृदय की यह टीस नृत्य के रूप मे साकार हो गई और नाच-नाच कर गाते हुए प्राणो का समपर्ण तथा उत्सर्ग ही उनके जीवन का लक्ष्य बन गया। संगीत के साम्राज्य में दीवानी हो कर विचरण करने वाली मीरा राजकुल की मर्यादा की शृंखलाओ को तोड़ कर साधुमंडल तथा सामान्य जन-समुदाय के सम्मुख नृत्य करने लगी –

म्हां गिरधर आगां नाच्चां री।
णाच णाच म्हां रसिक रिझावां प्रीत पुरातण जांच्यां री।
स्याम प्रीत रो बांध घूंघरयां मोहण म्हारो सांच्यां री।
ड़ोक ड़ाज कुड़रां मरज्यादां जत में णेक णा राख्यां री।
प्रीतम पड़ छण णा बिसरावां मीरा हरि रंग रांच्यां री॥[1]
म्हारे गोकुड़ रो ब्रजबाशी।······
णाच्यां गावां ताड़ बज्यावां पावां आणद हाशी।[2]
माई सांवरे रंग रांची।
साज शिंगार बांध पग घूंघर ड़ोक ड़ाज तज णाची।[3]
माई म्हा गोविंद गुन गाश्यां ·····
हरि मंदिर मा निरत करावां घूंघरयां छमकाश्यां।[4]
चाडां अगम वा देस काड़ देख्या डरां।······
सील घूंघरां बांध तोस निरतीं करां।[5]
सखि म्हारो सामरिया णे देखवां करां री।
सांवरो उमरण सांवरो शुमरण सांवरो ध्याण धरां री।
ज्यां ज्यां चरण धर्यां धरणीधर निरत करां री।[6]

कोई मीरा का उपहास करता है, कोई निन्दा करता है। सास और पति क्रोधित हो जाते है किन्तु मीरा के घुंघुरुओं की ध्वनि मूक नही होती। वह निरन्तर बढ़ती ही जाती है। प्रेम मे विभोर मीरा क्षण-क्षण में विवश हो झूम उठती है –

पग बांध घुंघरयां णाच्या री
ड़ोग कह्यां मीरां बावरी शाशू कह्या कुड़नाशां री।

---

१. मीरा-स्मृति-ग्रंथ, मीरा-पदावली, पृ० १६, पद सं० ५९
२. वही, पृ० १७, पद सं० ६२
३. वही, पृ० २३, पद सं० ८३
४. वही, पृ० २८, पद सं० १०१
५. वही, पृ० २०, पद सं० ७१
६. वही, पृ० १६, पद सं० ५७

बिखरो प्याड़ो राणा भेज्यां पीवां मीरा हांशां री ।
तण मण वारयां हरि चरणां मां दरसण अमरित पाइयां री ।
मीरां रे प्रभु गिरधर नागर थारी शरणां आइयां री ।[1]
सांवरियो रंग रांचां राणां सांवरियो रंग रांचां ।
ताड़ पखावजां मिरदंग बाजां साधां आगे णाचां ।
बूझयां माणे मदण बावरी श्याम प्रीत म्हां कांचां ।
बिखरो प्याड़ो राणां भेज्या आरोग्यां णा जांचां ।
मीरा रे प्रभु गिरधर नागर जणम जणम रो सांचां ।।[2]

प्रिय-विरह की वेदना सम्पूर्ण शरीर मे व्याप्त हो जाती है और अपनी हृदय-तंत्री से करुण रागिनी को झकृत करती हुई मीरा कह उठती है –

तनको बनावुं तबुरो, जीवनो तार तणावुं राम ।
बन-बन बाजै घूंघरा, जीवनो लाड़ लड़ावूं राम ।[3]

कबीर के शरीर रूपी रवाब (विशेष वाद्ययंत्र) की शिराओ रूप ताँत से भी विरह के द्वारा प्रिय-मिलन की स्मृति तथा व्याकुलता मे अनुपम सगीत छेड़ा जाता है –

सब रग ताँत रबाब तन बिरह बजावै नित ।
और न कोई सुन सकै कै सांई कै चित ।।[4]

प्रेम की पीडा में व्याकुल सूफी संत जायसी की नागमती के शरीर की हड्डियाँ रूपी किंगरी (वाद्ययंत्र) की नसे रूपी ताँत से भी दिव्य सगीत का सृजन होता है –

हाड़ भए झुरि किंगरी नसैं भईं सब ताँति ।
रोवँ-रोवँ तनधुनि उठैं, कहेसु बिथा एहि भांति ।।[5]

किन्तु मीरा सबसे ही आगे बढ जाती है । शरीर रूपी तंबूरे मे जीवन रूपी तार सँजो कर नाचती-गाती मीरा अपने इष्टदेव को रिझाने का प्रयास निरंतर करती आ रही थी किन्तु प्रिय-विरह की पीडा कहाँ तक रुकती ; वेदना का बाँध सहसा टूट गया और सोलह शृंगार करके मीरा ने भी प्रेम रूपी ढोल बजाकर शरीर रूपी ताल में नृत्य करते हुए प्रिय के चरणों मे आत्मसमर्पण कर दिया –

---

१. मीरा-स्मृति-ग्रंथ, मीरा-पदावली, पृ० १३, पद सं० ४७
२. वही, पृ० १४, पद सं० ४८
१. मीरा-माधुरी, ब्रजरत्नदास, पृ० ६६, पद स० ३६१
२. कबीर-ग्रंथावली, बिरह कौ अंग, पृ० ६, छं० सं० २०
३. जायसी-ग्रथावली, सम्पादक-माताप्रसाद गुप्त, पृ० ३६५, छं० सं० ३६१

बिरह पिंजर की बाड़ सखी री, उठकर जी हुलसाऊँ, ए माय
मन कुँ मार सजूँ सतगुरु सूँ, दुरमत दूर गमाऊँ, ए माय।
डंको नाम सुरत की डोरी, कड़ियाँ प्रेम चढ़ाऊँ, ए माय
प्रेम को ढोल बन्या अति भारी, मगन होय गुण गाऊँ, ए माय।
तन करूँ ताल करूँ मन मोरचँग, सोती सुरत जगाऊँ, ए माय
निरत करूँ मैं प्रीतम आगे तो (प्रीतम पद) पाऊँ, ए माय।[1]

वास्तव में मीरा के नृत्य सम्बन्धी आत्मविषयात्मक उल्लेख उनकी हृत्तत्री की झंकार है। उनकी आत्मा की अनुभूति भावो की भाषा मे आलापित होकर गा उठी है। वेदना की तीव्रता मे सच्चे हृदय की तन्त्री से निकले हुए हमारी अन्तरात्मा को थिरका देने वाले इन सगीतमय उद्गारो द्वारा मीरा ने जिस अनुपम दिव्य संगीत की सृष्टि की है वह अजर-अमर, शाश्वत और चिरन्तन है।

---

१. मीरा-माधुरी, ब्रजरत्नदास, पृ० ६२, पद सं० २५३

पंचम अध्याय

कृष्णभक्तिकालीन साहित्य में प्रयुक्त राग-रागिनियाँ

राग की उत्पत्ति तथा विकास

राग भारतीय सगीत की नीव है। भारतीय संगीत का पूर्ण रूप रागो द्वारा ही प्रदर्शित होता है। किन्तु राग की उत्पत्ति किस समय हुई इस विषय पर संगीताचार्यों ने विशेष प्रकाश नहीं डाला। इसका कारण यही है कि सगीत की उत्पत्ति के सदृश्य ही राग की उत्पत्ति भी शंकर के मुख से मान ली गई है।

भारतीय धारणा के अनुसार राग का सृजन शंकर जी ने किया। संगीतदर्पणकार का कथन है कि 'शिव तथा शक्ति इन दोनों के योग से राग उत्पन्न हुए। पंचानन महादेव जी के पाँच मुखों से पाँच राग उत्पन्न हुए और छठा राग पार्वती जी के मुख से निकला। महादेव जी ने जब नाट्य (नाच) शुरू किया तब उनके 'सद्योवक्त्र' नामक मुख से 'श्रीराग', वामदेव मुख से 'वसंत', अघोर मुख से 'भैरव', तत्पुरुष मुख से 'पंचम' और ईशान मुख से 'मेघराग' तथा नृत्य के प्रसंग मे पार्वती जी के मुख से 'नट्टनारायण' राग उत्पन्न हुए।'[1]

राधाकृष्ण ने भी अपने ग्रंथ में इसी मत की पुष्टि करते हुए कहा है –

---

१. शिवशक्तिसमायोगाद्रागाणां सम्भवो भवेत्।
पञ्चास्यात् पञ्च रागा. स्युः षष्ठस्तु गिरिजामुखात्॥ ९॥
सद्योवक्त्रात्तु श्री रागो वामदेवाद्वसन्तक.।
अघोराद् भैरवोऽभूत्तत्पुरुषात् पञ्चमोऽभवत्॥ १०॥
ईशानाख्यान्मेघरागो नाट्यारम्भे शिवादभूत्।
गिरिजायाः मुखाल्लास्ये नट्टनारायणोऽभवत्॥ ११॥

संगीत-दर्पण, दामोदर पंडित, पृ० ७३

सिव गिरजा संजोग तैं उपज्या है सब राग ।
जिन्है सुनै आनंदमन बहुरि बढ़ै अनुराग ।।
पंचवदन परगट कियै पांच राग सुष रूप ।
श्री गिरिका मुष तै भयो छठहौं राग अनूप ।।

भारतीय वाङ्मय के इतिहास में अनवरत रूप से हम देखते है कि विशेष कर समस्त ललित-कलाओं और उपयोगी शास्त्रों का उद्गम् शिव की वाणी, उनके डमरू के शब्द अथवा शिव और शक्ति के संयुक्त प्रसाद रूप में ही माना गया है। इस परम्परा को देखकर आधुनिक विचारक प्रायः इसे शिवभक्तों का धार्मिक पक्षपात अथवा अन्धविश्वास ही मान कर छोड़ देते है। संभव है प्रचलित लोकाचार के क्षेत्र में ऐसी मान्यता कुछ अंशों तक सार्थक हो किन्तु यदि गंभीरता से विचार किया जाय तो शृंखलाबद्ध यह परम्परा निश्चय ही किन्ही मूल सिद्धातों एवं भारतीय जीवन-दर्शन की सिद्ध मान्यताओं की ओर सकेत करती देख पड़ेगी। यद्यपि यहाँ शिव और शिवत्व की विस्तृत व्याख्या अपेक्षित नही तथापि यह तो सर्वस्वीकृत है कि शिव और शिवत्व विश्वव्यापी कल्याण का प्रतीक है और शक्ति कार्यशीलता की केवल प्रेरणा ही नही वरन् सृष्टि कार्यणीय परा शक्ति की प्रतीक है। समस्त कलाओ और शास्त्रों के मूल में शिव और शक्ति की सस्थापना का मूल प्रयोजन यह था कि इनकी सृष्टि विश्व-कल्याण के निमित्त ही मानी गयी थी क्योंकि जिस परा शक्ति के द्वारा इनकी उत्पत्ति है वह स्वभाव से ही अपने धर्म में रचनाशीला है। रचनात्मिका प्रवृत्ति के कारण ही वह समस्त कलाओं और शास्त्रो की जन्मदात्री है, अतः उद्भव, स्थिति और निमित्त मे ललित कलाओं और उपयोगी शास्त्रों को विश्व-कल्याणकारी होना ही चाहिये।

भारतीय सगीत के इतिहास पर एक विहग-दृष्टि डालने से ज्ञात होता हैं कि राग की उत्पत्ति कोई थोड़े समय की देन नही है। जिस प्रकार धीरे-धीरे भाषाओं का विकास हुआ और कालांतर मे एक-एक शब्द के सम्मिश्रण से भाषा विकसित होती रही उसी प्रकार राग का भी विकास हुआ। प्रारंभ में राग शब्द का प्रचलन नही था। प्राचीन सगीत जनरुचि के परिवर्तन के अनुकूल बदलता गया और धीरे-धीरे राग गाने का प्रचार हुआ। शताब्दियाँ व्यतीत होती गई और उसी के साथ राग-परिवार में भी वृद्धि हुई।

हमारा भारतीय सगीत उतना ही प्राचीन है जितना कि सकल विद्याओ का आदि-करण वैदिक साहित्य। भारतीय संगीत का स्रोत वेदो से माना गया है। सामवेद की ऋचायें गाई जाती थी। सामदेव मे उदात्त, अनुदात्त तथा स्वरित् आदि शब्दों का प्रयोग मिलता है किन्तु इसमे राग संबंधी कोई विवरण नही मिलता।

भारतीय संगीत का सर्वप्रथम उपलब्ध प्रामाणिक ग्रंथ भरत का नाट्यशास्त्र है। इस ग्रंथ में प्राचीन भारतीय नाटयशास्त्र के विस्तृत विवेचन के साथ ही आनुसंगिक रूप में संगीत का उल्लेख हुआ है। भरत ने अपने नाट्यशास्त्र में श्रुति, षड्जग्राम, मध्यमग्राम तथा अठारह

जातियो का वर्णन तो किया है किन्तु उसमें राग-रागिनियो का कोई उल्लेख नही मिलता। इससे ज्ञात होता है कि भरत के युग तक भारत मे जाति-गायन प्रचलित था परन्तु राग-गायन गायन का प्रचार नही हुआ था। जाति-गायन के ही अनेक नियमो को आगे चल कर राग के साथ जोड़ दिया गया।

'राग' शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग कालिदास के शकुन्तला नाटक मे मिलता है। पंचतत्र में भी राग शब्द आया है। किंतु संभवत राग शब्द का प्रयोग उस समय आज से विभिन्न अर्थ मे किया जाता था। मतंग मुनि के ग्रथ वृहद्देशी मे सात जातियो का उल्लेख किया गया है। इसमे से एक का नाम राग जाति है। मतंग मुनि ने जिस 'राग जाति' का उल्लेख किया है उसका विकास आगे चल कर दिखाई देता है। सोमेश्वरकृत 'अभिलाषार्थ-चिन्तामणि' मे राग का संबध सामवेद से माना गया है और जाति से राग, राग से भाषा, तत्पश्चात् विभाषा और अन्तरभाषिका की उत्पत्ति मानी गई है।[1]

सगीत-मकरन्द मे सर्वप्रथम रस के आधार पर रागों का पुल्लिग राग, स्त्रीराग तथा नपुसक राग के अन्तर्गत विभाजन किया गया है जो राग तथा रागिनी का अन्तर प्रकट करता है। नारद ने २० पुल्लिग रागों, २४ स्त्रीराग तथा १३ नपुसक रागो का वर्णन किया है किन्तु सगीत-मकरन्द में रागिनी शब्द का उल्लेख नही है।

नाट्य-लोचन में ८ शुद्ध राग, १६ सालक तथा २२ संधिरागों के अन्तर्गत ४४ रागो का वर्णन किया गया है। नाट्य-लोचन मे रागो का पुरुष तथा स्त्री राग के रूप में कोई विभाजन नही किया गया है।

१३ वी शताब्दी के उत्तरार्द्ध में लिखित उपलब्ध सागीतिक प्रमाणों मे श्रेष्ठतम ग्रंथ पं० शार्ङ्गदेव कृत 'संगीत-रत्नाकर' में गायन तथा नृत्य का विस्तृत विवेचन किया गया है। यह ग्रंथ हमारे संगीत की ऐतिहासिक शृंखला मे एक महत्वपूर्ण कडी है। संगीत-रत्नाकर को उत्तरी अथवा दक्षिणी किस संगीत-प्रणाली के प्रामाणिक ग्रथो के अन्तर्गत माना जाय, यह प्रश्न एक विवाद का विषय बना हुआ है। उत्तर तथा दक्षिण दोनो स्थानो के पंडित ग्रंथकारों ने संगीत-रत्नाकर को अपने यहाँ प्रचलित संगीत-प्रणाली से संबंधित करने का

---

१. **सामवेदात् स्वर जातः स्वरभेयो ग्रामो संभवः**
ग्राम्येभ्यो जातयो जात ज्ातिभ्यो राग निर्णयः ।। १ ।।
रागेभ्यश्च तथाभास विभासश्च अपि संजातस्यैव अंतर भासिका ।। २ ।।
अभिलाषार्थ चिन्तामणि (भंडारकर रिसर्च इंस्टीट्यूट पूना की हस्तलिखित प्रति) ;
Ragas and Raginis, O. C. Gangoly, Page 20

प्रयत्न किया है। रचयिता ने रागो को पूर्वप्रसिद्ध तथा अधुनाप्रसिद्ध खंडो मे भी विभाजित किया है। रत्नाकर से ज्ञात होता है कि उस समय रागो का विशेष प्रचार था।

शार्ङ्गदेव के समसामयिक अथवा कुछ काल उपरान्त होने वाले पार्श्वदेव ने 'संगीत-समय-सार' मे १०१ रागो का उल्लेख किया है। जिसमे से ४३ राग उस समय प्रचार मे रह गये थे।

शुभकर लिखित 'सगान सागर' मे ३८ रागो का वर्णन किया गया है।

१४ शताब्दी के प्रारम्भ से सबधित ज्योतरीश्वर रचित 'वर्ण-रत्नाकर' मे ४४ रागो के नाम दिए गये है। रचयिता ने यह भी कहा है कि इसके अतिरिक्त अन्य बहुत से राग भी गाये जाते है।

१४ वी शताब्दी प्रारम्भ होने के उपरान्त भारतीय सगीत मे महान क्राति हुई। भारत ने अपने दीर्घकालीन इतिहास के दौरान मे अनेक सस्कृतियो के समन्वयवाद की असाधारण शक्ति प्रदर्शित की है। जिस प्रकार प्रत्येक विजयी धारा भारत भूमि पर पहुँच कर स्थिर हो गई उसी प्रकार वाह्य देशो की जो सास्कृतिक परम्पराये और विचारधाराये भारतीय जीवन मे पहुँची वे क्रमश यहाँ के इतिहास का एक स्थायी तथ्य बन गई। आक्रमणो के पीछे सास्कृतिक सबध स्थापित हुए, किन्तु सास्कृतिक विनिमय की यह प्रक्रिया एकाकी न थी। जहाँ मुसलमानो ने हिन्दू धर्म की महान आध्यात्मिक निधि को अपने विचारो एव संस्कारों मे ग्रहण किया वहाँ भारतीय कला सबधी आन्दोलन भी मुस्लिम विचारो तथा परम्पराओ से अप्रभावित न रह सके। इस प्रकार सायोगिक रूप मे ही कला और साहित्य की प्रगति हुई। किन्तु इन दो संस्कृतियो का समन्वय तथा सश्लेषण कदाचित् गीत और राग के क्षेत्र मे ही सबसे अधिक स्पष्ट है। फारसी सगीत के प्रभाव से भारतीय सगीत में विशेष परिवर्तन हुआ।

यों तो हिन्दू सगीताचार्य ने प्रारम्भ से ही विदेशी राग-रागिनियो को अपनाया है। अनार्य राग शक तथा पुलिन्द प्रारम्भ मे ही ग्रहण कर लिये गये थे। तुरुष्क तोडी का आगमन तुर्किस्तान के सम्बन्ध से हुआ। किन्तु मुसलमानो के सम्पर्क से सगीत मे महान परिवर्तन हुआ। मध्यकालीन भारत के असाधारण प्रतिभाशाली सगीतज्ञ तथा कवि अमीर खुसरो ने अपने जीवन-काल मे भारतीयों को तत्कालीन भारत मे प्रचलित सगीत सम्बन्धी रीतियो से परिचित तथा अभ्यस्त कराने का महान प्रयास किया। फारसी प्रभाव के फलस्वरूप भारतीय सगीत मे उत्तरी तथा दक्षिणी दो पद्धतियों का पृथक-पृथक विकास हुआ।[१] दक्षिण-वासियो ने अपनी प्राचीन परम्परा को विदेशी प्रभाव से पूर्णतया बचा कर रखा। इसके विपरीत उत्तरी संगीत फारसी सगीत के विशेष सम्पर्क मे आया और कुछ ही समय मे उत्तरी संगीत प्रणाली दक्षिणी संगीत प्रणाली से कुछ भिन्न हो गई।

---

१. उत्तर भारतीय संगीत का संक्षिप्त इतिहास, भातखंडे, पृ० १३

फारसी तथा भारतीय रागो के अद्भुत सम्मिश्रण तथा समन्वय द्वारा अमीर खुसरो ने नवीन रागो का आविष्कार किया। बरारी, मालरी और हुसैनी को मिलाकर अमीर-खुसरो ने दिवाली नाम रखा है। टोडी में पंजगाह मईर को मिलाकर मोवर नाम रखा है। पूर्वी का नाम बदल कर गनम रख दिया है और फारसी के शहनाज को षटराग में मिलाकर जैल्फ नाम रख दिया है।···गौड और बिलावल, गौर और सारग को मिलाकर सरपर्दा नाम रखा है। ······कानडा मे चन्द गाने मिलाकर उसका नाम फरदोस्त रखा है और यमन में फारसी गाना नैरेज मिला कर उसका नाम ऐमनी रखा। पूर्वी, विभास, गौर और गुनकली को ईराक के स्वरो में गाकर साजागिरि नाम रखा। कल्याण मे नैरेज नाम का फारसी का नग्मा (गीत) मिलाकर शनम नाम रखा। यह बात छिपी न रहे कि साजागिरि, बाखर, उष्षाक मे ऊपर लिखे हुए राग मिलाये गये है। दूसरे रागो मे कही-कही परिवर्तन किया गया है और उसका नाम भी वही रक्खा है। उदाहरणार्थ अमीर खुसरो ने यमन और बसन्त को मिला दिया है और उसका नाम एमन-बसन्ती रखा है।"[1]

अभी तक के ग्रंथों में यद्यपि रागों को विभाजित करने तथा भेद मानने की प्रवृत्ति लक्षित होती है किन्तु नारदकृत 'पचम-सहिता' मे सर्व प्रथम रागिनी शब्द का प्रयोग मिलता है। 'पंचमसार-सहिता' में उन्हे रागों की भार्या (रागयोषित) के रूप मे स्वीकार किया गया है। १५ वी शताब्दी से उत्तरी भारत मे राग-रागिनी वर्गीकरण की प्रणाली सर्वमान्य हो जाती है और उसका स्पष्ट उल्लेख मिलने लगता है। समय की गति के साथ ही राग परिवार में भी वृद्धि होती है और प्रत्येक राग के साथ उनकी भार्याओं, पुत्रो तथा पुत्रवधुओ का भी उल्लेख होने लगता है। किन्तु राग-रागिनी पद्धति को मानने वाले संगीतचार्यो के मतों मे एकता नही दीख पड़ती। सगीताचार्यो के द्वारा मुख्य रागों, उनकी भार्याओ, उनसे उत्पन्न पुत्रों तथा पुत्रवधुओ की संख्या तथा नामो के विषय में मतभेद होता है जिसके फलस्वरूप राग-रागिनी वर्गीकरण के विभिन्न मत प्रचलित हो जाते है।

राग-रागिनी वर्गीकरण की यह पद्धति १७ वी शताब्दी के प्रारम्भ तक मान्य रही। किन्तु संगीत एक परिवर्तनशील कला है अतः कालचक्रानुसार कालांतर मे परिस्थितियों तथा जनरुचि के परिवर्तन के साथ इस पद्धति मे भी परिवर्तन होने लगा। सत्रहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध मे व्यंकटमखी पडित ने गणित द्वारा ७२ मेल सिद्ध करके रागो का वर्गीकरण नवीन ढंग से किया। आधुनिक युग में पं० विष्णु नारायण भातखंडे ने जन्य-जनक पद्धति अथवा ठाट-राग-पद्धति का प्रतिपादन उसी के आधार पर किया। आज के युग में प्राचीन राग-रागिनी पद्धति मान्य नही है।

वर्गीकरण सृष्टि का स्वाभाविक नियम है। वर्गीकरण के मूल में समानता तथा विभिन्नता निहित रहती है। संगीत के क्षेत्र मे भी समानता रखने वाले रागो को एक वर्ग में संकलित करने की परम्परा प्रचलित है। संगीताचार्यो ने राग वर्गीकरण के दो तत्व माने है। (१)

१. मानसिह और मानकुतूहल, हरिहरनिवास द्विवेदी, राग-दर्पण, फ़कीरउल्ला, पृ० ७५-७७

स्वर-साम्य अर्थात् स्वरों में समानता तथा (२) स्वरूप-साम्य अर्थात् रागों के स्वरूप-तथा चलन मे समानता। जनक-जन्य-पद्धति मे रागो का वर्गीकरण स्वर-साम्य की दृष्टि मे किया गया है। यह निश्चित रूप से कहना कठिन है कि प्राचीन राग-रागिनी वर्गीकरण स्वर-साम्य अथवा स्वरूप-साम्य पर अथवा दोनो पर आधारित है। किन्तु इसमे संदेह नही कि उस युग में राग-रागिनी पद्धति की यह व्यवस्था किसी न किसी उद्देश्य की पूर्ति अवश्य करती रही होगी। जिस प्रकार आज यह कहने से कि जोगिया भैरव ठाट से उत्पन्न होता है तत्काल इस बात का ज्ञान हो जाता है कि जोगिया मे ऋषभ तथा धैवत स्वरो का प्रयोग होता है, उसी प्रकार संभव है कि उस युग मे विशिष्ट रागो की भार्या आदि का उल्लेख करने से उनकी एक जातीयता, समप्रकृति अथवा स्वर-साम्य का बोध होता होगा। सभव है शृंगार, करुण, शांत आदि रसो के दृष्टिकोण से यह वर्गीकरण किया गया हो।

प्रत्येक युग मे संगीत शास्त्र तथा क्रियात्मक संगीत में एक-रूपता रहती है अर्थात् युग विशेष मे विभिन्न राग संगीतज्ञो द्वारा जिस भाव से गाये बजाये जाते थे उसी के आधार पर उस युग के सगीत-शास्त्र का निर्माण होता है। अस्तु प्रत्येक सगीत-ग्रथ मे अपने समय में प्रचलित संगीत-प्रणालियों का उल्लेख होता है। जनरुचि तथा परिस्थितियो के अनुसार क्रियात्मक सगीत मे भी परिवर्तन होता रहता है। संगीत के परिवर्तित स्वरूप के चित्रण हेतु नवीन शास्त्र का सृजन होता है और इसीलिए रागो के परिवर्तित स्वरूप पर पुराना शास्त्र तथा पूर्व प्रचलित रागो पर नवीन शास्त्र लागू नही हो पाता। अस्तु किसी युगविशेष के कवि-संगीतज्ञो के संगीत-ज्ञान के परखने की कसौटी उसी युग तथा समय की प्रचलित संगीत-पद्धतियाँ तथा उस युग के प्राप्त ग्रंथ ही होने चाहिए तभी उनके साथ न्याय होगा।

यद्यपि आज के वैज्ञानिक युग मे रागो के वर्गीकरण की प्राचीन राग-रागिनी-पद्धति अशुद्ध, अवैज्ञानिक तथा कपोल-कल्पना मात्र मान ली गई है किन्तु जैसा कि पूर्व बतलाया जा चुका है हमारे कृष्णभक्तिकालीन कवियों के द्वारा तथा उस समय मे उत्तरी भारत में यही पद्धति सर्वमान्य थी अत. राग-रागिनी पद्धति के अनुसार उस युग में प्रचलित राग-रागिनियों को दृष्टिकोण मे रख कर ही इन कवियो के काव्य में प्रयुक्त राग-रागिनियो की समीक्षा की जायेगी।

कृष्णभक्तिकालीन कवियों के समय में प्रचलित राग–रागिनियाँ

कृष्णभक्तिकालीन कवियों के समय मे कौन-कौन सी राग-रागिनियाँ प्रचलित थी यह जानने के लिए उस युग मे प्रचलित विभन्न मतो पर एक दृष्टि डालनी होगी।

जैसा कि पूर्व भी कहा जा चुका है राग-रागिनी सबंधी विभिन्न मतों मे पर्याप्त मतभेद है। 'चत्वारिंशच्छतरागनिरूपणम्' मे १० प्रमुख राग माने गये है किन्तु अन्य मतो मे ६ प्रमुख राग मिलते हैं। हनुमन्मत मे बगाली को भैरव की रागिनी माना गया है किन्तु अन्य मतो मे बंगाली नटनारायण की भार्या है। शिवमत मे तोडी वसन्त की रागिनी मानी गई

है परन्तु हनुमन्मत मे तोडी कौशिक की भार्या है। शिवमत में रागिनी ३६ हैं और हनुमन्मत में ३०। हनुमन्मत में वराटी मेघयोषिता है परन्तु चत्वारिंशच्छतरागनिरूपण मे वह वसंत-स्नुषा है। चत्वारिंशच्छतरागनिरूपण में भूपाली वसन्त-स्नुषा है किन्तु हनुमन्मत मे भूपाली मेघयोषिता है। अस्तु किस मत को प्रामाणिक माना जाये यह खोज का एक स्वतंत्र विषय है। वर्गीकरण के इस विवाद में न पड़कर आगे के पृष्ठो में विभिन्न मतों का उल्लेख किया जाएगा जिससे यह स्पष्ट प्रकट हो जाएगा कि उस युग मे कौन-कौन सी राग-रागिनियाँ प्रचलित थी। इन्ही के आधार पर आगे सिद्ध किया जायगा कि कृष्णभक्तिकालीन कवियों ने अपने काव्य मे किन प्रचलित, पूर्व प्रसिद्ध तथा नवीन राग-रागिनियो का प्रयोग किया है।

नारद मतानुसार रागों का वर्गीकरण[1]

राग	रागयोषित		
(१) मालव	(१) धनाश्री	(२) मालश्री	(३) रामकिरी
	(४) सिन्दूरा	(५) आसावरी	(६) भैरवी
(२) मल्लार	(१) वेलावली	(२) पूर्वी	(३) कानड़ा
	(४) मायुरी	(५) कोड़ा	(६) केदारिका
(३) श्रीराग	(१) गान्धारी	(२) गौरी	(३) सुभगा
	(४) कुमारिका	(५) बेलावारी	(६) वैरागी
(४) वसंत	(१) तोड़ी	(२) पंचमी	(३) ललिता
	(४) पटमंजरी	(५) गुज्जरी	(६) विभास
(५) हिंडोला	(१) माधवी	(२) दीपिका	(३) देशकारी
	(४) पाहिड़ा	(५) वराडी	(६) मारहाटी
(६) कर्नाट	(१) नाटिका	(२) भूपाली	(३) गयड़ा
	(४) रामकली	(५) कामोदी	(६) कल्यानी

मेषकर्ण की रागमाला के अनुसार रागों का वर्गीकरण[2]

राग	भार्या	पुत्र
(१) भैरव	(१) बंगाली,	(१) बंगाल, (२) पंचम, (३) मधु,
	(२) भैरवी,	(४) हर्ष, (५) देशाख, (६) ललित,
	(३) बेलावली,	(७) बिलावल, (८) माधव
	(४) पुन्यकी,	
	(५) सनेहकी,	

1. Pancham Sanhita Narad.
A MS. no. 5040 with colophon dated 1362 Saka,
(Asiatic Society of Bengal)
2. According to Ragamala by Mesakarna.
According to the colophon of a Ms. in the collection of the Asiatic Society of Bengal.

राग	रागिनियाँ	पुत्र
(२) मालकौशिक	(१) गुडक्री, (२) गाधारी, (३) मालश्री, (४) श्रीहठी, (५) धनाश्री,	(१) मारू, (२) मेवाड़, (३) बखली, (४) मिष्टांग, (५) चद्रकाय, (६) भ्रमर, (७) नदन, (८) कोक्कर
(३) हिंडोल	(१) तिलंगी, (२) देवगिरी, (३) बासंती, (४) सिन्धूरी, (५) आभीरी	(१) मगल, (२) चंद्रवीन, (३) शुभराग, (४) आनंद, (५) विभास, (६) वर्धन, (७) विनोद, (८) वसंत
(४) दीपक	(१) कामोदिनी, (२) पटमंजरी, (३) तोड़ी, (४) गुज्जरी, (५) काहेली या सारगी	(१) कमल, (२) कुसुम, (३) राम (४) कुंतल, (५) कलिग, (६) बहुल, (७) चम्पक, (८) हेमल
(५) श्रीराग	(१) वैराटी, (२) कर्नाटिका, (३) सावेरी, (४) गौड़ी, (५) रामगिरी	(१) सिन्धवा, (२) मालव, (३) गौड़, (४) गंभीर, (५) गुनसागर, (६) विगड़, (७) कल्याण, (८) कुरभ
(६) मेघराग	(१) मल्लारी, (२) सोरठी, (३) सुहावी, (४) आसावरी, (५) कोकनी	(१) नट, (२) कनार, (३) सारंग, (४) केदार, (५) गुडमल्लार, (६) गुड, (७) जलधर, (८) शकरा

सोमेश्वर-मतानुसार रागों का वर्गीकरण[1]

१. राग-दर्पण, एस० एम० टैगोर, पृ० ७२

भरत-मतानुसार रागों का वर्गीकरण[1]

(१) रागभैरव

रागभार्याः (१) मधुमाधवी, (२) भैरवी, (३) बंगाली, (४) वराटी, (५) सैंधवी
पुत्रा. (१) वेलावल, (२) पचम, (३) देशाख, (४) देवगाधार (५) विभास
पुत्रभार्या (१) रामकली, (२) सूहो, (३) सुघरई (४) पटमंजरी, (५) टोड़ी

(२) राग मालकोस

रागभार्याः (१) गुनकली, (२) खवावती, (३) गुज्जरी, (४) भूपाली, (५) गौरी
पुत्रा. (१) सोम, (२) परसन, (३) बडहंस, (४) कुकुभ, (५) बंगाल
पुत्रभार्या (१) सोरठी, (२) त्रिवणी, (३) कर्नाटी, (४) आसावरी, (५) गोड़गिरी

(३) राग हिंडोल

रागभार्या (१) वेलावली, (२) देशाखी (३) ललिता, (४) भीमपलासी, (५) मालवी
पुत्राः (१) रिखवहम, (२) वसत, (३) लोकहास, (४) गन्धर्व, (५) ललित,
पुत्रभार्याः (१) केदार (२) कामोदी, (३) विहागड़ा, (४) काफी, (५) परज

---
१ संगीत, राधामोहन सेन, पृ० १२३–२५

(४) रागदीपक

रागभार्या.	(१) नट,	(२) मल्लारी,	(३) केदारी,	(४) कानरा,	(५) भारिका
पुत्रा	(१) शुद्धकल्याण,	(२) सोरठ,	(३) देशकार,	(४) हमीर,	(६) मारू
पुत्रभार्या.	(१) बड़हंस,	(२) देशवराटी,	(३) वैराटी,	(४) देवगिरि,	(५) सिंधवी

(५) राग श्रीराग

रागभार्या	(१) वसंती,	(२) मालवी,	(३) मालश्री,	(४) साहाना,	(५) धानश्री
पुत्राः	(१) नट,	(२) छायानट,	(३) कानडा,	(४) इमन,	(५) शंकराभरण
पुत्रभार्या	(१) श्याम,	(२) पूरिया,	(३) गुर्जरी,	(४) हमीरी,	(५) अड़ाना

(६) राग मेघराग

रागभार्या	(१) सारंग,	(२) वंका,	(३) गन्धर्वी,	(४) मल्लारी,	(५) मुल्तानी
पुत्राः	(१) बहादुरी,	(२) नटनारायण,	(३) मलवा,	(४) जयती,	(५) कामोद
पुत्रभार्याः	(१) पहाड़ी,	(२) जयती,	(३) गाधारी,	(४) पूर्वी,	(५) जयजयवंती

रागार्णव-मतानुसार रागों का वर्गीकरण[1]

राग –	संश्रयाः –		
(१) भैरव	(१) बंगाली	(२) गुणगिरी	(३) मध्यमादि
	(४) बसंत	(५) धनाश्री	
(२) पंचम	(१) ललिता	(२) गुर्जरी	(३) देशी
	(४) बराड़ी	(५) रामकृत	
(३) नाट	(१) नट्टनारायण	(२) गाधार	(३) सालग
	(४) केदार	(५) कर्णाट	
(म) मल्लार	(१) मेघ	(२) मल्लारी	(३) मालकौशिक
	(४) पटमंजरी	(५) आसावरी	
(५) गौड़मालव	(१) हिंडोल	(२) त्रिवण	(३) आभ्धारी
	(४) गौरी	(५) पठहंसिका	
(६) देशाख्य	(१) भूपाली	(२) कुडायी	(३) कामोदी
	(४) नाटिका	(५) बेलावली	

हनुमन्मतानुसार रागों का वर्गीकरण[2]

पुरुष राग –	वरांगनाः–		
(१) भैरव	(१) मध्यमादि	(२) भैरवी,	(३) बंगाली

१. संगीत-दर्पण, दामोदर पंडित, पृ० ७९

२. वही, पृ० ७८

	(४) वराटी	(६) सैन्धवी	
(२) कौशिक	(१) टोड़ी	(२) खंबावती	(३) गौरी
	(४) गुणक्री	(५) ककुभा	
(३) हिंदोल	(१) बेलावली	(२) रामकिरी	(३) देशाख्य
	(४) पटमंजरी	(५) ललिता	
(४) दीपक	(१) केदारी	(२) कानड़ा	(३) देशी
	(४) कामोदी	(५) नाटिका	
(५) श्रीराग	(१) वासंती	(२) मालवी	(३) मालश्री
	(४) धनासिका	(५) आसावरी	
(६) मेघराज	(१) मल्लारी	(२) देशकारी	(३) भूपाली
	(४) गुर्जरी	(५) टंकी	

शिवमतानुसार रागों का वर्गीकरण[1]

पुरुष राग –	वरांगना:–		
(१) श्रीराग	(२) मालश्री	(३) त्रिवणी	(३) गौरी
	(४) केदारी	(५) मधुमाधवी	(६) पहाड़ी
(२) वसंत	(१) देशी	(२) देवगिरि	(३) वराटी
	(४) तोडी	(५) ललिता	(६) हिन्दोली
(३) भैरव	(१) भैरवी	(२) गुर्ज्जरी	(३) रामकिरी
	(४) गुणकिरी	(५) बंगाली	(६) सैन्धवी
(४) पंचम	(१) विभाषा	(२) भूपाली	(३) कर्णाटी
	(३) बड़हंसिका	(५) मालवी	(६) पटमंजरी
(५) मेघ	(१) मल्लारी	(२) सोरटी	(३) सावेरी
	(४) कौशिकी	(५) गान्धारी	(६) हरशृंगार
(६) वृहन्नाट	(१) कामोदी	(२) कल्याणी	(३) आभीरी
	(४) नाटिका	(५) सारंगी	(६) नट्टहम्बीर

कल्लिनाथ के मतानुसार रागों का वर्गीकरण[2]
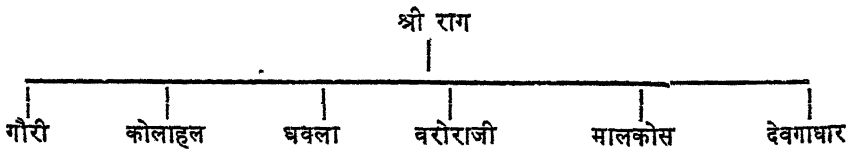
१. संगीत-दर्पण, दामोदर पण्डित, पृ० ७४–७५
२. राग और रागिनी, ओ० सी० गांगुली, पृ० १६२
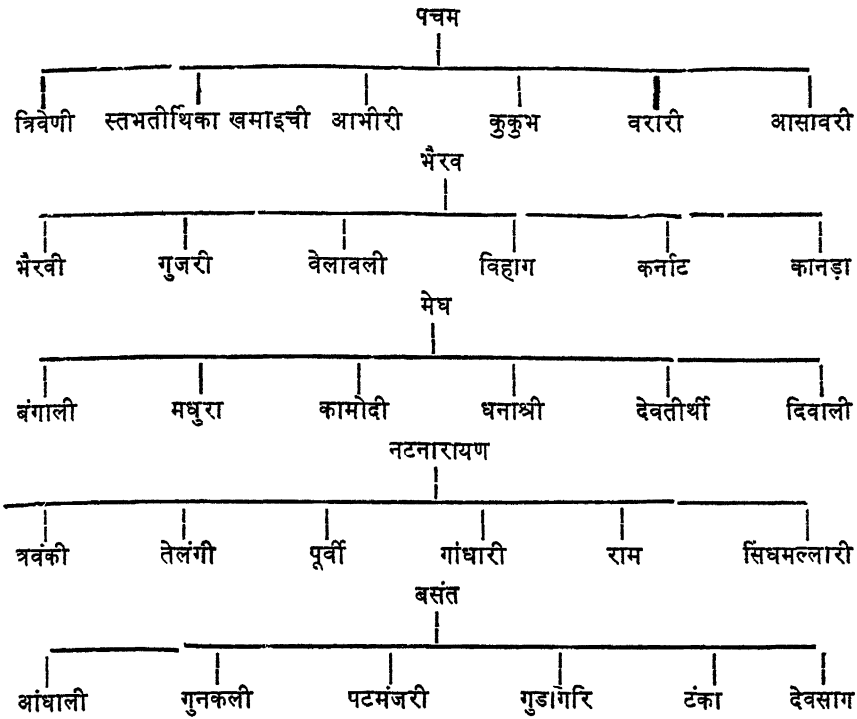
पुंडरीक विट्टठल कृत रागमाला के अनुसार रागों का वर्गीकरण[1]

राग नाम –	रागभार्या :–	पुत्रा :–
(१) शुद्ध भैरव	(१) धन्नासी (२) भैरवी	(१) भैरव (२) शुद्धललित
	(३) सैंधवी (४) मारवी	(३) पंचम (४) परज
	(५) आसावरी	(५) बंगाल
(२) हिंडोल	(१) भूपाली (२) वसंती	(१) वसंत (२) शुद्धबंगाल
	(३) तोड़ी (४) प्रथममंजरी	(३) श्याम (४) सामंत
	(५) तुरुष्कतोड़ी	(५) कामोद
(३) देशकार	(१) रामक्री (२) बहुली	(१) ललित (२) विभास
	(३) देशी (४) जेतश्री	(३) सारंग (४) त्रिवण
	(५) गुर्जरी	(५) कल्याण
(४) श्री राग ---	(१) गौडी (२) पाडी	(१) टक्क (२) देवगंधार
	(३) गुणकरी (४) शुद्धरामक्री	(३) मालव (४) शुद्धगौड
	(५) गुडक्री	(५) कर्णाट बंगाल

1. A comparative system of some of the leading music systems of the 15th, 16th, 17th and the 18th centuries ; V. N. Bhatkhande, Page 54

(५) शुद्ध नाट	(१) मालवश्री (२) देशाक्षी (३) देवक्री (४) मधुमाधवी (५) अहीरी	(१) जिजावती (२) सालगनाट (३) कर्नाट (४) छायानट (५) हमीरनाट
(६) नटनारायण	(१) वेलावली (२) कांबोजी (३) सावेरी (४) सुहवी (५) सौराष्ट्री	(१) मल्हार (२) गौड (३) केदार (४) शंकराभरण (५) बिहागडा

अबुलफ़ज़ल कृत आइनेअकबरी के अनुसार रागों का वर्गीकरण[1]
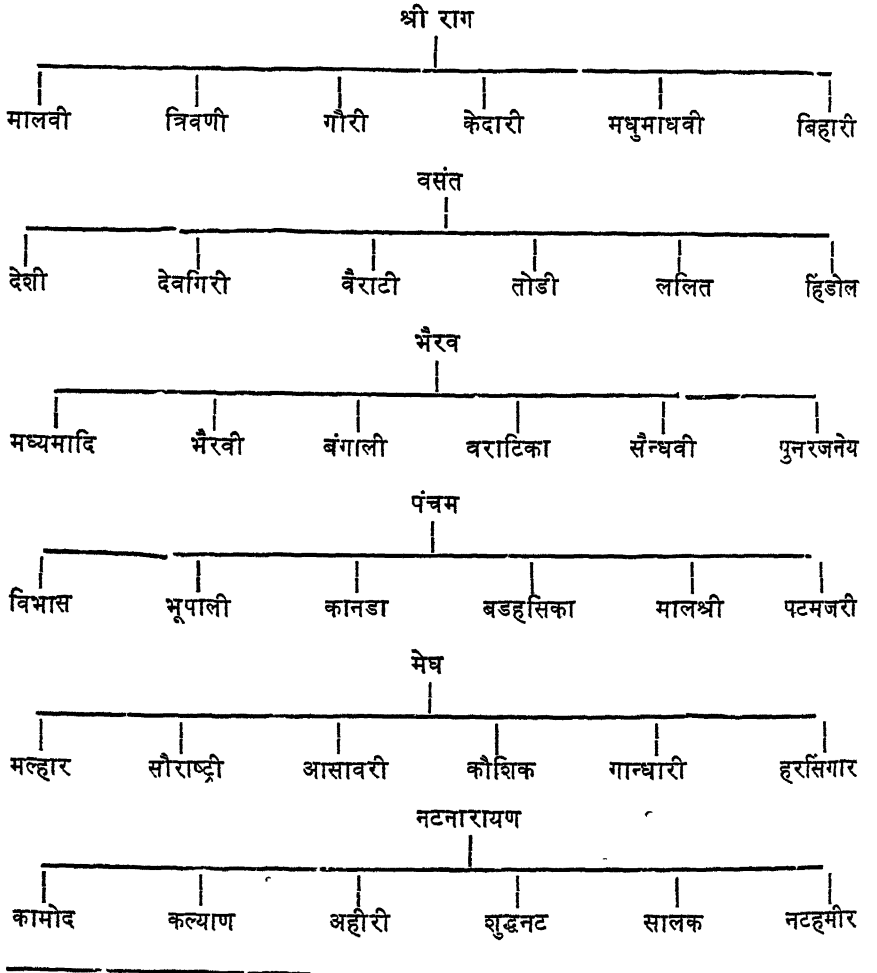
1. Ain-I-Akbari, Abul Fazl Allami, Translated by H. S. Jarrett.

राजा कुंभकर्ण (मेवाड़) रचित 'संगीत-राज' के अनुसार रागों का वर्गीकरण[1]

'संगीत-राज' में दो मतों के अनुसार निम्नलिखित रागों का उल्लेख मिलता है –

प्रथम मत – (१) मध्यमादि (२) ललित (३) वसंत
(४) गुर्जरी (५) धनासी (६) भैरव
(७) गुडक्रिति (८) मालवश्री (९) केदार
(१०) मालवी (११) आदिगौड (१२) स्थानगौड
(१३) श्री राग (१४) मल्हार (१५) वराटिका
(१६) देशाक्षिका (१६) मेघराग (१८) धोरण

द्वितीय मत– (१) नट्ट (२) केदार (३) श्री राग
(४) स्थानगौड (५) धोरणि (६) मालवी
(७) वराटी (८) मेघराग (९) मालवश्री
(१०) देवसाख (११) गौडकृत (१२) भैरवी
(१३) धनासिका (१४) मल्हार (१५) ललित
(१६) गुर्जरी (१७) ललित

नारदकृत चत्वारिंशच्छतरागनिरूपणम् मतानुसार रागों का वर्गीकरण[2]

पुरुष राग

(१) श्री राग

भार्या (१) गौरी (२) कोलाहली (३) आधाली (४) द्राविड़ी (५) मालवकौशिकी
पुत्र (१) शुद्धगौड (२) कर्नाट (३) मालव (४) पूर्विका
पुत्रभार्या (१) वराटी (२) बौली (३) मध्यमादि (४) आरभी

(२) वसत राग

भार्या (१) नीलाम्बरी (२) धनाश्री (३) रामक्री (४) पटमंजरी (५) गौडक्री
पुत्र (१) साम (२) सोम (३) मालव (४) पूर्विका
पुत्रभार्या (१) कल्याणी (२) दुखवराटी (३) सावेरी (४) तरगिणी

(३) पंचम राग

भार्या (१) त्रिवली (२) बल्लकी (३) खंबावती (४) ककुभा (५) आहरी
पुत्र (१) बलहंस (२) गान्धार (३) देवहिंदोल (४) पावक
पुत्रभार्या (१) नारायणी (२) भूपाली (३) मारू (४) नवरोचिका

(४) भैरव राग

भार्या (१) बेलावली (२) भैरवी (३) गुर्जरी (४) ललिता (५) कर्णाटी

1. Ragas and Raginis, O. C. Gangoli, Page 47
२. संगीत, जनवरी १९५०, पृ० ६४–६५

पुत्र (१) पंचवक्र (२) कलहार (३) ललित (४) चद्रशेखर
पुत्रभार्या (१) कुरंगमाली (२) वीचिका (३) माहुली (४) मंगलकौशिकी

(५) कौशिक

भार्या (१) तोडी (२) देवगांधारी (३) देशाख्या (४) गुनक्रिय (५) शुद्धसावेरी
पुत्र (१) सारंग (२) कामोद (३) विद्युन्माल (४) मोदक
पुत्रभार्या (१) नट्टा (२) पालिका (३) पूर्णचंद्रिका (४) तरगिणी

(६) मेघ राग

भार्या (१) त्रोटकी (२) मोटकी (३) अपरा (४) वृहन्नटा (५) अहन्नटा
पुत्र (१) घटारव (२) रोहक (३) घटकंठ (४) कमल
पुत्रभार्या (१) सुधामयी (२) डोम्बक्री (३) मृतसजीवनी (४) मेघरंजी

(७) नटनारायण राग

भार्या (१) बंगाली (२) शुद्धसालक (३) देवक्री (४) काम्भोजी (५) मधुमाधवी
पुत्र (१) मोहन (२) नाट (३) गारुण (४) शुद्धबगाल
पुत्रभार्या (१) त्रैलगी (२) लांगली (३) सोरटी (४) हबीरी

(८) हिंडोल राग

भार्या (१) देशी (२) शिवक्री (३) ललिता (४) मल्लारी (५) सुहन्सिका
पुत्र (१) रमणीय (२) मुखारि (२) उदयपंचम (४) शुद्धवसत
पुत्रभार्या (१) सिधुरामक्रिया (२) वेगवाहिनी (२) धरा (४) छायातरगिणी

(९) दीपक राग

भार्या (१) आसावरी (२) नाटिका (२) देहली (४) कानड़ा (५) केदारी
पुत्र (१) केदारगौल (२) वैरन्जी (२) होलि (४) सौराष्ट्र
पुत्रभार्या (१) कुरंजमंजरी (२) नागवराली (२) देवरंजनी (४) सूरसिधु

(१०) हंसक राग

भार्या (१) श्री रंजनी (२) मालश्री (२) सरस्वती मनोहरी (४) गौरी ५) ईशमनोहारी
पुत्र (१) नागध्वनि (२) सामत (२) भिन्नपंचम (४) टक्क
पुत्रभार्या (१) मालवी (२) श्यामकल्याणी (३) देशाक्षी (४) विलहरी

कृष्णभक्तिकालीन साहित्य में प्रयुक्त राग-रागिनियाँ

कृष्णभक्तिकालीन कवियों ने अपने पदो में कौन-कौन सी राग-रागिनियों तथा कितनी संख्या मे किन-किन राग-रागिनियो का प्रयोग किया है इस पर आज तक हिन्दी के किसी भी लेखक, इतिहासकार तथा आलोचक ने प्रकाश नही डाला । प्राय विद्वानो ने कुछ रागों के नाम गिना कर तथा उसके साथ यह कह कर कि इसके अतिरिक्त अन्य भी बहुत से राग गाये है सन्तोष कर लिया है । इन कवियो ने कुछ विशेष रागो का अधिक प्रयोग

किया है, इस ओर संकेत करते हुए भी उसे सिद्ध करने की चेष्टा नही की गई । आगे के पृष्ठों मे यह दिखाया जायगा कि प्रत्येक कवि ने किन राग-रागिनियो का तथा उनमे सख्या-नुसार कितने पदो का प्रयोग किया है ।

इस विषय को अंकित करने में प्रमुख रूप से दो कठिनाइयाँ उपस्थित होती हैं

(१) सभी कवियो के समस्त काव्य-ग्रथ उपलब्ध नही होते । जो काव्य-ग्रंथ उपलब्ध होते हैं उनमे प्रायः पदो की समानता नही है । विभिन्न पद-सग्रहो मे प्रत्येक कवि के पद विभिन्न संख्या मे दिए हुए है ।

(२) प्राप्त पद-सग्रहों मे अधिकाश पदों के ऊपर किसी राग अथवा रागिनी का नाम दिया हुआ है । प्रायः प्रत्येक पद का नामकरण कर दिया गया है । किन्तु यह उल्लेखनीय है कि विविध पदावलियों के प्राप्त सग्रहों मे नामकरण भी एक-से नही है वरन् उनमे विषमता है । ऐसी परिस्थिति में प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि इस प्रकार के नामकरण मूलगायक के द्वारा किये गये थे अथवा उनकी पदावलियो के संग्रहकर्त्ताओ के द्वारा । आलोचना जगत मे साधारण मान्यता तो यही है कि उपर्युक्त प्रकार के नामकरण संभवतः मूल गायकों के द्वारा ही किए गए थे । किन्तु इसे स्वीकार करने मे कुछ कठिनाइयाँ उपस्थित होती हैं –

(अ) जैसा ऊपर उल्लेख किया गया है कि नामकरण मे विभेद है यदि मूल लेखक के द्वारा पदों में निहित राग-रागिनियो का नामकरण किया जाता तो इस प्रकार का भेद उपस्थित नही हो सकता था ।

(ब) पदावली-संग्रहों मे हम यह भी देखते है कि सर्वत्र ही राग-रागिनियों के नामों का उल्लेख नही भी किया गया है । अनेक स्थलों पर अनामक पद भी प्राप्त होते है । यदि भक्त गायक के द्वारा नामकरण कर देने की परंपरा नियमित और स्वीकृत होती तो निश्चय ही प्रत्येक पद राग अथवा रागिनी के नाम से युक्त होता और नामकरण मे वैषम्य न होता ।

(स) इस सन्दर्भ में यह भी स्मरणीय है कि जिन पदावलियो की समीक्षा इस प्रबंध में अभीष्ट है उनके मूल गायक सगीत-साधना के लिये नही वरन् अपनी भक्ति-साधना के लिए संगीत को माध्यम बना कर पदावलियों की रचना कर गये है । इस पृष्ठभूमि पर जब इन पदावलियो की रचनाविधि का हम अध्ययन करेंगे तो समझने मे कठिनाई नही होनी चाहिये कि भक्त अपनी नैसर्गिक भक्ति की प्रेरणा और उमंग मे जब इष्ट का गुणगान अपनी स्वर-लहरी में प्रवाहित करता है उस समय संगीत विषयक स्वीकृत विधान उसकी दृष्टि मे गौण रहता है, इष्ट का कीर्तन ही प्रधान रहता है । स्वर-लहरी अपने आप संगीतबद्ध हो उठती है, उसके लिए भक्त-गायक को प्रयास नही करना पड़ता । इस रूप और प्रकार से उद्भूत होने वाले वैष्णव भक्तों के पद पहले स्वीकृत संगीत के किसी ढाँचे

मे बँधे होगे और भक्त-गायक के द्वारा उनका नामकरण किया गया होगा इसकी संभावना बहुत कम जान पड़ती है।

तथापि प्राप्त पदावलियों मे साधारणत. संगीत-शास्त्र स्वीकृत राग-रागिनियों के जो नाम हमे प्राप्त होते हैं उनकी समीक्षा करने के उपरान्त बहुत अंशों में देखते है कि उनके नामकरण लक्षण सम्मत है। जैसा ऊपर उल्लेख किया जा चुका है कि किन्हीं पदों के नामकरणों मे विविध पदावलियों मे भेद भी पाया जाता है लेकिन कुछ स्थलों को छोड कर अन्यत्र नामकरण का यह भेद अंचलीय प्रचलित नामकरणो का फल है अर्थात् भारतीय संगीत परम्परा देशव्यापिनी होते हुए भी क्षेत्रीय प्रभावो से युक्त होकर स्वीकृत हुई थी और एक ही राग या रागिनी के पृथक-पृथक अचलो मे भिन्न-भिन्न नाम पड़ गए थे। कही-कहीं रुचि भेद के अनुसार सामान्य लक्षण परिवर्तन भी कर दिए गए थे। इसी के अनुसार हमें विवेचनीय पदावलियो में नामकरण का भेद मिलता है किन्तु लक्षण साम्य के साथ ऐसी परिस्थिति मे यह कहना अनुचित न होगा कि उपर्युक्त कारणो से नामकरण भले ही मूल पद-गायकों के द्वारा न किये गये हो किन्तु उनके परवर्ती पदावलियो के सम्पादक जिन्होने विविध पदावलियो के सग्रह प्रस्तुत किए है वे सगीत-शास्त्र की स्वीकृत परिपाटियो से परिचत अवश्य थे।

अतः ऐसी परिस्थिति में कृष्णभक्तिकालीन साहित्य में प्रयुक्त राग-रागिनियों के विषय पर विचार करते हुए प्रत्येक कवि के जितने हस्तलिखित तथा प्रकाशित पद-संग्रह उपलब्ध हो सके है उन सब मे प्रयुक्त तथा प्राप्त राग-रागिनियों और पद-संख्या का विवरण दिया गया है। यदि किसी कवि का कोई प्रकाशित पद-संग्रह प्रामाणिक रूप म मान्य है तो एकमात्र उसी पर विचार किया गया है। उस कवि के हस्तलिखित तथा अन्य प्रकाशित पद-सग्रहो की विवेचना नही की गई है। जिन पदों के ऊपर राग-रागिनियों के नामों का उल्लेख नही है उनकी गणना भी नहीं की गई है। यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि हस्तलिखित तथा छपे पद-संग्रहों मे पद के ऊपर दिए गये राग अथवा रागिनी के नाम विशेष के साथ अधिकांश स्थलो पर राग अथवा रागिनी शब्द का उल्लेख नहीं किया गया है। जिन पदों के ऊपर राग अथवा रागिनी के नाम के साथ राग अथवा रागिनी शब्द का उल्लेख मिलता है वह प्राय: राग-रागिनी वर्गीकरण के नियमो के अनुकूल नही है क्योकि जो नाम रागिनी की कोटि मे आता है उसके साथ भी राग शब्द ही लिखा गया है।

सूरदास

सूरसागर में प्रयुक्त राग-रागिनियाँ[1]

राग-रागिनियाँ —	पद-संख्या —	राग-रागिनियाँ —	पद-संख्या —
(१) आसावरी	११७	(२) सूहौ	६२

१. काशी नागरी प्रचारिणी सभा से प्रकाशित सूरसागर के आधार पर। परिशिष्ट १ तथा २ में दिये गये पद्यों की प्रामाणिकता में संदेह होने के कारण उन पदों में दिये गये रागों तथा पदों की गणना नहीं की गई है।

(३)	सूहा	३	(३५)	भूपाली	४
(४)	बिलावल	६२१	(३६)	वसत	१४
(५)	सारंग	६०६	(३७)	कामोद	१
	कान्हडा		(३८)	गाधार	१
(६)	कान्हरौ	२४१	(३६)	नायकी	१
	कान्हरा		(४०)	काफी	३१
(७)	धनाश्री	३६८	(४१)	मलार कामोद	१
(८)	मारू	१५७	(४२)	विलावल रामकली	१
(६)	रामकली	२४४	(४३)	गुन कली	१
(१०)	केदारो	१७१	(४४)	गुन सारंग	१
(११)	केदार	६	(४५)	जैजैवंती	२
(१२)	मलार	३१५	(४६)	श्री हठी	८
(१३)	गौरी	२६०	(४७)	लालत	२६
(१४)	नट	२५१	(४८)	भैरव	४२
(१५)	बिहागडो		(४६)	नटनारायनी	४
		१८२	(५०)	भैरवी	३
	बिहागरो		(५१)	गुडमलार	६४
(१६)	सोरठ	१६६	(५२)	गौड	३
(१७)	कल्यान	१२६	(५३)	गुड	५
(१८)	परज	४	(५४)	पूर्वी	२३
(१६)	देवगंधार	५०	(५५)	बिहागडा	६
(२०)	नटनारायन	३२	(५६)	मेघमलार	३
(२१)	सूहा बिलावल	१६	(५७)	श्री	२
(२२)	तोड़ी	७८	(५८)	देवगिरि	१
(२३)	झिंझौटी	१	(५६)	षटपदी	१
(२४)	बिहाग	२	(६०)	भोपाल	१
(२५)	गौड़मलार	२४	(६१)	धमार	१
(२६)	गूजरी	५३	(६२)	देसकार	१
(२७)	जैतश्री	१०६	(६३)	रामगिरि	१
(२८)	जंगला	१	(६४)	वसंती	१
(२६)	अहीरी	२	(६५)	राज्ञी हठीली	१
(३०)	मुलतानी धनाश्री	१	(६६)	राज्ञी-श्रीहठी	१
(३१)	खंबावती	१	(६७)	राज्ञी मलार	२
(३२)	मुलतानी	१	(६८)	राज्ञी रामगिरी	१
(३३)	सुघरई	१५	(६६)	अलहिया बिलावल	१
(३४)	विभास	११	(७०)	श्री मलार	१

(७१)	होरी	३	(८०)	हमीर	६
(७२)	सोरठी	४	(८१)	देसाख	२
(७३)	अडाना	१८	(८२)	संकीर्ण	१
(७४)	देवसाख	४	(८३)	कर्नाट	२
(७५)	ईमन	१९	(८४)	वैराटी	१
(७६)	गंधारी	१	(८५)	सानुत	१
(७७)	अलहिया	२	(८६)	पुरिया	१
(७८)	शंकराभरण	३	(८७)	मालकोस	१
(७९)	कुरंग	१			

परमानंददास

डा० दीनदयालु गुप्त के 'परमानंददास के हस्तलिखित पद-संग्रह' मे प्रयुक्त राग-रागिनियाँ[1] –

राग-रागिनियाँ –	पद-संख्या –	राग-रागिनियाँ –	पद-सख्या –
कान्हरा कानरो कान्हरो	१९	गधार कल्याण मलार	१ १४ ५
गोरी गौरी	४८	तोड़ी बसंत	४ २
सारंग	२१४	नायकी	१
गूजरी गुर्ज़री	२	सामेरी देवगंधार	१ १
बिलावल	३२	विहाग विहागरो	१७
धनासिरी धन्यासी	३५	मालकोंस	१
रामगिरी	२	रामकली	७
असावरी आसावरी	२३	भैरवी जंगला	१ २
केदारो	५	पीलू	१
सोरठी	३	सिंध	१

१. लेखिका को यह पद-संग्रह, डा० गुप्त जी के सौजन्य से देखने को मिला है। प्रस्तुत संग्रह में कुल ४८९ पद हैं जिनमें से १८ पदों के ऊपर राग-रागिनियों का उल्लेख नहीं किया गया है।

भैरव भैरों	६	सूहा नट	१ १
विभास	१५	ईमन	३
		कुल पद	४७१

कुंभनदास

डा० दीनदयालु जी गुप्त के 'कुंभनदास के हस्तलिखित पद-सग्रह' में प्रयुक्त राग-रागिनियाँ[1] –

राग-रागिनियाँ –	पद-संख्या –	राग-रागिनियाँ –	पद-सख्या –
श्री	१	विभास	१
धनासिरी	१३	कल्यान	४
रामकली	१	आसावरी	२
सारग	१७	मल्हार	५
गौरी	६	बसंत	३
नट	४	मालवगोड़ी	१
केदारो	१२	पीलों	१
देवगंधार	३	भैरव	२
बिलावल	७	ललित	२
नटनारायन	२	मालकौंस	२
कानरो	३	विहागरो	२
		कुल पद	९४

कृष्णदास

काँकरौली-विद्याविभाग तथा श्री नाथद्वार के निजी पुस्तकालय में कृष्णदास अधिकारी के पद-संग्रहों की प्रतियों में प्रयुक्त राग-रागिनियाँ[2] –

प्रति सं० ५१/४ 'कृष्णदास के कीर्तन' (काँकरौली-विद्याविभाग की प्रति)

राग-रागिनियाँ –	पद-संख्या –	राग-रागिनियाँ –	पद-संख्या –
विभास	६	धनासिरी	३१

१. लेखिका को यह पद-संग्रह, डा० गुप्त जी के सौजन्य से देखने को मिला था। प्रस्तुत संग्रह में कुल ९६ पद दिए हैं जिनमें से २ पदों के ऊपर राग-रागिनियों का उल्लेख नहीं किया गया है।

२. अष्टछाप और वल्लभ-सम्प्रदाय, (भाग १), डा० दीनदयालु गुप्त, पृ० ३२१–२३ के आधार पर।

ललित	१६	आसावरी	१६
भैरव	६	सारंग	१७
बिलावल	१६	गौड़ी	४१
टोड़ी	३६	श्री	८
गूजरी	१२	कल्याण	१५
रामकगी	२	कानरा	१५
देवगन्धार	१	केदारा	४०
		कुल पद	२६३

प्रति सं० २२/६ 'कृष्णदास के पद' (काँकरौली-विद्याविभाग की प्रति)

राग-रागिनियाँ —	पद-संख्या —	राग-रागिनियाँ —	पदसंख्या —
विभास	४३	सारंग	६७
भैरव	७	मालवगौड़ी	२४
बिलावल	२८	श्री	१५
टोडी	४३	गौरी	२८
धन्यासिरी	३४	कल्यान	६४
गूजरी	१७	कानरो	१५७
रामग्री	१	केदारो	६५
आसावरी	२३	बसन्त	३०
		कुल पद	६७६

प्रति सं० १५/२ 'कृष्णदास जी के पद' (श्री नाथद्वार के निजी पुस्तकालय की प्रति)

राग-रागिनियाँ —	पद-संख्या —	राग-रागिनियाँ —	पद-संख्या —
विभास तथा ललित	४३	सारंग	६५
भैरव	७	मालवगौड़ी	१५
बिलावल	२८	श्री	१६
टोड़ी	४१	गौरी	२८
धनासिरी	३	कल्याण	६४
गूजरी	१७	कानरो	१५७
रामग्री	१	केदारो	६६
आसावरी	२१	मल्हार	१४
		बसन्त	३०
		कुल पद	६४६[1]

---

१. डा० दीनदयालु गुप्त ने कुल पदों की संख्या ६७६ लिखी है किन्तु गणना करने पर कुल पदों की संख्या ६४६ ही आती है।

नंददास

डा० दीनदयालु जी गुप्त के नन्ददास के हस्तलिखित पद-संग्रह में प्रयुक्त राग-रागिनियाँ[1] –

राग-रागिनियाँ –	पद-संख्या –	राग-रागिनियाँ –	पद-संख्या –
विभास	३	अडानो	५
रामकली	४	बिहाग विहागड़ो	६
भैरव	२		
ललित	२	धनाश्री	३
मालकोस	३	बसत	२
देवगंधार	१	काफी	४
बिलावल	४	मारू	६
ईमन	३	मल्हार	३
टोड़ी	५	जैजैवंती	३
सारग	७	आसावरी	३
नट	४	रायसौ	१
पूर्वी (पूरवी)	२	हमीर	१
गौरी	३	गौड़ी	१
कल्याण	२	पंचम	१
नायकी	२		कुल पद १००
कान्हरो	५		
केदार केदारो	६		

चतुर्भुजदास

डा० दीनदयालु जी गुप्त के चतुर्भुजदास जी के हस्तलिखित पद-संग्रह में प्रयुक्त राग-रागिनियाँ[2] –

राग-रागिनियाँ –	पद-संख्या –	राग-रागिनियाँ –	पद-संख्या –
देवगंधार	५	गौडी गोडी	४
भैरव	१०		
रामगरी	३	गौरी गोरी	१३
बिलावल	१२		

१. लेखिका को यह पद-संग्रह ,डॉ० दीनदयालु जी गुप्त के सौजन्य से देखने को मिला।
२. वही।

राग-रागिनियाँ	पद-संख्या	राग-रागिनियाँ	पद-संख्या
जैतश्री जैतसिरी	२	कानरो कान्हरो	४
बसंत	१	केदारो	५
धनासिरी धन्यासरी धन्यासिरी धनाश्री	१२	नटनारायन सारंग मलार सामेरी मालव गोरी बसंत	३ १ १ १ ३
ललित	३	पंचम	१
रामकली	८	विभास	५
आसावरी	४	नट	३
सारंग	१५	विहाग	१
मल्हार मलार	६	कुल पद	१२६

'कीर्तन संग्रह चतुर्भुजदास'

प्रति सं० २/१ (काँकरौली, विद्याविभाग) में प्रयुक्त राग-रागिनियाँ[1] –

राग-रागिनियाँ –	पद-संख्या –	राग-रागिनियाँ –	पद-संख्या –
भैरव	१२	मालवगौरा	३
बिलावल	१२	मलार	११
देवगंधार	७	नटनारायण चर्चरी	११
टोड़ी	१	गौरी	२३
धनासिरी	१४	कल्याण	४
जैतश्री	३	कानरो	८
रामग्री	६	केदारा	१४
आसावरी	४	विहागरो	१
सारंग	४८	सामेरी	१
		बसंत	३
		कुल पद	१८९

१. अष्टछाप और वल्लभ-सम्प्रदाय, डा० दीनदयालु गुप्त, भाग १, पृ० ३८४

गोविन्दस्वामी

डा० दीनदयालु जी गुप्त के गोविन्दस्वामी के हस्तलिखित पद-संग्रह मे प्रयुक्त राग-रागिनियाँ[1] –

राग-रागिनियाँ –	पद-सख्या –	राग-रागिनियाँ –	पद-संख्या –
विभास	१२	गौरी	२२
बिलावल	४	श्री	५
रामकली	३	इमन	३१
देवगंधार	२	कान्हरौ	२८
आसावरी	३	केदारो	२६
टोड़ी	६	विहाग	९
धन्याश्री	४	संकराभरन केदारो	९
सारंग	३७	मलार	१५
नट	२३	वसत	२
पूरबी	८		
		कुल पद	२५२

छीतस्वामी

डा० दीनदयालु जी गुप्त के छीतस्वामी के हस्तलिखित पद-संग्रह में प्रयुक्त राग-रागिनियाँ[2] –

राग-रागिनियाँ –	पद-संख्या –	राग-रानिगियाँ –	पद-संख्या –
भैरव	५	हमीर	१
रामकली	३	अडानो	१
बिलावल	२	केदारो	१
विभास	३	सोरठ	१
नट	३	इमन	२
देवगंधार	२	ललित	१
काफी	२	पूर्वी	२

---

१. लेखिका को यह हस्तलिखित पद-संग्रह डा० गुप्त जी के सौजन्य से देखने को मिला।

२. वही। इसमें कुल ६२ पद हैं जिनमें १६ पदों के ऊपर राग-रागिनियों के नामों का उल्लेख नहीं किया गया है।

टोड़ी	१	बिहाग विहाग	३
सारंग	१		
गोरी	४		
कल्यान	१	मलार	१
आसावरी	४	बसंत	२
		कुल पद	४६

वल्लभ सम्प्रदायी कीर्तन-संग्रहों में छपे छीतस्वामी के पदों में प्रयुक्त राग-रागिनियाँ –

कीर्तन-संग्रह के तीनो भागों में मिलाकर कवि के ६४ पद प्राप्त होते हैं जो विषयानुसार विभाजित हैं। एक पद में राग के नाम का उल्लेख नहीं किया गया है, शेष ६३ पद राग-रागिनियों के अन्तर्गत मिलते है।

राग-रागिनियाँ –	पद-संख्या –	राग-रागिनियाँ –	पद-संख्या –
बिलावल	६	कान्हरो	५
आसावरी	३	विहागरो	१
सारंग	१५	रामकली	३
इमन	३	जेतश्री	१
अडानो	१	वसंत	३
देवगधार	८	विभास	१
मल्हार	१	मालकोश	१
बिहाग	१	ललित	१
नट	१	पूर्वी	२
गोरी	३	भैरव	१
कल्याण	२		
		कुल पद	६३

गदाधर भट्ट

श्री गदाधर भट्ट जी महाराज की बानी में प्रयुक्त राग-रागिनियाँ[1] –

गदाधर भट्ट जी की रचना 'श्री गदाधर भट्ट जी महाराज की बानी' की एक हस्त-लिखित प्रति बालकृष्णदास जी चौखम्बा बनारस के पास है। उक्त प्रति को ही लेखिका ने

१. लेखिका को 'श्री गदाधर भट्ट जी महाराज की बानी' नामक हस्तलिखित प्रति श्री बालकृष्णदास जी के सौजन्य से देखने को मिली थी।

देखा है। इसकी पत्र संख्या कुल ३२ है। अत सम्पूर्ण है किन्तु प्रारम्भ का पत्र १ तथा मध्य में १२ से १६ पत्र तक नही है।

इसका लिपिकाल पौष्य शुक्ल संवत् १९२९ दिया हुआ है। लिपिकार के नाम का पता नही चलता।

इसमे ध्यान-लीला, सिद्धान्त के पद, संस्कृति पदानि रस के पद, उत्सव के पद तथा हिडोरे के पद शीर्षक प्रकरण है।

ध्यान-लीला छंदों मे लिखी गई है। इसमे ५७ छंद है। प्रति में प्रथम पत्र के फटे होने के कारण सख्या ९ से छंद दिया हुआ है।

'सस्कृत पदानि' विभिन्न छंदों में है। छंदो का प्रारम्भ पत्र ६ से होता है किन्तु पत्र ११ के उपरान्त फटा हुआ है और १६ तक फटा है। उसके बाद से रस के पद मिलते है। अतः छंदो की सख्या का पता नही चल पाता। सिद्धान्त के पदों की संख्या २२ है जो विभिन्न रागो मे दिए हुए है। पत्र संख्या ४ से ८ तक है।

रस के पदो की सख्या २४ है किन्तु उसका प्रारम्भ फटा होने से उक्त प्रति मे पद सख्या १३ से १४ तक ही मिलती है। इस प्रकार रस के पदों की सख्या केवल १२ ही है जो विभिन्न रागों मे गाये गये है। उत्सव के पदो की संख्या १३ है। १२ पद विभिन्न राग-रागिनियों मे गाये गये है और १ पद में राग का नाम नही दिया है।

हिडोरे के पदों की संख्या ९ है जो विभिन्न रागों के अन्तर्गत हैं। सम्पूर्ण पदों को मिलाकर उनका रागानुसार विभाजन निम्नलिखित प्रकार से है –

राग-रागिनियाँ –	पद-संख्या –	राग-रागिनियाँ –	पद-सख्या –
विभास	५	मारू	३
देवगंधार	१	कान्हरो	२
जैतिश्री	१	हमीर	२
नट	२	वसंत	२
सारग	५	काफी	३
भैरो (भैरव)	६	राइसौ	२
श्री	४	विहागरौ	१
रामकली	३	धनासिरी	१
बिलावल	१	मलार	२
भूपाली	३	अडानौ –	२
गौरी	४		
		कुल पद	५५

सूरदास मदनमोहन

सूरदास मदनमोहन के काव्य में प्रयुक्त राग-रागिनियाँ

पं० रामचन्द्र शुक्ल[1] ने सूरदास मदनमोहन के दो पद तथा डा० सरयूप्रसाद अग्रवाल[2] ने वर्षोत्सव-कीर्तन से इनके १२ पद उद्धृत किए हैं किन्तु उनमें रागों का उल्लेख नही किया है। संगीत-राग-कल्पद्रुम भाग १ तथा २, राग-रत्नाकर तथा वल्लभ सम्प्रदायी कीर्तन-संग्रह भाग १, २ तथा ३ में कवि के कुछ पद रागो मे मिलते है जिनका विवरण नीचे दिया जा रहा है।

संगीत-राग-कल्पद्रुम में छपे सूरदास मदनमोहन के पदों में प्रयुक्त राग-रागिनियाँ –

राग-रागिनियाँ –	पद-संख्या –	राग-रागिनियाँ –	पद-संख्या –
भैरव	६	विभास	१
जयजयवंती	१	विलावल	१
		कुल पद	९

राग-रत्नाकर मे छपे सूरदास मदनमोहन के पदो मे प्रयुक्त राग-रागिनियाँ।

राग-रागिनियाँ	पदसंख्या	राग-रागिनियाँ	पदसंख्या
भैरव	१	कान्हरा	१
		कुल पद	२

वल्लभ सम्प्रदायी कीर्तन संग्रहों में छपे सूरदास मदनमोहन के पदों में प्रयुक्त राग-रागिनियाँ –

राग-रागिनियाँ –	पद-संख्या –	राग-रागिनियाँ –	पद-संख्या –
आसावरी	१	केदारो	२
गौरी	२	मल्हार	२
ईमन	४	जैतश्री	२
कान्हरो	२	वसत	१
धनाश्री	१	भैरव	२
सारंग	६	मालकोस	१

---

१. हिन्दी साहित्य का इतिहास, पं० रामचन्द्र शुक्ल, पृ० १८०

२. अकबरी दरबार के हिन्दी कवि, डा० सरयूप्रसाद अग्रवाल, पृ० ४४७–५०

बिलावल	४	टोडी	१
पूर्वी	४	अडानो	१
नट	१	विहाग	१
कल्याण	२		
		कुल पद	४०[1]

हितहरिवंश

हितहरिवंश जी के काव्य में प्रयुक्त राग-रागिनियाँ –

हितहरिवंश जी के काव्य मे प्रयुक्त राग-रागिनियों की संख्या के विषय में हस्तलिखित पद-संग्रहों में निम्नलिखित कवित्त मिलता है –

छ पद विभास मांझ सात है बिलावल में टोडी में चतुर आसावरी में द्वै बने।
सप्त है धनासिरी में जुगल वसन्त केलि देवगंधार पंच सुर सौ सनै।
सारंग में षोडस है चारि ही मलार एक गौड में सुहायौ नव गौरी रस सौ सनै।
षट कल्याण निधि कान्हरौ केदारौ वेदवानी हित जू की सब चौदह राग में गनै।

इससे ज्ञात होता है कि हितहरिवंश जी के पदों मे प्रयुक्त राग-रागिनियों की संख्या निम्नलिखित प्रकार से है –

राग-रागिनियाँ –	पद-संख्या –	राग-रागिनियाँ –	पद-संख्या –
विभास	६	सारंग	१६
बिलावल	७	मलार	४
टोडी	४	गौड मलार	१
आसावरी	२	गौरी	६
धनासिरी	७	कल्याण	६
बसंत	२	कान्हरौ	६
देवगंधार	७	केदारौ	४
		कुल पद	८४

किन्तु गणना करने पर उन्हीं हस्तलिखित तथा प्रकाशित अन्य पद-संग्रहों में प्राप्त राग-रागिनियों के नाम तथा राग प्रति पद-संख्या उक्त कवित्त से मेल नहीं खाते। यही नहीं प्रत्येक पद-संग्रह में प्राप्त राग-रागिनियों के नाम तथा उनकी संख्या में भी विभिन्नता है।

---

१. इन पदों के अतिरिक्त एक पद और मिलता है किन्तु उसमें राग का नाम नहीं दिया गया है।

प्राय: किन्ही भी दो संग्रहो मे साम्य नही है। अतः हितहरिवश जी के जितने भी प्रकाशित तथा हस्तलिखित पद-संग्रह लेखिका के देखने मे आये है उन सभी का विवरण नीचे लिखी पंक्तियों मे दिया जाता है –

प्रयाग-संग्रहालय में हितहरिवंश जी के पद संग्रह

प्रति सं० ३८।२१५, 'चौरासी पद-हितहरिवंश'। प्रति जीर्ण तथा पुरानी अवस्था मे है। पदों का विभाजन निम्नलिखित प्रकार से रागानुसार किया गया है –

राग-रागिनियाँ –	पद-संख्या –	राग-रागिनियाँ –	पद-संख्या –
विभास	१	गुज्जरी	७
ललित	५	सारंग	१६
बिलावल	७	मल्लार	५
टोडी	४	गौरी	९
आसावरी	२	कल्याण	६
धन्यासी	७	कान्हरो	९
वसंत	२	केदारो	४
			कुल पद ८४

प्रति सं० २१७।१०३, "चौरासी पद-हितहरिवंश"। प्रति सम्पूर्ण है। देखने में पुस्तक बहुत पुरानी नहीं प्रतीत होती। पदों का विभाजन रागों के अन्तर्गत किया गया है किन्तु प्रारम्भ के छै पदों में राग के नामों का उल्लेख नही है। साँतवें पद से रागो का नाम तथा पदसंख्या उपर्युक्त प्रति सं० ३८।२१५ के अनुसार ही है किन्तु गुज्जरी के स्थान पर राग देवगंधार नाम दिया हुआ है और मलार में ४ पद तथा गौडमलार में १ पद दिया गया है।

प्रति सं० ८५।२१६, चौरासी पद-हितहरिवंश। उक्त प्रति का लिपिकाल सवत् १९०४ मिति सावन वदि ५ है। इसमें राग प्रति पद-संख्या निम्नलिखित प्रकार से है –

विभास	६	सारग	१६
बिलावल	७	मलार	४
टोडी	४	गौडमलार	१
आसावरी	२	गौरी	९
धनासिरी	७	कल्याण	६
वसंत	२	कान्हरौ	९
देवगंधार	७	केदारौ	४
			कुल पद ८४

इसी प्रति में इन पदो के अतिरिक्त पहले सवैया, छप्पै, कवित्त, कुडलिया, अरिल्ल छंदो मे हितहरिवश जी की कुछ बाणी दी है उसके उपरान्त निम्नलिखित प्रकार से विभिन्न राग-रागिनियों मे कुछ फुटकर पद भी दिए है –

राग-रागिनियाँ –	पद-सख्या –	राग-रागिनियाँ –	पद-सख्या –
बिलावल	१	गौरी	२
विभास	१	कल्याण	२
धनासिरी	३	मलार	१
विहागरौ	४		
			कुल पद १४

प्रति सं० १९५।२१६, श्रीकृष्ण लीला-हितहरिवंश। इस प्रति का लिपिकाल सवत् १८४५ वैसाष सु० १० दिया हुआ है। इसमे हितहरिवश जी की वाणी, पहले कवित्त, कुडलिया, अरिल्ल छंदों मे दी गई है, उसके बाद उनके स्फुट पद विभिन्न राग-रागिनियो मे दिए गए है। रागों का नाम, क्रम तथा संख्या ठीक प्रति स० ८५।२१६ के स्फुट पदो की ही भाँति है।

हिन्दी-संग्रहालय हिन्दी साहित्य-सम्मेलन मे हितहरिवंश जी के पद-संग्रह

प्रति सं० १३६१।२१६०, "चौरासी पद-हितहरिवश"। प्रति अपूर्ण है। इसमें कवि के १९ पद (एक पद आधा दिया है) रागानुसार है। रागो मे विभाजन निम्नलिखित प्रकार से मिलता है –

राग-रागिनियाँ –	पद-संख्या –	राग-रागिनियाँ –	पद-सख्या –
विभास	६	टोडी	४(एक पद आधा दिया हुआ है)
बिलावल	७	आसावरी	२
			कुल पद १९

याज्ञिक संग्रहालय में हितहरिवंश जी के पद-संग्रह

प्रति स० १०५।५५, चौरासी पद-हितहरिवंश। इस प्रति मे हितहरिवंश जी के चौरासी पद निम्नलिखित राग-रागिनियों मे दिए हुए है –

राग-रागिनियाँ –	पद-संख्या –	राग-रागिनियाँ –	पद-सख्या –
विभास	६	सारंग	१६
बिलावल	७	मलार	४
टोडी	४	गौडमलार	१

आसावरी	२	गौरी	६
धनासिरी	७	कल्याण	६
बसंत	२	कान्हरो	१३
देवगंधार	७		
			कुल पद ८४

इसके अतिरिक्त इस प्रति मे हितहरिवश जी की छंदों मे वानी तथा स्फुट रस के पद भी दिए हुए है। प्रारम्भ के दो पदो मे राग का नाम नही है। तीन पद राग धनासिरी मे तथा दो पद राग सारंग मे दिए हुए है। आगे की प्रति खडित है।

प्रति स० ५०६/५५, हितहरिवश चौरासी। इसमे हरिवंश जी के ८४ पद विभिन्न रागों के अन्तर्गत दिए है। रागो का क्रम तथा संख्या कल्याण राग तक तो ठीक ऊपर की ही तरह है किंतु इस प्रति मे कान्हरो राग मे केवल ६ पद मिलते है। शेष चार पद राग केदारो मे दिए गए है।

प्रति सं० ७०५/५३०, हितचौरासी–हित हरिवंश। इस प्रति में कवि के ८४ पद दिए है। रागो का क्रम तथा संख्या गौरी राग तक तो प्रति स० १०५/५५ की ही भाँति है किंतु इसमे कल्याण राग मे गाए गए पदों की संख्या १५ है और ४ पद राग केदारो मे है। इसमें कान्हरो राग का उल्लेख नही मिलता।

प्रति सख्या २८६६/१७८१, श्री चौरासी जू। प्रति का लिपिकाल मि० ६ वदी अषाढ स १९३० दिन सोमवार है। लिपिकार का नाम प्रियादास है। प्रति पूर्ण है। पद सख्या ११० है। इसमे हितहरिवंश जी के ८४ पद ठीक प्रति सं० १०५/५५ में दिए गए रागो में तथा उसी क्रमानुसार लिखे है।

प्रति सं० २८००/१७८२, श्रीमच्चौरासी पद। इस प्रति में हितहरिवंश जी के ८४ पद प्रति सं० ५०६/५५ की भाँति उसी क्रम में तथा उन्ही राग-रागिनियों मे दिए है।

संगीत-राग-कल्पद्रुम (भाग एक तथा दो) मे हितहरिवश जी के ३२ पद राग-रागिनियो[1] मे दिए है जो निम्नलिखित प्रकार से है –

राग-रागिनियाँ –	पद-संख्या –	राग-रागिनियाँ –	पद-संख्या –
आसावरी	१	विभास	६
मुलतानी	१	देवगंधार	२०
धनाश्री	१	बिलावल	३
			कुल पद ३२

१. राग विभास के अन्तर्गत दिए गए ६ पदों को पुनः राग देवगंधार के अन्तर्गत भी दिया गया है।

संगीत-राग-रत्नाकर मे हितहरिवश जी के ३ पद निम्नलिखित राग-रागिनियो में दिए हुए है –

राग-रागिनियाँ –	पद-सख्या –	राग-रागिनियाँ –	पद-संख्या –
देवगंधार	२	कान्हरा	१
			कुल पद ३

वल्लभ सम्प्रदायी कीर्तन-सग्रह भाग १, २ तथा ३ मे हितहरिवश जी के १७ पद[1] निम्नलिखित राग-रागिनियो मे दिए हुए है –

राग-रागिनियाँ –	पद-सख्या –	राग-रागिनियाँ –	पद-सख्या –
बिलावल	१	ललित	१
सारंग	३	विभास	१
भैरव	१	वसंत	३
पूर्वी	२	मल्हार	४
गोरी	१		
			कुल सख्या १७

व्यास जी

व्यासवाणी में प्रयुक्त राग-रागिनियाँ[2]

राग-रागिनियाँ –	पद-संख्या –	राग-रागिनियाँ –	पद-सख्या –
सारंग	१५२	षट	११
बिलावल	१८	मोजिला	१
केदारो	१८	भोतिला	१
धनाश्री	५४	आसावरी	५
गौरी	४७	गंधार	१
नट	२०	बसंत	२
जयतिश्री	११	बिहागरौ	४
देवगंधार	२३	श्री	१
कान्हरो	२६	मलार	१३
भैरव	२	स्याम गूजरी	१
कामोद	१९	देवगिरि	१
रामकली	३	मारू या मारवौ	४

१. इन पदों के अतिरिक्त एक पद में राग के नाम का उल्लेख किया गया है।

२. वासुदेव गोस्वामी रचित 'भक्त-कवि-व्यास जी' नामक ग्रंथ के आधार पर ।

भूपाली / भोपाली	५	अलैया बिलावल	१
		मूहौ बिलावल	१
		तोडी	२
गूजरी	१	सूहौ	१
गौड़मलार	८	पूरबी सारंग	१
कल्याण	२३	अडानौ	१
			कुल पद ४८२

हरिदासस्वामी

हरिदास स्वामी के काव्य मे प्रयुक्त राग-रागिनियाँ

काशी नागरी प्रचारिणी सभा मे हरिदास स्वामी का पद-संग्रह

प्रति स० ३७१/२६६, पद-सग्रह-हरिदास, विट्ठलविपुल, बिहारिन देव। इस प्रति मे इन तीनो कवियो के पद संग्रहीत हैं। प्रति से लिपिकार के नाम अथवा लिपिकाल का ज्ञान नही होता। पत्र सख्या १ से २७ तक हरिदास स्वामी के पद, पत्र संख्या २८ से ३४ तक विट्ठलविपुल जी की वाणी तथा उसके उपरान्त बिहारिनदेव जी के पद तथा उनकी वाणी दी है। प्रति संपूर्ण है।

हरिदास स्वामी के पदो की कुल सख्या १३० है जिसमे २० पद सिद्धात के तथा ११० पद श्रृंगार के है। सभी पद विभिन्न राग-रागिनियो मे गाए गए है। रागानुसार पदों की संख्या का विभाजन निम्न प्रकार से है –

राग-रागिनियाँ –	पद-सख्या –	राग-रागिनियाँ –	पद-सख्या –
विभास	१४	सारग	११
बिलावल	३	मलार	८
आसावरी	७	गोड मलार	२
कल्याण	१४	वसत	५
वरारी	१	गोरी	६
कान्हरो	३५	नट	२
केदारो	२२		
			कुल पद १३०

हिन्दी-सग्रहालय हिन्दी साहित्य सम्मेलन मे हरिदास स्वामी का पद-संग्रह

प्रति संख्या १६२०/३१७०। इसमे हरिदास, विट्ठलविपुल तथा बिहारिन दास की वाणी दी हुई है। प्रति फटी हुई तथा अपूर्ण है।

हरिदास स्वामी के पदो की कुल सख्या इस प्रति में ११० दी हुई है किन्तु फटी हुई अवस्था मे होने के कारण पद सातवी सख्या से प्राप्त होते है। पद संख्या ७ से ३० तक राग का नाम नही दिया। संभव है कि प्रारभ मे उप पृष्ठ पर जो फट चुका है राग का नाम दिया रहा हो।

इसके बाद पुन. पद संख्या १ से २२ तक रागों का नाम नही दिया गया। इस प्रकार कुल ११० पदो मे से ५२ पदों मे रागो का उल्लेख नही मिलता। शेष ५८ पद विभिन्न राग-रागिनियो मे गाये गए है जिनका विभाजन निम्नलिखित है –

राग-रागिनियाँ –	पद-सख्या –	राग-रागिनियाँ –	पद-सख्या –
कल्याण	१२	गौडमलार	२
सारंग	११	वसत	५
विभास	१०	गौरी	६
बिलावल	२	नट	२
मलार	८		
		कुल पद	५८

विट्ठल विपुल

विठ्ठल विपुल जी के काव्य मे प्रयुक्त राग-रागिनियाँ

काशी नागरी प्रचारिणी सभा मे विठ्ठल विपुल जी का पद-संग्रह

प्रति स० ३७१/२६६, पद-सग्रह हरिदास, विठ्ठलविपुल, बिहारिनदास। इस प्रति का परिचय हरिदास स्वामी के पदों के प्रसंग मे दिया जा चुका है। प्रति मे विठ्ठलविपुल जी के ४० पद निम्नलिखित राग-रागिनियो मे लिखे हुए है –

राग-रागिनियाँ –	पद-सख्या –	राग-रागिनियाँ –	पद-सख्या –
विभास	४	मल्हार	३
भैरू	८	कल्याण	३
बसंत	२	केदारौ	९
सारग	११		
		कुल पद	४०

हिन्दी सग्रहालय, हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन प्रयाग मे विठ्ठल विपुल जी का पद-सग्रह

प्रति सं० १६२०/३१७० । इस प्रति में हरिदास स्वामी, विठ्ठलविपुल तथा बिहारिन दास जी के पद-संग्रहीत हैं। विठ्ठलविपुल जी के ४० पद निम्नलिखित राग-रागिनियों तथा सख्या मे लिखे हुए है।

राग-रागिनियाँ –	पद-संख्या –	राग-रागिनियाँ –	पद-संख्या –
विभास	४	मल्हार	३
भैरो	१	कल्याण	१
बिलावल	७	कानरो	२
वसंत	२	केदारो	८
सारंग	११		
		कुल पद	४०

बिहारिनदास

बिहारिनदास जी के काव्य में प्रयुक्त राग-रागिनियाँ

काशी प्रचारिणी सभा में बिहारिनदास जी का पद-संग्रह

प्रति सं० ३७१/२६६, पद-संग्रह हरिदास, विट्ठलविपुल, बिहारिनदास। इस प्रति में बिहारिन दास जी की वाणी दी हुई है जिसमे कवित्त, कुडलिया आदि छंद तथा ३७३ पद हैं। ये पद निम्नलिखित राग-रागिनियो तथा सख्या में दिए गए है –

राग-रागिनियाँ –	पद-संख्या –	राग-रागिनियाँ –	पद-सख्या-
भैरो	१७	तोड़ी	४
बिलावल	२६	जैतश्री	७
रामकली	१४	मलार	७
आसावरी	१४	हिडोल	४
धनाश्री	६८	काफी	६
सारंग	५८	अडानो	४
नट	६	सोरठ	५
कानरो	२६	कल्याण	१३
गौरी	२३	वसंत	८
केदारो	४६	विहागरो	१
विभास	७	सूहा बिलावल	१
देवगंधार	२		
		कुल पद	३७३

हिन्दी-संग्रहालय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन मे बिहारिनदास जी का पद-संग्रह

प्रनि सं० १६२०/३१७०। इस प्रति में बिहारिनदास जी की कुछ वाणी दी गई है।

प्रति अपूर्ण तथा खंडित है। अत. इसमे कवि के केवल ११३ पद निम्नलिखित राग-रागिनियों के अन्तर्गत मिलते है –

राग-रागिनियाँ –	पद-संख्या –	राग-रागिनियाँ –	पद-संख्या –
भैरू	१६	आसावरी	९
बिलावल	११	धनाश्री	६६
रामकली	१०	मारंग	१
		कुल पद	११३

श्रीभट्ट

युगल शतक मे प्रयुक्त राग-रागिनियाँ

मयाशंकर याज्ञिक संग्रहालय में युगल शतक की प्रतियाँ

प्रति सख्या २७९९/१६९६, जुगलसत-श्री भट्ट। इस प्रति मे पत्र सख्या २८ है किन्तु बीच मे स० ११ का पत्र नही है। सग्रह मे १०३ पद विभिन्न राग-रागिनियो मे दिए गए है। पत्र सख्या ११ के न होने से पद संख्या ३२ से ३५ तक के ४ पद प्रति मे नही मिलते। ग्रंथ से लिपिकार का नाम तथा लिपिकाल का कोई ज्ञान नही होता। प्रति के ९९ पदों की रागानुसार संख्या निम्न प्रकार है –

राग-रागिनियाँ –	पद-संख्या –	राग-रागिनियाँ –	पद-संख्या –
केदारो	२४	बिलावल	१२
गौरी	४	पचम	२
सारंग	१५	विहागरो	१५
रामकली	१	सोरठ	३
विभास	३	आसावरी	२
भैरो	४	वसंत	४
कानरो	१	मलार	९
		कुल पद	९९

प्रति सं० ७१२/३२, जुगल सत–श्री भट्ट। इस प्रति में पत्र सख्या ३६ है। प्रारम्भ के १८ पृष्ठो मे जुगलसत पोथी लिखी हुई है। इसके उपरान्त विभिन्न कवियों के पद संग्रहीत है।

जुगलसत के पदों की संख्या क्रमानुसार नही दी गई है। जो पद प्राप्त होते है उनका रागानुसार विभाजन निम्नलिखित है –

राग-रागिनियाँ –	पद-संख्या –	राग-रागिनियाँ –	पद-संख्या –
केदारो	१४	बिलावल	६
गौरी	३	पंचम	२
सारंग	१७	विहागरो	७
रामकली	१	सोरठ	१
विभास	३	आसावरी	२
भैरो	४	हिडोल	३
कानरो	१	मलार	१४
			कुल पद ८१

प्रति स० २५१/३२, जुगलसत-श्री भट्ट। यह खंडित प्रति है। बीच-बीच मे पृष्ठ नही है। इसमे विभिन्न रागों मे ६६ पद दिए हुए हैं। पद संख्या ५२ से ५६ तक वाला पृष्ठ उक्त प्रति मे नही है। अंत भी फटा हुआ है। शेष पदो का विभाजन रागानुसार निम्न प्रकार है –

राग-रागिनियाँ –	पद-संख्या –	राग-रागिनियाँ –	पद-संख्या –
केदारो	११	भैरव	४
गोरी	६	बिलावल	७
सारंग	१७	संकराभरन	२
रामकली	४	सोरठ	५
विभास	१	विहागरो	४
			कुल पद ६१

परशुराम

रामसागर मे प्रयुक्त राग-रागिनियाँ

प्रति स० ६८०।४६२, रामसागर। परशुराम जी कृत रामसागर काशी नागरी प्रचारिणी सभा मे लेखिका के देखने मे आया था। रामसागर मे कवि के पद भी दिये हुए है। कुछ पदो पर राग-रागिनियों का उल्लेख नहीं किया गया है। शेष पद निम्नलिखित राग-रागिनियों तथा संख्या में मिलते है –

राग-रागिनियाँ –	पद-संख्या –	राग-रागिनियाँ –	पद-संख्या –
ललित	३	मलार	२१
भैरू	१६	गोड़ी	६६

बिलावल	४०	सोरठ	८३
टोड़ी	२२	गुड	१२
आसावरी	६२	कानडो	१५
धनासिरी	२६	केदारो	८३
रामगिरी	३९	मारू	४
सारंग	१८४		

कुल पद ५६९

मीराबाई

मीरा के काव्य मे प्रयुक्त राग-रागिनियाँ

जैसा कि पूर्व भी कहा गया है वंगीय-हिदी-परिषद से प्रकाशित 'मीरा-स्मृति-ग्रथ' मे छपे पद ही कवियित्री की प्रामाणिक रचना है। उसमे छपे पदो के ऊपर राग-रागिनियो का उल्लेख नही है। आचार्य ललिता प्रसाद सुकुल जी ने भी लेखिका से वार्ता करते हुए यही बताया है कि जिन हस्तलिखित प्रतियो के आधार पर प्रस्तुत ग्रथ मे मीरा के पदो का संकलन किया गया है उसमे भी पदों के ऊपर राग-रागिनियो का उल्लेख नही है। अस्तु मीरा ने अपने पदो का किस रूप अथवा किन राग-रागिनियो मे गायन किया इसके विषय मे निश्चित रूप से कुछ भी नही कहा जा सकता।

राजा आसकरण

राजा आसकरण के पदो मे प्रयुक्त राग-रागिनियाँ

राजा आसकरण के कुछ पद संगीत-राग-कल्पद्रुम, राग-रत्नाकर, वल्लभ सम्प्रदायी कीर्तन-संग्रहों तथा 'दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता' में मिलते है जो निम्नलिखित राग-रागिनियो में गाए गए है।

संगीत-राग-कल्पद्रुम मे छपे राजा आसकरण के पदो मे प्रयुक्त राग-रागिनियाँ।

भैरवी	१	रामकली	२
परज	१	विभास	३

कुल पद ७

राग-रत्नाकर मे राजा आसकरंण का एक पद राग कान्हरौ मे मिलता है।

वल्लभ सम्प्रदायी कीर्तन-संग्रहो में छपे राजा आसकरण के पदों मे प्रयुक्त राग-रागिनियाँ –

आसावरी	२	देवगधार	२
रामकली	४	जेतश्री	१
टोडी	२	भैरव	१
सारंग	६	विभास	१
पूर्वी	२	गोरी	१
नायकी	१	कान्हरो	२
बिलावल	३	ईमन	१
नट	१	केदारो	२
बिहागरो	१	बिहाग	१
मालव	१		

कुल पद ३८

२५२ वैष्णवन की वार्ता मे छपे राजा आसकरण के पदो मे प्रयुक्त राग-रागिनियाँ

केदारो	६	विभास	४
कान्हरो	१	रामकली	२
गोरी	१		

कुल पद १४

गंग ग्वाल

छपे हुए वल्लभ सम्प्रदायी कीर्तन सग्रह (भाग १) में गगग्वाल का एक पद राग गौरी मे मिलता है ।[1]

प्रकाशित रूप में प्राप्त पद के अतिरिक्त उनका यही पद हस्तलिखित रूप मे लेखिका के देखने मे आया है जिसका विवरण नीचे दिया जाता है ।

1. हेरी हेरी रे भैया हेरी हेरी ॥धु०॥
हेरी दे किन गाव ही भलो बन्यो है काज ॥
रानी जसुमति ढोटा जायो आयो ब्रज में राज ॥१॥
पट पीरो प्योसार को रानी जसुमति पहरे ताहि ।
दामिनि के भोरे गयों मो मन धोखो आय ॥२॥
नेति नेति जासों कहे ध्यान न आवे रूप ।
सो या बाबा नंद के पर्यो देखियत सूप ॥३॥

हिंदी-सग्रहालय, हिंदी-साहित्य-सम्मेलन प्रयाग मे हस्तलिखित संग्रह में प्राप्त गगग्वाल का पद

प्रति सं० १४५५।२५५५, उत्सव के पद। इस सग्रह मे परमानंद, सूरदास, नंददास, हितहरिवश आदि विभिन्न कवियो के पद सग्रहीत है। ग्रथ अपूर्ण स्थिति मे है। इसी मे गंग ग्वाल का वही पद जो वल्लभ सम्प्रदायी कीर्तन-सग्रह भाग १ में मिलता है, कुछ पाठ-भेद के अन्तर से गौरी राग मे दिया हुआ है। इनका अन्य कोई पद देखने मे नही आया।

फूले फिरत गुवालिया बिप्रन बूझत धाइ।
कहा कुंवर को नाम है हमसो कहो सुनाइ ॥४॥

नामन की गिनती नहीं सबहिन के शिरताज।
पहलो तो सुनिलेहु भैया जाको नाम गरीब निवाज ॥५॥

बूढ़ी बांझ सबें श्रवे क्षीर प्रवाह बढ़ायो।
चाटत चरन गोपाल के मानो इनहीं को जायो ॥६॥

सब ग्वालिन मिलि मतो मत्यो करि मन में आनंद।
आवो पकरि नचाइये ब्रजपति बाबा नंद ॥७॥

ऊँचें मनि को चोंतरा तहां बैठे शिरदार।
देखत भरोसो लगे वाको चित उदार ॥८॥
लघु भैया पायन परे सकुचत है ब्रजराज।
उठि किन दादा नाचही पूत भयो है आज ॥९॥

नाचत बाबा नंद जू संग लिये सब ग्वाल।
मलकत थोंदा हालही देखि हँसीं ब्रजबाल ॥१०॥

एक ओर ब्रज ग्वालियाँ एक ओर सब पोनि।
पहरावत मधु मंगले या ब्रज की महतोनि ॥११॥

फूलि कह्यो वृषभान जू पूरब पुन्य सगाई।
कीरति कन्या होइगी तो देहों कुंवर कन्हाई ॥१२॥

भैया भैया कहि टेरियो कहा बड़े कहा छोट।
ठकुराई तिंहु लोक की दुरी अहीरन ओट ॥१३॥

यह पद गायो हेत सों गंग ग्वाल सुख पाय।
रोम रोम रसना करों तो मोपे वरन्यो न जाइ ॥१४॥

वर्षोत्सव-कीर्तन, (कीर्तन-संग्रह भाग १), पृ० ८३

पृ० ८७ पर पुनः गंगग्वाल का यही पद (कुछ शब्दों के हेर फेर से) राग गौरी में दिया है।

पिछले पृष्ठों पर की गई विवेचना से यह स्पष्ट है कि कृष्णभक्तिकालीन साहित्य मे सगीत की अनेक राग-रागिनियो का प्रयोग हुआ है । कृष्णभक्तिकालीन कवियों के द्वारा प्रस्तुत की गई पदावली-सामग्री की यदि समीक्षा की जाय तो इस समस्त संगीतमय काव्य को हम तीन कोटियो मे विभक्त कर सकते है ।

(१) इनमे से अधिकांश तो प्रचलित सामयिक संगीत-रूपो मे अभिव्यक्त है जो 'कृष्ण-भक्तिकालीन कवियो के समय मे प्रचलित राग-रागिनियाँ' शीर्षक प्रकरण मे सलग्न वर्गी-करण से ज्ञात हो जाता है । इस कोटि के अन्तर्गत निम्नलिखित राग-रागिनियाँ आती है ।

(१) आसावरी	(२) मुलतानी	(३) धनाश्री	(४) विभास
(५) देवगधार	(६) बिलावल	(७) सारंग	(८) भैरव
(९) पूर्वी	(१०) गौरी	(११) ललित	(१२) वसंत
(१३) मल्हार	(१४) टोडी	(१५) गुर्जरी	(१६) कल्याण
(१७) देशी	(१८) गंधार	(१९) कुरग	(२०) भीमपलासी
(२१) जयतश्री	(२२) मालश्री	(२३) पूरवी	(२४) मालव
(२५) श्री	(२६) त्रिवण	(२७) बिहाग	(२८) भैरवी
(२९) सोरठ	(३०) खंबावती	(३१) परज	(३२) मालकोस
(३३) नट	(३४) हिंडोल	(३५) इमन	(३६) जयजयवती
(३७) रामकली	(३८) सूहौ	(३९) मारू	(४०) केदारा
(४१) नटनारायण	(४२) अहीरी	(४३) सुघरई	(४४) भूपाली
(४५) कामोद	(४६) काफी	(४७) गुनकली	(४८) श्री हठी
(४९) गौड़	(५०) गुड	(५१) बिहागडा	(५२) देवगिरि
(५३) देसकार	(५४) रामगिरि	(५५) बसंती	(५६) सोरठी
(५७) अडाना	(५८) देवसाख	(५९) गंधारी	(६०) राइसौ
(६१) शकराभरण	(६२) हमीर	(६३) कर्नाट	(६४) वैराटी
(६५) पुरिया	(६६) टक	(६७) पट	(६८) कानरा
(६९) सिदूरा	(७०) सूहा	(७१) मालवगौरा	(७२) जंगला
(७३) झिझौटी	(७४) सामेरी	(७५) पचम	(७६) सिंध
(७५) मालवगोडी	(७८) बरारी		

(२) किन्तु कुछ थोड़े से पद प्राचीन परिपाटी के अनुसार पूर्व स्वीकृत किन्तु अप्रचलित राग-रागिनियों मे आबद्ध है । इस कोटि मे निम्नलिखित राग-रागिनियो वाले पद आते है –

(१) देशी तोडी	(२) श्री गोरी	(३) गौड़ सारंग
(४) गौड़ मलार	(५) मेघ मलार	(६) अलहिया[1]

---

१. लोचन कृत राग-तरंगिणी में इन राग-रागिनियों का उल्लेख किया गया है ।

(३) भक्त गायको द्वारा देश के विस्तृत क्षेत्र मे और विस्तृत काल मे जिस विपुल पदावली काव्य-साहित्य की सृष्टि हुई उसमे अनेक नवीन प्रयोगो का होना भी स्वाभाविक ही था क्योकि काव्य-परपरा के अनुसार ही हमारे देश की सगीत-परपरा भी अति प्राचीन, पुष्ट और प्रगतिशालिनी रही है। ऐसी दशा मे सम्पन्न और शाश्वत स्फूर्तिदायक वातावरण और आलबन को पा कर सगीत के क्षेत्र मे नवकलात्मक प्रयोग न किए जाते यह असंभव था। कृष्ण-भक्ति-कालीन साहित्य मे निम्नलिखित नवीन राग-रागिनियो का प्रयोग हुआ है –

(१) गुन सारग	(२) मलार कामोद	(३) बिलावल रामकली
(४) सूहा बिलावल	(५) गुड मलार	(६) राज्ञी हठीली
(७) अलहिया बिलावल	(८) श्री मलार	(९) सानुत
(१०) नायकी	(११) सकराभरन केदारो	(१२) पूरिया सारंग
(१३) मोजिला	(१४) मोतिला	(१५) सारग मलार
(१६) राज्ञी श्रीहठी	(१७) राज्ञी मलार	(१८) राज्ञी रामगिरि
(१९) सकीर्ण	(२०) स्याम गूजरी	(२२) पीलू
(२२) मुलतानी धनाश्री	(२२) नटनारायनी	(२४) षटपदी
(२५) सारंग मलार		

निश्चित रूप से यह तो नही कहा जा सकता कि कृष्ण-भक्ति-कालीन-साहित्य मे प्रयुक्त इन नवीन राग-रागिनियो की सृष्टि हमारे कृष्णभक्तिकालीन कवियों के द्वारा ही हुई थी अथवा उनके समसामयिक अन्य सगीताचार्यो द्वारा किन्तु कृष्णभक्तिकालीन कवियो के संगीत-ज्ञान तथा बहुमुखी प्रतिभा को देखते हुए यह भी संभव है कि इन नवीन राग-रागिनियों का सृजन हमारे इन कवियों के द्वारा ही हुआ हो।

कृष्णभक्तिकालीन कवियो से संबधित कुछ राग-रागिनियाँ ऐसी भी है जिनका प्रयोग उनके काव्य मे नही मिलता किन्तु प्रचलित जनश्रुतियो के आधार पर सगीताचार्य निम्नलिखित राग-रागिनियों को परपरा से निम्नलिखित कवियों द्वारा आविष्कृत मानते आये है –

सूरदास –(१) सूर की मल्हार[1] (२) सूर सारंग
मीरा –(१) मीराबाई की मल्हार

कृष्णभक्तिकालीन साहित्य मे प्रयुक्त राग-रागिनियो तथा उनकी सख्या के अध्ययन से कुछ विशेषताये दृष्टिगोचर होती है।

(१) कृष्णभक्तिकालीन कवियों को कुछ विशेष रागो से अधिक मोह था। उन्होंने

---

१. कुछ लोग इसे रामदास के पुत्र सूरदास मदनमोहन के द्वारा आविष्कृत मानते है, संगीत, अगस्त १९५०, पृ० ५३४

उनका अतिमात्रा मे प्रयोग किया है । कुछ रागो का नगण्य प्रयोग है तथा कुछ विशिष्ट राग ऐसे भी है जो किन्ही कवियों विशेष को ही आर्कषित कर सके है ।

कृष्णभक्तिकालीन प्रायः सभी कवियो ने 'सारग' राग का अतिमात्रा में प्रयोग किया है । परमानंददास, कुभनदास, चतुर्भुजदास, गोविन्दस्वामी, छीतस्वामी, सूरदास मदनमोहन, हितहरिवंश, व्यासजी, विट्ठलविपुल, बिहारिनदास, परशुराम, आसकरण इन सभी कवियो के प्राप्त पदो मे सबसे अधिक प्रयोग सारग राग का ही किया गया है । सूरदास, कृष्णदास, नन्ददास, गदाधर भट्ट, तथा श्री भट्ट के पदों मे भी क्रमश. बिलावल, कानरो, बिहाग, भैरो तथा केदारो के पश्चात् उनसे कुछ न्यून संख्या मे किन्तु अन्य सभी राग-रागिनियो से अधिक मात्रा मे सारंग राग ही प्रयुक्त हुआ है । हरिदास स्वामी के पदो में कान्हरो, केदारो, विभास और कल्याण के उपरान्त सारंग राग का ही अधिक प्रयोग है । इससे ऐसा ज्ञात होता है कि सारंग राग वृन्दावन के इन कृष्णभक्तिकालीन कवियो का अत्यधिक प्रिय राग था और उसके अतिमात्रा के प्रयोग के कारण ही उसी स्थान के नाम पर इस राग का नाम वृंदावनी सारंग पड गया है । इस तथ्य की पुष्टि इससे भी होती है कि कृष्णभक्तिकालीन कवियो के समय से पूर्व वृंदावनी सारग नामक राग का कही भी उल्लेख नही मिलता ।

सारंग के पश्चात् बिलावल, गौरी, कान्हरो, भैरव, धनाश्री तथा केदारो का प्रयोग अधिक मिलता है । किन्तु इनमे भी बिलावल सूरदास का, गौरी चतुर्भुजदास तथा हितहरिवश का, कान्हरो कृष्णदास तथा हरिदास स्वामी का, भैरव गदाधर भट्ट का, धनाश्री बिहारिनदास का और केदारो श्री भट्ट का सबसे अधिक प्रिय राग रहा है। इन रागो से कुछ कम मात्रा में ईमन, नट, तोड़ी, रामकली, आसावरी, वसत, मल्हार, देवगधार, विभास और कल्याण का प्रयोग किया गया है । मालकोश, पूर्वी, ललित, गुर्जरी, श्री, परज, बिहाग, कान्हरा, भूपाली, अडानो, मारू, बिहागरो, काफी, जयतश्री, नायकी, भैरवी, मालव, सोरठ का प्रयोग न्यून सख्या में किन्तु अधिकाश कवियो के द्वारा हुआ है । मुलतानी का प्रयोग सूरदास तथा हितहरिवश के पंचम का श्री भट्ट तथा नंददास के, षट का व्यास तथा नंददास के, गौड़ी का कृष्णदास तथा परशुराम के, रामश्री का कृष्णदास तथा चतुर्भुजदास के, नटनारायण का सूरदास तथा चतुर्भुज-दास के, जयजयवंती का सूरदास, नंददास तथा सूरदास मदनमोहन के, सूहाबिलावल का सूरदास, व्यास, बिहारिनदास के, गुड का सूरदास तथा परशुराम के, शंकराभरण का सूरदास तथा श्री भट्ट के, हमीर का सूरदास तथा गदाधर के और सूहौ, कामोद, देवगिरि तथा अल-हिया बिलावल का सूरदास तथा व्यास जी के ही पदो में प्रयोग किया गया है ।

कुछ राग-रागिनियाँ ऐसी भी मिलती है जिनका प्रयोग केवल एक ही कवि के द्वारा किया गया है । यथा –

सूरदास –जंगला, अहीरी, सुघरई, मलार, कामोद, वैराटी, बिलावल, रामकली, गुनकली, गुन सारग, सानुत, श्री हठी, नटनारायनी, गुडमलार, गौड़, पुरिया, मेघ मलार

भूपाल, देसकार, रामगिरि, झिझौटी, बसंती, राझी हठीली, राझी श्रीहठी, खवावती, राझं मलार, राझी रामगिरि, श्री मलार सूहा, सोरठी, देवसाख, गधारी, अलहिया, कुरग, देसाख सकीर्ण और कर्नाट ।

चतुर्भुजदास –सामेरी

गोविन्दस्वामी –शंकराभरण केदारो

गदाधर भट्ट –राइसो

व्यासजी –मोजिला, मोतिला, स्याम गूजरी, पूरबी सारंग, गान्धार

हरिदास –बरारी

किन्तु इन राग-रागिनियों मे प्रयुक्त पदों की सख्या बहुत थोड़ी है ।

(२) फारसी तथा भारतीय रागो के समन्वय से आविष्कृत रागो मे केवल 'ईमन राग' का ही प्रयोग कृष्णभक्तिकालीन साहित्य मे मिलता है ।

(३) कृष्णभक्तिकालीन साहित्य के अन्तर्गत एक ही राग के नाम को विकृत करके कई प्रकार से प्रयोग किया गया है । यथा –

(१) धन्यासी, धनासी, धनाश्री, धन्यासिरी, धनासिरी, धनासरी
(२) अडानो, अडानौ, अडाना
(३) गोरी, गौरी
(४) बिहागरो, बिहागरौ, बिहाग, बिहागडा, बिहागड़ौ
(५) केदारो, केदारौ, केदारा, केदार
(६) इमन, ईमन
(७) जयतश्री, जैतश्री
(८) भूपाल, भोपाल, भूपाली, भोपाली
(९) जयजयवंती, जैजैवंती
(१०) मालवगौरी, मालवगौड़ी, मालवगौरा
(११) मालव कौशिक, माल-कोश, मालकोस
(१२) कान्हरा, कान्हरो, कान्हरौ, कानरो, कान्हडो
(१३) पूरवीं, पूर्वी, पुरबी,
(१४) मारू, मरवो
(१५) सूहौ, सूहा
(१६) असावरी, आसावरी
(१७) भैरो, भैरव, भैरू
(१८) देसाख, देवसाख, देशाख

(४) कुछ नाम ऐसे भी मिलते है जो राग की श्रेणी में नही रखे जा सकते यथा होली, धमार, नटनारायण तथा चर्चरी ।

होली तथा धमार कोई विशेष राग नही हैं वरन् ध्रुपद, ख्याल आदि की तरह शैलियाँ विशेष है । नटनारायण की गणना अवश्य राग की कोटि में की जाती है किंतु चर्चरी एक ताल विशेष का नाम है । ऐसा प्रतीत होता है कि संभवतः संकलन कर्त्ताओं ने भ्रमवश इन नामों का राग-रागिनियो की कोटि में उल्लेख कर दिया है । यह भी संभव है कि होली का विशेष प्रचलन होने के कारण होली शब्द किसी विशेष धुन अथवा राग का व्यजक हो और इस कारण राग के स्थान पर इसका उल्लेख साम्प्रदायिकता का व्यंजक बन गया हो परन्तु चर्चरी तथा धमार को किसी भी प्रकार राग का व्यंजक नही माना जा सकता ।

कृष्णभक्तिकालीनसाहित्य संगीत की अनेको राग-रागिनियों का अमूल्य कोष है। कृष्णभक्तिकालीन कवियों ने पूर्ववर्ती तथा अपने समय मे प्रचलित राग-रागिनियो को तो अपनाया ही साथ ही अपनी सर्वतोन्मुखी प्रतिभा से नवीन राग-रागिनियों का संयोग करके सगीत-श्री की अभिवृद्धि की । इन कवियों ने राग-रागिनियों के द्वारा जिस संगीत काव्य के प्रासाद का निर्माण किया उसमे प्राचीनता, मौलिकता तथा नवीनता का अमर समन्वय किया है । इन कवियो ने अपने काव्य मे इतनी अधिक राग-रागिनियो का समन्वय किया कि उनके स्वरों मे वह स्वर्गसंगीत छिड़ा कि उनकी स्वरलहरी से सम्पूर्ण काव्योपवन लहरा उठा। संगीत की जो धारा इन कवियों ने बहाई है पूर्ववर्ती अथवा परवर्ती साहित्य उसकी समता नही कर सकता ।

षष्ठ अध्याय

कृष्णभक्तिकालीन साहित्य की समीक्षा संगीत-सिद्धांतों के निकष पर

रस और राग-सिद्धान्त

रसानुराग मनुष्य मात्र मे नैसर्गिक रूप से है । "मानव गोरा हो या काला, पूर्व का हो या पश्चिम का, उच्चवर्ग का हो या निम्नवर्ग का, पंडित हो या अपडित, यदि किसी अश मे भी मानव-संज्ञा को सार्थक करता है तो मानवोचित प्रेरणा से वह नितांत शून्य कदापि नही हो सकता । उसका हृदय विशाल हो या संकुचित, बुद्धि तीव्र हो या मन्द, यदि उसके शरीर मे मानवरक्त का सचार है तो रसोद्रेक अनिवार्य चेतना है ·····।"[1] इसे ही काव्य-शास्त्रियों ने 'व्यसन' कहा है । काव्य मे रस-चैतन्य की क्रिया जिस प्रकार अर्थ-चमत्कार और उपयुक्त स्वर-साहचर्य के माध्यम से साधी जाती है उसी प्रकार सगीत मे रस-चेतना का विकास विशुद्ध ध्वनि के माध्यम से सधता है ।

राग और रस का गहन संबंध है । राग का वास्तविक अर्थ है भावना ।[2] प्रत्येक राग विशिष्ट भावनाओं से संबधित माना जाता है क्योकि प्रत्येक राग की सृष्टि विशिष्ट स्वरो के मेल से होती है और विशिष्ट स्वरो मे विशेष भावो को प्रकट करने की शक्ति निहित रहती है । जिस प्रकार वाणी के विभिन्न उच्चारणों से विभिन्न भाव प्रकट होते है अर्थात् अधिक जोर से बोलने पर लडने, झगड़ने, हँसने और चाचल्य का भाव प्रकट होता है, मन्द-वाणी से दैन्य, माधुर्य, धैर्य, शाति आदि गुण प्रदर्शित होते है उसी प्रकार सगीत मे भी विभिन्न स्वरों के गायन से विभिन्न भाव प्रदर्शित होते है । "संगीत के श्रोता प्रायः यह पूछा

---

१. काव्य-चर्चा, ललितप्रसाद सुकुल, पृ० १२६

2. "Rag means passion, emonion and feeling."
Sangit of India, Atiya Bagum, Page 50.

करते हैं कि गाने वाले एक ही शब्द को बार-बार दुहराते क्यो है ? उत्तर यह है कि यद्यपि शब्द एक ही होता है तथापि प्रत्येक बार जिन स्वरो मे वह शब्द गाया जाता है वे भिन्न होते है और भिन्न-भिन्न भावों को व्यक्त करते है। उदाहरण के लिए एक छोटा सा शब्द लीजिए 'सुनो'। देखिए, बोलने मे भिन्न-भिन्न भावो के अनुसार एक इसी 'सुनो' शब्द की ध्वनि किस प्रकार बदलती है। जब हम साधारण रीति से किसी का ध्यान अपनी बात की ओर आकृष्ट करना चाहते है तो कहते है 'सुनो'। जब हम अनुनय-विनय के साथ किसी को सुनने के लिए कहते है तब ध्वनि बदल जाती है और हम कहते है 'सुनो ....'। जब हम भय प्रदर्शन करना चाहते है तब उसी 'सुनो' शब्द की ध्वनि फिर बदल जाती है। जब हम हृदय की वेदना व्यक्त करना चाहते है तब उसी 'सुनो' शब्द की ध्वनि फिर बदल जाती है। नाटक में कुशल अभिनेता भिन्न-भिन्न ध्वनियो से भिन्न-भिन्न भाव प्रकट करता है। संस्कृत के साहित्यकार भिन्न-भिन्न ध्वनियो से भिन्न भावो को व्यक्त करने की कला को 'काकु' कहते हैं। जैसे साहित्यदर्पणकार ने लिखा है 'भिन्नकठध्वनिधीर· काकुरित्यभिधीयते'। जब साधारण ध्वनि मे एक ही शब्द के द्वारा भिन्न-भिन्न भाव व्यक्त करने की इतनी शक्ति है तो स्वर मे जो कि सुनियमित और सुव्यवस्थित ध्वनि है कितनी शक्ति होगी इसकी आप स्वयं कल्पना कर सकते है। जैसे ध्वनि का 'काकु' होता है उसी प्रकार स्वर का भी 'काकु' होता है जिसे कि एक कुशल गायक तरह-तरह से व्यक्त करता है। अब मैं उसी 'सुनो' शब्द को वागेश्वरी राग के एक गान मे भिन्न-भिन्न रूप से विश्लेषण करता हूँ। गान है 'टेर सुनो ब्रजराज दुलारे'। इसमे ध्यान से देखिएगा 'सुनो' पहले एक हलके खटके के साथ गाया जायगा मानो जैसे कोई 'सुनने' के लिए अपनी ओर ध्यान आकृष्ट कर रहा हो। इसके अनन्तर 'सुनो' इस ढंग से गाया जायगा जिमसे करुणा व्यक्त होगी। फिर 'सुनो' शब्द को, स्वरो के बिना तोले हुए, तीन लपेट मे गाया जायगा जिससे यह व्यक्त होगा कि कोई करुणापूर्ण विनय के साथ झूम-झूमकर किसी को सुनने के लिए मना रहा हो। फिर 'सुनो' को इस प्रकार गाया जायगा जिससे यह व्यक्त होगा कि अब कोई मचल-मचल कर सुनने के लिए अभ्यर्थना कर रहा हो। अन्त मे 'सुनो' एक छोटी तान के साथ गाया जायगा, जिससे हृदय की व्यथा एक व्यग्रता के साथ व्यक्त होगी।" [१]

उक्त उदाहरण से दृष्टव्य है कि प्रत्येक राग स्वरो के माध्यम से भावों को व्यक्त कर विशेष वातावरण की सृष्टि करके विशेप रस की उत्पत्ति करता है। स्वरो के संयोजन, प्रयोग, संकोचन, विश्राति, उतार, चढाव, खटका, लपेट, कम्प, आस, सास आदि द्वारा विशिष्ट भावो के प्रगटीकरण से विशिष्ट रसो की उत्पत्ति होती है।

विविध प्रकार के रसोद्रेक का सहज प्रभाव मनुष्य ही क्यो प्राणी मात्र की वाणी पर पड़ना अवश्यम्भावी प्रक्रिया है। इसी से हमें यह वैज्ञानिक सकेत मिलता है कि वाह्य स्वर-लहरी भी अन्तर् मे निहित रसात्मक व्यसन को उत्तेजिन करने मे अचूक सिद्ध होती है।

---

१. संगीत, अप्रैल, १९५५, संगीत सुनने की कला, ठाकुर जयदेवसिंह, पृ० ३–४

यही है संगीत की शक्ति कि सगीत-कला का ज्ञाता स्वरो के आरोह और अवरोह के माध्यम से यथा अवसर अभीप्सित रस-चेतना श्रोता मे जागृत कर सकता है ।

भारतीय सगीत के सातो स्वर रस प्रधान माने गए है । नाट्य-शास्त्र मे भरत मुनि ने कहा है –

"हास्य और श्रृंगार मे म तथा प , वीर, रौद्र तथा अद्‌भुत मे सा और रे , करुण रस मे ग तथा नि और वीभत्स तथा भयानक रस मे ध स्वरो का प्रयोग करना चाहिए ।"[1]

सगीत-रत्नाकरकार ने भी प्रत्येक स्वर को विशिष्ट रस से सबधित माना है –"सा और रे वीर, अद्‌भुत और रौद्र रस को ध, वीभत्स तथा भयानक रस को ग और नी करुण को तथा म और प हास्य एवं श्रृगार रस को उद्दीप्त करते है ।"[2] सगीत-मकरन्द के अनुसार "षडज में अद्‌भुत तथा वीर, ऋषभ मे रौद्र, गाधार मे शात, मध्यम मे हास्य, पचम मे श्रृगार, धैवत मे वीभत्स और निषाद मे करुण रस होता है ।"[3] अहोबल पंडित ७ स्वरो का नवरसो के अन्तर्गत वर्गीकरण करते हुए कहते है – "षडज हास्य रस में, मध्यम श्रृंगार मे होता है तथा धैवत वीभत्स रस मे और निषाद करुण रस मे एवं पचम भयानक रस मे होता है । ऋषभ श्रृंगार मे और गाधार हास्य रस मे होता है ।"[4]

---

१ हास्यश्रृंगारयोः कार्यौ स्वरौ मध्यम पंचमौ ।
षडजर्षभौ च कर्त्तव्यौ वीर रौद्राद्‌भुतेष्वथ ।।
गांधारश्च निषादश्च कर्त्तव्यौ करुणे रसे ।
धैवतश्च प्रयोक्तव्यौ वीभत्से च भयानके ।।
नाट्य-शास्त्र, भरत, सं० बटुकनाथ शर्मा तथा बलदेव उपाध्याय,
एकोनत्रिंशत्तमोऽध्यायः, पृ० ३३१, श्लो० सं० १७-१८

२. स री वीरोऽद्‌भुते रौद्रेधो वीभत्से भयानके ।
कार्यौ ग नी तु करुणे हास्य श्रृंगारयोर्मपौ ।।
संगीत-रत्नाकर, शार्ंगदेव, प्रथम भाग, सं० पं० एस० सुब्रह्मण्य शास्त्री, पृ० ९६, श्लो० सं० ५९

३. षडजस्याऽद्‌भुतवीरौ च ऋषभस्य च रौद्रकः ।
गान्धारस्य च शान्ति च हास्याख्यं मध्यमस्य च ।।
पंचमस्य च श्रृंगारो वीभत्सो धैवतस्य च ।
करुणा च निषाद्रस्य सप्तस्थान रसा नवं ।।
संगीत-मकरन्द, नारद, सं० मंगेश रामकृष्ण तेलंग, श्लो० सं० ४७-४८

४. स–मौ हास्ये च श्रृंगारे स्वरौ स्यातां तथा ध नी ।
पो वीभत्से तथा दैन्ये भयानक रसे भवेत् ।
रसे श्रृगारके रिः स्याद्‌गान्धारो हास्यके पुनः ।।
संगीत-पारिजात, अहोबल, पृ० २६, श्लो० सं० ९४

यद्यपि प्रत्येक स्वर मे रस-भाव का सचरण तो अवश्य होता है किन्तु रस का वास्तविक रूप अथवा पूर्ण अनुभव विभिन्न स्वरो के मेल मे ही होता है। यह तो नितात सत्य है कि रसों के स्थायी भाव सगीत के स्वरो में पाये जाते है। रसानुकूल विभाव, अनुभाव, सात्विक और सचारी भाव भी सगीत के स्वरो मे निहित हैं किन्तु रस की पूर्णत व्यजना तभी हो सकती है जब कि स्वरों का मेल स्थापित हो जाय। प्राचीन काल मे जब सगीत के रागो की उत्पत्ति नही हुई थी। रागो के रूप मे जातियाँ प्रचलित थी। उस समय ये जातियाँ ही विभिन्न रसो की अवतारणा करती थी और उन्ही के माध्यम से रस की सृष्टि की जाती थी। कालातर मे रागो ने यह स्थान ले लिया।

सृष्टि के प्रत्येक पदार्थ के दो पक्ष हैं। सृष्टि ही क्यो स्वय पुरुष और शक्ति के भी मधुर और प्रचंड पक्ष है। हमारे सगीत के भी ये दो पक्षहै जो सु ख-दुख, रुदन-हास, प्रेम-भय, आसक्ति अनासक्ति की ओर इगित करते है। सगीत मे आँसू ही आँसू अथवा करुणा ही को प्रगट करने की एकमात्र शक्ति नही वरन् उसके द्वारा प्राय प्रत्येक रस[1] का सफल अनुभव कराया जा सकता है। सगीत की सृष्टि मे जहाँ माधुर्य रस की सरिता है वहाँ वीर-करुण आदि रसो के सागर भी प्रस्तुत है। "साहित्य का इतिहास इसका साक्षी है कि संसार न केवल हर्ष या प्रेम के क्षणो मे ही गाता रहा है वरन् करुण, वीर वाँ भयानक रसो का उद्रेक भी उसके कण्ठ से उसी प्रकार गीत को प्रवाहित कर सका है। प्रेम-विह्वल हृदय यदि गीत मे सुख पाता है तो वही करुणा से द्रवीभूत होकर गीत मे सहानुभूति एव शाति का अनुभव करता है, परन्तु वीरता के उद्रेक मे रौद्र और भयानक का पुट पाकर उसी गीत के द्वारा उत्साह, साहस और शौर्य का सन्देश प्राप्त करता है।"[2] प्रत्येक राग लयरूप मे श्रृंगार, करुण, वीर आदि किसी रस की ओर सकेत करता है। यदि श्री राग श्रृंगार का प्रतीक है तो भैरव वैराग्य का। राग नटनारायण मे सगीत यदि भयानक शक्ति, साहस और वीरता का रूप धारण करता है तो करुणा के आवेश मे सगीत दो बूँद आँसू बन कर सोहनी के रूप मे बह निकलता है। मालकोश के स्वरो मे करुण रस उत्पन्न करने की महान शक्ति है तो शुद्ध कान्हडा या दरबारी गंभीर और संयत राग है। अड़ाना मे चंचलता है तो सोहनी मे चपलता। नीरव निशीथ मे विरह की निस्तब्धता का आह्वान पंचम राग के द्वारा परिस्फुट होता है तो मेघ राग से हृदय उल्लास, आशा और हर्षातिरेक से उद्वेलित हो जाता है। "हम लोगो का गान भारतवर्ष की नक्षत्र-खचित निशीथिनी को भाषा देता है, हम लोगो का गान घन-वर्षा की विश्वव्यापी विरह-वेदना और नव वसन्त की वनान्त प्रसारित गभीर उन्मादना की वाक्य-विस्मृत

---

१. "क्या संगीत में नव रसों को प्रकाशित करने की शक्ति है, इस विषय पर संगीताचार्यों में मत-भेद है।

२. काव्य-चर्चा, ललिताप्रसाद सुकुल, पृ० ३७-३८

विह्वलता है ।"[१] कहने का तात्पर्य यह है कि प्रत्येक राग किसी न किसी विशेष रस का सचरण करता है और इस रसश्री की उपलब्धि मे मानव अपने आपको विस्मृत कर देता है । आकाशवाणी से प्रसारित वार्ता मे श्री सुमित्रानदन पत के यह पूछने पर कि "विशेष रस के लिए विशेष रागिनियाँ होती है, क्या यह सत्य है ?" प० ओंकारनाथ जी ठाकुर ने भी यही कहा था कि "यह नितात सत्य है । प्रत्येक राग विशेष रस के लिए होता है । प्रकृति से पाई हुई यह बात है पर उच्चारण भेद से, आवाज़ की लगान से उसकी फ़्रीक्वेन्सी भिन्न-भिन्न रेशो के द्वारा भिन्न-भिन्न परिणाम आ सकते है ।"[२]

संगीत मे रस का विवेचन करते हुए इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि एक राग कई रसों के अन्तर्गत आ सकता है । करुण तथा वियोग शृंगार के अन्तर्गत आने वाले राग बहुत कुछ समान भी हो जाते है परन्तु इसका कारण केवल अभिव्यक्त करने का अपना अलग-अलग ढग है । सारग और मल्हार रागो में दोनो रसो की समान अभिव्यक्ति होती है । दरबारी को शृंगार तथा भक्ति रस दोनो के अन्तर्गत रख सकते है । मालकोश हृदय द्रावक राग है। उससे शात तथा भक्ति दोनो रसो की निष्पत्ति होती है । इसी प्रकार सैंधवी, वीर और करुण; गौड़ी, गौड़ तथा धल्लासिका वीर और शृंगार, देशी विरक्ति के भाव तथा करुण रस दोनो की अभिव्यक्ति करता है ।

रागो से उत्पन्न होने वाले रस को हम दो भागों मे बॉट सकते है, (१) मृदु तथा (२) उदात्त । कुछ रागों की रस-प्रतीति मे मार्दव गुण रहता है तथा कुछ रागो मे उदात्तता । कल्याण, ईमन, भैरवी, पीलू तथा बागेश्वरी रागो की ध म अथवा म प ध ग मे करुण-अभ्यर्थना निहित है । भैरव, मालकोस आदि रागों में सम की सगति श्रोताओं को प्रबुद्ध सा करती है । दरबारी आदि रागो में उदात्तता है । वात, पित्त तथा कफ के स्वरो के कारण ही राग-रागिनियों मे विभिन्न प्रभाव भरा हुआ है । किसी भी पद को आप बिहागडा, विहाग, खमाज, यमन, कल्याण आदि पित्त-प्रकृति का प्रभाव रखने वाली राग-रागिनियो के अन्दर गाते-गाते फिर एकदम से भैरव, कालिगडा, जोगिया, परज, विभास आदि की कफ-प्रकृति की राग-रागिनियो मे वे ही पद गाने लगें तो क्षण मात्र में ही गाने वाले का तथा श्रोताओं का भाव परिवर्तित हो जायगा । पद का भाव चाहे शृंगार रस से ही परिपूर्ण क्यों न हो किन्तु कफ-प्रकृति की राग-रागिनियाँ उस पद का शृंगार रस दूर करके अपना शीतांग प्रभाव अवश्य डाल देगी अर्थात श्रोतागणो और गायकों को स्वयं वही पद रीना, भीना, शीताग स्वर मे डूबा हुआ प्रतीत होगा । इसी भाँति चाहे रौद्र अथवा भयानक रस का ही पद क्यो न हो किन्तु पित्त प्रकृति की राग-रगिनियों मे गाने से वही पद शृगार रस के समान आनंद प्रदान करने वाला प्रतीत होगा ।

---

१. विशाल-भारत, सितम्बर १९३५, गान-रचयिता रवीन्द्रनाथ, हजारीप्रसाद द्विवेदी, पृ० ३०७

२. संगीत, मार्च, १९५२, पृ० २५०

अत राग का निर्देश पात्र की तात्कालिक प्रकृति तथा पद के रस के अनुकूल होना चाहिये। यदि गायक श्रृगार रस के पद का उसके प्रतिकूल रौद्र तथा वीर रस के राग मे गायन करे तो उसमे श्रृगार की भावना का प्रगटीकरण कैसे हो सकता है। उदाहरणस्वरूप कोई गोपी विरहाकुल होकर श्रीकृष्ण के वियोग मे गाती है –

निसदिन बरसत नैन हमारे।

यह गीत यदि खमाच, भैरव अथवा भीमपलासी राग मे बाँधा गया तो इसका कुछ भी प्रभाव न होगा और रस-दोष हो जायगा। किन्तु यही पद यदि गौड मल्हार मे गाया जाय तो निश्चित रूप से इसका प्रभाव ठीक पड़ेगा और दर्शक भी गीत के शब्दो और राग की ध्वनियों के मेल से उत्पन्न रस की तीव्रतम अनुभूति कर सकेंगे। पद मे निर्दिष्ट राग का प्रभाव श्रोता पर यह पडना चाहिए कि वह उसे सवेदनशील बना कर उसमे उसी रस तथा भाव की सृष्टि करे जिससे सगीत प्रेरित हुआ है; पद को दिया हुआ राग पद के रस को उसी भाँति व्यक्त कर दे, ऐसा न हो कि विरह के पदो को सुनने से कभी आनद की अनुभूति हो जाय तो कभी भय की। राग और रागिनियो के रस-भाव को देखकर उसकी यथार्थ अनुभूति पाकर तदनुसार और तदनुकूल गीत पद्य का चुनाव होना चाहिये। कवि-गायक को पद निबद्ध करने तथा गाने के पूर्व पद के रस तथा शब्द क्या कहना चाहते है इनका सूक्ष्म अध्ययन कर लेना चाहिये और तब उपयुक्त रस वाले राग का चयन करके उस पद को बाँधना चाहिये। काव्य के अनुकूल रस वाले राग की अवतारणा करने से श्रोताओ के हृदय मे ठीक उसी रस की तीव्र अभिव्यक्ति होगी जिससे पद और राग के भाव सबधित है अत गायक कवि को रागों की रस-शक्ति का पूर्ण ज्ञान होना अनिवार्य है।

राग, ऋतु और समय सिद्धांत –

भारतीय सगीत मे राग-रागिनियो की प्राण-प्रतिष्ठा ऋतु और कालो के अन्तर्गत की गई है। हमारे सगीत का ध्येय कभी भी केवल उत्तेजना प्रदान करना, नूतन तथा विभिन्न ध्वनियो के मेल द्वारा श्रोतागण को अवाक्, आश्चर्यचकित कर देना ही नही है। भारतीय संगीत का चरम लक्ष्य धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष रहा है इसीलिए भारतीय जीवन में सगीत-कला लौकिक अनुरंजन की सीमा तक ही आबद्ध न रह कर चरम साधना का माध्यम स्वीकृत हुई। साधना पक्ष का व्यवहार सदा से ही निसर्गबद्ध रहा है। वहाँ की प्रत्येक क्रिया पग-पग पर प्रकृति की आश्रयभूता होती है। अस्तु भारतीय संगीत मे कुछ राग ऋतुकालीन (मौसमी) माने गए है अत उन रागो को विशेष ऋतु में गाने का विधान है। उन रागो के गायन की ऋतु नियमित है और वे राग अपनी विशिष्ट ऋतु मे ही गाये जाते है।

जहाँ एक ओर रागों को विशेष ऋतुओ में गाने का विधान मिलता है वही दूसरी ओर रागों का संबंध विशिष्ट समय से भी स्थापित किया गया है। रागो का गायन-समय भी नियमित है और प्रत्येक राग दिवस अथवा रात्रि मे अपने निर्धारित समय पर गाया जाता है।

भारतीय पद्धति के अनुसार ऋतु तथा समयानुकूल गायन-सिद्धांत निरर्थक कल्पना मात्र ही नही हैं वरन् इस क्रम-स्थापन के अन्तर्गत महान रहस्य निहित है । इस सिद्धात का रहस्य प्रकृति की लय के रहस्य पर आधारित हैं । शब्दो की लहरो पर अंधकार और प्रकाश का प्रभाव भिन्न-भिन्न पडता है । कुछ शब्द प्राकृतिक कारणो से सुगम सुनाई देते है और कुछ कठिनता से सुने जाते है । शब्दमंडल मे अनेक तरगे उठती हैं, उनके प्रवाह का रूप भिन्न-भिन्न ऋतुओ और समयो मे भिन्न-भिन्न होता है । हमारे प्राचीन सगीताचार्यो ने प्रकृति का गहन अध्ययन किया था और वे प्रकृति के नियमो से भली-भाँति परिचित थे । उन्होने ध्वनि सबंधी गहन तथा गोपनीय रहस्यो का उद्घाटन किया और इस तथ्य का पता लगाया कि विशेष ऋतु तथा काल मे विशिष्ट ध्वनियाँ विशिष्ट स्वर-समुदायो से एकता, अनुरूपता तथा सामजस्य रखती है । और फिर उन्होने प्रकृति के अनुरूप स्वरो को व्यवस्थित कर लिया । भारतीय सगीतज्ञो के मतानुसार रागो मे कुछ ऐसे प्राकृतिक तथा स्वभावजन्य गुण होते है जो उन्हे विशेष ऋतु से सबधित करते है । अर्थात् सगीत मे कुछ स्वर ऐसे होते है जिनकी प्रकृति तीक्ष्ण, तेजस्वी, उग्र तथा अग्निमय होती है । जिन रागों मे इन स्वरो की प्रधानता या अधिकता होती है वे अपनी प्रकृति से मेल खाते हुए समय मे अर्थात् ग्रीष्म के मासो मे गाए जाते है। इसके विपरीत जो राग जाडे के मौसम मे गाए जाते है उनमे उन स्वरो को प्रधानता तथा महत्व प्रदान किया जाता है जो शीतलता, उदासीनता आदि गुणो से युक्त होते है ।

प्रत्येक राग विशिष्ट भावनाओं से संबधित होने के कारण अपना विशिष्ट वातावरण उपस्थित करता है । अतः प्रत्येक राग को उस वातावरण से सबंधित विशेष समय पर ही गाया जाता है । उष.काल का वातावरण शात, सुखद, शीतल तथा आनंदप्रद होता है, हृदय चिन्तामुक्त हो जाता है और सात्विक भावनाओ से परिपूर्ण रहता है । अत उस समय ऐसे राग गाए जाते है जो भक्तिपूर्ण, ईश्वर की उपासना से सबधित, त्याग-परिपूर्ण, अचचल तथा अतीव्र (धीमे) होते है । दुपहरी के वातावरण की तीव्रता के साथ रागो मे भी चचलता बढती जाती है । दिन भर की थकान से व्यथित मनुष्य सध्या-समय मनोरजन तथा चित्त को प्रफुल्लित करने के लिए शृंगारमय वातावरण और शृगारिक भावनाओ का आश्रय ग्रहण करता है अत संध्याकालीन गाये जाने वाले रागों मे शृगार रस प्रधान हो जाता है । नीरव रजनी के अंधकार के साथ ही वातावरण मे निस्तब्धता तथा भयानकता का सचार होने लगता है अतः इस समय जो राग गाये जाते है वे भयानक, रौद्र आदि रसो से सबधित होते हैं । स्वप्नो के ससार में विचरण करते हुए प्राणी नीद मे मस्त सोते है । रात्रि व्यतीत हो चली है किन्तु विरहिणी के नेत्रों में नीद कहाँ । उसकी वेदना और उसकी व्यथा अश्रु बन कर निरंतर बहती ही जाती है । इस समय करुण रस प्रधान रागों का गायन हृदयस्पर्शी प्रतीत होता है । अत प्राचीन आचार्यों ने प्रात., मध्याह्न, सायं एवं रात्रि के तापमान वातावरण का अभ्यास करने के उपरान्त रागों के गायन-समय निश्चित किये है ।

ऋतु तथा समयानुकूल गायन-सिद्धांत का यह अर्थ कदापि नही कि अपने निश्चित

समय के अतिरिक्त राग अन्य किसी समय गाए ही नही जा सकते। समय के नियम को परिस्थितियो के अनुसार शिथिल कर देने की प्रथा पूर्वकाल से प्रचलित दिखाई देती है। संगीत-मकरन्द मे कहा गया है –

विवाह् समये दान-देवतास्तुति संयुते
अवलरागमाकर्ण्य न दोषो भैरवीं विना ॥[1]

लोचन कवि ने अपनी रागतरंगिणी में कहा है –

दशदंडात्परं रात्रौ सर्वेषां गानमीरितम् ।
रंगभूमौ नृपाज्ञायां कालदोषो न विद्यते ॥[2]

दर्पणकार ने भी कहा है –

यथोक्तकाल एवैते गेयाः पूर्वविधानतः ।
राजाज्ञया सदागेया नतु कालं विचारयेत् ॥[3]

इनसे विदित होता है कि दशदंड रात्रि के उपरान्त (लोचन कवि के मतानुसार) विवाह, दान, देवतास्तुति, रंगभूमि तथा राजा की आज्ञा से किसी भी समय कोई राग गाया जा सकता है। यह भी कहा गया है कि कोई मोह या लोभ से असमय भी राग गा दे तो गुर्जरी रागिनी गा लेने से दोष का परिहार हो जाता है।

किसी कवि ने कहा है –

नीकी पै फीकी लगे बिन अवसर की बात ।
जैसे बरनत युद्ध मे रस रंग कछु न सुहात ॥

ठीक यही हाल रागो का है। प्रत्येक राग अपने लालित्य मे अद्वितीय है किन्तु अपने नियमित समय के विपरीत गाये जाने पर वही राग अत्यधिक कर्णकटु प्रतीत होने लगता है। ऊष काल में भैरवी के स्वर अत्यधिक मधुर प्रतीत होते है। रात्रि में उसकी क्या आवश्यकता। रात्रि मे तो विहाग का स्वर ही उचित है। रात्रि मे भैरवी को गाते सुन उर्दू-शायर का यह शैर स्मरण हो आता है –

शिक़वा करते हो तुम सुहाग के वक़्त ।
भैरवी गाते हो तुम विहाग के वक़्त ॥

---

१. संगीत-मकरन्दः, नारद, सम्पादक मंगेश रामकृष्ण तेलंग, संगीताध्याये तृतीयः पादः, पृ० १६

२. राग-तरंगिणी, लोचन, पृ० १३

३. संगीत-दर्पण, दामोदर, पृ० ७६, श्लोक संख्या २६

समय विशेष में राग विशेष के गाये जाने से चित्त पर अधिक प्रभाव पड़ता है । आज के युग मे यद्यपि योरोप के कतिपय पंडितों तथा हमारे देश के भी कुछ विद्वानों का मत है कि समय के नियम को स्थापित करने मे कोई अर्थ नही है किन्तु हमारे प्राचीन संगीताचार्यों ने समय-सिद्धांत का प्रतिपादन किया है । संगीत-मकरन्द में तो यहाँ तक कहा गया है कि "रागों को असमय गाने से उनकी हत्या हो जाती है तथा जो उनको सुनता है वह दरिद्रता को प्राप्त हो जाता है और उसका नाश हो जाता है" ।[1] तरंगिणीकार ने भी रागो के समयानुकूल गाने का समर्थन करते हुए कहा है कि समय के उपयुक्त गीत गाने से वह मधुर प्रतीत होता है ।[2]

राग की प्रकृति, गुण तथा प्रभाव

संगीत की राग-रागिनियों के रस भाव तथा समयानुकूल गायन में वह आश्चर्यजनक शक्ति निहित है जो संसार के सजीव और निर्जीव पदार्थों, जड़ तथा चेतन दोनों मे परिणाम (Change) उत्पन्न कर एक निश्चित कार्य करने तथा विशिष्ट प्रभाव उत्पन्न करने मे समर्थ होती है । गायनाचार्य पं० विष्णुदिगम्बर जी ने रागो के कार्यों के विषय पर विचार करते हुए कहा है –"रागो के कार्यो के विषय मे जो प्रवाद है उन्हे असंभव नही कहा जा सकता । गान-वाद्य करते समय किवाड़ के काँच तड़कते हुए मैंने स्वयं देखा है । वाद्यों में पचीसों तार होते है, जो तार मिले हुए होते है वह एक दूसरे से दूर होने पर भी एक को छेड़ने से दूसरे हिल जाते है पर बिना मिला हुआ निकट वाला तार नहीं हिलता । पेड़ों पर तो गान का स्पष्ट प्रभाव पड़ता है । इसकी सत्यता विज्ञानाचार्य श्री जगदीशचन्द्र बोस आदि बतला सकेंगे । दीपक राग के विषय मे जो प्रवाद है उसका प्रत्यक्ष प्रमाण नही मिलता पर इतना कहा जा सकता है कि बिना घर्षण के ध्वनि नही हो सकती । जहाँ घर्षण है वही ध्वनि है और जहाँ घर्षण और ध्वनि है वहाँ अग्नि भी है ।"[3]

प्रसिद्ध सितारवादक पं० रविशंकर भी सितार के द्वारा संगीत के कार्यों तथा प्रयोगों की सफलता का विवरण देते हुए कहते हैं – "हाँ, कभी-कभी सितार के प्रभावशाली आलाप व गतो के द्वारा निद्रा का आ जाना, करुण रस का संचार होकर आँसू ढलकना और शिथिलता तथा उसके बाद शांति देखने में आई है ।"[4] रसभाव तथा समयानुकूल

---

१. रागवेला प्रगानेन रागानाम् हिंसको भवेत् ।
यः स श्रृणोति स दारिद्री च नश्यति सर्वदा ॥
संगीत-मकरन्द, नारद, तृतीयपाद, पृ० १५

२. यथा काले समारब्धं गीतं भवति रंजकम् ।
अतः स्वरस्य नियमाद्रागेऽपि नियमः कृतः ॥
राग-तरंगिणी, लोचन, पृ० १३

३. माधुरी, दिसम्बर १९२७, पृ० ७०३

४. संगीत, अप्रैल १९५३, संगीत साधकों से भेंट, पं० रविशंकर, पृ० ३४२

गायन की महत्ता के कारण ही भारतीय संगीत के अन्तर्गत कुछ राग-रागिनियों को विशेष गुणों, प्रभाव, माधुर्य तथा आकर्षण से सम्बद्ध माना गया है। उदाहरणस्वरूप –

(१) दीपक राग के गायन से अग्नि प्रज्वलित हो जाती ह।
(२) मेघ राग के गायन से वृष्टि होने लगती है।
(३) मालकोश राग के प्रभाव से पत्थर पिघल जाता है।
(४) हिडोल राग के गायन से झूला स्वत हिलने लगता है।
(५) सारग राग को सुनकर पशु मुग्ध हो जाते है।
(६) टोड़ी राग से आर्कषित होकर हिरन चले आते है।
(७) रामकली राग को सुनकर कोयल कुहुकने लगती है।
(८) वसत राग के गायन से पुष्प विकसित हो जाते है।
(९) श्री राग के गायन से शुष्क वृक्ष हराभरा हो जाता है।
(१०) सोहनी को सुनकर मनुष्य के नेत्रो से अश्रु प्रवाहित होने लगते है।
(११) नट राग के गायन से मनुष्य मे वीर रस का संचार किया जा सकता है।
(१२) भैरव राग के गायन से मनुष्य की चंचल प्रकृति भक्तिनिष्ठ हो जाती है।
(१३) जोगिया के गायन द्वारा सासारिक वासनामय प्रवृत्ति वैराग्य मे परिवर्तित हो जाती है।

यद्यपि आधुनिक युग के अधिकाश विद्वान् संगीत की इन विशेषताओ, गुणों तथा प्रभावों को कपोल कल्पना एव किवदन्ती मात्र मानते है किन्तु वास्तव मे रागों की यह समस्त निर्द्धारित रूपरेखा रागों का पूर्णत: अलकारिक रूप मात्र ही नहीं है वरन् जैसा कि विष्णुदिगम्बर तथा पं० रविशंकर जी के भी ऊपर दिए गए विचारो से प्रगट होता है, रागों के रसभाव तथा समयानुकूल गायन से कुछ निश्चित प्रभाव अवश्य उत्पन्न किए जा सकते हैं।

पूर्व पृष्ठो के रस, राग और सिद्धांत तथा रागों की प्रकृति, गुण और प्रभाव आदि की विशेषताओं के आधार पर आगे के पृष्ठों मे कृष्णभक्तिकालीन कवियों के संगीत-ज्ञान की समीक्षा की जायगी। हमे देखना होगा कि कृष्णभक्तिकालीन कवियो के काव्य मे राग का निर्देश, पदो के रसो, भावो तथा समय के अनुकूल किया गया है अथवा नही। कवि रागों के विशेष गुणो तथा प्रभाव आदि से परिचित है कि नही। समय-सिद्धात की विवेचना दो रूपो मे की जायगी –

वाह्य आधार–वार्ता साहित्य मे कुछ कवियो के वर्णन मे उनके कुछ पदों के गायन-समय का उल्लेख किया गया है। ऐसे प्रसगो के उद्धरण ले कर यह देखेंगे कि उस समय जिन रागों को उन कवियो ने गाया है वह समय-सिद्धात की कसौटी पर खरे उतरते है अथवा नही।

आन्तरिक आधार–कृष्णभक्तिकालीन कवियो के पदो मे राग का निर्देश पदों में वर्णित भावो के समय तथा पद मे उल्लेख किए गए समय के अनुकूल है अथवा नहीं। पद मे जिस समय अथवा जिस समय के भावो का प्रकाशन किया गया है वह उस राग के समय से साम्य रखता है कि नही।

सूरदास

सूरदास जी शास्त्रीय संगीत मे पारगत थे। उपर्युक्त वातावरण की सृष्टि के लिये वे रागो की प्रकृति के अनुकूल भावो की रचना करते थे अथवा भावो के अनुकूल प्रकृति वाले राग मे उसे गाते थे। शाहशाह अकबर द्वारा अपना यश वर्णन करने के आग्रह पर सूरदास ने जो पद गाए थे वे वार्ताकार के अनुसार राग केदारा मे है।[1] केदारा एक प्राचीन राग है। यह औडुव-षाडव जाति का राग है। अत. इसके आरोह मे 'रे', 'ग' ये दो स्वर वर्जित है और अवरोह मे 'ग' दुर्बल तथा वक्र रहता है। केदारा में कोमल और तीव्र दोनो मध्यमों का प्रयोग होता है। शेप सब शुद्ध स्वर लगते है। इसके अवरोह मे कभी-कभी कोमल 'नी' का भी प्रयोग होता है। इसमे कोमल 'म' वादी ओर 'सा' सवादी स्वर है।[2] कोमल 'नी' के प्रयोग से राग मे गभीरता आ जाती है। आरोह में 'रे' तथा 'ग' स्वरो के वर्जित होने के फलस्वरूप 'सा' से सीधे 'म' पर जाना पडता है। 'स' से 'म' पर चढाव और 'प' तक जाने मे स्वरों मे एक खिचाव रहता है। खिचाव की गभीरता के कारण राग मे तन्मयता का अनुभव होता है। शुद्ध रूप से गाने के लिए गायक को राग के स्वरो के

१. "सो यह विचार के देसाधिपति ने सूरदास सों कही, जो श्री भगवान ने मोकों राज्य दियो है सो सगरे गुनीजन मेरो जस गावत है सो तिनकों मै अनेक द्रव्यादिक देत हों। तासों तुमहू गुनी हो सो तुमहू मेरो कछू जस गावो। सो तिहारे मन मे जो इच्छा होय सो मॉगि लेहु। सो यह देसाधिपति ने कह्यो। तब सूरदास जी ने यह पद गायो–

राग केदारो – "नाहिन रह्यो मन में ठौर"।

८४ वैष्णवन की वार्ता, (अष्टसखान की वार्ता प्रसंग), स० द्वारिकादास परीख, पृ० १५

२. केदारस्त्वभिवर्णितो रिगनिधैस्तीव्रैः सदाऽलंकृतो।
वादी कोमल मध्यमो भवति संवादी च षड्जस्वरः॥
तीव्रोपि क्वचिदत्र मध्यम इहारोहे रिगौ वर्जितौ।
यामे च प्रथमे निशासु मधुरं वीणारवैर्गीयते। रागकल्पद्रुमांकुर, पृ० १७
द्विमस्तीव्रान्यको मशि आरोहे रिगवर्जितः।
क्वचित्कोमलनिर्यामे केदारः प्रथमे निशिः॥ रागचंद्रिका, पृ० ८
समौ मपौ धपौ मश्च पधौ पमौ पमौ रिसौ।
केदार मांशको रात्र्यां प्रारोहे रिग दुर्बलः॥ अभिनवरागमंजरी, पृ० १४
मध्यम द्वै तीवर सबही आरोहत रिग हान।
सम संवादी दितें केदारा पहिचान॥ रागचंद्रिकासार, पृ० ११

साथ एकाकार हो जाना पडता है। समस्त वंधनों को त्यागकर गायक केदारा के स्वरों में खो जाता है। कवि सूर का पद भी तो इसी भाव का है। कवि भगवान् मे तन्मय हो चुका है। कृष्ण के साथ एकाकार हो जाने के उपरान्त कवि के हृदय में अन्य भाव आता ही नहीं और तब वह तन्मय हो कर केदारा के स्वरों मे गा उठता है –

राग केदारा

नाहिन रह्यौ मन में ठौर।
नंदनंदन अछत कैसे आनिये उर और ?
चलत, चितवत, द्यौस जागत, सपन सोवत राति।
हृदय तै वह मदन मूरति, छिन न इत-उत जाति ॥
कहत कथा अनेक ऊधौ, लोभ लाभ दिखाय।
कहा कहौं, चित प्रेम पूरन घट, न सिंधु समाय ॥[1]

पद के भाव को देखते हुये राग केदारा अत्यधिक उपयुक्त है। तीव्र मध्यम तथा कोमल निषाद के कण ने कवि के हृदय की उस वेदना, करुणा और टीस को भी व्यक्त कर दिया होगा जो अकबर के नर-प्रशंसा करने के आग्रह से उत्पन्न हुई होगी। रागिनी केदारा का जो चित्र उपलब्ध हुआ है उसमे वियोग की भावना चित्रित की गई है।[2] केदारा को एक वियोगी के रूप में अंकित किया गया है जिसे विरह-वेदना की तीव्रता में कुछ भी मधुर नही लगता। अकबर के आग्रह के कारण कवि सूर को भी उन तक आना पड़ा किन्तु प्रियतम की स्मृति क्षण-क्षण मे उन्हें विचलित कर देती है। विरह की अनुभूति के कारण व्याकुल, व्यथित उनके हृदय को, सांसारिक प्रलोभन सांत्वना नही दे पाते। लोक-मर्यादा की कठोर कड़ियाँ उनकी विचलित सिसकियों को बाँध नही पाती और तब सबकी उपेक्षा करते हुए सूर उपयुक्त भावों को प्रकट कर देने वाले राग केदारा के स्वरों में अपने हृदय को खोल कर रख देते है। वास्तव में सूर के पद में भक्ति की साधना तो है ही साथ ही स्वर की भी परम साधना है। जैसा शुद्ध भावनामय पद है वैसा ही तन्मयकारी इनका संगीत भी है।

सूरदास स्वभावतः ही उत्कृष्ट गायनाचार्य थे। इसी कारण उनके पदों में रस-राग के सिद्धात का सुन्दर पालन देख पड़ता है। श्री राम का युद्ध,[3] केशी-वध,[4] कुबलया-वध,[5]

---

१. ८४ वैष्णवन की वार्ता, स० द्वारिकादास, पृ० १५
२. रागिनी केदारा, चित्र सं० १,
३. सूरसागर, (पहला खंड), नवमस्कंध, पृ० २१८
४. वही, दशमस्कंध, पृ० ७४४
५. वही, (तृतीय खंड), पृ० १२९८

हस्ती-वध,[१] सुदक्षिण-वध,[२] द्विविद-वध,[३] जरासंध-वध,[४] शाल्व-वध,[५] दन्तवक्र-वध,[६] लक्ष्मण-युद्ध-गमन[७] प्रसगो मे कवि ने नट, कान्हरा और मारू राग-रागिनियो को अपनाया है। उदाहरणस्वरूप देखिये –

कंस के अत्याचारों से पीड़ित जनता को त्राण देने के लिये कृष्ण ने वीर रूप धारण किया है। मल्लों को पराजित करके, कुबलयापीड का वध कर कंस के पापो का तिरोधान करने के लिए कृष्ण रंगभूमि मे उसकी ओर अग्रसर हो रहे है। कृष्ण की आकृति और वेषभूषा वीर रस की पूर्णतः अवतारणा कर रही है। उनके कमल नयनो मे आज क्रोध की अरुणाई झलक रही है। भौहे ही धनुष है और ललाट पर सुशोभित तिलक वाण के सदृश दीख रहा है। श्याम शरीर पर पीत वस्त्र ऐसे प्रतीत होते हैं मानो काले बादलो के मध्य विद्युत हो। हिलते हुये कानो के कुडल बिजली की भाँति चमक कर वातावरण को और भी अधिक भयानक बना रहे है। सूरदास कृष्ण की इस वीर आकृति का वर्णन नट-राग मे करते है –

नट

नवल नंद-नंदन रंगभूमि राजै।
स्याम तन, पीत पट मनौ घन में तड़ित मोर के पंख माथै बिराजै ।।
स्रवन कुंडल झलक मनौ चपला चमक, दृग अरुन कमल दल से बिसाला।
भौंह सुंदर धनुष, बान सम सिर तिलक, केस कुंचित सोह भृंग माला ।।……
कुबलया मारि चानूर मुष्टिक पटकि वीर दोउ कंध गज-दंत धारे।
जाइ पहुँचे तहाँ कंस बैठ्यौ जहाँ, गए अवसान प्रभु के निहारे ।।[८]

नट रागिनी वीरता, साहस तथा उत्साह का सृजन करती है।[९] यह मनुष्य की वीर और ओजस्विनी प्रवृत्ति की प्रतीक है। नट की आकृति युद्ध-भूमि मे शत्रुओं को पराजित

---

१. सूरसागर, पहला खंड, पृ० १३०१
२. वही, पृ० १६७५
३. वही, पृ० १६७६
४. वही, पृ० १६७९
५. वही, पृ० १६८३
६. वही, पृ० १६८६
७. वही, नवमस्कंध, पृ० २३९
८. सूरसागर, काशी नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित, (द्वितीय खंड), दशम स्कंध, पृ० १३१०, पद सं० ३६६६
9. "Nut excited valour." Sangit of India, Atiya Begum, Page 60.

करते हुए एक वीर नायक के रूप मे अंकित की जाती है ।[1] नट रागिनी का जो चित्र[2] प्राप्त हुआ है उसमे भी वीर रस के उपयुक्त वातावरण को चित्रित किया गया है । वीर योद्धा को उत्साहित होकर अपने शत्रुओ से लड़ते तथा पराजित करते हुए दिखाया गया है । नट रागिनी मे निहित इस वीर रस की भावना के कारण ही सूर ने अपने वीर रस के पद मे नट रागिनी की अवतारणा की है ।

जरासध वध के प्रसंग मे कवि कहता है –

मारू

कंस खल दलन, रन राम रावन हनत, दीन दुख हरन गज मुक्तकारी ।
नृपति चहुँ देस के बंदि जरासंध के, रैनि दिन रहत जिय दुखित भारी ।।

सुनी जदुनाथ यह बात जब पथिक तें, धर्म सुत कै हृदय यह उपाई ।
राजसू जज्ञ कौ कियौ आरंभ मैं, जानि कै नाथ तुमकौ सहाई ।।

भीम अरजुन सहित विप्र कौ रूप धरि, हरि जरासंध सौं जुद्ध माँग्यौ ।
दियौ उन पै कह्यौ तुम कोऊ राजसी कपट करि बिप्र कौ स्वांग स्वांग्यौ ।।

हरि कह्यौ भीम अरजुन दोऊ सुभट ये, कृष्ण मैं देखि लोचन उघारी ।
बचन जो कह्यो प्रतिपाल ताकौ करौ, कै सभा माँहि पत जाहु हारी ।।

पार्थ तुम नहीं समरत्थ मम जुद्ध कौ, भीम सौं लरौं यह कहि सुनाई ।
बीस औ सप्त दिन यौं गदाजुद्ध कियौ, दोउ बलवंत कोउ लियौ न जाई ।

स्याम तृन चीरि दिखराइ दियौ भीम कौं, भीम तब हरषि ताकौ पछारयौ ।
जरा जरासंध की संधि जोरयौ हुतौ, भीम ता संधि कौ चीरि डारयौ ।।

नृपनि कौं छोरि सहदेव कौं राज दियौ, देव नर सकल जय जय उचारयौ ।
सूर प्रभु भीम अरजुन सहित तहाँ तें, धर्म सुत देस कौं पुनि सिधारयौ ।।[3]

मारू रागिनी का जो चित्र प्राप्त हुआ है उसमें वीर रस तथा वीर वेषभूषा का चित्रण किया गया है ।[4] वीर रस से परिपूर्ण होने के कारण ही उक्त पद का गायन कवि ने वीर रस की रागिनी मारू मे किया है ।

---

1. "Nat—This melody is a symbol of the heroic and martial spirit in man. Although a female melody it is depicted as a hero fighting in battle and decapitating his enemies."
   The Laud Ragamala Miniatures, Stooke and Khandelvala, Page 34
२. नट-रागिनी, चित्र सं० २
३. सूरसागर (द्वितीय खंड), पृ० १६८१–८२, पद सं० ४८३३
४. मारू-रागिनी, चित्र सं० ३, पृ० ३२४

कान्हरा वीर रस की रागिनी है। कान्हरा का जो चित्र मिला है उसमे भी वीर भावो का प्रदर्शन किया गया है।[१] सूरदास जी कुवलयावध के प्रसंग मे वीर रस का वर्णन कान्हरा मे करते है जो रस-राग के सिद्धात के अनुसार उचित है–

कान्हरो

सुनहि महावत बात हमारी।
बार-बार संकर्षन भाषत, लेत नहिं ह्यॉं तै गज टारी।।
मेरौ कह्यौ मानि रे मूरख, गज समेत तोहिं डारौं मारी।
द्वारै खरे रहे है कबके, जनि रे गर्व करहि जिय भारी।।
न्यारौ करि गयंद तू अजहूँ, जान देहि कै आपु सँभारी।
सूरदास प्रभु दुष्ट निकंदन, धरनी भार उतारनकारी।।[२]

रस और भावो के साथ ही सूरदास ने भारतीय संगीत के समय सिद्धात का भी विचार रखा है। प्रात काल का वर्णन कवि ने प्रात कालीन गाए जाने वाले रागो तथा साय-काल और रात्रिकालीन वर्णन क्रमश संध्या तथा रात्रि के समय गाए जाने वाले रागो में किया है।

दिवस का आगमन हो गया है, चन्द्रमा की किरणे धूमिल हो गई और तारे तेजहीन हो गये है, रवि को उदित जान कर मुर्गे बोलने लगे है, कुमुदिनी संकुचित हो गई है और कमल विकसित होकर हास्य कर रहे है, भ्रमर पराग और मकरन्द पर क्रीडा कर रहे है, नारियाँ मंगलगान करने लगी है किन्तु कृष्ण अभी सो ही रहे है। सूर का मातृ हृदय अपने कन्हैया को जगाने के लिए व्याकुल हो जाता है और तब वे प्रात काल गाए जाने वाले राग बिलावल[३] के स्वरो मे गा उठते है–

राग बिलावल

जागिए ब्रजराज कुँवर कमल कुसुम फूले।
कुमुद बृंद सँकुचित भए, भृंगलता भूले।
तमचुर खग रोर सुनहु, बोलत बनराई।
रांभति गो खरिकनि में, बछरा हित धाई।

---

१. रागिनी कान्हरो, चित्र सं० ४,

२ सूरसागर, (द्वितीय खंड), पृ० १२६८, पद सं० ३६७०

३. संगीत-मरकन्द, पृ० १५; संगीत-दर्पण, पृ० ७७५; संगीत-पारिजात, पृ० ६२

वेलावली मान्यशुद्धा गसंवादिधवादिनी।
गनिवक्रा तथा पूर्णा प्रातरेव हि गीयते।। रागचंद्रिका, पृ० ३
सरी गमौ पधौ निसौ निधौ पमौ गमौ रिसौ।
शुद्ध बेलावली धांशा गेया प्राहणे मनोहरा।। अभिनवरागमंजरी, श्लो० २६

बिधु मलीन रवि प्रकास गावत नर नारी ।
सूर स्याम प्रात उठौ, अंबुज-कर-धारी ।।[1]

कलेवा-वर्णन कवि प्रात.काल राग भैरव[2] तथा बिलावल मे करता है । यथा –

राग भैरव

उठिए स्याम कलेऊ कीजै । मनमोहन मुख निरखत जीजै ।।[3]

तथा – राग बिलावल

कमल नैन हरि करौ कलेवा ।
माखन रोटी, सद्य जम्यौ दधि, भाँति-भाँति के मेवा ।।[4]

प्रात काल दधि-मंथन का वर्णन कवि ने राग बिलावल तथा आसावरी[5] मे किया है जो समय के उपयुक्त है ।

राग बिलावल

प्रात समय दधि मथति जसोदा अति सुख कमल नयन गुन गावति ।[6]

तथा– राग आसावरी

(एरी) आनँद सौं दधि मथति जसोदा घमकि मथनियाँ घूमै ।[7]

यहाँ तक कि सूरदास ने कृष्ण की बाल-क्रीड़ाओं तक में समयानुकूल रागिनियों की सृष्टि की है । कृष्ण की प्रात.काल की क्रीड़ा का चित्रण कवि ने प्रातःकाल के बिलावल राग मे किया है–

राग बिलावल

क्रीड़त प्रात समय दोउ बीर ।[8]

---

१. सूरसागर, (प्रथम खंड), दशम स्कंध, पृ० ३२९, पद सं० ८२०

२ संगीत-मकरन्द, पृ० १५; संगीत-दर्पण, पृ० ७६; संगीत-पारिजात, पृ० ९२

सगौ मपौ धपौ मगौ रिगौ मपौ मगौ रिसौ ।
भैरवौ नित्यपूर्णः स्याद्धैवतांशः प्रभातगः ।।
अभिनवराग मंजरी, पृ० १९, छं० सं० ७५

३. सूरसागर, (प्रथम खंड), दशमस्कंध, पृ० ३३२, पद सं० ८२९

४. वही, पृ० ३३२, पद सं० ८३०

५. रागतरंगिणी, लोचन –

"इसके गाने तथा बजाने का समय दिन का दूसरा प्रहर है ।"
संगीत-कौमुदी, (पहला भाग), निगम, पृ० १०७

६. सूरसागर, (प्रथम खंड), दशमस्कंध, पृ० ३११, पद सं० ७६७

७. वही, पृ० ३११, पद सं० ७६५

८. वही, पृ० ३१५, पद सं० ७७९

कृष्ण अब बड़े हो गये है। गोप सखाओ के साथ कान्हा भी वन मे गाय चरान जाते है। दोपहर हो जाने पर वट-वृक्ष की छाँह मे कृष्ण तथा गोप-ग्वाल छीन-छीन कर दूध-फल आदि खा रहे हैं। सूरदास दोपहर का यह वर्णन राग सारग मे करते है –

राग सारंग

ग्वाल मंडली मे बैठे मोहन वट की छाँह, दुपहर बेरिया सखानि संग लीने।
एक दूध, फल, एक झगरि चवेना लेत, निज-निज कामरी के आसननि कीने॥
जेंवतऽरु गावत है सारँग की तान कान्ह, सखनि के मध्य छाक लेन कर छीने।
सूरदास प्रभु कों निरखि, सुख रीझिरीझि, सुर सुमननि बरषत रस भीने॥[१]

सारग राग दोपहर मे गाया जाता है।[२] इसी कारण सूर ने भी उक्त पद मे दोपहर के समय का छाक-वर्णन सारग मे किया है। पद के वर्णन से ज्ञात होता है कि कृष्ण खाते-खाते सारंग राग भी गाते जा रहे है। दोपहर के समय कान्हा के मुख से सारंग राग गवाकर सूर ने समयानुकूल राग-गायन को विशेष महत्व प्रदान किया है।

इसी प्रकार अपने पदों मे समय-सिद्धांत का ध्यान रखते हुए सूरदास गो-पद-रज से मंडित आनन लिए सध्या समय धेनु चराकर लौटते हुए कृष्ण की सुषमा का वर्णन सायकालीन राग गौरी[३] मे करते है –

राग गौरी

बन तै आवत धेनु चराए।
संध्या समय साँवरे मुख पर गोपद रज लपटाए।[४]

जहाँ कवि ने कलेवा-वर्णन विलावल तथा भैरव आदि प्रातःकालीन रागों में किया है वहाँ वह रात्रि के समय बियारी का वर्णन रात्रिकालीन गाये जाने वाले राग विहागरो[५], कान्हरा[६] तथा केदारा[७] मे करना भी नही भूलता –

---

१. सूरसागर, पृ० ४२०, पद सं० १०८५
२. संगीत-पारिजात, पृ० ९३। राग-तरंगिणी, लोचन;
"At noon exactly Sarang is played. It is a bright melody."
Sangit of India, Atiya Begum, Page 58.
३ राग-तरंगिणी, लोचन; सगीत-दर्पण, पृ० ७६
४. सूरसागर, (प्रथम खंड), दशमस्कंध, पृ० ४०१, पद सं० १०३५
५ संगीत-सुधा, पृ० १३
६. हिन्दुस्तानी संगीत-पद्धति क्रमिक पुस्तक मालिका, चौथी पुस्तक, पृ० ५६, संगीतसुधा, पृ० ७
७. राग-तरंगिणी, लोचन; संगीत-दर्पण, पृ० ७६

राग विहागरौ

कमल नैन हरि करौ बियारी ।
लुचुई लपसी, सद्य जलेबी, सोइ जेंवहु जो लगै पियारी ।।[१]

राग कान्हरो

सूर स्याम कछु करौ बियारी पुनि राखो पौढ़ाइ ।[२]

राग केदारो

चलौ लाल कछु करौ बियारी ।
रुचि नाहीं काहू पर मेरी तू कहि भोजन करौं कहारी ।।[३]

रात्रि हो गई है। गगन पर चन्द्र अपनी धवल ज्योत्स्ना विकीर्ण कर रहा है। कृष्ण अभी छोटे ही तो है। चाँद को खिलौना समझ कर लेने के लिए मचल उठते है। सूर कृष्ण की इस बाल छबि पर मुग्ध हो जाते है और तत्काल रात्रि के समय कृष्ण के हठ को चित्रित करते हुए रात्रिकालीन राग केदारा मे गा उठते है—

राग केदारौ

मैया, मै तो चंद-खिलौना लेहौं ।
जैहों लोटि धरनि पर अबहीं तेरी गोद न ऐहौं ।[४]

आश्विन की पीयूष वर्षिणी पूर्णिमा की रासलीला जो सूर-जीवन का पाथेय बन गई थी उसका वर्णन करता हुआ भक्त गायक कहता है—

राग अडाना

मोहन लाल के सँग ललना यौं सोहै ज्यौं तमाल ढिग तरु सुभ सुमन जरद कौ।
वदन अनूप काँति नीलाम्बर इहि भाँति, नवघन बीच ससि मानहु सरद कौ ।।
मुक्तालर तारागन, प्रतिबिम्ब बेसरि कौं, चूनै मिलि रंग जैसै होत है हरद कौ।
सूरदास प्रभु मोहन गोहन छवि बाढ़ी मेंटति निरखि दुख मैन के दरद कौ ।।[५]

सूरसागर के प्रसंग से ज्ञात होता है कि शरद-पूर्णिमा की रात्रि में रासनृत्य हो रहा है। आकाश मे तारे और चन्द्र खिल रहे है। ऐसे समय में मंडलाकार नृत्य करते हुए श्याम वर्ण वाले कृष्ण के साथ गौरवर्णा गोपियाँ ऐसी सुशोभित होती है मानों बादलों के मध्य चन्द्र

---

१ सूरसागर, (प्रथम खंड), दशमस्कंध, पृ० ३३८, पद सं० ८४५
२ वही, पृ० ३३७, पद सं० ८४४
३. वही, पृ० ३४२, पद सं० ८५६
४. वही, पृ० ३२७, पद सं० ८११
५ वही, पृ० ६५५, पद सं० १७६८

उदित हो गया हो । मुक्ता की लरे ही तारे बन गई है । सम्पूर्ण पद रात्रिकालीन भावो से युक्त है। अतः कवि के द्वारा प्रस्तुत पद का गायन रात्रिकालीन राग अडाना' में करना उचित ही है । ऊपर किए गए विवेचनात्मक अध्ययन से यह प्रकट होता है कि सूरदास जी ने अपने पदो मे जिस समय का वर्णन किया है उसी के अनुकूल समय वाले रागो का सृजन किया है। वार्ताकार के कथन से इस तथ्य की भी पुष्टि हो जाती है कि सूर ने जिस समय जो पद गाया उसी के अनुकूल राग भी चुना। वार्ता मे एक प्रसग दिया है–"और एक समय श्री गोकुल ते परमानद आदि सब वैष्णव दस पंद्रह सूरदास जी से मिलिवे को और श्री गोवर्द्धन नाथ जी के दरसन कों आये। सो सेन आरती के दरसन करि सूरदास जी के पास आये। तब सूरदास जी ने सगरे वैष्णवन को बहोत आदर सन्मान कियो और ताही समय कीर्तन गायो ।

राग कान्हरो

(१) हरि संग छिनक जो होई ।
(२) प्रभु जन पर प्रसन्न जब होई ।
(३) हरि के जन की अति ठकुराई ॥

राग हमीर

(१) जा दिन संत पाहुने आवें । [२]

राग कान्हरा तथा हमीर[३] दोनो ही रात्रिकाल में गाए जाने वाले राग है । वार्ता से स्पष्ट है कि सूर ने इन पदों को शयन-आरती के उपरान्त रात्रि मे ही गाया था। अतः सूरदास का उस समय इन रागो का गाना सामयिक था ।

एक अन्य स्थल पर वार्ताकार लिखता है–"ता पाछे चौथे दिन न्हाय के सूरदास जी प्रातःकाल मंगला के दरसन को चले। तब सूरदास जी अपने मन मे विचारे जो देखो या

---

१. राग-तरंगिणी, लोचन–

रागो ऽडाणः प्रसिद्धो मृदुनिगमयुतस्तीव्रधस्ती व्ररिश्च ।
तारः षड्जोऽत्र वादी सहचरति सदा पंचमो मध्यसंस्थ· ॥
आरोहे दुर्बलौ तौ भवत् इह धगौ धं मृदुं केचिदाहु ।
कर्णाटस्यैव भेदः सरससुमधुरं गीयतेऽसौ निशीथे ॥

रागकल्पद्रुमांकुर, पृ० २२

मपौ धसौ धनी पश्च मपौ गमौ रिसौ तथा ।
तार षडजांशकोऽड्डाणो रात्र्यां तृतीययामके ॥

अभिनवरागमंजरी, पृ० २८ छं० १९०

२. ८४ वैष्णवन की वार्ता, सं० परीख, (अष्टसखान-वार्ता-प्रसंग), पृ० २५

३. संगीत-सुधा, पृ० १६

बनियाँ को तीन दिन भये परंतु दरसन कों नाही गयो। तासो आज जो यह न चले तो याको भय दिखावनो और दरसन करावनो। यह विचारि के सूरदास जी वा बनियाँ के पास आय के कह्यौ जो तीन दिन बीत चुके मोको फिरते परि तू दरसन को नाही चल्यो जो आज तो चल। तब वा बनियाँ ने कह्यो जो कछू बोहनी करि सिगार के दरसन करूँगो। तब सूरदास जी वा बनियाँ सो कही जो अब तो मै तेरी बात सगरे वैष्णवन मे प्रगट करूँगो। जो यह बनियाँ झूठो बहोत है सो कबहूं याने श्रीनाथ जी को दरसन नाही कियो और यह वैष्णव हूँ नाही है। अब तेरे पास कोई वैष्णव सोदा लैन आवेगो तो मै तेरे दोहा, चौपाई, पद कुटिलता के कराके वैष्णवन को सुनाऊँगो। सो या भाति कहिके भैरव राग मे एक पद गायो।

राग भैरव

आज काम कालि काम परसों काम करनो।

'सो यह पद सूरदास जी ने वा बनिया को वाही समय कीर्तन करिके सुनायो'।[1]

वार्ताकार के कथन से यह ज्ञात होता है कि सूरदास ने राग भैरव के इस पद को मगला के दर्शन करने के लिए जाते हुए गाया था। मंगला का समय प्रातः ५ बजे ७ बजे तक माना जाता था।[2] अत सूरदास ने इस पद को प्रात ५ से कुछ पूर्व ही गाया था। भैरव राग प्रात काल गाया जाता है। अत· कवि का उस समय राग भैरव गाना उचित है।

सूर-साहित्य पर एक विहगम विवेचनात्मक दृष्टि डालने के उपरान्त निश्चित रूप से यह कहा जा सकता है कि कवि ने सर्वत्र रस, भाव और समय का ध्यान रखते हुए संगीत की रचना की है। सूरदास से पूर्व और उनके पश्चात् के न जाने कितने भक्तो ने सूरदास की ही भाँति अपनी वाणी के विलास से भगवान का यशगान किया हैं, न जाने कितनो ने तानपूरे सँभाल कर मदिरो को अपने संगीत के स्वरो से गुजायमान कर दिया है किन्तु आज उनकी क्षीण प्रतिध्वनि मात्र ही सुनाई पडती है। बहुतो की वाणी नीरवता मे लीन हो चुकी है। सूरदास ही ऐसे है जिन्होंने अमरत्व प्राप्त कर लिया है। समय के साथ ही उनकी वाणी भी तीव्र होती जाती है। इसका कारण यही है कि सूर ने राग-रागिनियों के रस–भाव को देखकर, उसकी यथार्थ अनुभूति पा कर तदनुसार और तदनुकूल गीत-पद्य का चुनाव किया है। कवि ने तत्कालीन प्रचलित शास्त्रीय सगीत के रागो मे जो पद गाये है उनके शब्द, अर्थ, भाव और रस और रागो तथा रागिनियो के रूप, रस और भाव के साथ संवादित हुए हैं। इसी गुण के कारण सूर का काव्य और सगीत मानव-जीवन के साथ एकाकार हो गया है। सूर की प्रतिभा ने काव्य और सगीत का इतना सुदर समन्वय किया है कि वह काल की कठोर दीवारों को वेधकर आज भी अपना स्वर मुखरित कर रहा है और सदैव करता रहेगा। महाकवि के स्वरो को विश्व कैसे भुला सकता है।

---

१. ८४ वैष्णवन की वार्ता, स० परीख, (अष्टसखान-वार्ता), पृ० २३-२४

२. देखिए, प्रस्तुत ग्रंथ का तृतीय अध्याय, पृ० ११४

परमानंददास

परमानंददास ने अपने पदों मे रागो के अनुकूल ही भावो की सृष्टि की है। कवि का निम्नलिखित पद अवलोकनीय है –

राग गौरी

या हरि कौ संदेश न आयौ
बरस मास दिन बीतन लागे, बिन दरसन दुख पायौ ॥
घन गरज्यो पावस ऋतु प्रकटी, चातक पीउ सुनायौ ।
मत्त मोर बन बोलन लागे, बिरहिन बिरह सुनायौ ॥
राग मल्हार सह्यौ नहि जाई, काहू पथिकहि गायौ ।
'परमानंद' कहा कीजै, कृष्ण मधुपुरी छायौ ॥[1]

'राग मल्हार' बरसात मे विशेष रूप से गाया जाता है।[2] कवि ने पद मे पावस ऋतु का ही वर्णन किया है। इस कारण यद्यपि कवि ने स्वय इस पद को गौरी राग मे गाया है किन्तु इस बात का स्पष्ट उल्लेख कर दिया है कि ऐसे पावस के दिनो मे कोई राही मल्हार राग गा रहा है। प्राप्त चित्र[3] तथा संगीत-ग्रथो[4] के वर्णन से स्पष्ट है कि राग मल्हार आनंद, हर्ष, प्रेम तथा शृंगार का प्रतीक है। इसी कारण राही पथिक काले बादलो तथा बरसाती बूँदों के मध्य आनद मे झूमकर मल्हार राग गा रहा है। किन्तु गोपिकाये विरह मे सतप्त है। कृष्ण मथुरा मे है। उनके पास से कोई पाती भी तो नही आई। प्रतीक्षा मे नयन बिछाए वे कृष्ण का मार्ग देख रही है। वर्ष तथा महीने व्यतीत होते जा रहे है किन्तु श्याम का कोई सदेश नही आता। उनके रोते हुए हृदय मे मिलन का उत्साह कहाँ, संयोग सुरति का आनद कहाँ ? एक क्षीण आशा लिए शायद कभी श्याम को हमारी सुध आ जाय। किसी प्रकार जीवन के सूने दिन काट रही है। घन का गरजना, चातक का पी-पी पुकारना, मोर का आनदित होकर नृत्य करना विरहिणी के विरह को और भी उद्दीप्त कर रहा है। ऐसी अवस्था में हर्ष तथा सुख को प्रकट करने वाला मल्हार राग वैरी सदृश्य जान पडता है। परमानद दास की गोपियाँ भी तो यही कहती है कि कृष्ण मधुपुरी मे है, उनके विरह मे हमे राग मल्हार कैसे सुहा सकता है।

---

१. पद-संग्रह, परमानंददास, डा० दीनदयालु गुप्त, पद सं० २३३
२. संगीत-दर्पण, पृ० ७७, संगीत पारिजात, पृ० १०२
३. राग मल्हार, चित्र सं० ५
४. संगीत-दर्पण, पृ० १०६
"The sonorous music of Megh Raga portrays the majesty of the clouds and expresses the joyful feeling caused by the advent of the rains"
The Laud Ragmala Miniatures, page 18.

परमानददास जी के काव्य मे समस्त राग-रागिनियों का उचित रीति से निर्वाह हुआ है। वार्ता मे दिया है –

"सो जब जन्माष्टमी आई तब श्री गुसाईं जी आप परमानंददास जी को सग लेय के श्री गिरिराज सो श्री गोकुल पधारे। सो जन्माष्टमी के दिन श्री गुसाई जी आपु श्री नवनीत प्रिय जी को अभ्यग कराये। ता समय परमानददास ने यह बधाई गाई –

राग धनाश्री

मिलि मंगल गावो माई। [१]

परमानददास जी ने यह बधाई राग धनाश्री मे गाई थी। सगीत-शास्त्र के अनुसार धनाश्री राग का गायन अधिकतर मागलिक प्रसग पर किया जाता है।[२] कृष्ण जन्म से अधिक और कौन मागलिक प्रसग हो सकता है, जिसने दुष्टो का दमन करके भारतीय जीवन को कल्याण की ओर अग्रसर किया।

परमानददास जी ने अपने पदो मे समय-सिद्धांत का भी प्रायः सर्वदा पालन किया है। उदाहरणस्वरूप देखिए –रजनी व्यतीत हो गई और सूर्य किरणे चारो ओर विकीर्ण हो गई है। प्रात.काल का आगमन हो जाने के कारण घर-घर मे दधि-मंथन किया जा रहा है किन्तु कृष्ण अभी सो ही रहे हैं। अत परमानददास कृष्ण को जगाने के लिये गाते हैं –

राग भैरव

ललित लाल श्री गोपाल सोइये न प्रातकाल,
यशोदा मैया, लेत बलैया, भोर भयो बारे।......
रवि की किरन प्रकट भई उठो लाल निशा गई,
दही मथत जहाँ तहाँ गावत गुन तिहारे।
नंदकुमार उठे विहँसि कृपा दृष्टि सब पै हरषि,
युगल चरण कमल पर परमानंद वारे।[३]

कवि ने उक्त पद मे प्रात.कालीन वर्णन का गायन प्रात काल गेय राग भैरव ही मे किया है जो सामयिक है।

विरह-वियोग मे संतप्त गोपियाँ रात्रि में कृष्ण का स्मरण करती है–

राग विहाग

माई री चंद लग्यो दुःख देन,
कहाँ वे देस कहाँ वे मोहन कहाँ वे सुख की रैन।

---

१. ८४ वैष्णवन की वार्ता, सं० प्रभुदयाल मीतल, पृ० ५४
२. अष्टछाप-परिचय, प्रभुदयाल मीतल, पृ० ३६५
३. हस्तलिखित पद-संग्रह, परमानंददास, डा० दीनदयालु गुप्त, पद सं० ३६३

तारे गिनत गई री सबै निसि नेंकु न लागे नैन,
परमानंद प्रभु पिया बिछुरे तें पल न परत चित चैन ।[१]

संयोगावस्था मे आनंद प्रदान करनेवाली प्राकृतिक परिस्थितियाँ विरह मे उद्दीपन बन रही है। चन्द्रमा की शीतल ज्योत्स्ना विरहाग्नि को प्रज्वलित कर रही है। तारे गिन-गिन कर रात व्यतीत हो रही है किन्तु नयनो मे नीद कहाँ। सम्पूर्ण पद मे रात्रि का वर्णन किया गया है। विहाग रात्रिकालीन गेय राग है इसीलिए परमानददास जी ने उक्त पद मे निहित रात्रिकालीन भावों का गायन रात्रिकाल के राग विहाग[२] मे किया है।

वार्ताकार के कथन से ज्ञात होता है कि क्षत्रिय कपूर-जलधरिया के प्रसग में रात्रि के समय परमानंददास ने जो पद गाए थे वे राग विहागरो, कान्हरो तथा सोरठ मे थे।[३] विहागरो,[४] कान्हरा[५] तथा सोरठ[६] ये तीनो ही रात्रि-कालीन राग है और रात्रि के समय गाए जाते है। इसी कारण परमानंददास जी ने एकादशी को सम्पूर्ण रात्रि-कीर्तन मे अपने गायन के लिए इन रात्रिकालीन रागों ही को चुना है।

वार्ताकार ने एक प्रसग का उल्लेख किया है जिससे परमानददास के समयानुकूल राग-गायन पर विशेष प्रकाश पडता है–

"पाछे श्री नंदराय जी और गोपी ग्वाल वैष्णवन के जूथ अपने लालजी सब (को) लेके दधिकादो किये। तब परमानंददास को चित्त आनद में विक्षिप्त होय गयो। ता समय परमानंददास नाचन लागे और यह पद गायो। सो वा प्रेम मे परमानंददास राग को हू क्रम भूलि गए। सो रात्रि को तो समय और सारंग मे गाये। सो पद –

राग सारंग

आजु नंदराय के आनंद भयो।

यह पद गाये पाछे परमानंददास प्रेम मे मुर्छा खाय भूमि मे गिर पड़े।"[७]

कृष्ण के प्रेम-रस का पान करके परमानंददास जी आनद मे मत्त होकर नृत्य करने लगे। भगवान की रूप-माधुरी मे छक कर कवि अपने आप को भूल गया और उसे यह भी

---

१. हस्तलिखित पद-संग्रह, परमानंददास, डा० दीनदयालु गुप्त, पद सं० ३२४
२. राग-कल्पद्रुमांकुर, पृ० १७; राग-चंद्रिका, पृ० ११; अभिनवराग-मंजरी, पृ० १६
३. ८४ वैष्णवन की वार्ता, सं० प्रभुदयाल मीतल, पृ० ३७
४. संगीत-सुधा, (हाथरस), पृ० १३
5. Sangit of India, Atyia Begum, Page 38.
६. संगीत-सुधा, (हाथरस), पृ० १८
७. ८४ वैष्णवन की वार्ता, सं० पारीख, पृ० ५४

ज्ञान न रहा कि वह किस समय किस राग को गा रहा है । राग सारंग दोपहर मे गाया जाता है किन्तु कवि प्रेम मे विक्षिप्त हो कर रात्रि के समय सारंग राग गाता है इससे यह ज्ञात होता है कि परमानददास जी चैतन्य अवस्था मे सर्वदा अपने पदो का निर्माण समयानुकूल राग-रागिनियो ही मे किया करते थे ।

कुंभनदास

भक्तिशास्त्र मे स्त्री-पुरुष के रतिभाव जन्य आनंद को जिसे लोक-पक्ष मे शृगाररस कहा जाता है 'मधुर रस' की सज्ञा दी जाती है । इसी मधुर भक्ति के सयोग-सुख को प्रकट करते हुए कुंभनदास जी कहते है –

राग विहाग

वह देखो बरत झरोखन दीपक
हरि पौढ़े ऊँची चित्र सारी ।
सुन्दर बदन निहारन कारण
राख्यो है बहुत जतन कर प्यारी ।।
कण्ठ लगाय भुज दे सिरहाने
अधर अमृत पीवत सुकुमारी ।
तन मन मिली प्राण प्यारे सों
नूतन छवि बाढ़ी अति भारी ।।
कुंभनदास दम्पती सौभाग सीवां
जोड़ी भली बनी एक सारी ।
नव नागरी मनोहर राधे
नवल लाल श्री गोवर्धनधारी ।।[१]

कुंभनदास जी ने इस पद को राग विहाग में गाया है । विहाग एक मनोहर राग है और हर्ष तथा आनंदमय भावों को उत्पन्न करता है ।[२] विहाग राग के आरोह मे ऋषभ तथा धैवत स्वर वर्जित है अर्थात् नही लगते ।[३] अत. 'स' से 'ग' तथा 'प' से 'नि' पर जाने मे एक प्रकार का उल्लास, चपलता तथा हर्ष सा प्रकट होता है । कुंभनदास जी के राग विहाग के इस पद मे राधा-कृष्ण के युगल सहवास मे सुखद भावावलि है और प्रेम पुलकित रूप है ।

---

१. २५२ **वैष्णवन की वार्ता, पृ० २१**
2. Behag created a sense of gladness and joy,
Sangit of India, Atiya Begum, Page 60.
३. **कोमल मंध्यम तीरव सब चढ़ते रिध को त्याग ।**
गनि वादी संवादितें जानत राग बिहाग ।। राग-चंद्रिकासार, पृ० १५

सानिध्य तथा सयोग की अनुभूति के फलस्वरूप हर्ष, चपलता, उमंग तथा उत्साह छा रहा है। वास्तव मे कवि ने उक्त पद को राग-विहाग मे गा कर सगीत तथा काव्य के रस का सुन्दर साम्य उपस्थित किया है।

प्रस्तुत पद मे भगवान की रात्रिकालीन सयोग-लीला का सुखद वर्णन किया गया है। २५२ वैष्णवन की वार्ता से विदित होता है कि कवि ने इस पद को रात्रि मे भगवान के शयन-समय गाया था।[1] कुभनदासजी द्वारा इस पद को रात्रि मे गाना तथा पद के अन्तर्गत रात्रिकालीन भावों का वर्णन करना सामयिक है क्योकि विहाग रात्रिकालीन राग है और रात्रि के समय गाया जाता है।[2]

वर्षाऋतु मे काले बादल गरज रहे है। शीतल पवन चल रहा है। चातक, पिक और कोयल की कूक वातावरण को गुजायमान कर रही है। मोर आनद मे मग्न है। धीमी-धीमी फुहारे गिर रही है। मिलन-भावना को उद्दीप्त करने वाली वर्षा ऋतु की प्राकृतिक सुषमा का वर्णन कुभनदास जी वर्षाकालीन गेय राग मलार ही मे करते है—

राग मलार

रिमझिम-रिमझिम घन बरसै री।
बोलत मोर कोकिला कूंजति तैसीये दामिनी अति दरसै री।
धाइ रहे बदरा जित-तित तें भूमि अपने पर परसै री।
'कुंभनदास' प्रभु गिरिधर पिय कौ तोहिं मिलन कों जिय तरसै री।[3]

कुभनदास जी के पदों मे प्रायः सर्वत्र ही समयानुकूल गायन का विधान है। रात्रि कही और व्यतीत कर नायक प्रात.काल घर आया है। प्रात.काल के समय खण्डिता नायिका के प्रसग का गायन कवि प्रात काल राग विभास तथा बिलावल मे करता है—

---

१ "जब कुंभनदास जी कूँ पोढ़वे के दर्शन होते हते तब कुभनदासजी कीर्तन गायवे लगे। सो पद। दे देखो बरत झरोखन दीपक हरि पौढ़े ऊँची चित्र सारी।" २५२ वैष्णवन की वार्ता, पृ० २१

२. विहंग इ ह गीयते ममृदुरन्यतीव्रस्वरो।
रिधौ त्यजति रोहणे स्पृशति चावरोहे पुनः॥
तथा निगदितौ गनी रुचिरवादि संवादिनौ।
निशीथ समये सदा श्रुतिमनोहरं गीयते। — राग-कल्पद्रुमांकुरः, पृ० १०
मृदुर्म इतरे तीव्रा वादिसंवादिनौ गनी।
आरोहे रिधहीनोऽयं विहंगस्तु निशीथगः॥ — राग-चंद्रिका, पृ० ११
निसौ गमौ पनी सनी धपौ गमौ पगौ मगौ।
रिसाविति विहंगः स्यान्नक्तं रोहेऽरिधोऽशगः॥ — अभिनवराग-मंजरी, पृ० १६

३. कुंभनदास, काँकरौली, पृ० ९२, पद सं० २९२

राग विभास

सांझ जु आवन कहि गए लाल ! भोरु भऐ देखे ।
गनत नछित्र नैन अकुलाने, चारि पहर मानों चार्‌यों जुग बिसेखे ॥
कीनी भली जु चिन्ह मिटाए, अधरनि रंग अरु उर नख-रेखे ।
'कुंभनदास' प्रभु रसिक-सिरोमनि गिरिधर ! तुम्हारे कैसे लेखे ॥[1]

तथा –

राग बिलावल

कहो धों कहां तुम रैनि गँवाई ? लाल ! अरुन उदय आए ।
कौन सँकोच घनस्याम सुंदर ! तमचुर बोलत उठि धाए ॥
आँखि देखि कहा साखि बूझिये ? रति के चिह्न तन प्रगट लाए ।
'कुंभनदास' प्रभु (सु) जान गिरिधर काहे कों दुरत पिय ! जानि पाए ॥[2]

रात्रि-समय रास-क्रीडा का वर्णन कुभनदास जी रात्रिकालीन गेय राग केदारा मे करते है –

राग केदारौ

पूरत मधुरे बैनु रसाल
चारु धुनि वह सुनत स्रवननि, विमोही ब्रज-बाल ॥
राज रितु, गिरि गोवर्धन-तट रच्यौ रास गोपाल ॥
देखि कौतुक चंद भूल्यौ, तजी पश्चिम चाल ॥
थकित सुर, मुनि, पवन, पसु, खग, सुधि न रही तिहि काल ।
'दास कुंभन' प्रभु हर्‌यौ मन गोवर्द्धन-धर लाल ॥[3]

कवि के अन्य पदों मे भी प्राय रस-राग और समय-सिद्धात का पालन किया गया है ।

कृष्णदास

८४ वैष्णवन की वार्ता मे एक प्रसंग दिया है–

"जब सेन आरती श्री गोवर्द्धननाथ जी की होय चुकी तब कृष्णदास स्यामकुमार को लेके परासोली मे चंद्रसरोवर है तहा आये । तहां देखे तो श्री गोवर्द्धनधर और श्री स्वामिनी जी सगरी सखीन सहित विराजे है । तब श्री गोवर्द्धनधर ने स्यामकुमार सों कही जो–तू तो मृदंग बजाव और कृष्णदास सों कह्यो जो–तू कीर्तन गाव । सो चैत्र सुद १५ पून्यो के दिन रात्रि डेढ गई उजियारी फैल गई सो अलौकिक रात्रि भई । तब स्यामकुमार ने मृदंग

---

१. कुंभनदास, कॉकरौली, पृ० १०८, पद सं० ३२१
२. वही, पृ० १०८, पद सं० ३२४
३. वही, पृ० २०, पद सं० ३०

बजायो। सो वसत ऋतु के सुन्दर फूल लतान सो फूलि रहे है। सो श्री गोवर्द्धनधर श्री स्वामिनी जी सहित नृत्य करन लगे। ता समय कृष्णदास ने यह पद गायो। सो पद –

राग केदारो

श्री वृषभाननंदनी नाचत लाल गिरिधरन सग,
लाग डाट उरप-तिरप रास रंग राच्यो।

सो यह पद सुनि के श्री गोवर्द्धनधर प्रसन्न होय के अपने श्रीकठ की प्रसादी कुद कुसुमन की माला दीनी । सो कृष्णदास अपने परम भाग्य माने सो रोम-रोम मे आनंद भरि गयो। सो तब रस मे मगन होय के यह पद गायो। सो पद–

राग मालव

(१) अलाग लागिन उरप तिरप गति नटवट ब्रज ललना रासें,
अपने कंठ की श्रमजल दलमलि माला देत कृष्णदासें।
(२) तताथेई रास मंडल में।
(३) चंद गोविंद गोपी तारागन।
(४) सिखवत पिय कों मुरली बजावत॥

सो या प्रकार वहोत कीर्तन कृष्णदास जी गाये। तब स्यामकुमार मृदग वहोत सुदर बजायो। सो श्री गोवर्द्धनधर, श्री स्वामिनीजी सगरे ब्रजभक्तन सहित पास अद्‌भुत नृत्य किये।"[१]

कृष्णदास ने इस समय जो पद गाये है वे राग मालव तथा राग केदारा मे हैं। राग मालव मध्य रात्रि के अनंतर गाया जाता है और यह सयोग श्रृंगार का राग है।[२] मालव राग का जो चित्र मिला है वह सयोग श्रृंगार का प्रतीक है। नायक-नायिका आलिंगन पाश मे बद्ध है और प्रेम के आनंदमय भाव को प्रगट कर रहे है।[३]

---

१. **८४ वैष्णवन की वार्ता, पृ० ११४–१५**

2. "He is represented as a glorified image of the rich, deep, passionate and mystic melody."
"The hour in which it should be performed is past midnight"
Sangit of India, Atiya Begum, Page 63
'Malva, Malavakausika, or Malkaus Rag' :
Two lovers in intimate embrace provide the motive, the feeling expressed is the enjoyment of love. It should be sung well past midnight."
The Laud Ragamala Miniatures, Page 38

३. **मालवकौशिक, (मालव), चित्र सं० ६**

कृष्णदास ने इस समय मालव मे जो पद गाये है वे संयोग-शृंगार के है। उनमे श्रीकृष्ण, राधा तथा गोपियों की रास-क्रीडा का वर्णन किया है। वार्ताकार के कथन से इस बात की पुष्टि हो जाती है कि कृष्णदास ने इन पदो को राग मालव मे उस समय गाया था जब कि डेढ प्रहर रात व्यतीत हो चुकी थी और श्री गोवर्द्धनधर तथा श्री स्वामिनी जी जी संयुक्त रूप से नृत्य कर रहे थे। रासलीला प्रेम तथा आनद की प्रतीक है। इस प्रकार कवि के द्वारा वर्णित पदो तथा राग मालव के भावो तथा उनमे निहित रस मे एकता है। कवि ने रस-राग तथा समय-सिद्धात का सकुशल पालन किया है।

जैसा कि पूर्व कहा गया है राग केदारा रात्रिकालीन गाया जाने वाला राग है। कवि ने अपने ऊपर लिखे पद को रात्रि के समय राग केदारा मे गाकर अपने शास्त्रीय सगीत के ज्ञान का प्रमाण दे दिया है।

वार्ता साहित्य से ज्ञात होता है कि कृष्णदास ने जो पद वेश्या को श्रीनाथ जी के सम्मुख गाने के लिए सिखाया था वह पूर्वी राग मे था।[1]

राग पूर्वी

मेरो मन गिरधर छबि पर अटक्यो।
ललित त्रिभगी अंगन परि चलि गयौ तहांई ठटक्यौ ॥१॥
सजल श्याम घन चरमनील है फिर चित अनित न आनि तन भटक्यौ।
कृष्णदास कियौ प्राण न्यौछावरि यह तन जग सिर पटक्यौ ॥२॥

श्रीनाथ जी के सम्मुख गाने के कारण सयोग का पुट है। किन्तु 'मेरो मन गिरधर छबि पर अट्क्यो' पंक्ति मे अपने आराध्य के प्रति अनन्य भाव दर्शाया है। आध्यात्मिक पक्ष को लेकर कह सकते है कि उक्त पद पूर्वराग-वियोग के अन्तर्गत है क्योकि आध्यात्मिक जगत मे साधक निकट होते हुए भी उससे निकटतर सबध चाहता है। अत उक्त पद मे वियोग की भावना स्पष्ट झलक रही है। वार्ता[2] से भी ज्ञात होता है कि इस पद की अतिम पंक्ति गाते हुए उस वेश्या के प्राण छूट गये और वह दिव्य रूप ग्रहण कर लीला में प्राप्त हुई। इससे यही निष्कर्ष निकलता है कि वेश्या का भगवान से संयोग मृत्यु के उपरान्त ही हुआ था। पद गाने के समय तो वियोग ही था।

पूर्वी राग मे रे, ध कोमल तथा शुद्ध और तीव्र दोनो मध्यमों के प्रयोग से वियोग-

१. ८४ वैष्णवन की वार्ता, पृ० ३५३

२. "सो कृष्णदास ने पद करिके सिखायो हतो सो गायो। सो गावत-गावत जब छेली तुक आई 'जो कृष्णदास कियो प्रान निछावर यह तन जग सिर पटक्यो' या पद को गान करत ही वा वेश्या की देह छूट गई सो दिव्य देह होय लीला में प्राप्त भई।" ८४ वैष्णवन की वार्ता, सम्पादक द्वारकादास परीख, पृ० ११६

शृंगार की अभिव्यक्ति होती है। विरह की व्याकुलता को प्रकट करने के लिए ही कृष्णदास ने पूर्वी राग को चुना होगा।

हरिराय प्रणीत वार्ता से ज्ञात होता है कि कृष्णदास ने उस वेश्या से पूर्वी राग के इस पद को भोग के दर्शन के समय गवाया था–

"ता पाछे उत्थापन के दरसन होय चुके तब भोग के दरसन के समय वा वैश्या को समाज सहित कृष्णदास परवत के ऊपर ले गये। पाछे भोग के किवाड खुले। तब वह वैश्या ने पहले नृत्य कियो ता पाछे गान करन लागी। सो कृष्णदास ने पद करिके सिखायो हतो सो गायो।"[१]

मध्याह्नोत्तर शयन से जगने के उपरान्त फल-फलादि से भोग लगाना भोग कहा जाता है। भोग का समय सायंकाल ५ बजे से माना जाता था।[२] पूर्वी राग का गायन साय-काल (३ से ६) बजे तक किया जाता है।[३] अत भोग के समय पूर्वी राग का गायन शास्त्रीय दृष्टि से उचित है।

कृष्णदास के समस्त पदो मे समय-सिद्धात का पूर्णतया पालन किया गया है। वार्ता मे दो प्रसग दिए गए है–"पाछे उत्थापन ते सेन पर्यन्त की सेवा सो पहोंचि के सेन आरती करि श्री गुसाई जी आपु श्रीनाथ जी के सन्मुख कृष्णदास को दुसाला उढाये और कहे जो–श्री गोवर्द्धनधर को अधिकार करो। तुम धन्य हो। तब वा समय कृष्णदास ने यह पद गायौ। सो पद–

राग कान्हरो

परम कृपाल श्री वल्लभनंदन करत कृपा निज हाथ दे माथै।
सो यह पद कृष्णदास ने गायो।"[४]

तथा –

"ता पाछे श्री गुसाई जी के संग कृष्णदास श्री गोवर्द्धन आये, तब सेन समय आरती को समो भयो। तब श्री गुसाई जी न्हाय के सेन आरती किये। तब कृष्णदास ने यह पद गायो। सो पद–

राग कान्हरो

आज को दिन धनि-धनि री माई नैनन भरि देखे नंदनदन

---

१. वही, पृ० ११६
२ देखिए प्रस्तुत ग्रंथ का तृतीय अध्याय, पृ० ११४
३ संगीत आफ इंडिया, अतिया बेगम, पृ० ५८
४. ८४ वैष्णवन की वार्ता, सम्पादक द्वारकादास पारीख, पृ० १३२
५. वही, पृ० १३४

ब्यारू या शयन के पूर्व आरती-वदन को शयन समय की आरती कहा जाता है। शयन समय रात्रि के ७ बजे से ८ बजे तक माना जाता था।[१] कवि ने दोनो पद शयन आरती के समय राग कान्हरा मे गाए है। राग कान्हरा का समय भी रात्रि का प्रथम पहर है।[२] अत. कवि का उस झाँकी मे राग कान्हरा का गायन समयानुकूल ही है।

नंददास

राधा-कृष्ण की रति-क्रीडा का गायन करते हुए नददास कहते है –

राग बिहाग

दम्पत्ति पौढ़ेई पौढ़े रस बतियाँ करन लागे दोउ नैना लागि गये,
सेज ऊजरी चन्दा हु ते निर्मल ता पर कमल छये।
फूकत दृग वृषभानु नन्दिनी झंपत खुलत मुरझात नये,
मानों कमल मध्य अलिसुत बैठे सांझ समय मानो सकुच गये।
आलस जान आप संग पौढ़ी पिय हिये उर लाय लये,
नन्ददास प्रभु मिलि श्याम तमाल ढिग कनक लता उलहये।[३]

तथा –

राग विहाग

केलि करि प्यारी-पिय, पौढ़े चारु चांदनी में,
नेह सों लिपट गए, जोवन के जोस मे।
अँगिया दरक गई मानो प्रात देखिबे कों,
चोंच काढ़ि चक्रवाक काम-तर रोस मैं।
आरस सों मोर बाँह दोऊ, कुच गहे पिय,
रति के खिलौना मानों ढापि दिये ओस में।
रूप के सरोवर में 'नंददास' देखे आली,
चकई के छौना बँधे कंचन के कोस में।[४]

प्रस्तुत पदों मे रात्रिकालीन सयोग-सुख का वर्णन किया गया है जैसा कि पहले कहा जा चुका है राग विहाग संयोग-शृंगार रस का रात्रिकालीन गेय राग है इसीलिए कवि ने उक्त पदो को राग विहाग मे गाया है।

---

१. देखिए प्रस्तुत ग्रंथ का तृतीय अध्याय, पृ० ११४
2. "Ragini Kanhra: The time for its performance is early Night."
Sangit of India, Atiya Begum, Page 65.
"It should be sung or played ....in the early hours of the night."
The Laud Ragamala Miniatures, Page 26.
३. नंददास, उमाशंकर शुक्ल, पृ० ४२२
४. पद-संग्रह, नंददास, डा० दीनदयालु गुप्त, पृ० १२

वर्षा-आगमन – श्रावण मास मे वर्षा की शोभा के मध्य केलि करते हुए युगल स्वरूप सबधी पदो का गायन कवि वर्षा ऋतु के हर्ष तथा आनद के प्रतीक राग मल्हार ही मे करता है –

राग मल्हार

आयो आगम नरेश देश देश में आनंद भयों, मनमथ अपनी सहाय कूँ बुलायो।
मोरन की टेर सुन कोकिला कुलाहल, तेसोई दादुर हिलमिल सुर गायो।
चढ़्यो घन मत्त हाथी पवन महावत साथी, अकुस बंकुश दे दे चपला चलायो।
दामिनी ध्वजा पताका फहरात सोभा बाढ़ी, गरज-गरज धों धों दमामा बजायो।
आगे-आगे धाय-धाय बादर वर्षत आय, व्यारन की बहुकन ठोर-ठोर छिरकायो।
हरी-हरी भूमि पर बूंदन की शोभा बाढ़ी, वरण रग बिछोना बिछायो।
बांधे है बिरही चोर कीनी है जतन रोर, संजोगी साधन सों मिल अति सचु पायो।
नंददास प्रभु नंद नंदन को आज्ञाकारी, अति सुखकारी ब्रजवासी मन भायो।[1]

तथा –

राग मल्हार

जहँ तहँ बोलत मोर सुहाए।
साँवन रमन भवन बृंदावन घुमड़ि घुमड़ि घन आए।
नेन्हीं नेन्हीं बूंदन बरषन लागे, ब्रज मंडल पै छाए।
नंददास प्रभु सखा संग लिये मुरली कुंज बजाए।[2]

वसंत-बहार का वर्णन कवि ने वसत राग मे किया है –

राग-बसंत

डोल झुलावत सब ब्रज-सुन्दरि, झूलत मदन-गुपाल,
गावत फागु धमार हरखि भरि, हलधर औ सब ग्वाल।
फूले कमल केतकी कुंजन गुंजन मधुप-रसाल,
चंदन वंदन चोवा छिरकति उड़त अबीर गुलाल।
बाजत बेनु, बिवान बाँसुरी, डफ मृदंग और ताल,
'नंददास' प्रभु के संग बिलसति, पुंज पुंज ब्रज बाल ॥[3]

प्रात काल कृष्ण को जगाने के प्रसंग मे नददास जी प्रात कालीन गेय राग भैरव का प्रयोग करते है –

राग भैरव

चिरैया-चुहचांनी, सुन चकई की बानी, कहत जसोदा-रानी जागो मेरे लाला।
रवि की किरन जानी, कुमुदनी सकुचानी, कमल विकसे दधि मथत बाला।

---

१. वर्षोत्सव कीर्तन-संग्रह, (भाग २), पृ० २६३
२ नंददास, उमाशंकर शुक्ल, पृ० ३८१
३. हस्तलिखित पद-संग्रह-नंददास, डा० दीनदयालु गुप्त, पृ० २४

सुबल श्रीदामा, लोक उज्जल वसन पहिरें, द्वारे ठाढ़े टेरत हैं बाल गुपाला ।
'नंददास' बलिहारी उठो, बैठो गिरिधारी, सब मुख देखन चहैं लोचन विसाला ॥[१]

खडिता प्रसग मे प्रात काल लौट कर आये हुए नायक की अस्तव्यस्त अवस्था का उल्लेख कवि प्रात काल राग ललित मे करता है –

राग ललित

भले भोर आए नैना लाल ।
अपनों पट-पीत छाँड़ि, नीलाम्बर लै बिलसै उरलाई नई रसिक-रसीली बाल ।
रति जय-पत्र सु लिख दीनों उर सोभित स्याम घन बिनु गुन-माल ।
'नंददास' प्रभु सांची कहिये, फिर फिर प्यारे हमारे नंदलाल ।[२]

सध्या समय गौवे चराकर लौटते हुए कृष्ण की रूप-माधुरी का गायन कवि साय-कालीन गेय राग गौरी मे करता है –

राग गौरी

बन तें आवत गावत गौरी
हाथ लकुटिया, गायन पाछै ढोटा जसुमत कौ री ।
मुरली धरे अधर नंदनंदन मानौं लगी ठगौरी,
याही ने कुलकान हरी है, ओढै पीतपिछौरी ।
चढ़ि चढ़ि अटनि लखति ब्रजबाला, रूप निरख भईं बौरी ।
'नंददास' जिन हरिमुख निरख्यौ, तिनकौ भाग बडौरी ।[३]

नंददास जी के अन्य पदो मे भी इसी प्रकार रस-राग तथा समय-सिद्धात का पालन किया गया है ।

चतुर्भुजदास

वर्षा ऋतु का वर्णन करता हुआ कवि कहता है –

राग मल्हार

स्याम सुन नियरो आयो मेहु
भीजेगी मेरी सुरंग चूनरी ओट पीत पट देहु ।
दामिनि ते डरपति हों मोहन निकट आपुनो देहु ।
दास चतुर्भुज प्रभु गिरधर सों बाँध्यो अधिक सनेहु ।[४]

---

१. हस्तलिखित पद संग्रह, नंददास, डा० दीनदयालु गुप्त, पृ० १, पद सं० ६
२. वही, पृ० २, पद सं० ६
३. वही, पृ० ४८
४. अष्टछाप-परिचय, प्रभुदयाल मीतल, पृ० २८६, पद सं० ६२

तथा –

सावन तीज हरियारी सुहाई माई रिमझिम रिमझिम बरसत मेह भारी ।
चुनरी को पाग बनी चुनरी पिछौरा कटि, चुनरी चोली बनी चुनरी को सारी ।।
दादुर मोर पपैया बोलत, कोयल सब्द करत किलकारी ।
गरजत गगन दामिनी दमकत गावत मलार तान लेत न्यारी ।।
कुंज महल में बैठे दोऊ, करत विलास भरत अंकवारी ।
'चतुर्भुज' प्रभु गिरिधर छवि निरखत, तन मन धन न्यौछावर वारी ।।[1]

तथा –

हिंडोरना माई झूलन के दिन आए ।
गरज-गरज गगन दामिनी दमकत, राग मलार जमाए ।।
कचन खंभ सुढार बनाए, बिच बिच हीरा लगाये ।
डाँड़ी चारि सुदेस सुहाई चौकिन हैम जराए ।।
रमकनीय झमकिनी पियारी, किंकिन सब्द सुहाए ।
'चतुर्भुज' प्रभु गिरिधर लाल सँग भामिनि मंगल गाए ।।[2]

तीनों पदों मे सावन के दिनो का वर्णन किया गया है । काले घन उमड़ रहे हैं । बिजली चमक रही है । रिमझिम पानी बरस रहा है । कोयल, दादुर, पपीहा और मोर आनदित हो कर शोर कर रहे है । हिंडोला झूलने के दिन आ गए हैं । शास्त्रीय नियमो के अनुसार ऐसे समय मे राग मल्हार गाया जाता है । चतुर्भजदास जी ने भी शास्त्रीय परम्परा का निर्वाह करते हुए मल्हार राग का ही उल्लेख किया है ।

चतुर्भुजदास जी का खंडिता भाव का एक पद देखिए –

राग ललित

अलस अनीद्यो ना आवत घूमत
मूंदे अति नीके लागत अरुन बरन
जानत हो सुंदर स्याम रजनी के
चारि जाम नेकहु न पाये मानो पलक परन ।
अधरनि रंग देख उराही चित्र
विसेष सिथिल अंग डगमगति चरन ।
'चतुर्भुज' कहाँ बसन पलटि
आए सांचीस कहो गिरराज धरन ।।

उक्त पद शृंगार रस से परिपूर्ण है नायक ने रात्रि कही और व्यतीत की है ।

---

१ अष्टछाप-परिचय, प्रभुदयाल मीतल, पृ० २८८, पद सं० ५६

२. वही, पृ० २६३, पद स० ८०

प्रात:काल होने पर वह घर आता है । नायक की अस्तव्यस्तता को देखकर उपेक्षिता नायिका उपालभ दे रही है । उपेक्षित होने के फलस्वरूप मानिनी नायिका के स्वर करुणामय है । राग ललित शृंगारी है । इसमें रे (कोमल ऋषभ) तथा शुद्ध और तीव्र दोनो प्रकार के मध्यम लगाए जाते है । इन स्वरो के योग से राग ललित मे करुणा तथा उपालम्भ के भाव स्पष्ट झलकते है । कवि ने राग ललित के इस पद मे शृंगार तथा उपालम्भ की योजना देकर रस-राग सिद्धात के प्रति अपनी उत्कट अभिरुचि प्रकट की है ।

भक्तिभाव से कृष्ण-वदना करते हुए चतुर्भुजदास जी कहते है –

राग भैरव

नैननि भरि देखो गिरधर कोमल मुख ।
मंगल आरति करों प्रात ही परम सुख ।
लोचन बिसाल छबि संचु हृदे मे धरों कृपा अवलोकनि चारु भृकुटी न सुख ।
चतुर्भुजदास प्रभु आनंदनिधि रूप निरषि के दूरि करों सब रैनि को दुख ।[1]

तथा –

राग भैरव

मंगल आरती गोपाल की
प्रात ही मंगल होतु निरखि के चितवनि नैन विसाल की ।
मंगल रूप स्याम सुंदर को मंगल भृकुटि भाल की ।
चतुर्भुजदास मंगल निधि बानक गिरिधर लाल की ।।[2]

भैरव भक्ति रस का राग है ।[3] भैरव राग की विशेषता है कि उसके गाने से कुछ समय के लिए मनुष्य को संसार से विरक्ति हो जाती है और भय दूर होकर हृदय को शांति मिलती है ।[4] भैरव राग मे यह शक्ति है कि वह क्षुद्र, अविनीत, चंचल तथा कामुक हृदय

---

१. हस्तलिखित पद-संग्रह, चतुर्भुजदास, डा० दीनदयालु गुप्त, पद सं० ३
२. वही, पद सं० ४
३. भैरव लच्छन गाय गुनीवर ।
कोमल सुरधर गमनी सुधकर ।
प्रात समय रीझत नारी नर ।।
धैवत होत प्रधान जीव सुर
रेखब सहचर होत पुरस्सर
मालव ठाठ लिखत अत सुन्दर
भक्ति रस सों गाय गुनी चतर ।।
संगीत-शिक्षा, श्रीकृष्ण नारायण रातांजनकर, (द्वितीय भाग), पृ० ७७

"Bhairon should be played from early dawn to sunrise. It expresses a feeling of peace and harmony and is supposed to drive away fear."
The Laud Ragamala Miniatures, Page 28.

को मोडकर धार्मिक प्रवृत्ति ने लीन कर देता है। भैरव राग धार्मिक स्थलों तथा सम्मानित स्थानो पर गाया जाता है।[१] यह गभीर प्रकृति का राग है।[२] भैरव राग का वादी स्वर (ध) तथा संवादी ऋषभ (रे) है। अतः इन स्वरो का प्रयोग अधिकता से होना है। गाने समय इन कोमल स्वरो की प्रकृति इतनी गभीर हो जाती है कि मन को ससार से वैराग्य सा होने लगता है। भैरव राग का जो चित्र मिला है उसमे भी भैरव का स्वरूप एक सन्यासी के रूप मे चित्रित है जिससे भक्ति रस का सकेत मिलता है।[३]

कवि के पदो मे वर्णित भाव भैरव राग के लक्षणो से पूर्णतया मेल रखते है। कवि दीनवत्सल भगवान की उपासना मे इन पदो को गा रहा है। इससे अधिक भक्तिपूर्ण तथा धार्मिक प्रसंग और क्या हो सकता है। चतुर्भुजदास जी नेत्रो से आग्रह करने है कि चचलता त्याग कर 'कृष्ण के रूप-माधुर्य का पान करो और उसी सुख मे लीन रहो। पदो मे प्रातः काल की मगल-आरती का वर्णन है। भैरव प्रात कालीन गेय राग है। अतः स्पष्ट है कि कवि ने रस-राग के साथ ही समय-सिद्धात का भी पूर्ण रूपेण निर्वाह किया है।

चतुर्भुजदास जी रागो के गुणों से भी परिचित थे। राग सारंग मे गाता हुआ कवि कहता है –

रास सारंग

ऐसैहि मोहू क्यों न सिखावहु।
जैसे मधुर-मधुर कल मोहन, तुम मुरलिका बजावहु॥
सारंग राग सरस नंदनदन, सजि सप्तक सुर गावहु।
ता बंधान सुजान सहज में, बहुत अनागत लावहु॥
श्रुति संगति करी परिमित तो ताहू में अतित बढ़ावहु।
खग मृग पसु कुल-बधू देव मुनि, सब की गति बिसरावहु॥[४]

राग सारग

बेनु धर्‌यो कर गोविंद गुन निधान।
जाति हुति बन काज सखिन संग ठगी धुनि सुनि कान।

---

1. "It is a rich heavy Rag capable of creating deep mystic feelings, altering the attitude of flippant natures into that of serious mindedness. Rag Bhairon is fit to be sung before high dignitories and in places of prestige and status."
   Sangita of India, Atiya Bagum, Page 60.
   'Bhairon converted flippancy into serious devotion.'
   The same. Page 60.
२. संगीत-शिक्षा, (भाग २), श्री कृष्णरातांजनकर, पृ० ७३
३. राग भैरव, चित्र स० ७
४. हस्तलिखित पद-संग्रह, चतुर्भुजदास, डा० दीनदयालु गुप्त

मोहन सहस कल खग मृग पसु बहु बिधि सप्तक सुर बंधान ।
चतुर्भुजदास प्रभु गिरिधर तन मन चोरि लियो करि मधुर गान ।[1]

सारग राग का जो चित्र प्राप्त है उसमे मुग्ध पशु-पक्षियो को एकत्रित दिखाया है।[2] सगीत-ग्रथो से भी विदित है कि सारग राग की यह विशेषता तथा गुण है कि उसकी ओर पशु आकर्षित हो जाते हैं ।[3] यही कारण है कि मुरली की ध्वनि से आकर्षित पशुओ का वर्णन कवि ने सारंग राग मे किया है ।

अतः यह नि·सदेह कहा जा सकता है कि चतुर्भुजदास जी सगीत-शास्त्र के ज्ञाता थे और भारतीय संगीत के नियमो के अनुसार रस, समय तथा प्रकृति का ध्यान रख कर रागों का प्रयोग करते थे ।

गोविंदस्वामी

कृष्ण के रासनृत्य का वर्णन करते हुए गोविदस्वामी कहते है –

राग मालव

नाचत लाल गोपाल रास में सकल ब्रज बधू संगे ।
गिडगिड तत थुग तत थुग थेई थेई भामिनी रति रस रंगे ।।
सरद विमल उडुराज विराजत गावत तान तरंगे ।
ताल मृदंग झांझ अरु झालरि बाजति सरस सुधंगे ।।
सिव बिरंचि मोहे सुर सुनि सुनि नर मुनि गति भंगे ।
'गोविंद' प्रभु रस रास रसिक मनि मानिनी लेत उछंगे ।।'[4]

प्रस्तुत पद का गायन कवि ने मालव-राग मे किया है । जैसा कि पूर्व कहा गया है और प्राप्त चित्र[5] से भी स्पष्ट है कि मालव सयोग श्रृंगार का रात्रिकालीन गेय राग है। पद मे गोपियो और कृष्ण की संयोग-लीला का वर्णन किया है । प्रेम मे विभोर गोपियाँ कृष्ण के साथ रास-नृत्य मे संलग्न है । 'सरद विमल उडुराज विराजत' से यह भी विदित हो जाता है कि रात्रि मे चन्द्रमा की ज्योत्स्ना मे रास-नृत्य हो रहा है । अस्तु पद में वर्णित भाव, रस और समय पद के ऊपर दिये गए मालव के भाव, रस और समय से साम्य रखते हैं।

गोविंदस्वामी का संयोग श्रृंगार का एक अन्य पद विभास मे है –

---

१. हस्तलिखित पद-संग्रह,'चतुर्भुजदास, डा० दीनदयालु गुप्त
२. सारंग रागिनी, चित्र सं० ८
3. "Sangtt of India', Atiya Begum, Page 60
४. गोविंदस्वामी, कांकरौली, पृ० २६, पद सं० ५०
५. मालवकौसिक रागिनी (मालव), चित्र सं० ६

राग विभास

एक रसना कहा कहों सखी री लालन की प्रीति अमोली ।
हँसनि खेलनि चितवनि जु छबीली अमृत बचन मृदु बोली ।।
अति रस भरे री मदनमोहन पिय अपन कर कमल खोलत बंद चोली ।
'गोविंद' प्रभु की जु बोहोत कहाँ लों कहें जे बाते कही अपुनो हृदौ खोली ।[1]

विभास प्रात.कालीन गेय रागिनी है और यह सयोग-श्रृंगार के वर्णन के लिए अत्यधिक उपयुक्त है क्योकि यह रागिनी दो प्रेमियो के हर्ष, प्रेम, आनद तथा काम-क्रीड़ा की प्रतीक है ।[2] विभास रागिनी का जो चित्र प्राप्त हुआ है उसमे भी श्रृगारमय वातावरण तथा नायक-नायिका की संयोगमय अवस्था चित्रित की गई है ।[3] पद मे भी संयोग-श्रृंगार का वर्णन किया गया है । प्रस्तुत पद श्रृगार समय की सेवा के पदो के अन्तर्गत दिया हुआ है। वल्लभसम्प्रदायी आठ समय की सेवा से विदित है कि श्रृगार-सेवा का समय प्रात काल है । अत यह पद भी गोविन्दस्वामी के द्वारा प्रात काल ही गाया गया होगा । अत. श्रृंगार-सेवा मे सयोग रस परिपूर्ण उक्त पद का राग विभास मे गायन पूर्णतया उचित ही है ।

वर्षा ऋतु संबंधी पदों का गायन गोविंदस्वामी ने प्रायः वर्षाकालीन राग मल्हार मे किया है । यथा–

राग मल्हार

आई जु श्याम जलद घटा । चहुँ दिसि तें घन घोरें –
दंपति अति रस रंग भरे बाँह जोटी, बिहरत कुसुम गनित कालिंदी तटा ।।
नेन्हीं नेन्हीं बूँदन बरखनि लाग्यो, तैसीये लहकन बीजु छटा ।
'गोविंद' प्रभु पिय प्यारी उठि चले, ओढ़ें लाल रातो पट दौरि लियो जाइ बंसीबटा ।।[4]

तथा–

राग मल्हार

देख सखि बरसन लाग्यो सावन ।
गरजत गगन दामिनी चमकत रिझै लेहु मनभावन ।।
नाचत मोर रसिक मदमाते कोयल पिक बोलत है रिझावन ।
चहुँदिसि रागमलार सप्तसुर मगन भए सब गावन ।।

---

१. गोविंदस्वामी, कांकरोली, पृ० १२४, पद सं० २९८

2. Vibhas Ragini is an early morning melody. The literal meaning of Vibhas is the 'Light of Shining Ragini' or 'the radiance Ragini', expressing the Joyful feeling of two lovers," The Laud Ragamala Miniatures, page 24.

३. विभास रागिनी, चित्र सं० ६

४. गोविंदस्वामी, कांकरौली, पृ० ८६, पद सं० १७३

सुनि राधे अब कठिन भई रितु बिनु ब्रजनाथ नाहिं सुखपावन ।
जाइ मिली 'गोविंद' प्रभु कों सब विरह विथा जु नसावन ॥[1]

वसतोत्सव सबधी पदो मे गोविंदस्वामी वसंत राग का गायन करते है यथा –

राग बसंत

रितु बसंत बिहरन ब्रजसुंदरि साज सिंगार चली ।
कनक कलस भरि केसरि रस सों छिरकत घोख गली ॥
कुसुमित नव कानन जमुना तट फूली कमल कली ।
सुक पिक कोकिल करत कुलाहल गूंजत मत्त अली ॥
चोबा चंदन और अरगजा लिये गुलाल मिली ।
ताल मृदंग झांझ डफ महुवरि बाजत अरु मुरली ॥
मच्यो राग बसंत तिहिं ओसर गावत तान भली ।
'गोविंद' प्रभु ग्वालनि संग डोलत सोभित संग अली ॥[2]

तथा –

राग बसंत

बिहरत बन सरस बसंत स्याम । सँग जुवती जूथ गावे ललाम ॥
मुकुलित नूतन सघन तमाल । जाही जुही चंपक गुलाल ॥
पारिजात मंदार माल । लपटावत मधुकरनि जाल ॥
कुटज कदंब सुदेस ताल । देखत बन रीझे मोहन लाल ॥
अति कोमल नूतन प्रबाल । कोकिल कल कूजत अति रसाल ॥
ललित लवंग लता सुबास । केतकी तरुनी मानों करत हास ॥
यह विधि लालन करे विलास । बारने जाइ जन 'गोविंद' दास ॥[3]

वसंत अत्यधिक चित्ताकर्षक, मधुर तथा मनोहारी ऋतु-राग है । वसत राग का गायन विशेष रूप से वसत ऋतु मे किया जाता है । उसमे वसंत ऋतु से सबंधित उपकरणो, लहलहाते हुए पीले कुसुमो की भीनी भीनी सुरभि तथा वसंती वस्त्रों से अलकृत इधर-उधर लहराती हुई नारियों का वर्णन किया जाता है । वसत राग आनन्द, हर्ष और आशा का

---

१. गोविंदस्वामी, कांकरौली, पृ० ९१, पद सं० १८०
२. वही, पृ० ५०, पद सं० १०३
३. वही, पृ० ५१, पद सं० १०६

प्रतीक है ।[१] वसंत राग का जो चित्र प्राप्त है उसमे भी स्त्रियो के हाँथो मे मृदंग, मँजीरे आदि दिखाये गये है जो आनन्द, हर्ष और रास-रग के भावो को प्रकट कर रहे है ।[२]

गोविदस्वामी ने वसत राग के इन पदो मे ऋतुराज वसत का आगमन होने पर श्याम और गोपियो के विहार का वर्णन किया है । चारो ओर पीले वर्ण वाले पुष्प खिल रहे है । भ्रमरो की गुजार, कोयल की कुहू-कुहू वातावरण को गुजायमान कर रही है । युवतियो के समूह श्याम के साथ क्रीडा मे निमग्न है । बाँसुरी, मृदग, ताल, डफ आदि वाद्ययत्र वज रहे है जो उनके उल्लास को प्रकट करते है । चारो ओर हर्ष, प्रेम और आनन्द का साम्राज्य है । इस प्रकार कवि के द्वारा राग वसत मे वर्णित पद के भाव वसत राग की प्रकृति, रस तथा समय के अनुकूल है ।

गोविदस्वामी के पदो मे समय-सिद्धात का सर्वदा पालन किया गया है । प्रात काल कृष्ण को जगाने दधि-मथन, कलेऊ आदि प्रसगो का वर्णन कवि ने प्रात कालीन गय राग भैरव, ललित तथा असावरी आदि मे किया है । यथा –

राग भैरों

उठु गोपाल भयो प्रात देखौ मुख तेरो ।
पाछे गृह काज करों नित्त नेम मेरो ।।
उदित निस विद तस दीसा ।
विदित भयो भाव कमलनि सों भँवर उडे जागो भगवान ।।
बंदीजन द्वार ठाड़े करत है किलोल बसंते ।

---

१. **संगीत-दर्पण, पृ० ७७; संगीत-पारिजात, पृ० १२७**

मृदुरिरितरे तीव्राः पवर्ज्यश्च द्विमध्यमः ।
षड्जवादी मसम्वादी वसन्तर्त्तौ वसन्तकः ।।

रागचन्द्रिका, पृ० ११

"Basant Ragini is probably one of the earliest seasonal melodies connected with the spring carnival."

The Laud Ragmala Miniatures, Stooke and Khandalvala, Page 52.

'Basant is the name of a Raga to be sung in the season of Basant, when the delicate yellow flowers scent the atmosphere and spread thickly like a luxurious carpet. The maidens dressed in Basanti (yellow) move in grace in dance song and swing merrily. There is gladness and joy of the spring of hope and wishes.'

Sangit of India, Atiya Begum, Page 80.

२. **राग बसंत, चित्र नं० १०**

प्रसंसा गावें लीला अवतार ए बलबीर राजें ।।
अज हो देखों री मनमोहन मदनमोहन पिय मान मंदिर तें, बैठे निकसि आइ छाजें।
लटपटी पाग मदार माल लटपटात मधुप मधु काजें ।।
'गोविंद' प्रभु के जु सिथिल-अरुन दोऊ विथकित कोटि मदन साजें ।।[१]

राग ललित

प्रात समै कहा रोकि रहे जु होतु अबार बिलोवन महियाँ ।
अँचरा छाँडि देहु मेरे प्यारे करो कलेऊ कुँवर कन्हैया ।।
जो भावे सो लेहु मेरे प्यारे पीयो बहुकरि देउँ धैया ।
करो सिंगार पलटि पट भूषन आँगन माँहि खेलो दोउ भैया ।।
ले कर कमल फिरावत सिर पर बदन निहारत जसोदा मैया ।
'गोविंद' प्रभु जननी जीवन धन मन वच करम करि लेत बलैया ।।[२]

आसावरी

कलेऊ कीजिए नंदलाल ।
खीर खाँड माखन अरु मिसरी, लीजे परम रसाल ।।
सद्य दूध धौरी कौं ओंट्यो, तुम कों ही गोपाल ।
बेनी बढ़े होय बल की सी, पीजे हो मेरे लाल ।।
हौं वारी या बदन कमल पर, चुंबो सुंदर गाल ।
'गोविंद' प्रभु पिय भोजन कीनों, जननी बचन प्रतिपाल ।।[३]

राजभोग-सेवा का समय दिन के दस बजे से मध्याह्न बारह बजे तक का है। छाक तथा राजभोग सबधी अधिकाश पदो मे गोविदस्वामी ने प्रखर दुपहरी में गाए जाने वाले सारग राग का ही प्रयोग किया है। यथा –

राग सारंग

छाक पठई जसुमति रानी ।
अहो गोपाल लाल कित हो जु जबै सुनी यह बानी ।।
अहो सखा छाक ले आवहु गालनि सों रति मानी ।
सघन कुंज में मिली जाइ और कीनों मन मानी ।।
टेरत सखा भोजन कों बैठे प्रीति जो अंतर जानी ।
'गोविंद' प्रभु पिय सब रस भोगी कमलनैंन सुखदानी ।।[४]

---

१ गोविंदस्वामी, काँकरौली, पृ० १०७, पद सं० २२३
२. वही, पृ० १२६, पद सं० २८२
३. वही, पृ० ११०, पद सं० २३३
४. वही, पृ० १२६, पद सं० २८५

संध्या समय गोग्वाल सहित वन से आगमन का वर्णन कवि ने संध्याकालीन गेय राग गौरी में किया है –

राग गौरी

आवत बन तें चारे धेनु ।
सखा संग स्तुति बदत मधुपगन मुदित बजावत बेनु ।।
अमृत मधुर धुनि पूरत स्त्रवननि उठि धाईं सकल तजि ऐनु ।
हृदै लगाइ ब्रजेस्वर अंचल पट पोंछत मुख रेनु ।।
उन मर्द्दन मज्जन करवावति भूषन पीत बसेन ।
'गोविंद' प्रभु खटरस भोजन करि विमल सेज सुख सेन ।।[1]

शयन-समय रात्रिकालीन सुषमा का वर्णन रात्रिकालीन गेय राग केदारा मे किया गया है –

राग केदारा

तेरो मुख प्यारी जैसो सरद ससी ।
दसन ज्योति जुन्हाई बचन सीतलताई अमृतहास सुहाई बोलत नैंन मसी ।
कस्तूरी तिलक भाल रति लंक छबि नछत्र मालमनि मंगल सी ।
'गोविंद' प्रभु नंदसुवन चकोर बर पान करत वर मनमथ तापनसी ।।[2]

इसी प्रकार गोविंदस्वामी की प्राय समस्त पदावली रस-राग और समय-सिद्धांत की कसौटी पर खरी उतरती है ।

छीतस्वामी

श्री कृष्ण की वन्दना करते हुए छीतस्वामी कहते है –

राग रामकली

नवाऊँ शीश रिझाऊँ लालै आयो शरण यह जो प्रयोजन ।
गाऊँ श्री बल्लभ नंदन के गुण लाऊँ सदा मन अंग सरोजन ।।
पाऊँ प्रेम प्रसाद ततछिन गाऊँ गोपाल गहे चित चोजन ।
छीतस्वामी गिरधरन श्री विट्ठल छवि पर वारूं कोटि मनोजन ।[3]

रामकली राग भैरव-ठाट से उत्पन्न होता है । भैरव-ठाट से उत्पन्न समस्त रागो मे भक्ति, त्याग, दैवी उपासना, प्रार्थना तथा अहंत्याग की भावना निहित रहती है । उनके

---

१. गोविंदस्वामी, कॉकरौली, पृ० १५१, पद सं० ३६२
२. वही, पृ० १८१, पद सं० ४६६
३. हस्तलिखित पद-संग्रह छीतस्वामी, डा० दीनदयालु गुप्त, पद सं० ५२

विषय धार्मिक, गहन, रहस्यमय और बुद्धि को प्रकाश देने वाले होते है ।[1] भैरव-ठाट का राग होने के कारण रामकली मे भी ये गुण पाये जाते है । कवि इस पद के भावों के अनुसार अपने आपको भगवान की भक्ति मे लीन कर देना चाहता है । कृष्ण के चरणो में नतमस्तक होना, श्याम की रूप-माधुरी का पान करना, गोपाल की छवि का गुणगान करना तथा मनमोहन की माधुरी से अपने हृदय को प्रकाशित करना—ये ही पद में वर्णित विषय है। रामकली मे गाये गये इस पद मे भक्तिरस की स्रोतस्विनी बह रही है जो कि राग के रस, रूप, तथा भावों से पूर्णतया साम्य रखती ह ।

छीतस्वामी ने अपने पदो मे जिस समय अथवा जिस समय से संबंधित दृश्यों का वर्णन किया है उसी के अनुकूल राग-रागिनियो की सृष्टि की है । यथा—

राग पूर्वी

गायन के पाछे-पाछे नटवर वपु काछै मुरली बजावत आवत है री मोहन ।
अति ही छबीले पग, धरनी धरत, डगमग उपजत मग लागे जिय सोहन ।।
खिरक निकट जान, आगै धरत स्याम ठठकी गाय लागीं सब गोहन ।
छीतस्वामी गिरिधारी विट्ठलेश वपुधारी आवत निरखि-निरखि गोपी लागी जोहन ।।[2]

छीतस्वामी ने इस पद मे गायो को चराकर, बाँसुरी बजाते हुए सायंकाल के समय लौटते हुए कृष्ण की सुषमा का वर्णन किया है और पद को राग पूर्वी में गाया है । पूर्वी राग सायकाल का राग है ।[3] इसका वादी स्वर गाधार है । गाधार के अधिक प्रयोग से इसका स्वरूप सायंकाल बहुत मधुर प्रतीत होता है । कवि ने इस पद को पूर्वी राग में गाकर संगीत के समय-सिद्धांत के ज्ञान का सुदर परिचय दिया है ।

---

1. "In all these melodies there is a great spirit of devotion, renunciation, Divine praises, prayers, self abnigation and annihilation. The themes are highly devotional, mystic, philosophic and soul stirring."
   Sangit of India, Atiya Begum P.75.
२. हस्तलिखित पद-संग्रह छीतस्वामी, डा० दीनदयालु गुप्त, पद सं० २४
३. मृदू रिधौ मध्यमौ द्वौ वादिसंवादिनौ गनी ।
   पूर्वी रागः सायमुक्त पूर्णारोहावरोहणः ।। राग-चंद्रिका, पृ० ७, श्लो० ७६
   निसौ रिगौ मगौ मपौ धपौ मगौ मगौ रिसौ ।
   संपूर्णा पूर्विका सायं गांशा मद्वयभूषिता ।। अभिनवरागमंजरी, पृ० २०, श्लो० ६४
   पूर्वीरागः सकलविदित. कोमलाभ्यां रिधाभ्यां ।
   मध्यस्तीव्रो मृदुरपि सदैवात्र तीव्रौ गनी स्तः ।।
   गों वाद्यत्र प्रविलसति तत्साहचर्ये निषादः ।
   संपूर्णोऽसौ सरसविबुधैः सायमेव प्रगीतः ।।
   रागकल्पद्रुमांकुर, संगीतकौमुदी, भाग १, विक्रमादित्यसिंह निगम, पृ० ६१–६२

इसी प्रकार रात्रि भर भगवान के विरह मे सतप्त हुआ कवि प्रातकाल कृष्ण के दर्शनो का आग्रह प्रात:कालीन राग भैरव ही मे करता है –

भोर भए नीको मुख हंसत देखाइए।
रात के दरश के बिछुरे दोउ पलक मेरे
वारि फेरि डारौं कै नैक नैनन सिराइए।।
कोमल उन्नत बाहु ऊपर अमित भाव मेरी
तेरी छाति छवि अधिक बढ़ाइए।
छीतस्वामी गिरधर सकल गुणनिधान
कहा कहू मुख करि प्राण ही ते पाइये।।[1]

बरसात के दिनो मे रिमझिम बूंदे बरसती है। घनघोर बादलो के गर्जन तथा बिजली की चमक से चौक कर श्याम जग जाते है। नयनो मे दर्शनो की अभिलाषा लिए द्वार पर प्रतीक्षा मे व्याकुल खडी गोपियाँ कृष्ण के रूप-दर्शन का पान कर आनदित हो उठती है। छीतस्वामी का कवि हृदय भी इस अनुपम सुख का अनुभव कर वर्षा ऋतु मे गाए जाने वाले ऋतु-राग मल्हार मे गा उठता है –

राग मल्हार

बादर झूम-झूम बरसन लागे।
दामिनी दमकत, चौंकि चमकि स्याम, घन की गरजि सुन जागे।।
गोपी जन द्वारै ठाड़ीं, नारी-नर मींजत, मुख देखति अनुरागे।
छीतस्वामी गिरधरनश्री विट्ठल, ओत प्रोत रस पागे।[2]

वसत ऋतु, उसके उपकरणो तथा उससे सबंधित केलि का वर्णन छीतस्वामी राग वसंत में ही करते है –

राग वसत

आयो ऋतुराज साज पंचमी बसंत आज,
बौरै द्रुम अति अनूप अम्ब रहे फूली।
बेली पट पीत माल, सेत पीत कुसुम लाल,
उढ़वति, सब स्यामभाम भँवर रहे झूली।
रजनी अति भई स्वच्छ, सरिता सब विमल पच्छ,
उड़गन पति अति अकास बरखत रस मूली।

१. अष्टछाप-परिचय, प्रभुदयाल मीतल, पृ० २६८, पद सं० २०
२. हस्तलिखित पद-संग्रह छीतस्वामी, डा० दीनदयालु गुप्त, पद सं० १

जती सती सिद्ध साध जित तितत उठे भाग,
बिमन सभी तपसी भए मुनि मन गति भूली
जुवति जूथ करत केलि, स्याम सुखद सिन्धु झेलि,
लाज लीक दई पेलि, परसि पगन तूली ।
बाजत आवत उपंग बांसुरी, मृदंग, चंग,
यह सब सुख 'छीत' निरखि, इच्छा अनुकूली ।[1]

पद में वर्णित 'रजनी अति भई स्वच्छ' तथा 'उड़गनपति अति आकास' शब्दो से यह स्पष्ट सकेत मिलता है कि प्रस्तुत पद मे वसंत ऋतु की रात्रिकालीन सुषमा का गायन किया गया है। यो तो बसत राग का गायन वसत ऋतु मे सर्वदा ही किया जाता है किन्तु शास्त्रीय दृष्टि से वसंत राग का गायन रात्रि के समय ही अधिक उपयुक्त है।[2] इससे सिद्ध होता है कि छीतस्वामी को शास्त्रीय सगीत का विधिवत् ज्ञान था।

गदाधर भट्ट

गदाधर भट्ट का राग मलार मे एक पद है –

राग मलार

सुखद बृंदावन सुखद यमुना तट सुखद कुंज भवन रच्यो है हिंडोरौ ।
सुखद कलपतरु सुखद फलफूल सुखद वहति सीतल पवन झकौरौ ।
सुखद रंगीले संग सुखद रंगीली राधा सुखद करत केलि रतिपति जोरौ ।
सुखद सखी झुलावैं, सुखद गीत गावैं सुखद गरजि बरषत थोरौ थोरौ ।
सुखद हरित भूमि सुखद बूंदनि रंग सुखद कोकिला कल मोर चकोरौ ।
सुखद बजावै वेनु सुजस सुनि सुखद गदाधर चित्त कौ चोरौ ।[3]

---

१. हस्तलिखित पदसंग्रह, छीतस्वामी, दीनदयालु गुप्त, पद सं० ५०

२. वसंततौ गेयो मृदुलऋषभस्तीव्रसकलः ।
पहीनो मद्वंद्वः समगपुनरावृत्तिरुचिरः ।।
संवादी मामात्योऽप्यहनि निशिचाव्याहत गतिः ।
स्थितस्तारे षड्जे स जगति वसंतो विजयते ।। रागकल्पद्रुमांकर, पृ० २३
सगौ मधौ रिसौ रिश्च निधौ पमौ गमौ चगः ।
निमौ गमौ गरी सश्च वासंती सांशिका निशि ।। अभिनवरागमंजरी, पृ० २१
"शास्त्र-दृष्टि से वसंत राग गाने का समय रात्रि का अंतिम प्रहर ठीक है।" हिन्दुस्तानी संगीत-पद्धति क्रमिक पुस्तक मालिका, चौथी पुस्तक, श्री विष्णुनारायण भातखंडे, पृ० ५३

३. श्रीगदाधर भट्ट जी महाराज की बानी, बालकृष्णदास जी की प्रति, पत्र सं० ३०, पद सं० ७

पद मे संयोग शृगार का वर्णन किया गया है। वृंदावन के कुज-कछारो मे राधा-कृष्ण झूल रहे है। प्रेम मे विभोर गोपियाँ गीत गाकर झुला रही है। मन्द समीर बह रही है। वृक्ष, फल, फूल और पत्र प्रफुल्लित होकर झूम रहे हैं। ऐसे समय मे रिमझिम-रिमझिम बूँदे अत्यधिक सुहावनी प्रतीत हो रही है। वर्षा का आगम देखकर मयूर मस्त हो नृत्य कर रहे है। कोकिला और चकोर की हर्षित ध्वनि चारो ओर व्याप्त हो रही है। कवि ने स्पष्ट रूप से वर्षा ऋतु के उस सुहावने समय का वर्णन किया है जब कि नायक-नायिका के मिलन के फलस्वरूप सम्पूर्ण वातावरण आनद, हर्ष, उल्लास और प्रेममय दीख रहा है। कवि ने इस प्रकार के भावों का गायन मल्हार राग मे किया है। जैसा कि पूर्व भी कहा गया है राग मल्हार प्रेम, आनद और हर्ष का प्रतीक है तथा वह वर्षा ऋतु मे गाया जाता है। मल्हार राग का जो चित्र है उसमे भी सयोग अवस्था चित्रित की गई है। रिमझिम बूँदो के कारण मोर प्रफुल्लित दिखाए गए है।[1] कवि का राग मल्हार मे गाया हुआ पद भी इन्ही भावो से परिपूर्ण है। अत उनके द्वारा राग मल्हार मे उक्त पद का गायन सार्थक है।

कवि का एक अन्य पद है जो राग वसत में गाया गया है –

राग वसंत

देखो प्यारी कुंजविहारी मूरतिवत वसंत।
मोरी तरुण तरुलता तन मै मनसिज रस वरसंत ।।
अरुण अधर नव पल्लव शोभा विहसनि कुसुम विकाश।
फूले विमल कमल से लोचन सूचित मन को हुलास ।।
चलपूर्ण कुन्तल अलिमाला मुरली कोकिल नाद।
देखीयति गोपीजन बनराई मुदित मदन उनमाद ।।
सहज सुवास स्वास मलयानिल लागत सदानि सुहायौ।
श्री राधामाधवी गदाधर प्रभु परसत सुखपायौ ।।[2]

पद में राधाकृष्ण की बसंत ऋतु की क्रीडा का वर्णन किया गया है। सम्पूर्ण वन सुन्दर पुष्पो से विभूषित है। पेडों पर नवीन पल्लव आ गये है। कृष्ण के रूप-सौदर्य का पान करके गोपियाँ उन्मत्त हो रही है। कवि ने इस राधा-कृष्ण के वसत-विहार का वर्णन वसंत ऋतु में गाये जाने वाले राग वसंत ही मे किया है जो सामयिक है। साथ ही वसत ऋतु का जो चित्र प्राप्त हुआ है उसमे नायक-नायिका की संयोग अवस्था चित्रित की गई है।[3] सखियॉ उन्माद मे लीन होकर मृदंग, मँजीरे आदि द्वारा अपने हर्ष को प्रकट कर रही है। विकसित पुष्प तथा वृक्षो के पत्ते आनन्द के प्रतीक है। वसंत राग के चित्र के द्वारा सयोग, प्रेम और

१. राग मल्हार, चित्र सं० ५

२. श्रीगदाधर भट्ट जी महाराज की बानी, बालकृष्णदास जी की प्रति, पत्र सं० २४
पद सं० १

३. राग बसंत, चित्र सं० १०

उल्लास की व्यंजना हो रही है। प्रस्तुत पद मे राधाकृष्ण गोपियो के मिलन, उल्लास, हर्ष तथा वसंत ऋतु से संबधित भावो का वर्णन होने के कारण ही उसे राग वसंत मे गाया गया है।

रस और राग-सिद्धात के साथ ही गदाधर जी ने सदैव समय-सिद्धात का पालन भी अपने पदो मे किया है। गौरी राग सायकालीन राग है। इसी कारण कवि गोधूलि के समय ग्वालबाल सहित कोलाहल करते, गौये चरा कर लौटते हुए तथा धूलधूसरित अगो से परिपूर्ण कृष्ण के सौदर्य का वर्णन उसी समय के उपयुक्त राग गौरी मे करता है –

राग गौरी

आजु ब्रजराज कौ कुवर बनते सखी देखि आवत मधुर अधर रंजित वेनु।
मधुर कल गान निजु नाम सुनि श्रवन युत परम प्रमुदित वदन फेरि हूकति धेनु
मर्हषि घूर्णित नेन मंद विहसति बेंनु कुटिल अलकावलि ललित गोप पद रेनु।
ग्वाल बालनि जाल करत कोलाहलनि संग दलताल धुन रचत चेन।
मुकुट की लटक अरु चटक पटपट प्रात प्रगट अंकुरि गोपी निकर मन मैनु।
कहि गदाधर जुयहन्याइ ब्रज सुन्दरी विमल वनमाल के बीच चाहति एनु।[१]

तथा –

देखि री आवत गोकुल चंद।
नखसिख प्रति वन वेष विराजत हरत विरह दुख द्वंद।
आपुन ही जु वनाइ बनाए गायन के पद छंद।
तेइ मुरली मांझ बजावत मधुर मधुर सुर मद।
अगनित वृज युवतीन मन बांधत दुहूं भौंह दृढफद।
पोषत तेन मधुप कुल ए कहि वदन कमल मकरंद।
सहज सुवास पास नहि छाँडत गोप गाइ अलिवृंद।
अंग अंग बलि जाइ गदाधर मूरति मै आनंद।।[२]

इसी प्रकार चन्द्रमा की विहँसती ज्योत्स्ना मे रास-नृत्य का वर्णन कवि रात्रिकालीन गेय राग हमीर मे करता है –

राग हमीर

करत हरि नृत्य नवरंग राधा संग लेत नवगति भेद चर्चरी ताल के।
परस्पर दरस समत्त भए तत्त थेई थेई वचन रचित संगीत सुर साल के।

---

१. श्रीगदाधर भट्ट जी महाराज की बानी, बालकृष्णदास जी की प्रति, पत्र सं० २१, पद स० २२

२. वही, पत्र सं० २२, पद सं० २३

फरहरत वरह वरंठहरत उरहार भरहरत भुमर वर विमल वन मालके ।
षिसित सित कुसुम सिरहु सत कुंतल मनौ लसत कल झलमलत स्वेद कन भाल के ।
अंग अंगनि लटक मटक भंगुर भौहु पटक पटतार कोमल चरन चाल के ।
चमकचल कुंडलनि दमक दसनावली विविध व्यज भाव लोचन विशाल के ।
बजत अनुसार दमदम मृंदग निनाद झमक झकार किंकिनी जाल के ।
नील नव जलद में तड़ित तडफति मनौ यों विराजत प्रिया पाम गोपाल के ।
ब्रज जुवति जूथ अगनित वदन चद्रमा चंद्र भयौ मंद उद्योत तिहिं काल के ।
मुदित अनुराग सब राग रागिनि तान मान गतगर्व रमादि सुरबाल के ।
भगन चरस गनरस मगन वरषत फूल वारि डारत तन जतन भरि थाल के ।
एक रसना गदाधर न वरनत बनै चरित अद्भुत कुंवर गिरिधरन लाल के ॥[1]

इसी प्रकार गदाधर जी के अन्य पदो मे भी रस-राग तथा समय-सिद्धात का उचित रीति से निर्वाह हुआ हैं ।

सूरदास मदनमोहन

वर्षाकालीन भावो का चित्रण करता हुआ कवि गाता है –

राग मलार

प्रीतम प्यारी राजत रंग महल ।
गरजि गरजि रिमझिम रिमझिम,
बूंदनि लाग्यो बरसनि घन ।
बोलत चातक मोर दामिनी दमकि,
आवै भूमि बादर अवनि परसन ।
तैसी हरियारी सावन मन भावन,
आनंद उर उपजावन इन्द्र-वधू-दरसन ।
'मदनमोहन' प्रिया संग गावत 'राग मलार',
ललित लता लागी सुनि-सुनि सरसन ।[2]

कवि ने यह पद राग मल्हार मे गाया है । उसने इस बात पर विशेष महत्व दिया है कि ऐसे सावन के महीने मे जब कि घनघोर बादल उमड रहे है, बिजली चमक रही है, रिमझिम पानी बरस रहा है, चारो ओर की हरियाली नेत्रो को लुभा रही है और चातक तथा मोर ने रट लगा रखी है 'राग मल्हार' गाया जा रहा है ।

राग मल्हार वर्षा के दिनो मे गाया जाता है । मल्हार राग मे वर्षा, बादल तथा

---

१. श्री गदाधर भट्ट महाराज की बानी, बालकृष्णदास जी की प्रति, पत्र सं० २३-२४, पद स० ३

२. वर्षोत्सवकीर्तन-संग्रह

वर्षा से उत्पन्न आनंद आदि भावों का मधुर गायन किया जाता है। मल्हार राग का जो चित्र प्राप्त होता है[१] उसमे भी चारों ओर का वातावरण भयानक तथा अंधकारमय चित्रित किया गया है, आकाश पर काले बादल छाये हुए है, बिजली चमक रही है तथा बादलो की कडक से घन-गर्जन हो रहा है।

कवि ने भी अपने पद मे इन सब विशेषताओ का उल्लेख किया है। अंधकार छाया हुआ है, बिजली चमक रही है और बादल उमड-घुमड कर बरस रहे है जो हृदय को प्रफुल्लित करते है। वास्तव मे कवि का पद मल्हार राग के सब लक्षणों से युक्त है।

सूरदास मदनमोहन जी का एक पद है –

राग हिंडोल

झूलत जुग कमनीय किसोर सखी चहुँ ओर झुलावत डोल।
ऊँची ध्वनि सुन चक्रित होत मन सब मिल गावत 'राग हिंडोल'।

एक वेष एक वयस एक सम नव तरुनी हरनी द्रिग लोल।
भाँति-भाँति कुंचकी कसे तन वरन वरन पहरें बलि चोल।

वन उपवन द्रुमबेली प्रफुल्लित अंब मोर पिकनि कर कलोल।
तैसे ही स्वर गावत ब्रजवनिता झूमक देख लेत मनमोल।

सकल सुगंध संबार अरगजा आई अपने-अपने टोल।
एक तक पिचकारिन छिरकत एकभरे भर कनक कचोल।

कबहुं स्याम पीय उतर डोलते कौतुक हेत देत झकझोल।
तब प्रिया डर भरि स्वास कंप तन विरम म्रिदु बोल।

गिरत तरोना गह्यो स्याम कर स्रवन देन मित छुअत कपोल।
तब प्रिय ईषद मुखक मंद हस वक्रचिते कर मुंह सलोल।

भेरि झांझ दुंदुभी पखावज औ डफ आवज बाजत ढोल।
आए सकल सखा समूह गुर हो हो होरी बोलत बोल।

रत्न जटित आभूषण दीने मुक्ताहार अमोल।
सूरदास मदनमोहन प्यारे फगुआ दे राख्यो मन ओल॥[२]

प्रस्तुत पद में कृष्ण की हिंडोल-लीला का वर्णन किया गया है। 'सब मिल गावत राग हिंडोल' से स्पष्ट है कि हिंडोल राग गाया जा रहा है। हिंडोल राग राधा-कृष्ण के

---

१. राग मल्हार, चित्र सं० ५

२. कीर्तन-संग्रह, भाग २, बसंत और धमार के कीर्तन, पृ० २४३

झूला-उत्सव से संबंधित माना जाता है ।[1] हिंडोल राग का जो चित्र[2] मिला है उसमें कृष्ण झूले पर सुशोभित है । उनको चारो ओर से गोपियो ने घेर रखा है । अलंकृत वेष भूषा से सुसज्जित गोपियाँ कृष्ण को हिंडोला झुला रही है और गा रही है । हिंडोल राग सयोग शृंगार, प्रेम तथा हर्ष का प्रतीक है ।[3]

कवि का उपर्युक्त पद भी इसी भाव का है । चारो ओर संयोगमय वातावरण है । एकांत स्थल, वन, उपवन, शीतल मंद सुगन्धित समीर, मोर तथा पिक का शोर आदि प्रेम को और भी उद्दीप्त कर रहे है । प्रेम मे मतवाली गोपियाँ कृष्ण को झूला झुला रही है । सूरदास मदनमोहन ने झूलन उत्सव से संबधित सयोग शृगार के इस पद को राग हिंडोल मे गाकर यह सिद्ध कर दिया कि वे एक कुशल कवि-सगीतज्ञ थे ।

कृष्ण को जगाने के लिये कवि प्रभाती गाता है –

राग प्रभाती

स्याम लाल प्रात भयो, जागौ बलि जाऊँ ।
चुटिया सुरझाय बीच सुमन हौं गुथाऊँ ।।
उगत सूर्य ज्योति भई कुलहिरी बनाऊँ ।
पाय बांधि घूंघरू सु चालिबो सिखाऊँ ।।
'सूरदास मदनमोहन' गुन तिहारौ गाऊँ ।
हरखि निरखि गोविंद छवि जीवन-फल पाऊँ ।।[4]

प्रभाती प्रात काल के समय गाई जाती है । प्रभाती भक्ति रस की रागिनी है जो

---

1. "Hindola : It was later affiliated with the jhulana festival of the Radha Krishna cult, a popular religious festival of the North West."
The Laud Ragamala Miniatures, Page 36.

२. राग हिंडोल, चित्र सं० ११

3. "In form it is like Krishna, the god of love squatting on a Hindola, the mystic golden swing ..encircled by gaily dressed Gopis (maidens) who are swinging him in rhythm with the motion of the universe. The liquid depths of his eyes are brimful of mirth and love."
Sangit of India, Atiya Begum, Page 64

"He is seated on the swing usually playing a musical instrument and surrounded by his Gopis (village girls, the friends of his youth), who swing him to the accompaniment of the music."
The Laud Ragamala Miniatures, Page 36.

४. वाणी श्री श्री सूरदास मदनमोहन की, प्रकाशक कृष्णदास, पृ० ४, पद सं० १०

हृदय पर गहरा प्रभाव डालती है ।[1] पूरा पद भक्ति रस से ओत-प्रोत है । उसमे प्रात.काल से सबंधित उपकरणो का वर्णन किया गया है । इसी कारण कवि ने प्रभाती का गायन किया है ।

सूरदास मदनमोहन का एक पद भैरव राग में है –

राग भैरव

मधु के मतवारे स्याम खोलौ प्यारे पलकैं ।
सीस मुकुट लटा छुटी और छुटी अलकैं ॥
सुर नर मुनि द्वार ठाढ़े दरस हेतु किलकैं ।
नासिका के मोती सोहैं बीच लाल ललकैं ॥
कटि पीताम्बर मुरली कर श्रवन कुंडल झलकैं ।
सूरदास मदनमोहन दरस देहौ भल कैं ॥[2]

कवि कृष्ण को प्रात काल जगा रहा है । कृष्ण के दर्शन के लिए सुर, नर, मुनि आ गए है और कृष्ण अभी सो ही रहे है अत कवि आग्रह करता है कि श्याम उठें और अपने भक्तो को दर्शन दे । पद मे प्रात काल का ही वर्णन किया गया है जो राग के समय से मेल खाता है ।

सूरदास मदनमोहन के अन्य पद भी प्राय राग-रस तथा समय-सिद्धान्त की कसौटी पर कसे जाने पर खरे उतरते हैं ।

स्वामी हितहरिवंश

श्री स्वामी हितहरिवंशजी ने राधा कृष्ण की युगल उपासना की है अत इनके पदों मे राधा-कृष्ण के विहार और प्रेमलीला का श्रृंगारिक वर्णन तथा उस भाव की अनुभूति का आनंद वर्णित है । कवि राधा-कृष्ण की केलि-क्रीडा का वर्णन करते हुए कहता है –

राग विभास

आजु प्रभात लता मंदिर में, सुष बरषत अति जुगलवर ।
गौर श्याम अभिराम रंग-रंग भरे, चटकि लटकि पग धरत अवनि पर ।
कुच कुमकुम रंजित मालावलि, सुरत नाथ श्रीश्याम धामवर ।
प्रिया प्रेम अंक अलंकृत चितृत, चतुर सिरोमणि निजकर ।

---

1. Prabhat or Prabhavati is a Bhakti Marg, a highly devotional melody full of earnest and pathetic pathos."
Sangit of Indis, Atiya Begum, Page 74.

२. कीर्तन-संग्रह, भाग ३, नित्यपद के कीर्तन, पृ० १६, पद सं० १६

दम्पति अति अनुराग मुदित कल, करत मन हरत परस्पर ।
जै श्री हित हरिवंश प्रसंग परायन, गाइन अलि सुर देत मधुरतर ।[1]

तथा –

प्रात समय दोऊ रस लम्पट सुरति युद्ध जय युत अति फूल ।
श्रम वारिज घन विन्दु वदन पर भूषण अंग-अंग प्रतिकूल ।।
कछु रह्यो तिलक शिथिल अलकावलि वदन कमल पर अलिकूल मूल ।
हितहरिवश मदन रंग रंगि रहे नयन बैन कटि शिथिल दुकूल ।।[2]

तथा –

आजु तो युवती तेरौ वदन आनंद भरयौ पिय के संगम के सूचत सुख चैन ।
आलस वलित बोल सुरंग रंगे कपोल विथकित अरुण उनीदे दोऊ नैन ।।
रुचिर तिलक लेस कीरत कुसुम केस शिर सीमन्त भूषित मानौं तैन ।
करुणाकर उदार राखत कछु न सार असन वसन लागति जब दैन ।।
काहे को दुरत भीर पलटे पीतम चोर वश किये श्याम सखी शत मैन ।
गलित उरसि माल शिथिल किंकिणी जाल हितहरिवंश लतागृह सैन ।।[3]

तीनो पदो मे राधाकृष्ण, दम्पति की शृगार केलि-लीला का वर्णन राग विभास मे किया गया है । विभास राग संयोग रस का राग है ।[4] अत कवि का यह वर्णन राग विभास मे करना उचित ही है । 'आजु प्रभात लता मदिर मे' तथा 'प्रात समय दोऊ रस लम्पट' से विदित होता है कि कवि प्रात काल का वर्णन कर रहा है । विभास राग प्रात काल गाया जाता है । अत. इन पदो मे कवि ने रस-राग तथा समय-सिद्धात का पूर्णतया पालन किया है ।

बसत ऋतु के राग-रंग का वर्णन कवि वसत राग ही मे करता है –

राग बसत

मधुरित बृंदावन आनंद न थोर,
राजत नागरी नव कुशल किशोर ।
जूथिका जुगल रूप मंजरी रसाल,
विथकित अलि मधुमाधवी गुलाल ।
चंपक बकुल कुल विविध सरोज,
केतकी मेदिनी मद मुदित मनोज ।
रोचक रुचिर बहें त्रिविध समीर,
मुकलित नूतन दित पिक कीर ।

---

१. चौरासी पद, हितहरिवंश, (प्रयाग संग्रहालय), प्रति सं० ८५/२१६, पद सं० ५
२. वही, पद सं० ३
३. वही, पद सं० ४
४. देखिए इसी अध्याय में पूर्व दिया हुआ गोविंद स्वामी का प्रसंग तथा रागिनी विभास चित्र सं० ६

पावन पुलिन घन मंजुल निकुंज,
किशलय सयन रचित सुख पुंज ।
मंजीर मुरज डफ मुरली मृदंग,
बाजत उपंग वीणा वर मुख चंग ।
मृग मद मलयज कुंकुम अबीर,
चंदन अगर शत सुरंगित चीर ।
गावत सुंदर हरि शरस धमारि,
पुलकित खग मृग बहत न बारि ।
जै श्री हितहरिवंश हंस हंसिनी समाज,
जैसे ही करौऊ मिली जुग-जुग राज ॥[1]

इसी प्रकार वर्षा ऋतु से संबंधित भावो का गायन हितहरिवंश जी ने वर्षा ऋतु के राग मल्हार मे किया है –

राग मल्हार

नयो नेह नवरंग नयो रस नवल स्याम वृषभान किशोरी ।
नवपीतांबर नवल चूनरी नई-नई बूंदन भीजत गोरी ॥
नव वृंदावन हरित मनोहर नव चातिक बोलत मोर मोरी ।
नव मुरली जु मल्लार नई गति श्रवन सुनत आये घन घोरी ।
नवभूषण नव मुकट विराजत नई-नई उरप लेत थोरी-थोरी ।
जै श्री हितहरिवंश असीस देत मुख चिरंजीबो भूतल यह जोरी ।[2]

रात्रि-जागरण के फलस्वरूप प्रात काल राधिका के नेत्र अरुण तथा आलस्यमय हो रहे है । इन नयनों के सौदर्य का वर्णन कवि प्रात काल गेय बिलावल राग मे करता है –

राग बिलावल

अति ही अरुण तेरे नयन नलिन री ।
आलस युत इतराय रंगमगे भये निसि जागरन खिन मलिन री ।
सिथिल पलक मैं उठति गोलक गति विधि यौ मोहन मृग सकत चलिन री ।
जै श्री हितहरिवंश हंस कलगामिनि संभ्रम देत भवरनि अलिन री ॥[3]

किन्तु कवि के कुछ पदो मे समय-सिद्धात के पालन का अभाव भी मिलता है । एक पद है देखिये –

---

१. चौरासी पद-हितहरिवंश, प्रति सं० ३८/२१५ प्रयाग-संग्रहालय, पद सं० ८
२. वही, पद-नं० ५४
३. वही, पद सं० ८

राग सारग

सरद विमल नभ चन्द विराजै। मधुर मधुर मुरली कल बाजै ॥
अतिराजत घनश्याम तमाला। कंचन केलि बनी ब्रज बाला ॥[१]

पद की पक्तियो से स्पष्ट है कि कवि रात्रिकालीन सुषमा मे कृष्ण की क्रीड़ा का वर्णन कर रहा है । निर्मल आकाश मे चन्द्र अपनी ज्योत्स्ना विकीर्ण कर रहा है और कृष्ण की मुरली मधुर स्वर मे बज रही है। कवि इस पद मे रात्रिकालीन भावो का उद्घाटन कर रहा है। उस ने इस पद को राग सारग मे गाया है। राग सारंग दिन के समय गाया जाता है।[२] अत रात्रिकाल का वर्णन सारग राग मे शास्त्रीय दृष्टि से अनुपयुक्त है। सभव है संग्रहकर्ताओ के द्वारा यह पद राग सारग के अन्तर्गत रख दिया गया हो क्योकि इनके समान पद संग्रहकर्ताओ के संग्रहों मे विभिन्न रागो मे मिलते है।[३]

हितहरिवंश जी ने रागो के गुणो की ओर भी इगित किया है –

राग तोडी

आजु मेरे कहें चलो मृग नैनी।[४]

कवि ने इस पद का गायन तोडी रागिनी मे किया है । तोडी की विशेषता है कि

---

१. चौरासीपद, हितहरिवंश, प्रति सं० ३८।२१५, प्रयाग-संग्रहालय, पद सं० २४
२. देखिए इसी अध्याय के अन्तर्गत सूरदास का प्रसंग।
३. "जोई जोई प्यारी करें सोइ सोई मोहे भावे' अष्टछाप और वल्लभसम्प्रदाय में यह पद राग विभास में दिया गया है।
अष्टछाप और वल्लभ-सम्प्रदाय, डा० दीनदयालु गुप्त, भाग १, पृ० ६७
संगीतरागकल्पद्रुम में यही पद राग विभास तथा राग देवगंधार दोनों में मिलता है। (देखिए, संगीतरागकल्पद्रुम, द्वितीय भाग, पृ० १४१ तथा १८३)
संगीतरागकल्पद्रुम में हितहरिवंश जी के निम्नलिखित एक समान ही पद दो विभिन्न रागों में भी मिलते है। यथा –

राग विभास

(क) आजु प्रभात लता मंदिर में सुख वर्षत अति निरखि युगलवर।
(ख) जोई-जोई प्यारो करे सोई-सोई मोहि भावे।
(ग) प्रात समय दोऊ रस लम्पट सुरति युद्धजय युत अति फूल।
(घ) आज तो युवती तेरो वदन आनंद भयो।
संगीत-राग-कल्पद्रुम, द्वितीय भाग, पृ० १४१, और पृ० १८३ पर पुनः ये ही पद राग देवगंधार के अंतर्गत दिए है।

४. चौरासी पद-हितहरिवंश, प्रति सं० ३८/२१५, प्रयाग-संग्रहालय, पद सं० १६

उसके गायन से मृग आकर्षित हो कर चले आते है ।[१] तोड़ी रागिनी का जो चित्र प्राप्त है उसमें भी वीणा-वादन से आकर्षित मृग-शावको को दिखाया गया है ।[२] तोडी रागिनी की इस विशेषता की ओर संकेत करने के लिए ही हितहरिवश जी ने तोडी मे गाये गये इस पद मे 'मृगनैनी' शब्द का सार्थक प्रयोग किया है ।

व्यास जी

राधा-कृष्ण की युगल केलि का वर्णन करते हुए कवि व्यास जी कहते है –

राग मारू

आजु अति कोपे स्यामा-स्याम ।
बीर खेत वृंदावन दोऊ, करत सुरत-संग्राम ।।
मर्मनि कंचुकी-बर्म, सुदृढ़ कुच चर्मनि, लट करवाल ।
अंग-अंग चतुरग सैन (वर), भूषन-रव-दुंदुभि-जाल ।।
गौर-स्याम बानैत बने, निजु बिरदावलि प्रतिपाल ।
अचल चंचल धुजा-पताका, (छबि) केस चमर बिकराल ।।
भौंहँ-धनुष ते छूटत चहुँ दिसि, लोचन बान बिसारे ।
भेदत हृदय-कपाटनि निर्दय, तोवर उरज अन्यारे ।।
दसन-शक्ति नख सूलनि बरषति, अधर कपोल बिदारे ।
घूंघट-घुघी, मुकुट, टोपा, कवची, कंचुक भये न्यारे ।।
जीती नागरि, हारे मोहन, भुज सकट में घेरे ।
पीन पयोधर, हार नितंब प्रहार किये बहुतेरे ।।
प्रनय-कोप बोली कैतब, अपराध किये तै मेरे ।
परम उदार 'व्यास' की स्वामिनि, छाँड़ि दिये करि चेरे ।।[३]

इस पद का गायन राग मारू में किया गया है । जैसा कि पूर्व बताया जा चुका है मारू वीर रस का राग है । प्रस्तुत पद मे यद्यपि सयोग श्रृगार का वर्णन है किन्तु वह वीर रस की भावना से परिपूर्ण है । राधा-कृष्ण की रति-क्रीड़ा को सुरत-सग्राम का रूप दे कर कवि ने वीर भावना, वीर रस तथा युद्ध से सबंधित उपकरणों का ही प्रस्तुत पद मे उल्लेख किया है । वीर भावों से परिपूर्ण होने के कारण ही कवि ने उक्त पद का गायन मारू राग में किया है ।[४]

---

१. दि म्यूजिक आव् इंडिया, पापले, पृ० ६८
२. तोड़ी रागिनी, चित्र सं० १२
३. भक्त कवि व्यासजी, वासुदेव गोस्वामी, व्यास-वाणी, पृ० ३४८, पद सं० ५८८
४. देखिए इसी अध्याय में सूरदास का प्रसंग तथा चित्र सं० ३ रागिनी मारू

पावस, ऋतु की शोभा, मोर, कोयल, खग, पशु, पक्षियो के आनद, विद्युत की चमक, काली घटा और अँधेरी रजनी आदि वर्षा ऋतु के उपकरणों का वर्णन कवि वर्षाकाल के राग मलार मे करता है –

राग मलार

मानौ माई कुजन पावस आयौ ।
स्याम घटा देखत उनमद ह्वै, मोरन सोर मचायौ ।।
दामिनि दमकति, चमकति कामिनि, प्रीतम उर लपटायौ ।
निसि अँधियारी, दिसि नहिं सूझति, काजु भयौ मन-भायौ ।।
डोलत बग बोलत घन-धुनि सुनि, चातक बदन उठायौ ।
बरषत धुरवा सीतल बूंदनि, तन-मन-ताप बुझायौ ।।
कुसुमित-धरनि तरनि-तनया तट, चंद बदन सुख पायौ ।
'व्यास' आस सब ही की पूजी, सरिता सिंधु बढ़ायौ ।।[1]

वसन-वर्णन कवि वसत राग मे करता है –

राग वसत

चलि चलहि बृंदावन बसंत आयौ ।
झूलत फूलनि के झंवरा, मारुत मकरंद उड़ायौ ।
मधुकर, कोकिल, कीर, कोक मिलि, कोलाहल उपजायौ ।
नाँचत स्याम बजावत, गावत, राधा राग जमायौ ।
चोवा, चदन, बूका, बदन, लाल गुलाल उड़ायौ ।
'व्यास' स्वामिनी की छबि निरखत रोम रोम सचु पायौ ।[2]

तथा –

राग बसत

खेलति राधिका, गावति बसत ।
मोहन संग रंग सों देखति सब सोभा, सुख कौ न अंत ।।
बाजत ताल, मृदग, झाँझ, डफ, आवज, बीना, बीन सुकंत ।
चोबा, चंदन, बूका, बंदन, साखि गुलाल कुमकुम उडंत ।।
मौरे आम काम उपजावत, गावत कोकिल मनौं मयमंत ।
गुंजत मधुप कुंज कुंजनि पर, मंजु रैन मलयज बहत ।।
गौर-स्याम-तन छींटन की छबि, निरखि बिमोहे कमलाकत ।
'व्यास' स्वामिनी के बन बिहरत, आनंदित सब जीव-जंत ।।[3]

---

१. भक्त-कवि व्यास जी, वासुदेव गोस्वामी, व्यास-वाणी, पृ० ३७८, पद स० ६८१
२ वही, पृ० ३६८, पद सं० ६४६
३. वही, पृ० ३६९, पद सं० ६४९

व्यास जी के पदो मे सारंग राग का प्रयोग प्रत्येक अवसर पर मिलता है। प्रात सेज्याविहार संबधी पद मे सारग राग का प्रयोग किया गया है –

राग सारग

बनी वृषभान जान की बेटी ।
निबिड़-निकुंज-कुसुम-पुंजन पर, स्याम-बाम-अंग लेटी ।।
रति निसि जगी सोवत नहिं भोर, किसोर जोर गुजरेटी ।
पियके हिय में जिय ज्यों राजति, नाहु-बाहु-बल भेंटी ।
बिहँसनि नैननि की सैननि, मनु मनमथ-अनी खरवेटी ।
लोभी लाभ 'व्यास' स्वामिनि, जनु कंचन-रासि समेटी ।।[1]

खडिता-प्रसंग मे प्रात काल कृष्ण का वर्णन करते हुए व्यास जी सारंग राग मे कहते है –

राग सारग

राख्यौ रंग कौन गोरी सों ।
सुनहु स्याम फबि आइ कितव, तुमहिं लहनौं चोरी सों ।।
चदन-बिंदु ललाट इन्दु सम, सिर बंदन रोरी सों ।
अधरनि अजन-रेख न मेष, नैन अरुन तेरी सों ।।
भोर किसोर चोर लौं आये, प्रीति करत भोरी सों ।
सौंह करत चीन्हे पर कछू बसाइ न बरजोरी सों ।।
नील निचोल प्रगट चोली, भूषन चूरा डोरी सों ।
जानति सबै 'व्यास' के स्वामिहिं प्रीति टराटोरी सों ।।[2]

शरद की रात्रि मे रासोत्सव का वर्णन भी कवि सारग राग मे करता है –

राग सारंग

नाँचति गोरी, गोपाल गावै ।
कोमल पुलिन कमल-मंडल महँ रास रच्यौ ।
स्यामा स्यामल सखि, मोहन बैनु बजावै ।।
सरद चाँदिनी, मद पवन बहै दुहूँ दिसिफूल जानि परिमल मन भावै ।
कनक-किंकनी-धुनि सुनि खग-मृग आकर्षत, बन मधु बरषावै ।।
लटकति लट भुज मुकुट बिराजति ।
पटकति चरन धरनि सों कुमकुमहिं उड़ावै ।।
उरप तिरप गति मान बढ़ायौ ।
हस्तक मस्तक भेद जनावै, अंगनि सरस सुधंग दिखावै ।।

---

१. भक्त कवि व्यासजी, वासुदेव गोस्वामी, व्यास-वाणी, पृ० २६६, पद सं० ३०६
२. वही, पृ० ३६४, पद सं० ७३४

रूप राशि गुन-गन की सीवां ।
भृकुटि बिलास हँसि के प्यारेंहि रिझावै ।।
बिच-बिच कच-कुच परसति हँसि करि ।
परिरंभन-चुंबन दै रस-सिंधु बढ़ावै ।।
नव रँग कुंज-बिहारी-प्यारी खेलति देखि ।
जाऊँ बलिहारी यह सुख 'व्यास' भागनि पावै ।।[1]

हितहरिवंश जी के पदो मे सारंग राग का प्रयोग रात्रिकालीन वर्णन में किया गया हैं । अष्टछाप के तथा अन्य कृष्ण भक्तो ने मध्याह्न समय सबंधी पद सारग राग मे गाए हैं । व्यास जी ने प्रात. तथा रात्रि दोनो समय के वर्णन सारग राग मे किए है । व्यास जी के अन्य सभी पद रस-राग और समय की कसौटी पर खरे उतरते है । अत प्रश्न उठता है कि सारग राग का प्रयोग उन्होने प्रात तथा रात्रि दोनो समय क्यो किया । 'कृष्णभक्ति-कालीन साहित्य मे प्रयुक्त राग-रागिनियाँ' शीर्षक प्रकरण मे यह सिद्ध किया गया है कि सारंग कृष्णभक्ति-कालीन कवियो का सब से अधिक प्रिय राग रहा है अस्तु ऐसा प्रतीत होता है कि अत्यधिक लोकप्रिय होने के कारण सारग राग का गायन प्रत्येक समय मान्य था और हर समय के वर्णन सारग राग मे प्रचलित थे । इस दृष्टिकोण से विचार करने पर व्यास जी के सभी पद रस-राग और समय-सिद्धात के अनुकूल उतरते है ।

हरिदास स्वामी

हरिदास स्वामी का एक पद राग विभास मे है —

राग विभास

आलस भीन री नेन जभांति आछी भाँति सुदेस ।
करसों कर टेकें अंगुरिनि पेच मानों ससि मडल बैठे अति भाँति सुदेस ।
मन के हरिवे कों नाहिनें प्यारी कोऊ तो तेंन खसिखेत भाँति सुदेस ।
श्री हरिदास के स्वामी स्यामा छाति सों छाती लगायें अंग-अंग सुदेस ।[2]

जैसा विभास राग के चित्र संख्या ६ से स्पष्ट है कि यह प्रात -कालीन गेय संयोग श्रृंगार का राग है, नायक-नायिका रति-क्रीडा मे लीन है और प्रात काल का उदय देखकर कौआ शोर मचाता है जिसका वध करने के लिए नायक तीर चला रहा है । सगीत-ग्रथो मे भी विभास राग का गायन प्रात काल मान्य है । हरिदास स्वामी ने प्रस्तुत पद मे प्रात काल आलस्य से शिथिल राधा-कृष्ण की सयोग क्रीडा का वर्णन किया है । इसीलिए उन्होने रस-भाव तथा समयानुकूल राग विभास मे उक्त पद को बाँधा है ।

---

१. **भक्त कवि व्यासजी, वासुदेव गोस्वामी, व्यास-वाणी, पृ० ३६२, पद सं० ६२४**
२. **पद-संग्रह, प्रति सं० ३७१/२६६, काशी नागरी प्रचारिणी सभा, पृ० २१, पद सं० २**

इसी प्रकार बसंत ऋतु की सुषमा में नवीन पुष्प पल्लवों की शोभा के मध्य विचरण करते हुए गोपी-कृष्ण के हास-विलास, मिलन और सयोग सुख के भावो का वर्णन कवि ने वसत ऋतु मे गाए जाने वाले सयोग शृंगार रस से परिपूर्ण राग वसंत ही में किया है जो पद के भाव, रस और समय के पूर्णतया उपयुक्त है –

राग वसंत

कुंज बिहारी कौ वसंत चलहू न देखन जाहि ।
नवनव-नव निकुंज नव पल्लव नव जुवितिनि मिलि माँहि ।
वंसी सरस मधुर धुनि सुनियत फूली अगनि माँहि ।
सुनि हरिदासी प्रेम सौ प्रेमहि छिरकत छैल छुवाहि ।[1]

वर्षाकालीन भावो का वर्णन करते हुए हरिदास स्वामी कहते है कि आकाश में काली घटा व्याप्त है, कोकिला और पपीहा के स्वरो से सम्पूर्ण वातावरण सगीतमय हो रहा है, मेघ का गर्जन ही मृदग की सगत है और विद्युत का प्रकाश ही दीप-ज्योति के सदृश्य है। ऐसे सरस वर्षाकाल मे कृष्ण मोरो के साथ नृत्य करते हुए राधा को रिझा रहे है –

राग गौडमल्लार

नाचत मोरनि संग स्याम मुदित स्यामाहि रिझावत ।
तैसी ये कोकिला अलापत पपीहा देत सुर तैसोई मेघ गरजि मृदंग बजावत ।
तैसीयें स्याम घटानि सिसीकारी तैसीयै दामिनि कौंधि दीप दिखावत ।
श्री हरिदास के स्वामी स्यामा कुंजविहारी रीझि राधे हंसि कंठ लगावत ।[2]

राग गौडमलार का गायन वर्षा ऋतु मे किया जाता है जब कि आकाश मे बादल छाये हों, विद्युत चमक रही हो, हर्षित हो कर मोर नृत्य कर रहे हो और पपीहा तथा कोयल गान करते हो। कवि का पद इन्ही भावो से परिपूर्ण है इसलिए उक्त पद का गायन गौड-मलार में किया गया है ।

कवि के पदों मे प्राय. सर्वत्र ही समयानुकूल रागो का गायन किया गया है। रात्रि-काल में की गई क्रीड़ा का वर्णन कवि रात्रिकालीन गेय राग केदारा में करता है –

राग केदारो

अद्भुत गति उपजत अति नाचत दोऊ मंडल कुवर किसोरी ।
सकल सुधग अंग भरि भोरी प्रिय नृतत मुसकनि मुख मोरी परिरंभन रस रोरी।
ताल धरैं वनिता मृदंग चंडांगत वात बजै थोरी-थोरी ।
सप्त भाइ भाषाविचित्र ललिता गाइनि चित चोरी ।

---

१. पद-संग्रह, प्रति सं० १६२०/३१७०, हिन्दी-संग्रहालय, साहित्य-सम्मेलन प्रयाग ।
२. वही, पृ० ३०, पद सं० १

श्री वृंदावन फूलनि फूल्यौ पूर्न ससि त्रिविध पवन बहुँ थोरी।
गति विलास रसहासि परस्पर भूतल अद्भुत जोरी।
श्री जमुना जल विथकित पहुपनि बरिषा रति पति डारत तृन तोरी।
श्री हरिदास के स्वामी स्याम कुंजविहारी जू को रस रसना कहुँ कोरी।[1]

इसी प्रकार कवि के अन्य पदो मे भी सगीत की राग-रागिनियो का शास्त्रीय रीति से ही गायन किया गया है।

विट्ठलविपुल

विट्ठलविपुल जी का एक पद राग विभास मे है –

राग विभास

आजु बनी लाडिली प्रीतम संग आवति
सोंधे भीजी लट छूटी पिय के अंस भुजा पाछै सखी सुघर विभासहि गावति।
श्रमजल बिंदु निसि के सुख सूचि मोहन वदन सों वदन मिलावति।
श्री वीठलविपुल कल रसिक विहारी आनंद समुइथयि मदन मिलावति॥[2]

प्रस्तुत पद में राधा-कृष्ण की सयोग-क्रीडा का वर्णन किया गया है। रात्रिकालीन संयोग समागम के फलस्वरूप राधा की दशा अस्तव्यस्त सी हो रही है। मुखारविंद पर जलकण झलक रहे है। प्रात काल का आगम होने पर राधा कृष्ण के साथ मिलन-क्रीडा करती हुई आ रही है। उनकी सखियाँ विभास राग का गायन कर रही है। जैसा पहले भी कहा जा चुका है और चित्र[3] से भी प्रकट है कि विभास संयोग शृंगार के लिए उपयुक्त प्रात:कालीन गेय राग है। प्रात काल के समय सयोग-लीला का वर्णन होने के कारण ही एक ओर विट्ठलविपुल जी ने राधा की सखियो द्वारा विभास राग के गायन की ओर संकेत किया है और स्वतः भी उक्त पद को विभास राग मे बाँधा है।

वर्षा ऋतु का वर्णन करते हुये विट्ठलविपुल जी कहते है –

राग मल्हार

नीकें द्रुम फूले सुभग कालिंद्री कूल इंद्र धनुष राजै स्याम घटानि में।
नीकै गृहलता कुंजनीकी आली अलि गुंजनी कौ राग रंग रह्यौ पिकनि की रटनि में।

---

१. पद-संग्रह, प्रति सं० ३७१/२६६, काशी नागरी प्रचारिणी सभा, पृ० १२, पद सं० ३
२. पद-संग्रह, प्रति सं० ३१७०।१६२० हिन्दी-संग्रहालय, हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन प्रयाग, पद सं० २
३. रागिनी विभास, चित्र सं० ६

नीकी गति मंद मंद विहारी आनंद कंद नीकौ भेद बन्यौ अरुन पीत पटनी मे ।
श्री बीठल विपुल रंग ललिता के फूल अंग मिले ले देखोंगी नैननि की बिधि छटनि मे ।[1]

प्रस्तुत पद मे काले बादलो, आकाश मे शोभित इद्र-धनुष, भँवरों का गुजन, पपीहा-कोयल की रटन, कृष्ण-राधा के संयोग-सुख आदि वर्षाकालीन उपकरणो का वर्णन किया गया है । इसीलिए कवि ने रस-भाव तथा समय-परंपरा का पूर्ण निर्वाह करते हुए प्रेमोल्लास तथा आनंद को व्यक्त करने वाले वर्षाकालीन गेय राग मल्हार मे उक्त पद का गायन किया है ।

कवि के अन्य पदो मे भी इसी प्रकार प्रायः सर्वत्र सगीत के नियमों का पालन किया गया है ।

बिहारिनदास

बिहारिनदास जी का एक पद राग विभास में है –

राग विभास

भोर ही कर सों कर जोरे अंग अंग मोरे आलस लेत जंभाई ।
पिय के अंक निसंक सबै निसि हुलसि, हुलसि विलासि आनंद मे उनीदें ये उठि आई ।
अंगराग अनुराग रही फबि छबि वरनी न जाई ।
अति सुख भीर उमंगि विहारनिदासि सों कहति जैसे हो लाल लड़ाई ।
धनि सुहाग अद्भुत सर्वोपरि राधे जू रानी ।
नख सिख अंग अंग वानी प्रीतम प्रान समानी रसिक किसोर सुरत सुखदानी ।
कौ जानें वरनें वपुरा कवि अद्भुत छबि न जात वरनानी ।
श्री बिहारीदासि पिय सों रति मानी में जानी सयानी तो सब निसि सुख सिरानी ।[2]

प्रस्तुत पद मे रात्रि-समय रति-क्रीड़ा मे लीन रहने वाली राधा के सयोग-सुख को व्यक्त करने वाली प्रात.कालीन दशा का चित्रण किया गया है अत. उक्त पद को श्रृंगार रस के उपयुक्त प्रात काल गेय विभास राग मे गाया गया है ।

कवि ने सर्वत्र ही प्रात.कालीन सयोग-सुख का वर्णन विभास राग ही मे किया है । यथा –

राग विभास

प्रात समै नवकुंज द्वार द्वै ललिता ललित बजाई बीना;
पोढ़े सुनत स्याम श्री स्यामा दंपति चतुर प्रवीन प्रवीना ।[3]

---

१. पद-संग्रह, प्रति सं० ३१७०।१६२० हिन्दी-संग्रहालय, हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन प्रयाग, पत्र स० ४२, पद सं० २८

२. पद-संग्रह, प्रति सं० ३७१।२६६, काशी नागरी प्रचारिणी सभा, पत्र सं० १२१, पद सं० ६

३. वही, पत्र सं० १२१, पद सं० १

पावस ऋतु मे गरजते बादलों, रिमझिम बरसती बूँदो, कोकिल पपीहा के गान, मयूर नृत्य आदि वर्षा के उपकरणों तथा ऐसे समय मे राधा माधव की आनद क्रीडा का वर्णन कवि ने पावस ऋतु मे गाए जाने वाले आनंद-सुख के प्रतीक मल्हार राग मे किया है जो पद के भाव, रस तथा समय की कसौटी पर खरा उतरता है –

मलार

धूमरे गगन गरजत घन मंद मंद बरषत बृदावन सघन सरस पावस रितु सुहाई ।
चातक पिक मोर मुदित नाचत गावत भरे निरखि निरखि दपति सब सपति सुखदाई ।
तैसीयै सरस सरद निसि आई तैसीयै निकुंज कुसुमन छाई तैसीयै ललना लाल लडाई कंठ लपटाई ।
श्री विहारनिदासि गाई गूढ ओढ़नी उठाई रीझि रहे अंग भीजि मिलि मलार गाई ॥[1]

बिहारिनदास जी अधिकाश स्थलो पर जहाँ वे वर्षा की बूँदो का वर्णन करते है उसके उपयुक्त मलार राग का ही प्रयोग करते है और कही-कही तो वे पद मे इस ओर भी सकेत कर देते है कि ऐसी वर्षा ऋतु मे मलार राग का गायन किया जा रहा है । यथा –

राग मलार

बिहरत वन वन बूंदनि मै गावत राग मलार मिले मन ।[2]

इसी प्रकार कवि वसंत ऋतु की प्राकृतिक सुषमा, वसंत ऋतु के उपकरणो तथा वसंत ऋतु मे विहार करते हुए श्यामा-श्याम के विनोद के वर्णन का गायन उसी रस तथा भाव को व्यक्त करने वाले वसत ऋतु के वसंत राग ही में करते है –

राग वसंत

नवल बृदावन नवल वसंत ।
नव द्रुम वेलि केलि नव कुंजनि नवल कामिनी कंत ।
नव अलि अलक झलक नव कोकिल नव सुर मिलि विलसंत ।
नव रस रसिक बिहारनि दासी के नव आनदहि न अंत ।[3]

बिहारिनदास जी के पदों मे समय-सिद्धांत का सर्वत्र ही निर्वाह किया गया है । कवि का एक पद है –

राग केदारो

राजत रास रसिक रसरासे ।
आस पास जुवती मुख मंडल मिलि फूले कमला से ।

---

१. पद-संग्रह, प्रति सं० ३७१/२६६, काशी-नागरी-प्रचारिणी-सभा, पत्र सं० १३१, पद सं० २
२. पद-संग्रह, प्रति सं० ३७१।२६४, काशी-नागरी-प्रचारिणी-सभा, पत्र सं० १३१, पद सं० ३
३. वही, पत्र सं० १४४, पद सं० ४

मध्य मराल मिथुन मन मोहन चितवत आतुरता से ।
वचन रचन सुर सप्त नृत्य गति मदन मयंक विकासे ।
बाजत ताल मृदंग अंग संग मंद मधुर मृदु हासे ।
घूंघट मुकुट अटक लटकत नट अभिनय भृकुटि विलासे ।
वारति कुसुम सुगंध देखि सखि आनंद हियें हुलासे ।
त्रिनु तोरति रति रति जोरति छिन छिन बिपुल विहारनि दासे ।[1]

प्रस्तुत पद मे रात्रि के समय की गई रास-लीला का चित्रण किया गया है । रात्रि कालीन वर्णनो से युक्त होने के कारण ही उक्त पद का गायन रात्रिकालीन गेय राग केदारा मे किया गया है ।

विहारिनदास जी के अन्य पदों में भी इसी प्रकार सगीत की परिपाटियों का समुचित पालन किया गया है ।

श्री भट्ट

प्रातःकाल राधाकृष्ण के संयोग का वर्णन करते हुए श्री भट्ट जी कहते है –

राग विभास

उठत भोरे लाल जू के संग ते कंचुकी कसत राधिका प्यारी ।
खिसि खिसि परत नील पट सिर तें ससि वदनी नवजोवन वारी ।
मनभावता लाल गिरिधर जू की रची है विधाता सुहथ सवारी ।
जै श्री भट सुरत रंग भीनें प्रिया सहित देखे निकुंज विहारी ।[2]

कवि ने उक्त पद को राग विभास मे गाया है जो राग के रस, भाव तथा समय के पूर्णतया उपयुक्त है ।

वर्षा ऋतु में प्रकृति की सुरम्य क्रोड़ मे क्रीड़ा करते हुए राधा-कृष्ण तथा सखियों के विहार, प्रेम और आनद का वर्णन कवि ने वर्षा ऋतु मे गाए जाने वाले हर्ष तथा प्रेम के प्रतीक राग मलार ही मे किया है –

राग मलार

हिडोंरे लाडिली लालै झकोरै वटी जुटी दोऊ औरै ।
खंभ अधारक डोल अमोलक नवल पाट की डोरै ।।

---

१. पद-संग्रह, प्रति सं० ३७१।२६६, काशी-नागरी-प्रचारिणी-सभा, पत्र सं० १४८, पद स० २२

२. युगलसत, श्री भट्ट, प्रति सं० ७१२।३२, काशी-नागरी-प्रचारिणी-सभा, पत्र सं० १, पद सं० ८

जामैं नवल किसोर किसोरी अपनी अपनी छोरें ।
कारी घटा छुटन के डोंरा मोरा बोलत जोरें ।।
कोकिला कल जलकन वरषनथि रंग नींर घन घोरें ।
सबै ओरे सुन्दर तै सुंदरि वनी सखीन की कोरें ।।
देख दंपति कूल भूलै दोऊ दामिनी बन भोरें ।
सनमुख बैठे उभै कुंबरि हरि गावें सखीन सुर थोरें ।।
स्यामा स्याम सखी सुखकारी भूलत सहज भकभोरें ।
जिन जित कलडुलतति तितहों तित सखी अंगन को मोरें ।
तन मन दैत नमें भई दैता मोदर चित चित चोरें ।।
रंग भुजंग है लहें चित इछ वरनी असित तन गोरें ।
श्री भट वंशीवट नट निरखत उठि उर हरख हिलोरें ।।[1]

कवि के अन्य पदो मे भी इसी प्रकार रस-भाव तथा समयानकल राग गायन को महत्ता दी गई है।

परशुराम

वर्षा ऋतु से सबधित भावो का वर्णन परशुराम जी वर्षाऋतु मे गेय राग मलार मे करते है –

राग मलार

नुमापा बादल वरिषत आवै ।
देखि सघण घण अखिलि वरखति इंद निसाण बजावै ।
लागत बूंदि विषक पावक सम हरि विण तनहि जरावै ।
क्यों सहिये दुख दसरन दुरलभ विरह भुवंग सतावै ।
गिरसिरसिहर सिर दामिन सोभित मोही न सुहावै ।
सुंदर सूंज सरस घर सखन मोहन द्रिष्ट न आवै ।
कविन परी सुखतै दुख उपज्यौ सो पति कोई ना मिलावै ।
परसराम प्रभु अलससक्त क्यौं मोर मलार सुणावै ।।[2]

प्रात काल उठ कर भगवद्भजन का गायन कवि प्रात कालीन गेय राग ललित में करता है –

---

१. युगलसत, श्री भट्ट, प्रति सं० ७१२।३२, काशी-नागरी-प्रचारिणी-सभा, पत्र सं० १४, पद सं० १

२. रामसागर, परशुराम, प्रति सं० ७८०/४६२, का० ना० प्र० स०, पृ० रा० सा० १०३, पद सं० ३१७

राग ललित

गोविंद मै बंदी जन तेरा ।
प्रात समै उठि मोहन गाऊं तो मन मानै मेरा ।
कितम कर्म भर्म कुल करणी ताका नांहिन आसा ।
करु पुकार द्वार सिर नांउ गाउं ब्रह्म विधाता ।
परसराम जन करत बानता सुणि प्रभु अविगत नाथा ।[१]

इसी प्रकार रात्रिकालीन रास-क्रीड़ा का वर्णन कवि रात्रि के समय गाये जाने वाले केदारा राग मे करता है –

राग केदारो

हरि रास रच्यो केलि करण कौं ।
बृंदावन जमुना तट मोहोन प्रगट करण ब्रज सरण कौं ।
लीनी कर मुरली हरि हितकरि हित सों ओसर अधर निजु धरण कँ ।
सुंनि सुंनि धुंनि आई ग्रह ग्रह तें सब गोपी पति पाय परण कूं ।
थकित पवन सुणि जाणि पर्मसुष जातनि चलि जल जल विभरण कूं ।
मोहे पसु पंखी थिरचर सुर लोचन सकल सरोज चरण कूं ।
सोभित अति सखी सरद निसा सुख देखौ स्याम सनेह वरण कूं ।
परसराम प्रभु सब सुखदाइ कहरि मंगलपद .....रण कूं ।[२]

कवि के अन्य पदों में भी इसी प्रकार रस-राग तथा समय-सिद्धात का पालन किया गया है।

राजा आसकरण

राजा आसकरण का निम्नलिखित पद राग विभास मे है –

राग विभास

नंदकिशोर यह बोहनी करन न पाई ।
गोरस के मिष रसहि ढंढोरत मोहन मीठी तानन गाई ।।
गोरस मेरे घरहि बिके हे क्यौं बृंदावन जाय ।
आसकरण प्रभु मोहन नागर यशोमति जाय सुनाय ।।[३]

२५२ वैष्णवन की वार्ता मे इस पद के गाने का निम्न प्रसंग दिया है –

"एक दिन राजा आसकरण दानघाटी पर जाते हते। उहा देखे तो श्रीनाथ जी

१. रामसागर, परशुराम, प्रति सं० ६८०।४९२, का० ना० प्र० स० ४२, पद सं० १
२. वही, पद सं० १
३. अकबरी दरबार के हिन्दी कवि, सरयूप्रसाद अग्रवाल, पृ० ४५२, पद सं० १२

कमली ओढ के हाथ मे लकुटी लेके सखा मंडली संग लेके ठाढ़े है और व्रजभक्त दही बेचने कू जात है और सब सखा देख के गोपिन कूँ पकड़त है और कहे हैं हमारो दहि का दान लगे है सो दे जाओ। गोपीजन कहे हे जो दही का दान हमने सुन्यो नहीं हे और तुम कब के दानी भये। जब आसकरण जी ने पद गायो। सो राग विभास – नदकिशोर यह दोहनी करन न पाई।" [१]

पद के वर्णन तथा वार्ताकार के कथन से स्पष्ट है कि प्रस्तुत पद मे सयोग शृगार का वर्णन किया गया है। कवि ने यह पद राग विभास मे गाया है। विभास रागिनी सयोग शृगार के वर्णन के लिए अत्यधिक उपयुक्त है। कवि के द्वारा राग विभास मे गाये हुए इस पद मे संयोग शृगार, गोपियो, कृष्ण और गोपसखाओ की आनदमय केलिक्रीडा तथा उनके हर्ष का वर्णन किया गया है जो राग के रस के सर्वथा उपयुक्त है।

दधि बेचने का कार्य प्रात काल किया जाता है। भोरे होते ही ग्वालिने दधि की मटकी सिर पर रख कर निकल पड़ती है। पद मे दधि बेचने का प्रसग आता है इससे ज्ञात होता है कि कवि प्रात काल का वर्णन कर रहा है। विभास रागिनी प्रात काल गाई जाती है। अत. रस-राग-सिद्धात के साथ कवि ने समय-सिद्धात का भी पूर्णतया पालन किया है।

कवि ने अपने अन्य दो पदो मे भी समयानुकूल राग-गायन की ओर ध्यान रखा है। वार्ताकार ने लिखा है –

"फेर एक दिन आसकरन जी साभ के समय गोविद कुड के पास ठाडे हते। देखे तौ व्रजभक्तन के जूथ चले आवें हे और आय के सब गोपीजन ठाडी भई। इतने मे श्रीनाथ जी गाय चराय के घर मे पधारते है। गायन के सग गोरज सु व्यापत है मुखारविंद जिनको। ऐसे प्रभु के दरशन कु रास्ता मे गोपीजन आवे हे। ऐसे दर्शन आसकरन जी कु भये जब आसकरन जी ने ये पद गायो –

राग गौरी

मोहन देखि सिराने नैना।
रजनी मुख आवत गायन संग मधुर बजावत बैना।।
ग्वाल मंडली मध्य बिराजत सुंदरता को ऐना।
आसकरन प्रभु मोहन नागर वारों कोटिका मैना।[२]

संध्या का समय है। भगवान् श्रीकृष्ण धूलधूमरित आनन से वेणुनाद करते हुए अपने सखाओं सहित धेनु चराकर लौट रहे है। कवि ने इस पद को गौरी राग मे गाया है। जैसा कि पहले कहा जा चुका है कि गौरी सायकालीन राग है अत उपर्युक्त पद को गौरी राग में गाना शास्त्रीय दृष्टि से न्यायसगत है।

१. २५२ **वैष्णवन की वार्ता, पृ०** १७२

२. **वही, पृ०** १७०

संध्या के उपरान्त रात्रि का आगमन होता है। राजा आसकरण भगवान के शयन समय के दर्शन करते हैं–"पाछे सेन समय में दर्शन राजा आसकरन ने करे। ता पाछे राजा आसकरण ने श्री ठाकुरजी के नेत्रन मे नीद झमक रही है ऐसो देख्यो। और एक सखी हाथ जोड के श्री ठाकुर जी के आगे ठाडी होय के बीनती करे हे जो आपकुं नीद आय रही है सो पोढो। ये दर्शन लीला सहित राजा आसकरन कु भये। जब राजा आसकरन नें ये पद गायो–

राग केदारो

(१) पोढिये पिय कुंवर कन्हाई।
युक्ति नवल विधि कुसुमावलि में अपने कर सेज बनाई॥
नाहिन सखी समय काहू को ग्वाल मंडली सब बोराई।
आसकरन प्रभु मोहन नागर राधा को ललिता ले आई॥

(२) तुम पोढो हौं सेज बनाउं।
चापूं चरन रहुं पायनतर मधुरेस्वर केदारो गाउं॥
सहेचरि चतुर सब जुरि आईं दपति सुख नयनन दरसाउं।
आसकरन प्रभु मोहन नागर यह सुख स्याम सदा हौं पाउं॥

(३) पौढ रहो धनश्याम बलैया लेहू।
श्रमित भये हो आज गोचारत घोष परत है घाम॥
सीरी वियार झरोखन के मग आवत अति सीतल सुखधाम।
आसकरन प्रभु मोहन नागर अग-अंग अभिराम॥[1]

आसकरण जी ने तीनो पद राग केदारा मे गाये है। राग केदारा के गाने का समय रात्रि का प्रथम प्रहर है।[2] केदारा कल्याण-ठाट का राग है। इसमें तीव्र मध्यम (म)

---

१. २५२ वैष्णवन की वार्ता, पृ० १६८–६९

२. "केदारस्त्वभिवर्णितो रिगनिधैस्तीव्रैः सदाऽलंकृतो।
वादी कोमलमध्यमो भवति संवादी च षडजस्वरः॥
तीव्रोअपि क्वचिदत्र मध्यम इहारोहे रिगौ वर्जितौ।
यामे च प्रथमे निशासु मधुरं वीणारवैर्गीयते॥ रागकल्पद्रुमांकुर, पृ० १७

द्विमस्तीव्रान्यको मशि आरोहे रिगवर्जितः।
क्वचित्कोमलनिर्यामि केदारः प्रथमे निशिः॥ रागचन्द्रिका, पृ० ८

समौ मपौ धपौ मश्च पधौ पमौ पमौ रिसौ।
केदार मांशको रात्र्यां प्रारोहे रिगदुर्बलः॥ अभिनवरागमंजरी, पृ० १४

संगीत-कौमुदी, (दूसरा भाग), वी० एस० निगम, पृ० १४५–४६

का प्रयोग होता है अत उसका समय रात्रि के ६ से ९ बजे तक ठहरता है ।[1] राजा आसकरण ने तीनो पद शयन-समय के दर्शन मे गाये है । श्री वल्लभसम्प्रदाय के आठ समय की कीर्तन-सेवा प्रणाली से विदित होता है कि शयन-समय रात्रि के ७ से ८ बजे तक माना जाता है ।[2] अतः वार्ता के कथन से यह निश्चित हो जाता है कि कवि ने ये पद ७ से ८ बजे के मध्य ही मे गाये होगे जो कि राग केदारा के समय से पूर्णतया मेल खाता है । इसके अतिरिक्त कवि ने तीनों पदो मे रात्रि का ही वर्णन किया है । सुगंधित कुसुमों से शय्या रच कर कवि भगवान् से रात्रि के समय सोने का आग्रह कर रहा है । इस प्रकार रात्रि के समय इन पदों को रात्रिकालीन गाये जाने वाले राग केदारा मे गा कर तथा उन पदो मे रात्रिकाल का ही वर्णन कर कवि ने अपने सगीत-ज्ञान का सुन्दर परिचय दिया है ।

जिस प्रकार गायक-कवि सध्या तथा रात्रिकालीन वर्णन से सबधित पद क्रमश संध्या तथा रात्रि के समय गाये जाने वाले रागो मे सध्या तथा रात्रि के समय गाता है उसी प्रकार वह प्रात काल के समय प्रात कालीन वर्णन समयानुकूल रागो मे करता है–"फेर एक दिन श्री गुसाई जी श्री नाथ जी कु जगायवे कु पधारे वाही समय अपने घर ते सब व्रजभक्त सद्य माखण और मलाई और दूध और अनेक प्रकार की सामग्री लैके सब पधारे है और गोपीजन यशोदा जी कु कहे हे हे यशोदा जी लाल जी कु जगाओ । हम तुम्हारे लाल जी के दर्शन करके और सामग्री अरोगाय के जो दही बेचवे जाये हे तो हमकु दशगुणो लाभ होवे हे याते हम तुमारे घर आई हे सो लालजी कु जगाओ तो इनको मुख देख के जावे । तब ऐसे दर्शन आसकरन जी कुं भये । जब आसकरन जी ने पद गायो । सो पद –

राग विभास

(१) प्रात समय घर-घर तें देखन को आईं गोकुल की नारी ।
अपनो कृष्ण जगाय यशोदा आनद मंगल कारी ।।
सब गोकुल के प्राण जीवनधन या सुत की बलिहारी ।
आसकरन प्रभु मोहन नागर गिरि गोवर्धन धारी ।।

(२) उठो मेरे लाल लाड़िले रजनी बीती तिमिर गयो भयो भोर ।
घर-घर दधि मथनिया घूमे अरु द्विज करत वेद की घोर ।।
करिकले उदधि ओदन मिश्री बांटि परोसों ओर ।
आसकरण प्रभु मोहन नागर वारों तुम पर प्राण अंकोर ।।[3]

दोनों पदों में कवि ने प्रात.काल का वर्णन किया है । प्रथम पद में कवि ने कहा है

---

१. संगीत आफ इंडिया, अतिया बेगम, पृ० ५८
२. देखिए प्रस्तुत ग्रंथ का तृतीय अध्याय, पृ० ११४
३. २५२ वैष्णवन की वार्ता, पृ० १७०–७१

कि प्रभात का आगमन होने पर गोकुल की नारियाँ कृष्ण को देखने के लिए आ गई है इसीलिए यशोदा कृष्ण को जगाती है ।

दूसरे पद से विदित होता है कि रजनी बीत गई है, भोर हो गया है, घरों मे दधि-मथन का कार्य प्रारम्भ हो गया है और ब्राह्मण वेदमत्रो का उच्चारण करने लगे है। इस समय कृष्ण सो रहे है । कवि कृष्ण को जगाने के लिए प्रभाती गाता है । वह कहता है कि हे लाल ! उठो और दधि-मिश्री का कलेऊ करलो । पदो की प्रत्येक पक्ति मे प्रात.कालीन वातावरण तथा प्रात काल से सबधित कार्य और भोजन का वर्णन किया गया है । वार्ता के प्रसग से भी यहाँ ज्ञात होता है कि आसकरण जी ने ये पद उस समय गाये है जब उनके हृदय मे इस लीला का स्फुरण होता है कि प्रात काल श्री गुसाई जी श्रीनाथ जी को जगाने के लिए आए है । आसकरण जी ने ये पद राग-विभास मे गाए है । राग-विभास के गाने का समय प्रात काल है । अत' कवि का प्रात काल से सबंधित पदो का राग-विभास में गायन उचित ही है ।

एक दिन आसकरण जी गोकुल मे श्री नवनीत प्रिया जी के दर्शन करने के लिए गए । वहाँ पर उन्हे इस लीला के दर्शन हुए कि माता यशोदा कृष्ण को पालना झुला रही है और गोपियाँ उठकर कृष्ण के दर्शन करने तथा उन्हे खिलाने आ रही है । इस लीला का अनुभव करके कवि राग रामकली मे एक पद गाता है –

"फेर एक दिन आसकरन जी श्री गोकुल मे आये । श्री नवनीत प्रिया जी के दर्शन करवे कुं गये । तब आसकरण जी कुं ये लीला के दर्शन भये । श्री यशोदा जी श्री ठाकुरजी कुं पालने झुलावे हे और गोपी जन मिल के यशोदा जी के पास आई हे और गोपीजन कहे हे जो हमारो ऐसो नेम है ज्या सूधी तेरे लाल कु हम खेलावै नही और हम पालना झुलावै नही तहा सूधी हमारो चित्त घर के काम मे नही लगे है और जो कदाचित घर को काम करै तो सब काम बिगडे हे । जासु हम सगरी सूती उठ के तुम्हारे लाल कु खिलावन आई हें । ऐसे सब गोपीजन कहे और यशोदा जी हँसे हें । ऐसी लीला के दर्शन आसकरण जी कु भये । जब आसकरण जी ने ये पद गायो ।

राग रामकली

यह नित्य नेम यशोदा जू मेरें तिहारोई लाल लड़ावन कूं ।
प्रात समय उठ पलना झुलाऊं शकट भजन यश गावन कूं ।।
नाचत कृष्ण नचावत गोपी कर कटताल बजावन कूं ।
आसकरण प्रभु मोहन नागर निरख वदन सचु पावन कूं ।।[1]

रामकली भैरव-ठाट का राग है इसमे भी <u>रे</u> <u>ध</u> (कोमल) स्वरों का प्रयोग होता

१. २५२ वैष्णवन की वार्ता, पृ० १७२

है। अत रामकली का समय भी सर्व-सम्मति से प्रात काल मान्य है।[1] इस प्रकार कवि ने प्रात कालीन वर्णन से सबधित पदो को प्रात कालीन रागो ही मे गाया है।

राजा आसकरण के अन्य पदो मे भी इसी भाँति रस-राग और समय-सिद्धात का प्राय. सर्वदा पालन किया गया है।

संगीत के सिद्धांतों के आधार पर की गई कृष्णभक्तिकालीन कवियों के पदों की समीक्षा पर एक सामान्य दृष्टि

यो तो पद्यो की सगीतमय रचना अर्थात् पदो को राग विशेष मे गाने की परम्परा सिद्ध कवियो से ही चली आ रही है किन्तु इस परम्परा का सफलीभूत विकास कृष्णभक्ति-कालीन कवियो के काव्य मे हुआ। सिद्धो तथा संतकवियो ने स्वात. सुखाय अथवा साहित्यिक साधना के लिये काव्य-रचना नही की। उनको तो अपने धार्मिक सिद्धातो का प्रतिपादन काव्य के द्वारा करना था। अत. जनसाधारण को अपनी ओर आकर्षित करने तथा अपने धार्मिक सिद्धातो को जनता मे प्रचलित करने के लिए इन कवियो ने काव्य मे संगीत का पुट दिया और अपने पदो को विभिन्न रागो से सयुक्त करके गाया। किन्तु इन कवियो ने जितना प्रयास अपने धार्मिक भावो की अभिव्यक्ति के लिए किया है उतनी दूर तक वे गेयत्व के लिए नही गए है। धार्मिक सिद्धातो का खडन-मडन करने के फलस्वरूप इनके काव्य-ग्रथो मे रस-राग तथा समय-सिद्धात का उचित निर्वाह नही हो सका है। समान भाव के पद विभिन्न राग तथा विभिन्न भाव के पद एक विशेष राग के अन्तर्गत गाये जाने के कारण सिद्ध तथा संत कवियो के समस्त पद रस और राग की कसौटी पर पूर्णतया खरे नही उतरते। राम-काव्य मे तुलसी के काव्य मे ही रागो की ओर विशेष आग्रह दिखाई पडता है किन्तु कृष्ण-भक्तिकालीन कवियो ने रस और राग का मणिकाचन सयोग कर सगीत का वह स्रोत प्रवाहित किया है जो अक्षय तथा अनत है।

"सम्पूर्ण विश्व भगवान् की रस-सृष्टि का प्रतिबिंब है और गायक कवि का गीत इस रस के भाव की व्यंजना का प्रतिघोष है। रस मे विभोर होते ही वाणी मुखरित हो उठती है तथा स्वर के आदोलन जाग जाते है और तब साक्षात् रस काव्य मे राग का आश्रय ले कर मूर्तिमान हो जाता है। कृष्णभक्तिकालीन कवियो की रचना किसी ऐसी ही दिव्य घडी में गूँज उठी है जिसमे राग स्वय रस के प्रतीक बन गये है। जैसे शुद्ध भावनामय इन कवियो के पद है वैसा ही तन्मयकारी इनका सगीत भी है।"[2]

"वर्तमान समय के प्रचलित शास्त्रीय संगीत मे जो गीत गाये जाते है उनके शब्द, अर्थ, भाव और रस रागों और रागिनियो के रस-भाव के साथ संवादित होते हुए नही

---

१. संगीत-कौमुदी, (चौथा भाग) पृ०, १७६

२. सूर-संगीत, (प्रथम भाग), प्राक्कथन, प० ओंकारनाथ ठाकुर, पृ० ४

दीखते । राग और रागिनियो के रस भाव को देखकर, उसकी यथार्थ अनुभूति पाकर तदनुसार और तदनुकूल गीत पद्य का चुनाव होना चाहिये । किन्तु इस बात का अभाव प्रति पल खटकता है । आज के शास्त्रीय संगीत में वाछित रस का निर्माण नही होता । उसका मुख्यत: और मूलत यही कारण है कि रसानुकूल शब्द नही होते और अर्थानुकूल स्वर नही होते । या तो अर्थानुकूल राग का चुनाव हो या राग के रसानुकूल काव्य का चुनाव हो ।"[१]

कृष्णभक्तिकालीन कवियो ने राग तथा रागिनियो के रस-भाव को देखकर, उसकी यथार्थ अनुभूति पाकर तदनुसार और तदनुकूल अपने गीत पद्यो का चुनाव किया है । उनके पद्यो के अर्थ, भाव और रस रागो और रागिनियों के रस तथा भाव के साथ संवादित हुए है ।

कृष्णभक्तिकालीन कवियो ने ऋतु तथा समय-सिद्धात का भी सुदर निर्वाह अपने पदो मे किया है । वसत ऋतु की सहज सुषमा पर मुग्ध हो कर इन भक्त गायको के हृदय के भावुक उद्‌गार कोकिला के मादक संगीत की भाँति वसत राग मे मुखरित हो जाते है । और उमड़ती हुई श्यामल घटाओ के कमनीय सौदर्य को निरखकर इन कवियो के मनमयूर की प्रतिक्रिया मेघ राग का सृजन कर नृत्य कर उठती है । हमारे कृष्णभक्तिकालीन कवियो ने अपने काव्य का सृजन सगीत के द्वारा ही किया है । प्रभात मे उनके काव्य के स्वर भैरवी राग के द्वारा जागरण का संदेश सुनाते है, ऊषा की अगवानी आसावरी के मौन स्वरो मे होती है, प्रखर दुपहरी में सारंग की तान सुनाई पड़ती है, ढलती संध्या मे पूरिया की स्वरावली प्राणों में भर जाती है तथा निशाशेष मे सोहनी को सुनकर कौन द्रवित नही हो जाता है ।

कृष्णभक्तिकालीन कवियों ने रागो के गुणो, माधुर्य, प्रभाव तथा विशेषताओं की ओर भी संकेत किया है । सारग राग के द्वारा पशुओं को वशीभूत कर लेना, तोडी के गायन से मृगछौनों को मोहित कर लेना और मेघ राग के द्वारा वर्षा का आगमन इनके विशेष प्रिय विषय रहे है ।

कृष्णभक्तिकालीन काव्य पर एक विहंगम दृष्टि डालने के उपरान्त यह कहना पडता है कि इन कवियों के काव्य में रस-राग तथा समय-सिद्धात के अपूर्व संयोग से दिव्य सगीत की सृष्टि हुई है । इन कवियो ने शास्त्रीय संगीत के नियमो को अपनाकर भारतीय सगीत और साहित्य के समन्वय की धारा को अत्यधिक वेगवती कर दिया है ।

---

१. सूर-संगीत, प्रथम भाग, प्राक्कथन, पं० ओंकारनाथ ठाकुर, पृ० ५

सप्तम अध्याय

कृष्णभक्तिकालीन संगीत की भाषागत विशेषतायें

ब्रजभाषा का प्रयोग

कृष्णभक्तिकालीन कवियो के समय में हिन्दी साहित्य मे डिंगल, अवधी तथा ब्रज भाषाये ही साहित्यिक मानी जाती थी । उस समय तक दिल्ली, मेरठ की खडी बोली साहित्यिक भाषा नही बनी थी। कृष्णभक्तिकालीन प्राय सभी कवियो ने (मीरा के अतिरिक्त) अपने काव्य मे ब्रजभाषा को अपनाया ।

स्वरध्वनि की बहुलता –

सगीत के दृष्टिकोण से ब्रजभाषा विशेषतया उपयोगी रही है । कृष्णभक्तिकालीन कवियो के समय "भारत की आर्य बोलियो मे स्वरध्वनि की बहुलता थी, ब्रजभाषा भी इस स्वरबहुलता के कारण (क्योकि इसके सब शब्द स्वरात होते थे) विशेषतया श्रुतिमधुर भाषा है।"[१]

विभक्तियाँ –

ब्रजभाषा की विभक्तियाँ माधुर्य मे अतुलनीय है। "खड़ी बोली की हिं, कों, से, सों, कँहँ आदि से समता की स्पर्द्धा नही कर सकती । खड़ी बोली मे एक ही विभक्ति मधुर है 'मे', परन्तु वह भी ब्रजभाषा की 'मॅहॅं' की श्रुति सरसता मे फीकी पड़ जाती है।"[२]

क्रियाओं के रूप –

ब्रजभाषा मे क्रियाओ के रूप भी विशेष श्रुतिमधुर है । "उधर ब्रजभाषा ने अपनी

१: निबंध-संग्रह, हजारीप्रसाद द्विवेदी; कविवर तानसेन, डा० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या, पृ० ११०–११

२ प्रबंध-पद्म, सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला', पृ० १०१

क्रियाओ के रूपो मे भी विशेष श्रुति कोमलता ला दिखलाई है । 'लाभ करते' की तुलना मे 'लहत', 'मुडते' की तुलना मे 'मुरत', 'पाते' की अपेक्षा पावत विशेष श्रुतिमधुर है ।"[१]

शब्दों के लोचयुक्त रूप –

ब्रजभाषा के शब्दों में रूपनिर्माण के सबध मे भी मधुरता तथा कोमलता की प्रवृत्ति है। "कोमलता लचीलेपन से आती है । मक्खन इसलिये कोमल है कि उसमे लचक है, वह मौके के मुताबिक अपना रूप बना लेता है । यह गुण ब्रजभाषा मे सब से अधिक है। इसमे शब्दो के रूप को अवसरानुकूल फैलाकर, सिकोडकर, घिसकर, मांजकर रखा जा सकता है । 'नवनीत' शब्द 'नौनीत,' नवनी, नौनी, लवनी, लौनी, लउनी में से कोई भी रूप ले सकता है । इसी प्रकार दृष्टि, दिष्टि, दीठ । अत. ब्रजभाषा सब भाषाओ मे मक्खन की भाँति है । यह ब्रजभाषा ही है जो कृष्ण का क्रुस्न, किसन, किशुन, कान्ह, कान्हा, कन्हैया, कधैया, कन्हाई, कान आदि सभी रूपों में आदर करती है और विशेष आदर उन रूपो का करती है जिनमे मिठास आ गयी है ।"[२] ब्रजभाषा के रूपो के परिवर्तित होकर मधुर बनने के इस गुण पर मोहित हो कर खडी बोली को भी इस गुण से सिक्त करने की आकाक्षा से महाकवि निराला कहते है –"ब्रजभाषा साहित्य के विचार से बड़ी मधुर भाषा है । उसके शब्द टूटते हुए इतने मुलायम हो गए है जिससे अधिक कोमलता आ नही सकती । ब्रजभाषा का प्रभाव तमाम आर्यावर्त तथा दाक्षिणात्य तक रहा है । सभी प्रदेशो के लोग उसकी मधुरता के कायल थे । बॅगला, गुजराती, मराठी आदि भाषाओ मे उसकी छाप मिलती है। ब्रजभाषा साहित्य के अंग के अपर प्रांत वाले लोग भी अपनी भाषा को ब्रजभाषा की तरह उसी तूलिका से मधुसिक्त कर देते है । यही साधना वर्तमान खड़ी बोली के लिए जरूरी है । पहले के अनेक मुसलमान कवि ब्रजभाषा के रग मे रँग गए थे । उनके पद्य हिंदू कवियो के पद्यो से अधिक मधुर हो रहे है । यही स्वाभाविक खिचाव खड़ी बोली की कोमलता तथा व्यापकता मे आना चाहिए ।"[३]

ब्रजभाषा के शब्दों के रूपनिर्माण मे माधुर्य तथा कोमलता की प्रवृत्ति होने के कारण कृष्णभक्तिकालीन साहित्य मे शब्दो के लोचयुक्त प्रयोग प्रचुर मात्रा मे हुए है ।

काव्य और संगीत के क्षेत्र मे किसी भी प्रचलित भाषा के स्वीकृत शब्द रूपो मे प्राय: नाना प्रकार के विकार देख पडा करते है जिनकी ओर लक्ष्य करके समय-समय पर साहित्य के आलोचक वर्ग ने कभी आपत्ति की है और कभी समर्थन भी किया है । आपत्ति के स्थलो पर दृष्टिकोण प्रधान रूप से शब्दों के स्वीकृत शुद्ध रूप पर ही आधारित रहता है। जहाँ इस प्रकार के विकारो का समर्थन किया गया है वहाॅ किसी न किसी रूप में कवियो

---

१. प्रबंध-पद्म, सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला', पृ०, १०१

२. कला, कल्पना और साहित्य, सत्येन्द्र, ब्रजभाषामाधुरी शीर्षक लेख, पृ० २५५

३. प्रबंध-पद्म, निराला, पृ० १४-१५

के संबध मे कही गई अति प्राचीन उक्ति 'निरंकुशा: कवय.' का ही आधार लिया गया है अर्थात् छन्दवद्ध करने मे तुक इत्यादि की जो पाबन्दियाँ है उनका सफल निर्वाह करने के लिए कवि को शब्दो के उच्चारण इत्यादि मे थोडे बहुत परिवर्तन करने पडते है। ऐसी छूट केवल हमारे ही देश के साहित्य में नही वरन् पाश्चात्य देशों में भी 'poetic licence' कह कर दी जाती है।

'पाश्चात्य साहित्य मे काव्य और संगीत का इतना घनिष्ट संबंध प्राय. नहीं मिलता जितना हिन्दी साहित्य के पूर्वमध्यकाल के भक्ति साहित्य मे मिलता है। इसीलिए पाश्चात्य साहित्य मे 'poetic licence' की स्थापना तो करनी पडी किन्तु 'musician's licence' की आवश्यकता नही पड़ी। इसी के विपरीत शब्दो के रूपो के संबंध मे हमारे साहित्य में जो समस्याये सामने आती है उन्हे देखकर हमारे आलोचको को कवि और संगीतज्ञ दोनो को ही इस प्रकार की छूट देनी पडी। और यदि हम चाहें तो अपने आलोचकों की तरह हम शायद कह सकते है कि 'निरंकुशा कवय' की तरह ही 'निरकुशा: गायका:' की उक्ति भी स्वीकृत की जानी चाहिए किन्तु अपने यहाँ के साहित्य के गभीर विवेचन के उपरान्त वरबस हमारा ध्यान किन्ही अन्य परम आवश्यक तथ्यो की ओर चला जाता है। जैसा ऊपर माना जा चुका है कवि भापा के शब्दो के स्वीकृत रूपो मे विकार उत्पन्न करता है छन्द विषयक अनिवार्य एवं वाछनीय पाबन्दियो की पूर्ति के लिए। किन्तु इसी प्रकार के विकार जब संगीत के द्वारा किए जाते है तो उसका कारण कवि का कारण नही होता क्योंकि पूर्व ही बताया जा चुका है कि काव्य और सगीत के ढाँचो मे ही मूल अन्तर है। सगीत युक्त पदावली काव्ययुक्त छंदावली मे न तो बँधी होती है और न काव्य-सिद्ध छदो की किसी अंश मे ही पाबन्दी करती है। तव सहसा प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि संगीत-क्षेत्र में सिद्ध गायक शब्दों के स्वीकृत रूपो में विकार क्यों उत्पन्न करता है। इसका उत्तर स्पष्ट है कि संगीतज्ञ की चिर-साधना स्वरो मे निहित ध्वनियो की साधना होती है। अत: सगीताश्रयी ध्वनि संतुलन के लिए उसे शब्दों के रूपो मे नही वरन् शब्दो के उच्चारण मे ध्वनि विषयक संतुलित और अभीप्सित वैशिष्टच उपस्थित कर देना आवश्यक हो जाता है। गायक कवि को अपने पदों को विशेष राग के विशिष्ट स्वरो से मडित करके उन्हे ताल मे बाँधना होता है–तालवद्ध रूप प्रदान करना पडता है। अत सगीत के कलात्मक पक्ष (टेक्निक) के आग्रह के कारण शब्दो में लोच लाना तथा परिवर्तन करना अनिवार्य हो जाता है। रागों का स्थूलस्वरूप, स्वरसंगति, मुक्त स्वरों का निरूपण तथा उसकी स्थापना, विभिन्न अवयवो का योग्य स्थापन, किसी निश्चित स्वर से गीत के वाक्य को आरम्भ करके उसे रागात्मक वाक्य (musical sentence) का रूप प्रदान करना, तथा इस प्रकार गीत के वाक्य को संगीतात्मक वाक्य का रूप प्रदान करते हुए एक-एक भावात्मक कल्पना को पूरा करते जाना, ताल के आघात के अनुसार गीत के वाक्यो का सौष्ठव बैठाना और रागात्मक वाक्यो की लम्बाई का ध्यान रखना–संगीत की इन कलात्मक विशेषताओ पर ध्यान रखने के कारण भ्रमर का भँवरा, माँह का महिया आदि विभिन्न उच्चारण बन जाना स्वाभाविक ही है।"[1]

---

१. संगीत, अप्रैल १९५०, सम्पादकीय, अखिल भारतीय रेडियो की भजन नीति, पृ० २९५

काव्यशास्त्र के दृष्टिकोण से जैसा कि डा० दीनदयालु जी गुप्त ने इंगित किया है – "यद्यपि बहुत अश मे छंदपूर्ति अथवा तुकान्त के लिए मूल भाषा के प्रचलित शब्दों को तोड़ना भाषा के प्रयोग का एक अवगुण ही होता है ।"[1] किन्तु लेखिका का विनम्र निवेदन है कि शब्द परिवर्तन, शव्दो के लोचयुक्त प्रयोग तथा ह्रस्वस्वर को दीर्घ और दीर्घस्वर को ह्रस्व बनाने की इस प्रवृत्ति के मूल मे भी संगीत ही निहित है । तुक, मात्राओ की पूर्ति, शब्द-समूह की गति तथा लय के प्रवाह द्वारा काव्य और सगीत के सबध को पुष्ट करने के लिए ही प्राय: शब्द-रूपो मे विकार किए जाते है । अब यदि इस दृष्टि से देखा जाय तो डा० गुप्त जी ने जिसे काव्यगत 'शब्दों का तोड़ना' माना है वह ऐसा नही प्रतीत होता वरन् वह सौदर्य की अभिवृद्धि का साधन बन जाता है । अत सगीत के माध्यम से काव्य-साधना करने वाले गायक कवियो के लिए इतनी स्वतन्त्रता अनिवार्य है ।

कृष्णभक्तिकालीन कवियो ने काव्यशास्त्र के नियमो मे बद्ध होकर काव्य की रचना नही की अपितु भावना की तीव्रता मे उनके हृदय से गाये गए मुक्त गान ही अपनी रसात्मकता, पवित्रता तथा सौन्दर्य चेतना के कारण स्वत ही काव्य की संज्ञा से विभूषित हो गए ।"…. मध्ययुगीन हिन्दी साहित्य बहुत अशों मे काव्य-साधना के लिए नही वरन् पतित मानवता को दैवी-सदेश सुनाने के लिए रचा गया था । काव्य-साधना साधन मात्र थी, उसमे प्राप्त काव्य-चमत्कार अनायास है । इस अमर साहित्य के विविध रचयिता अपने-अपने क्षेत्र के देवदूत थे । उनकी वाणी अपने इष्ट के द्वारा प्रदत्त वरदान से सिद्धवाणी थी ।"[2] यही कारण है कि हमारे सभी कृष्णभक्तिकालीन गायक कवियो के काव्य मे शब्दो के लोच-युक्त रूप पर्याप्त मात्रा में प्रयुक्त हुए है । उदाहरणस्वरूप इन कवियो के निम्नलिखित कुछ स्थलों पर प्रयुक्त शब्दों के लोचयुक्त रूप दृष्टव्य होगे –

लोचयुक्त रूप	भाषा रूप	
पगु	पग	सूरदास कछु कहत न आवे गिरा भई गति 'पंगु' ।[3]
महियां	माँहि	बिडरति फिरति सकल बन 'महियाँ' एकै एक भई ।[4]
लपटेय	लपेट	श्री शंकर बहुरतन त्यागि कै विषहिं कंठ लपटेय' ।[5]
भँवारे	भ्रमर	तुम कारे सुफलक सुत कारे, कारे मधुप 'भँवारे' ।[6]

(सूरदास)

---

१. अष्टछाप और वल्लभसम्प्रदाय, डा० गुप्त, भाग २, पृ० ८८१

२. मीरा-स्मृति-ग्रंथ, कृष्णभक्ति परंपरा और मीरा, आचार्य ललिताप्रसाद सुकुल, पृ० १८७

३. सूरसागर, (भाग १), पृ० ४८७, पद सं० १२५८

४. वही, पृ० ४७८, पद सं० १२३०

५. वही, (भाग २), पृ० १५६१, पद सं० ४५१३

६. वही, पृ० १५२०, पद सं० ४३८०

लोचयुक्त रूप	भाषा रूप	
कहियाँ	कहँ, को	बलि बलि जांउ चरन कमलनु की जाहि अपने घर 'कहियाँ।'[1]
गोपाला	गोपाल	इन मोरन की भाँति देखि नाचै 'गोपाला'।[2]
चंदै	चन्द्र	सहज प्रीति कमलनि अरु भानुहिं सहज प्रीति – कुमुदिनी अरु चंदै।[3]
बहियाँ	बाँह	नेक लाल ! टेकहु मेरी 'बहियाँ'।[4]
राई	राय	खेलन बन चले 'यदुराई'।[5] (परमानंददास)
बिरियाँ	बेला	कुंभनदास प्रभु दधि बेचन की 'बिरियाँ' जात टरी।[6]
चैननु	चैन	अब गिरिधर बिन निसि अरु बासर मन न रहत क्यों 'चैननु'।[7] (कुंभनदास)
पनियाँ	पानी	कछु टौना सौ डारि गयौ री, कैसे भरन जाऊँ 'पनियाँ'।[8]
लगनियाँ मोहना	लगन मोहन	लागी रे 'लगनियाँ', 'मोहना' सो।[9] (कृष्णदास)
मटुकिया	मटकी	'मटुकिया' मोरी मोहन दीजै।[10]
दरसना	दर्शन	भोर तमचोर वेगि दीजै जू 'दरसना'।[11]
रसालै	रसाल	नंदराय जू को आनि दिखावैं सुंदर रूप 'रसालैं'।[12]
नंन्ही दतियाँ	नन्हीं दाँत	'नंन्ही नंन्ही' 'दतियाँ' द्वै द्वै दूध की देखिए हँसत हरत दुख दलना।[13] (चतुर्भुजदास)

१. हस्तलिखित पद-संग्रह, परमानंददास, डा० दीनदयालु गुप्त, पद सं० ३८
२. वही, पद स० ७०
३. वही, पद सं० १६७
४. वही, पद सं० ६०
५. वही, पद सं० ६३
६. अष्टछाप-परिचय, मीतल, पृ० ११६, पद सं० ५८
७. वही, पृ० १०७, पद सं० १५
८. वही, पृ० २३२, पद सं० २६
९. हस्तलिखित पैद-संग्रह, कृष्णदास, डा० दीनदयालु गुप्त, पद सं० १२३
१०. अष्टछाप-परिचय, मीतल, पृ० २८१, पद सं० २८
११ वही, पृ० २८४, पद सं० ४१
१२. वही, पृ० २७८, पद सं० १३
१३. वही, पृ० २७६, पद सं० २

लोचयुक्त रूप	भाषा रूप	
पनियाँ	पानी	गोकुल की पनिहारी 'पनियाँ' भरन चली ।[१]
मगना	मगन	फूली सखी चहुँ ओर थोरें थोरें, नंददास फूले जहाँ मन भयौ 'मगना'।[२] (नंददास)
कुमारै	कुमार	गोविंद प्रभु पिय दासी तिहारी सुंदर घोष 'कुमारै, ।[३]
किसोरै	किशोर	गोविंद प्रभु कों देखि ललितादिक निरखि हँसत बन-नवल 'किसौरै' ।[४]
मंझारी	मांझ (मध्य)	निसदिन हू घर घेरो करत है, बालक जूथ 'मँझारी' ।[५] (गोविंदस्वामी)
अनुकूली	अनुकूल	यह सब सुख 'छीत' निरखि इच्छा 'अनुकूली' ।[६]
परसिवौ	स्पर्श	दधि के दान मिस, ब्रज की वीथिन में झकझोरन अंग अंग कौ 'परसिवौ' ।[७] (छीतस्वामी)
गोपरायनि	गोपराय	झुलहिं कुंवरि 'गोपरायनि' की मध्य राधा सुन्दरि सुकुमारी ।[८]
आकासे	आकाश	नंदकुल चंद वृषभानु कुल कौमुदी, उदित वृंदावनविपिन विमल 'आकासे' ॥[९] (गदाधर भट्ट)
मुरलिका	मुरली	नव पीतांबर लकुट 'मुरलिका' ओर अखंड बनायो-प्रीतसहित अवलोक प्रहत हरि मात पिता के पाय ।[१०]
नयना (नैना)	नयन	नयन सों 'नयना' प्रानन सों प्रान अरुझि रहे चटकीली छबि देख लटपटात स्यामघन ।[११] (सूरदास मदनमोहन)

---

१. अष्टछाप-परिचय, प्रभुदयाल मीतल, पृ० ३२३, पद सं० २४
२. वही, पृ० ३२६, पद सं० ३९
३. वही, पृ० २५८, पद सं० ५९
४. वही, पृ० २५३, पद सं० ३३
५. वही, पृ० २५१, पद सं० २६
६. वही, पृ० २६७, पद सं० १७
७. वही, पृ० २६९, पद सं० २३
८. मोहिनी वाणी श्री गदाधर भट्ट जी की, प्रकाशक कृष्णदास, पृ० ५९ झूलन के पद ।
९. वही, पृ० २२, पद सं० ९
१०. अकबरी दरबार के हिन्दी कवि, सरयूप्रसाद अग्रवाल, पृ० ४४९, पद सं० १०
११. वही, पृ० ४४८, पद सं० ५

लोचयुक्त रूप	भाषा रूप	
राई	राय	मोहन 'रसिक राई' री माई तासौं जु मान करै – ऐसी कौंन कामिनी ।[1]
नामिनी	नाम	लागि कटुर उरप सप्त सुर सौं सुलप लेति सुंदरि सुघर राधिका 'नामिनी, ।[2]
जुवतीनि	युवती	देसी सुघंग राग रंग नीकों व्रज 'जुवतीनि' की भोर री सजनी ।[3] (हितहरिवंश)
नटवा	नट	नाँचत 'नटवा' मोर सुघंग अंग, तैसै बाजत मेह मृदंग ।[4]
मोहनियाँ	मोहन	मदनमोहन भाई मन–'मोहनियाँ ।[5] (व्यास)
मोरनि स्यामाहि	मोर स्यामा	नाचत 'मोरनि' संग स्याम मुदित 'स्यामाहि रिझावत ।[6]
करनि	कर	बनी री तेरै चारि चारि चूरी करनि' ।[7] (हरिदास)
छहियाँ	छांह	कुंजन वन के छारै वाढे कुंवर कदंब की 'छहियाँ ।[8]
बहियाँ	बाँह	सुनत वचन हरसि विलम न कीनों चली अली गहि 'बहियाँ' ।[9] (विट्ठलविपुल)
इष्टा	इष्ट	अैसो को बड़भागी अनुरागी जो आराधै 'इष्टा' ।[10]
छहियाँ बहियाँ	छांह बांह	इन उनि में वदरनि की 'छहियाँ' गई 'बहियाँ' बोलत डोलत वन वन तै सोई संग सब ही को ।[11]
राइ	राय	विहरत राज रितु वन 'राइ' ।[12] (बिहारिनदेव)
मोरा	मोर	कारी घटा छटन के डोरा 'मोरा' बोलत जोरै ।[13]

---

१. हित चौरासी, हितहरिवश, प्रति सं० ३८ । २१५, प्रयाग-संग्रहालय, पद सं० २

२. वही, पद सं० ६८

३. बही, पद सं० २४

४. भक्त कवि व्यास जी, वासुदेव गोस्वामी, पृ० ३७८, पद सं० ६८०

५. वही, पृ० २७६, पद सं० ३७८

६. पद-संग्रह, प्रति सं० १६२०। ३१७०, हिन्दी-संग्रहालय, हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग, पृ० ३०, पद सं० १

७. वही, पृ० १७, पद सं० १६

८. वही, पृ० ४१, पद सं० २१

९. वही, पृ० ४१. पद सं० २१

१०. वही, पद सं० १५

११. पद-संग्रह, प्रति सं० ३७१।२६६, काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा, पत्र सं० १३१, पद सं० ६

१२. वही, पत्र सं० १४३, पद सं० ५

१३. जुगलसतक, श्रीभट्ट २७६९।१६६६, का० ना० प्रा० स०, पत्र सं० २३, पद सं० ८५

लोचयुक्त रूप	भाषा रूप		
नवलहि	नवल	नवल वसंत नवल बृंदावन 'नवलहि' फूले फूल ।[१]	(श्रीभट्ट)
बंसिका	वंशी	नाना धुनि 'बंसिका' बजावत ।[२]	
भोम	भूमि	राजत रंग 'भोम' तें आवत हरि जीतें रिणिषेत ।[३]	(परशुराम)
मथनिया	मथनी	घर घर दधि 'मथनिया' घूमे अरु द्विज करत वेद की घोर ।[४]	
मैना	मैन	आसकरण प्रभु मोहन नागर वारों कोटिक 'मैना' ।	(आसकरण)

कोमल शब्द विन्यास –

काव्य को नाद-सौदर्य से अलकृत करने के लिए भाषा को मधुर, कोमल और सुकुमार बनाना आवश्यक है । कर्कश तथा कर्णकटु अक्षरो का न्यूनतम प्रयोग और द्वित्व तथा संयुक्त अक्षरो का यथाशक्ति बहिष्कार संगीत के उपादान है । कृष्णभक्तिकालीन कवियो की भाषा मृदुल, मजुल, मधुर और सरस है । उनकी रचनाओ मे अधिकतर कोमल शब्द-विन्यास होता है क्योकि ब्रजभाषा का प्रधान गुण माधुर्य है । "देशी और विदेशी सभी व्यक्तियो ने मुक्त कठ से यह बात मानी है कि ब्रजभाषा सब भारतीय भाषाओ मे मधुर है । ···ब्रजभाषा की वर्णमाला मे मधुर वर्णो का ही प्रधान है । 'ण' ब्रज मे 'न' हो जाता है । 'ल' बहुधा 'र' हो गया है । 'श' और 'ष' का स्थान 'स' ने ले रक्खा है । 'ऋ' ने 'रि' का रूप ग्रहण कर लिया है । इस प्रकार समस्त वर्णमाला की प्रवृत्ति कोमलता और मधुरता की ओर हो गई है ।"[६] संगीत की कोमलता उत्पादन के लिए कृष्णभक्तिकालीन कवियो ने कर्णकटु वर्णो का यथाशक्ति बहिष्कार किया है । उनकी रचनाओ में ब्रजभाषा के स्वाभाविक माधुर्य के अनुकूल प्रायः अधिकांश स्थलो पर ष, श>स; तथा ड, ट और ल>र का प्रयोग मिलता है । उदाहरण स्वरूप –

आशा>आसा, निशिकर>निसिकर (सूरदास)[७], मिश्री>मिसिरी (परमाननदास)[८]; मणि>मनि (कृष्णदास)[९], बिछुड>बिछुरि (कुंभनदास)[१०], भूषण>भूषन (नददास)[११];

१. जुगलसतक, श्रीभट्ट, ७१२।३२, का० ना० प्र० स०, पत्र सं० १३, पद सं० १
२. राम-सागर, परशुराम, ६८०।४६२, रा० साग० ६८, पद सं० १४८
३. वही, १००, पद सं० १६१
४. अकबरी दरबार के हिन्दी कवि, सरयू प्रसाद अग्रवाल, पृ० ४५१, पद सं० ६
५. वही, पृ० ४५१, पद सं० ७
६. कला, कल्पना और साहित्य, सत्येन्द्र, ब्रजभाषा-माधुरी शीर्षक लेख, पृ० २२५
७. सूर-सागर, भाग २, पद सं० ३७२६ तथा ३७८३
८. हस्तलिखित पद-संग्रह, परमानंददास, डा० दीनदयालु गुप्त, पद सं० ३३
९. अष्टछाप-परिचय, मीतल, पृ० २३४, पद स० ४२
१०. कुंभनदास, विद्याविभाग काँकरौली, पद सं० १६७
११. अष्टछाप-परिचय, मीतल, पृ० ३२७, पद सं० ४३

अतिशय>अतिसय (चतुर्भुजदास)[१], कलश>कलश (गोविंदस्वामी)[२]; मुड>मुरि (छीतस्वामी)[३]; शरद>सरद (सूरदास मदनमोहन)[४], शिरोमणि>सिरोमनि, चूड़ी>चुरी (हितहरिवंश)[५], शरण>सरन (व्यास जी)[६]; थोडी>थोरी (हरिदास)[७]; विवश>विवस (विहारिन देव)[८], किशोर>किसोर (श्रीभट्ट)[९]; यश>जस (आसकरण)[१०]

संयुक्त वर्णों का अभाव –

भावो की कोमलता को व्यक्त करने के लिए कृष्णभक्तिकालीन कवियो ने शब्दो को मधुर तथा कोमल बनाने का निरंतर प्रयास किया है। सुकुमारता तथा मधुरता का विशेष ध्यान रखने के कारण इन कवियों की रचनाओ मे सयुक्तवर्ण न्यून मात्रा ही मे आए है। यदि संयुक्त वर्ण आ भी जाते है तो स्वरागम द्वारा उनको अमीलित कर दिया गया है। उदाहरण-स्वरूप निम्नलिखित प्रयोग देखे जा सकते है –

समदर्शी>समदरसी, दुर्लभ>दुरलभ (सूरदास)[११], वर्ष>वरस, मार्ग>मारग (परमानंददास)[१२], पूर्ण>पूरन, सर्वस्व>सरवसु (कुभनदास),[१३] सर्वस्व>सरबस (कृष्णदास)[१४], पिपासा>पियास, प्रिय>पियारे (नददास)[१५], मूर्ति>मूरति, स्वरूप>सुरूप (चतुर्भुजदास)[१६], दर्शन>दरसन, स्वप्न>सुपन (गोविन्दस्वामी)[१७], मार्ग>मारग

---

१ अष्टछाप-परिचय, प्रभुदयाल मीतल, पृ० २७८, पद सं० १३

२. गोविंदस्वामी, ब्रजभूषण शर्मा, पृ० ११, पद २१

३. हस्तलिखित पद-संग्रह, छीतस्वामी, डा० दीनदयालु गुप्त, पद सं० १७

४ कीर्तन-संग्रह, वर्षोत्सव के कीर्तन

५. चौरासी-पद, (हस्तलिखित पद-सग्रह, प्रयाग-संग्रहालय), प्रति सं० ३८/२१५, पद सं० १० व १३

६. भक्त कवि व्यास जी, वासुदेव गोस्वामी, पृ० २५७, पद संख्या २६१

७. पद-संग्रह, (हस्तलिखित), हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन प्रयाग, प्रति सं० १६२०/३१७०, पृ० १३, पद ३

८. वही, पद २०

९. जुगलसतक, श्रीभट्ट, प्रति सं० २७६६/१६६६, का० ना० प्र० स०, पत्र २३, पद सं० ८५

१०. दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता

११. सूरसागर, (भाग १), पृ० ७२, पद सं० २२०

१२. हस्तलिखित पद-संग्रह, परमानंददास, डा० दीनदयालु गुप्त, पद सं० २३३ व ४२७

१३. कुंभनदास, विद्याविभाग, काँकरौली, पद सं० ४४, २२२

१४. अष्टछाप-परिचय, मीतल, पृ० २३७, पद सं० ५७

१५. वही, पृ० ३२३, पद २५ व २८

१६. हस्तलिखित पद-संग्रह, चतुर्भुजदास, डा० दीनदयालु गुप्त, पद सं० ३४ तथा ३६

१७. गोविन्दस्वामी, ब्रजभूषण शर्मा, पद सं० २३१ तथा ३६३

(छीतस्वामी)[१]; स्वर>सुर, पूर्ण>पूरन, वर्णन>वरनन (गदाधर भट्ट)[२]; पूर्ण>पूरन (सूरदास मदनमोहन)[३]; स्पर्श>परस (हितहरिवंश)[४], भ्रमर>भँवरन (व्यासजी)[५]; सर्वदा>सरवदा, स्वर>सुर (हरिदास)[६]; हर्ष>हरसि (बिट्ठलविपुल)[७]; सर्वस्व> सरवस (बिहारिनदेव)[८]; नृत्यत>निरतत, स्पर्श>परस (श्री भट्ट)[९]; हृदय>हिरदै, कल्पतरु>कलपतरु (परशुराम)[१०]।

मीरा की भाषा

यहाँ पर मीरा की भाषा तथा उसकी विशेषताओ की ओर इगित कर देना अनिवार्य है। यों तो मीरा के पदो के जो अनेको सग्रह प्राप्त होते है उनमें राजस्थानी, ब्रजभाषा, खड़ीबोली, अवधी, गुजराती आदि सभी का सम्मिश्रण देख पडता है। किन्तु यह तो निश्चित है कि मीरा की भाषा विशुद्ध ब्रजभाषा नही थी।[११] हस्तलिखित प्रतियों के आधार पर बगीय हिन्दी परिषद् द्वारा संपादित 'मीरा पदावली' मे मीरा की भाषा राजस्थानी रूप मे प्रगट हुई है और पदावली परिचय मे भी इसी तथ्य की पुष्टि की गई है।[१२]

---

१. हस्तलिखित पद-संग्रह, छीत-स्वामी, डा० दीनदयालु गुप्त, पद स० १७
२. श्री गदाधर भट्ट महाराज की बानी, हस्तलिखित प्रति बालकृष्णदास जी की, पत्र २१, पद २३, पत्र २३, पद स० १; पत्र २३–२४, पद सं० ३
३. अकबरी दरबार के हिन्दी कवि, सरयूप्रसाद अग्रवाल, पृ० ४४९, पद सं० ७
४. चौरासी पद, प्रयाग संग्रहालय, प्रति सं० ३८/२१५, पद सं० १०
५. भक्त कवि व्यास जी, वासुदेव गोस्वामी, पृ० १९६, पद सं० ४०३
६. पद-संग्रह, प्रति सं० १६२०/३१७०, हिन्दी-संग्रहालय प्रयाग, पृ० २८, पद सं० २, पृ० ३०, पद १
७. पद-संग्रह (हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन प्रयाग), सख्या ३१७०, वेष्ठन संख्या १६२०, पृ० ४१, पद सं० २१
८. वही, पद सं० २०
९. जुगलसतक, श्रीभट्ट, प्रति सं० ७१२।३२, का०ना०प्र०स०, पत्र १३, पद १, पत्र १ पद स० ७
१०. रामसागर, परशुराम, प्रति सं०६८०।४९२, का०ना०प्र०स०,रा०साग०४२, पद सं० १,८
११. "मीरां की मातृभाषा राजस्थानी थी, अतः मीरा के नाम से प्रचलित पदों की भाषा में राजस्थानीपन पर्याप्त है किन्तु ब्रज तथा गुजरात में रहने के कारण इन प्रदेशों में प्रचलित पदों में प्रादेशिक बोलियों की छाप भी पर्याप्त है। जो हो मीरा की रचना विशुद्ध ब्रजभाषा कभी भी सिद्ध न हो सकेगी।"
ब्रजभाषा-व्याकरण, धीरेन्द्र वर्मा, पृ० ३०
१२. "संग्रहों में प्राप्त उन [मीरा] के पदों के रूप यदि कोई देखे तो शायद उन्हें राजस्थान की मानने में भी संकोच होने लगे। दो चार टूटे फूटे, औंधे-सीधे इधर उधर आनेवाले राजस्थानी शब्दों और मुहावरों को छोड़कर ब्रजभाषा, अवधी और कहीं-कहीं तो खड़ी

अन्य कृष्णभक्तिकालीन कवियों की भाँति मीरा के पदो मे भी शब्दों के लोचयुक्त रूप प्रचुरमात्रा में आए हैं। उदाहरणस्वरूप निम्नलिखित उद्धरण दृष्टव्य होगे –

लोचयुक्त रूप	भाषा रूप	
मुरड़िया	मुरली	'मुरड़िया' बाजा जमणा तीर।[१]
गोविन्दां	गोविंद	माई री म्हां ड़िया 'गोविन्दां' मोड़।[२]
घुंघरयां	घुंघरू	पग बांध 'घुंघरयां' णाच्यां री।"[३]
हरचंदा	हरिश्चन्द्र	सतवादी 'हरचंदा' राजा डोम घर णीरां भरां।[४]
पपैया	पपीहा	'पपैया' म्हारो कब रो बैर चितायां।[५]

मीरा ने भी अपने काव्य में संयुक्त वर्णो को परिष्कृत करके अमीलित रूप में प्रचुर मात्रा में प्रयुक्त किया है। उदाहरणस्वरूप निम्नलिखित प्रयोग दृष्टव्य होंगे –

अमृत>इमरत	–	'इमरत' पाइ विषां क्यूं दीज्यां कूंण गांव री रीत।[६]
मार्ग>मारग	–	पंथ निहारां डगर मझारां ऊभी 'मारग' जोय।[७]
प्रभात>परभात	–	पटाणा खोड़यां मुखांणा बोड़यां सांझ भयां 'परभात'।[८]
कीर्ति>कीरत	–	'कीरत' काईं णा कियां घणां करम कुमाणी जी।[९]
कृपानिधान>किरपानिधान	–	गिरधारी शरणां थारी आयां राख्यां 'किरपानिधाण'।[१०]

बोली की भी खिचड़ी मिलती है। कारण स्पष्ट है कि इन विविध संग्रहों के पद गली-गली गाये जाने वालों से सुनकर बटोर लिये गये हैं। ··· ···किन्तु प्रस्तुत संग्रह में जो पदावली दी गयी है और जिसका इतिहास भी दे दिया गया है उसमें यदि कुछ भी सच्चाई हो जो पदों में प्रयुक्त ओत-प्रोत राजस्थानी से भी प्रतिपादित होती है तो कम से कम मीराबाई की रचनाओं के विविध प्रकार के अध्ययन की कठिनाई बहुत सुलझ जाती है।" मीरा-स्मृति-ग्रंथ,पदावली-परिचय, ललिताप्रसाद सुकुल, पृ० थ और द

१. मीरा-स्मृति-ग्रंथ, मीरा-पदावली, पृ० २७, पद सं० ९४
२. वही, पृ० ४, पद सं० १३
३. वही, पृ० १३, पद सं० ४७
४. वही, पृ० १५, पद सं० ५४
५. वही, पृ० ११, पद सं० ३८
६. वही, पृ० ३, पद सं० ९
७. वही, पृ० ६, पद सं० २१
८. वही, पृ० ७, पद सं० २४
९. वही, पृ० ७, पद सं० २५
१०. वही, पृ० ९, पद सं० ३१

नृत्य>निरत – काड़िन्दी दह णाग णाथ्यां काड़ फण-फण 'निरत' करंत ।[1]
प्रतिज्ञा>परतग्या – प्रहड्डाद 'परतग्या' राख्यां हरणांकुस णों उदर बिदारण ।[2]
श्री>सिरी – छप्पण कोटां जणां पधारयां दूल्हो 'सिरौ' ब्रजनाथ ।[3]
हृदय>हिरदां – मा 'हिरदां' बस्या सांवरो म्हारे णींद णा आवां ।[4]

जहाँ तक कर्णकटु अक्षरो के प्रयोग करने का प्रश्न है मीरा की स्थिति अन्य कृष्णभक्तिकालीन पदकारो से भिन्न है । 'ट' वर्ग की कर्कशता से लोगो के कान फट जाते है । मीरा मे 'ट' वर्ग की प्रधानता है । 'ड' का भी मीरा मे बाहुल्य है । उदाहरणस्वरूप कतिपय पद दृष्टव्य होगे –

म्हां मोहण रो रूप लुभाणी ।
सुंदर बदण कमड़ दड़ लोचन बाँकां चितवण नैणा समाणी ।
जमणा किणारे कान्हा धेणु चरावां बंसी बजावां मीट्ठां बाणी ।
तण मण धण गिरधर पर बारां चरण कंवड़ मीराँ बिलमांणी ।।[5]

म्हारो जणम-जणम रो शाथी थाणे ना बिशरया दिण रांती ।
थां देख्यां बिण कड़ ना पड़तां जाणे म्हारी छांती ।
ऊचां चढ-चढ पंथ निहारया कड़प-कड़प अखयां रांती ।
भोसागर जग बंधण झूठां झूठां कुड़ रां णयाती ।
पड़ पड़ थारां रूप निहारां गिरख गिरख मदमांती ।
मीरां रे प्रभु गिरधर नागर हरि चरणा चितरांती ।।[6]

मण थें परस हरि रे चरण ।
सुभग सीतड़ कंवड़ कोमड़ जगत ज्वाड़ा-हरण ।
इण चरण प्रहलाद परस्यां इन्द्र पदवी धरण ।
इण चरण ध्रुव अटड़ करस्यां सरण असरण सरण ।
इण चरण ब्रह्मांड भेद्यां णखखसिखां सिरि भरण ।
इण चरण कालियां णाथ्यां, गोपड़ीड़ा करण ।
इण चरण धारयां गोवरधण गरब मघवा हरण ।
दासि मीराँ लाल गिरधर अगम तारण तरण ।।[7]

---

१. मीरा-स्मृति-ग्रंथ, मीरा-पदावली, पृ० ६, पद सं० ३२
२. वही, पृ० १०, पद सं० ३८
३ वही, पृ० १०, पद सं० ३६
४. वही, पृ० ११, पद सं० ३७
५. वही, पृ० २, पद सं० ३
६. वही, पृ० १२, पद सं० ४३
७. वही, पृ० ४, पद सं० १४

किन्तु 'ट' वर्ग का प्रयोग मीरा के काव्य मे स्वच्छन्द सगीत उत्पन्न करता है जो कृष्णभक्तिकालीन अन्य कवियो के काव्य मे कोमल शब्दो द्वारा उत्पन्न सगीत मे कम मधुर नही है। जायसी के 'डा' के सगीत माधुर्य पर मुग्ध हो कर प० रामचन्द्र शुक्ल ने कहा था—"सदेसड़ा शब्द मे स्वार्थे 'डा' का प्रयोग भी बहुत ही उपयुक्त है। ऐसा शब्द उस दशा में मुँह से निकलता है जब हृदय प्रेम-माधुर्य, अल्पता, तुच्छता आदि मे से कोई भाव लिये हुए होता है।"[1] मीरा के पदो मे ऐसे भावव्यजक स्वार्थे 'डा' आदि न जाने कितने भरे पड़े है। यथा—

प्रभु जी थे कठ्यां गयां 'नेहड़ा' लगाय।[2]
चित चढ़ी म्हारे माधुरी मूरत, 'हिबडां' अणी गढी।[3]
स्याम म्हां बाँहडिया जी गह्यां।[4]
स्याम शुंदर पर वारां 'जीवड़ा' डारां स्याम।[5]
जोशीडा णे लाख बधाया रे आश्यां म्हारो स्याम।[6]
प्रीतम दयां संणेसड़ां म्हारों घणों णेवाजां हो।[7]
'नीदड़ी' आवां णा शारा रात कुण विध होय प्रभात।[8]
जणम जणम रो काण्हड़ो म्हारी प्रीत बुझाय।[9]
घायड़ री गत घायड़ जाण्या 'हिवड़ो' अगण संजोय।[10]
म्हारा पिया म्हारे 'हीयडे' बसतां ना आवां ना जाती।[11]

नेहडा, हिवडा, बाँहडिया, जीवडा जोगीडा, सणेसडा, नीदडी, काण्हडो, हिवडो और हीयडे शब्दो मे कितनी स्वाभाविक रमणीयता तथा अकृत्रिम सगीत निहित है। अनगढ और बीहड चट्टानो पर उछलती, टकराती, बढती हुई जल की धारा जिस प्रकार अपूर्व मधुर सगीत

---

१. जायसी-ग्रंथावली, रामचन्द्र शुक्ल, भूमिका पृ० ४७
२. मीरा-स्मृति-ग्रंथ, मीरा-पदावली, प० ४, पद सं० ११
३. वही, पृ० ५, पद सं० १५
४. वही, पृ० ६, पद सं० २२
५ वही, पृ० ८, पद स० २७
६. वही, पृ० १२, पद स० ४४
७. वही, पृ० २२, पद सं० ७६
८. वही, पृ० २३, पद सं० ८१
६. वही, पृ० २५, पद सं० ८६
१०. वही, पृ० ६, पद सं० १६
११. वही, पृ० ३, पद सं० १०

उत्पन्न करती है, मीरा के हृदय की वेदना, टीस, बेचैनी तथा व्याकुलता भी स्वाभाविक विवशतावश स्वत. निकले हुए अनगढ और अकृत्रिम शब्दों द्वारा उसी प्रकार का संगीत उत्पन्न करती है ।

मीरा के काव्य में कही-कही र, ल > ड तथा स > श का प्रयोग किया गया है। यथा –

नेहरा>नेहड़ा – प्रभुजी थे कठ्यां गयां 'नेहडा' लगाय ।[1]
बादल>बादड़ – 'बादड़ा' रे थें जड़ भरां आज्यो ।[2]
बिसरा>बिशरया – म्हारो जणम जणम रो शाथी थाणे ना 'विशरया' दिण रांती ।[3]
तरसावो>तरशावां – क्यूं 'तरशावां' अन्तरजामी आय मिड़ो दुख जाय ।[4]

किन्तु इस प्रकार के प्रयोग मीरा की भाषा की मधुरता बढाने में कम सहायक नही हुए है । इन शब्दों से माधुर्य की वर्षा सी प्रतीत होती है ।

'ड' के पश्चात् 'या' का प्रयोग और स्वार्थे ड्या भाषा में संगीत-सौदर्य की वृद्धि ही करते है । मीरा मे पग-पग पर ऐसे ही प्रयोग भरे हुए है । यथा –

भाया 'छांड्या' बंधा 'छांड्या' 'छांड्या' सगां सूयां ।[5]
मीरां रे प्रभु गिरधर नागर 'क्रीडयां' संग बलबीर ।[6]
'छोडया' म्हा बिसवास संगाती प्रीत री बाती जड़ाय ।[7]
स्याम म्हां 'बांहडियां' जी गह्यां ।[8]

सारांश में कहा जा सकता है कि–"मीराँ देवी की रचनाये भाषा अथवा काव्य चातुर्य की दृष्टि से विशेष महत्व नहीं रखती । भाषा अथवा काव्यकला का उसमे कोई विशेष चमत्कार नही । फिर भी उनके पदों में विशेष आकर्षण है, उनमें पुलकित तथा गद्गद करने की शक्ति है; कम से कम श्रोताओं के हृदय पर वे प्रभाव उत्पन्न करते है ।······ उनके शुद्ध, सरल तथा मंजुल भाव उनकी निश्छल अनुरक्ति, तल्लीनता एवं मादकता उनके शब्दों में भी छलकती सी जान पड़ती है । साधिका के प्रगाढ भक्तिभाव से उसके शब्दों में

---

१. मीरा-स्मृति-ग्रंथ, मीरा-पदावली, पृ० ४, पद सं० ११
२. वही, पृ० १५, पद सं० ५२
३. वही, पृ० १२, पद सं० ४३
४. वही, पृ० २५, पद सं० ९०
५. वही, पृ० १, पद सं० १
६. वही, पृ० ३, पद सं० ७
७. वही, पृ० ४, पद सं० ११
८. वही, पृ० ६, पद सं० २२

भी उसकी आत्मा का विशेष स्पन्दन एवं सौरभ प्रकट हो गया । यदि शब्दों, वाक्यों, पदो आदि का कौशल अथवा पद्यों की विपुलता मात्र ही काव्य, कवित्त अथवा कवि की महानता या हीनता का प्रमाण समझा जाय तो संभवतः मीरा का स्थान नगण्य सा माना जायगा। यदि भावावेश, हृदयावेग, तीव्र भावुकता तथा तन्मयता से विगलित शब्द-विन्यास को कविता का विशेष लक्षण माना जाय तो मीराँ के कवियित्री होने मे सदेह नही। यही नही, उनकी पदावली मे भावोन्मेषकता एव सगीत के विशेष गुण हैं जिनसे उनके काव्य का उत्कर्ष बहुत बढ जाता है।"[1]

री, अरी, एरी आदि शब्दों का प्रयोग

सगीत-माधुर्य तथा नाद-सौदर्य की वृद्धि के लिए ही कृष्णभक्तिकालीन कवियो के काव्य मे री, अरी, एरी, रे, जी, हो, हे, हौ, ए आदि शब्दो का प्रयोग-बाहुल्य दीख पड़ता है। इन शब्दो के प्रयोग से एक तो भाषा मे सुकुमारता आ जाती है, मात्राओ की पूर्ति हो जाती है, ताल और लय सरलता से बँध जाती है, भावो मे स्पष्टता आती है और साथ ही अर्थ की रक्षा करते हुए भावानुकूल सगीत-कुशलता दिखाने की स्वतन्त्रता भी प्राप्त हो जाती है। अत: संगीत-प्रकाशन सबंधी स्वतन्त्रता, ताल, लय एव प्रवाह की सरलता के लिए कृष्ण-भक्ति कालीन कवियो ने अधिकाश स्थलों पर इन शब्दो का प्रयोग किया है। उदाहरण-स्वरूप इन कवियों की कतिपय पंक्तियाँ दृष्टव्य होगी –

सूरदास –

देखौ री राधा उत अँटकी।[2]
अरी अरी सुंदरि नारि सुहागिनि, लागै तेरैं पाउँ।[3]
रे मन समुझि सोच विचार।[4]
ए अलि कहा जोग मैं नीको।[5]

परमानंददास –

रहि री! ग्वालिन जोबन मदमाती।[6]

---

१. मीरा-स्मृति-ग्रंथ, भूमिका, रामप्रसाद त्रिपाठी, पृ० [।–]
२. सूरसागर, दूसरा खंड, पृ० ८६५, पद सं० २३८२
३. वही, प्रथम खंड, पृ० २००, पद सं० ४८८
४. वही, पृ० १०२, पद सं० ३०६
५ वही, दूसरा खंड, पृ० १५००, पद सं० ४३१५
६. हस्तलिखित पद-संग्रह, परमानंददास, डा० दीनदयालु गुप्त, पद सं० २४

मेरो मन कमल हरचो री नागर ।[1]

गावत सुनत लोकत्रयी पावन बलि परमानंददास हो ।[2]

कुंभनदास –

एरी ! यह फेंटा ऐंठवा सीस धारें ।[3]

रगीले री ! छबीले नैना रस भरे, नाचत मुदित अनेरे रे ।[4]

अब ए नैनांई तेरे करत वसीठी ।[5]

कृष्णदास –

लागी रे लगनियाँ मोहना सो लागी रे लगनियां ।[6]

पिय को मुख देख्यो री नैननि लागी चटपटी ।[7]

कुछ टोना सों डारि गयो री कैसे भरन जाऊँ पनियाँ ।[8]

नंददास –

छबीली राधे पूजि लै री गनगौर ।[9]

देखो देखो री नागर नट निरतत कालिंदी तट ।[10]

जागिऐ मेरे लाल हो चिरैयाँ चुहचुहानी ।[11]

चतुर्भुजदास –

तोकों री स्याम कंचुकी सोहै ।[12]

---

१ हस्तलिखित पद-संग्रह, परमानंददास, डा० दीनदयालु गुप्त, पद सं० २४०

२. वही, पद सं० ३३६

३. कुंभनदास, विद्याविभाग, कॉकरौली पृ० ७२, पद सं० १८८

४. वही, पृ० ६० पद सं० १५०

५. वही, पृ० ८८, पद सं० २४९

६. हस्तलिखित पद-संग्रह, कृष्णदास, डा० दीनदयालु गुप्त, पद सं० १२३

७. वही, पद सँ० ४५

८. वही, पद सं० १२३

९. अष्टछाप-परिचय, प्रभुदयाल मीतल, पृ० ३२६, पद सं० ३८

१०. वही, पृ० ३२५, पद सं० ३३

११. वही, पृ० ३१७, पद सं० २

१२. वही ,पृ० २८४, पद सं० ४०

अब हौं कहा करों री माई ।[1]

ये को है री, जाय दान जु दैहैं गोवरधन के गैंड़

गोविंदस्वामी –

मेरो मन मोह्यो री इन नागर ।[3]

अति रसमाते री तेरे नैन ।[4]

लालन सिर घाली हो ठगोरी ।[5]

छीतस्वामी –

प्रीतम प्यारे ने हों मोही ।[6]

अरी हौं स्याम रूप लुभानी ।

आगै कृष्न पाछै कृष्न इत कृष्न उत कृष्न,
जित देखौ तित कृष्न ही मई री ।[8]

गदाधर भट्ट –

देखि री आवत गोकुल चंद ।[9]

पटह निसान भेरी सहनाई महा-गरज की घोर रे ।[10]

लाडिली गिरिधरन पिया पिय नेननि आनंद देत री ।[11]

सूरदास मदनमोहन –

तेरे गुन रूप की सम नाहि कोउ आवे री उपमा को तुहि अंत न पावत ।[12]

बरन बरन कुसुम प्रफुलित अंब मोर ठौर ठौर लागे री कोकिला कूजन ।[13]

---

१ अष्टछाप-परिचय, प्रभुदयाल मीतल, पृ० २८७, पद सं० ५१
२ वही, पृ० २८१, पद सं० २६
३ हस्तलिखित पद-संग्रह, गोविंदस्वामी, डा० दीनदयालु गुप्त, पद सं० २०४
४ वही, पद सं० १५३
५ वही, पद सं० ६६
६ हस्तलिखित पदसंग्रह, छीतस्वामी, डा० दीनदयालु गुप्त, पद सं० १२
७. वही, पद सं० १७
८. वही, पद सं०, ३२
९. गदाधर भट्ट जी महाराज की बानी, बालकृष्णदास, पत्र २१, पद सं० २३
१०. वही, पत्र २२,
११. वही, पत्र १८, पद सं० १४
१२. अकबरी दरबार के हिन्दी कवि, सरयूप्रसाद अग्रवाल, पृ० ४४६, पद सं० ८
१३. वही, पृ० ४४६, पद सं० ११

बिहारिनदास –

रे तू बहुरि कहां फिरि आयौ ।[१]

बोलै कौंन भलाई रे माई ।[२]

श्री भट्ट –

कहे श्रीभट बहुर जौ हठिहौ हों हों न आनिहों पतियां ।[३]

परशुराम –

अंतरवसी री मेरे ।[४]

हो सुनि ब्रजराज रागसारंग सुर गावत गुण ब्रजनारी ।[५]

जन्म गवायो रैन रे मूरिष अधा ।[६]

मीरा –

मीरां रे प्रभु गिरधर नागर आस गह्यां थे सरणारी ।[७]

मीरां रे प्रभु हरि अविणासी कब रे मिड़स्यौ आय ।[८]

मीरां रे प्रभु गिरधर नागर मिड़ बिछडण मत कीज्यो जी ।[९]

मीरां रे प्रभु हरि अविणासी तण मण स्याम पढ्यां री ।[१०]

आसकरण –

कीजे पान लला रे ओटघो दूध लाई जसोदा मैया ।[११]

तुम पौढ़ो हौं सेज बनाऊँ ।[१२]

---

१. पद-संग्रह, प्रति सं० १६२०।३१७०, हिंदी-संग्रहालय, पद सं० ४६

२. वही, पद सं० २५

३, जुगलसतक, श्री भट्ट, ७१२।३२, काशी नागरी प्रचारिणी सभा, पत्र १०, पद सं० १

४. रामसागर, परशुराम, प्रति सं० ६८०।४६२, काशी नागरी प्रचारिणी सभा, पत्र रा० सा० ७६, पद सं० १३

५. वही, पद सं० १५

६. वही, पत्र ५३, पद सं० ४

७. मीरा-स्मृति-ग्रंथ, मीरा-पदावली, पृ० २८, पद सं० ६६

८ वही, पृ० २५, पद सं० ८६

६. वही, पृ० १८, पद सं० ६६

१० वही, पृ० १६, पद सं० ५८

११. अकबरी दरबार के हिन्दी कवि, सरयूप्रसाद अग्रवाल, पृ० ४५०, पद सं० १

१२. वही, पृ० ४५१, पद सं० ५

अनुस्वारयुक्त दीर्घ स्वरों का प्रयोग

अनुस्वार युक्त दीर्घ स्वरो के प्रयोग से भाषा में अत्यधिक संगीतात्मकता आ जाती है। संगीत की इस श्रुति-मधुरता को अपनाने के कारण कृष्णभक्तिकालीन कवियो के काव्य में दीर्घ स्वर अनुस्वार-योग के साथ प्रचुर मात्रा मे आये है। अनुनासिक वर्णों से युक्त स्वरो के संयोग से कवियो ने भाषा के नाद-सौदर्य को बहुत कुछ अशो मे बढा दिया है। उदाहरणस्वरूप देखिए –

सूरदास –

काहे कौं पिय भोर हीं मेरं गृह आये।[1]
हौं संग साँवरे के जैहौं।[2]
कहा करौं मोसौं कहौ सब हीं।[3]

परमानंददास –

नैंकु पठै गिरधर को मैया।[4]
जब तें प्रीति स्याम सों कीनी।
ता दिन तें मेरे इन नैननि नैंकहुँ नींद न लीनी।[5]

कुंभनदास –

कान्ह तिहारी सौं हौं आउंगी।[6]
ग्वालिनि! तैं मेरी गेंद चुराई।[7]

कृष्णदास –

प्यारी लाड़िली पालनैं झूलें।[8]
तैं गोपाल हैत कसूंभी कंचुकी रंगाय लई।[9]

---

१. सूर सागर, (भाग २), पृ० ११४३, पद सं० २६८८
२. वही, (भाग १), पृ० ८३६, पद सं० १६६८
३ वही, पृ० ७५२, पद सं० १४२३
४. हस्तलिखित पद-संग्रह, डा० दीनदयालु गुप्त, पद स० २९३
५ वही, पद सं० १०२
६ कुंभनदास, विद्याविभाग काँकरौली, पृ० ५६, पद सं० १३७
७. वही, पृ० ५७, पद सं० १४०
८. अष्टछाप-परिचय, प्रभुदयाल मीतल, पृ० २३०, पद सं० २०
९. वही, पृ० २३६, पद सं० ५४

नंददास –

छबीली राधे पूजि लै री गनगौर ।[१]

धन्य जसोदा धन्य, तै कौन पुन्य कीनै ।[२]

मुख पर वारौं सुंदर टोंना ।[३]

चतुर्भुजदास –

अपने बाल गुपालै रानी जू, पालने झुलावै ।[४]

तेरे माई लागत हौं री पैयाँ ।[५]

गोविंदस्वामी –

गिरिवर कैसें धर्‌यो ब्रज लालन पियारे ।[६]

हौं बलि बलि जाऊँ कलेऊ लाल कीजे ।[७]

छीतस्वामी –

प्रीतम प्यारे नें हौं मोही ।[८]

अरी हौं स्याम रूप लुभानी ।[९]

गदाधर भट्ट –

गौंरी तरुनि तरुन ता तन मैं मनसिज रस वरसंत ।[१०]

सखी हौं स्याम रग रँगी ।[११]

---

१. अष्टछाप-परिचय, प्रभुदयाल मीतल, पृ० ३२६, पद सं० ३८

२. वही, पृ० ३२७, पद सं० ४६

३. वही, पृ० ३२४, पद सं० २६

४. वही, पृ० २७६, पद स० ३

५. वही, पृ० २८६, पद सं० ४७

६. गोविंदस्वामी, विद्या-विभाग काँकरौली, पृ० ३६, पद सं० ७६

७. वही, पृ० ११५, पद सं० २३४

८. अष्टछाप-परिचय, प्रभुदयाल मीतल, पृ० २६६, पद सं० १४

९. वही, पृ० २६५, पद सं० १२

१०. श्री गदाधर भट्ट जी महाराज की बानी, (हस्तलिखित), बालकृष्णदासजी, पत्र २४, पद सं० १

११. मोहनी वाणी, श्री गदाधर भट्टजी जी की, प्रकाशक कृष्णदास, पृ० २५

सूरदास मदनमोहन –

कनियां कनियां अइयां अइयां यों कहि लाल लड़ावे ।[१]

सखियन संग राधिका कुंवरि बीनति कुसुम कलियाँ ।[२]

हितहरिवंश –

तू तो सखी सयानी तें मेरी एकौं न मानी ।

हों तो सौं कहति हारी जुवति जुगती सौं ।[३]

दानु दे री नवल किशोरी ।[४]

व्यास –

क्यौं मन मानै गोरी कैसें इन बातनि ।[५]

जमुना जाति ही हौं पनियाँ ।[६]

हरिदास –

जौं लों जीवे तो लौं हरिभजि रे मन और बात सब वादि ।[७]

कुंजबिहारी नाचत नीकें लाड़िली नचावत नीकें ।[८]

विट्ठलविपुल –

सुनि री सखी हों साँच कहति हौं तुव जल ए मीन ।

तेरे रस व स्याम सुंदर वर जाचित ज्यौं दीन ॥[९]

---

१. अकबरी दरबार के हिन्दी कवि, सरयूप्रसाद अग्रवाल, पृ० ४४७, पद सं० १

२. वही, पृ० ४४८, पद सं० ३

३. चौरासी पद, हितहरिवंश, प्रति सं० ३८।२१५, प्रयाग-संग्रहालय, पद सं० ५८

४. वही, पद सं० ५१

५. भक्त कवि व्यास जी, वासुदेव गोस्वामी, पृ० ३२६, पद सं० ५२०

६. वही, पृ० ३८७, पद सं० ७१४

७. पद-संग्रह, प्रति सं० ३७१।२६६, का०ना०प्रा०सभा, पत्र श्री स्वा० ४, पद सं० १६

८. वही, पत्र १७, पद सं० ८

९. वही, १६२०।३१७०, प्रयाग-संग्रहालय, पृ० ४१, पद सं० १६

बिहारिनदास –

द्वै द्वै कियें न बात बनै ।

छैतै दस द्वै है घट छूटै हटकत क्यौं न मने ।[१]

जैसे कंचन पाई कृपन धन ।

गनत रहौं न बिसारौं ।[२]

श्री भट्ट –

हिडोरें लाड़िली लालै झकौरें वटी जुटी दोऊ औरें ।[१]

सहचरी सब सौंज सजिविधि सों हरि नैन नेहविधि सौ भेवें ।[२]

परशुराम –

हरि रास रच्यो केलि करण कों ।[३]

परसा प्रभु सौ करि मित्राई ।[४]

मीरा –

गणतां गणतां घिश गयां रेखां आंगरियां री शारी । आयां णा री मुरारी ।[५]

म्हां गिरधर आगां नाच्यां री ।

णाच-णाच म्हां रसिक रिझावां प्रीत पुरातण जांच्यां री ।

स्याम प्रीत रो बांध घूंघरयां मोहण म्हारो सांच्यां री ।

ड़ोक ड़ाज कुड़वां मरज्यादां जग मां णेक णा राख्यां री ।

प्रीतम पड़ छ्ण णा बिसरावां मीरां हरि रंग रांच्यां री ।।[६]

आसकरण –

तुम पोढ़ो हौं सेज बनाऊँ

चापूं चरन रहूं पांयन तर मधुरें स्वर केदारो गाउं ।[७]

---

१. पद-संग्रह, प्रति सं० १६२०।३१७०, प्रयाग-संग्रहालय, पृ० ४१, पद सं० २४

२. वही, पद सं० २७

१ जुगलसतक, श्री भट्ट, प्रति सं० ७१२।३२, काशी नागरी प्रचारिणी सभा, पत्र १४, पद सं० १

२. वही, पत्र ५, पद सं० ३०

३. रामसागर, परशुराम, प्रति सं० ६८०।४६२, का० ना० प्र० स०, पद सं० २०

४. वही, रा० सागर ५१, पद सं० ३

५ मीरा-स्मृति-ग्रंथ, मीरा-पदावली, पृ० २६, पद सं० १०२

६. वही, पृ० १६, पद सं ५६

७. अकबरी दरबार के हिन्दी कवि, सरयूप्रसाद अग्रवाल, पृ० ४५१ पद सं० ५

शब्दों की ध्वनि-शक्ति

भाषा के शब्दो मे अर्थ-गौरव के साथ- साथ ध्वनि-विन्यास संबंधी विशेषता भी निहित रहती है। काव्य मे शब्द-संगीत से ही (शब्दो के अर्थ जाने बिना शब्दों की ध्वनि द्वारा ही) थोडी सी अर्थ-व्यजना हो जाती है। "शब्दो मे एक प्रकार का पारस्परिक आकर्षण रहता है। पत्ते-पत्ते मिलकर मर्मर ध्वनि उत्पन्न करते है। तरगो के पारस्परिक आघात से कलकल नाद उत्पन्न होता है। इसी प्रकार शब्दो के मिलने से काव्य मे एक अपूर्व सगीत ध्वनि उत्पन्न होती है।"[१] शब्दो मे अपना सगीत तत्व रहता है और शब्द-सगीत की झंकार अपरिमित होती है। प्रत्येक शब्द को बोलता हुआ बनाकर, शब्दो के पारस्परिक संगठन और मेल द्वारा उनके अन्तर्हित सगीत को झकृत कर देना वाछित होता है अत. सगीत को प्रगट कर देना ही, जिससे हृत्तन्त्री के तार-तार बज उठे सफल कलाकार का कर्तव्य है। शब्दो का चयन कुछ इस प्रकार क्रमवद्ध करना चाहिए कि सगीत विशेष उत्पन्न हो जाय। शब्दो की ध्वनि-शक्ति के आधार पर ही काव्यगत अन्त सगीत प्रकट होता है। शब्दो की ध्वनि-शक्ति दो रूपो मे प्रथम –

काव्य के रस, भाव तथा गति के अनुकूल कोमल तथा कर्कश शब्दो के प्रयोग द्वारा, और द्वितीय –

शब्दालंकारो[२] के सामजस्य द्वारा, काव्य की भाषा के अन्त संगीत को प्रकट करने में समर्थ होती है।

भाषा मे भावात्मकता

काव्यगत भाव और उनमे प्रयुक्त शब्दों से उत्पन्न ध्वनि एक दूसरे की पूरक तथा एक दूसरे से पूर्णतया सम्बद्ध व आबद्ध होती है क्योकि शब्दो की ध्वनि के विशिष्ट तथा अनुकूल सामजस्य से वातावरण निर्मित होता है। अत. कविता की भाषा मे भावानुकूल कोमलता तथा परुषता होनी चाहिये। भाषा का प्रयोग करते समय कवि को रस भाव और गति का सर्वदा ध्यान रखना चाहिए। "कविता एक अपूर्व रसायन है। उसके रस की सिद्धि के लिए बडी मनोयोगिता और बड़ी चतुराई की आवश्यकता होती है। रसायन सिद्ध करने

---

१. प्रदीप, पदुमलाल पन्नालाल बख्शी, पृ० २३४

२. "अलंकार प्रधानतः दो भागों में विभक्त है—शब्दालंकार और अर्थालंकार। शब्द को चमत्कृत करने वाले अनुप्रास आदि अलंकार शब्द के आश्रित है अतः वे शब्दालंकार कहे जाते है। ·· जो अलंकार किसी विशेष शब्द की स्थिति रहने पर ही रह सकता है और उस शब्द के स्थान पर उसी अर्थ वाला दूसरा शब्द रहने पर नहीं रह सकता वह शब्दालंकार है" –

काव्यकलपद्रुम, कन्हैयालाल पोद्दार, (द्वितीय भाग), अष्टम स्तवक, पृ० ३

में आँच के न्यूनाधिक होने से जैसे रस बिगड जाता है वैसे ही यथोचित शब्दो का उपयोग न करने से काव्यरूपी रस भी बिगड जाता है। किसी-किसी स्थल विशेष पर रूक्षाक्षर वाले शब्द अच्छे लगते है। परन्तु और सर्वत्र ललित और मधुर शब्दों का ही प्रयोग करना उचित है। शब्द चुनने मे अक्षर-मैत्री का विशेष विचार रखना चाहिए।"[1] यदि किसी स्निग्ध, मृदुल भाव से परिपूर्ण विषय के वर्णन मे 'ट' वर्ग के सदृश कर्णकटु वर्णो का आधिक्य हो तो वह शब्द सगीत के उस वातावरण के उपयुक्त नही प्रतीत होगा। अत कोमल रसो और भावनाओ का चित्रण कोमल, सरस तथा सरल शब्दो द्वारा तथा अकोमल रसो और कठोर भावनाओ की अभिव्यक्ति कर्णकटु तथा कठोर शब्दो के द्वारा ही सफलतापूर्वक हो सकती है। साहित्य मे इसीलिए उपनागरिका, परुषा तथा कोमला वृत्तियो[2] का विधान किया गया है। रामचरितमानस मे जब तुलसीदास कहते है –

१. रसज्ञरंजन, महाबीरप्रसाद द्विवेदी, पृ० ६

२ "भिन्न-भिन्न रस के वर्णन में भिन्न-भिन्न वर्णो के प्रयोग करने का नियम है। ऐसे नियमबद्ध वर्णो की रचना को वृत्ति कहते है। वृत्ति तीन प्रकार की होती है –(१) उपनागरिका (२) परुषा और (३) कोमला। वामन आदि आचार्यों ने इनके (१) वैदर्भी, (२) परुषा और (३) पांचाली नाम माने है। उपनागरिका वृत्ति – माधुर्य गुणव्यंजक वर्णो की रचना को उपनागरिका वृत्ति कहते हैं। जिस गुण के कारण अन्तःकरण आनन्द से द्रवीभूत हो जाता है उसे माधुर्य कहते है। ... सम्भोग शृंगार से करुण रस में, करुण से विप्रलम्भ शृंगार रस में और विप्रलंभ शृंगार से शान्त रस में, माधुर्य गुण क्रमशः अधिकाधिक होता है। यहाँ संभोग शृंगार का कथन उपलक्षण मात्र है, वास्तव में सम्भोग के आभास आदि में भी माधुर्य होता है। ट, ठ, ड, ढ के बिना स्पर्श (क, ख, ग, घ, ङ, च, छ, ज, झ, ञ, त, थ, द, ध, न, प, फ, ब, भ, म,) वर्ण और ङ, ञ, ण, न, म, से युक्त वर्ण अर्थात् अनुस्वार वाले वर्ण (जसे अङ्ग, रञ्जन, कान्त, कम्प) ह्रस्व 'र' और 'ण', समास का अभाव अथवा दो या तीन अथवा अधिक से अधिक चार पद मिला हुआ समास और मधुर रचना ये सब माधुर्य गुण व्यंजक है।

परुषावृत्ति–'ओज' प्रकाशक वर्णों की रचना को 'परुषा' वृत्ति कहते है। जिसके सुनने से मन में तेज उत्पन्न होता है वह 'ओज' गुण है। कवर्ग आदि के पहिले और तीसरे वर्णों का, दूसरे और चौथे वर्णों के साथ क्रमश योग होना अर्थात् क, च आदि का ख, छ आदि के साथ योग (जैसे कच्छ, पुच्छ) और ग, ज आदि के साथ योग (जैसे दिग्घ, जुज्झ) और 'र' का योग, (जैसे वक्र, अर्थ, निद्रा) तथा ट, ठ, ड, ढ, की अधिकता, बहुत से पद मिले हुए लंबे समास और कठोर वर्णों की रचना ये सब ओज गुण को व्यक्त करते हैं।

कोमलावृत्ति –जहाँ माधुर्य और ओज प्रकाशक वर्णों के अतिरिक्त वर्ण हों उसे कोमला वृत्ति कहते है। इसे ग्राम्या वृत्ति भी कहते है। यहाँ माधुर्य और ओज गुण प्रकाशक वर्णों को छोड़कर शेष वर्णों की ही अधिकता और ख, ल, प, भ आदि वर्णों की कई आवृत्ति है।"

काव्यकल्पद्रुम, कन्हैयालाल पोद्दार, पृ० २१७–२१ तथा पृ० २३७–३९

घन घमण्ड नभ गरजत घोरा ।
प्रियाहीन डरपत मन मोरा ।।[1]

तो प्रथम पंक्ति मे बादलो के गर्जन का आभास होने लगता है और दूसरी पंक्ति के कोमल शब्दों से हृदय की कातरता प्रत्यक्ष हो उठती है । इसी प्रकार देवी की वंदना करते हुए मैथिल कोकिल विद्यापति कहते हैं –

जय-जय भैरबि असुर-भयाउनि पसुपति-भामिनि माया ।
सहज सुमति बर दिअओ गोसाउनि अनुगति गति तुअ पाया ।
बासर-रैनि सबासन सोभित चरन, चन्द्र-मनि चूड़ा
कतउक दैत्य मारि मुँह मेलल कतओ उगिल कैल कूड़ा
सामर वरन, नयन अनुरजित, जलद जोग फुल कोका ।
कट कट विकट ओठ-पुट पाँड़रि लिचुर-फेन उठ फोका ।।
घन-घन घनए घुघुर कत बाजए, हन हन कर तुअ काता
विद्यापति पद तुअ पद सेवक, पुत्र बिसरु जनि माता ।।[2]

इस पद मे ध्वनि-अनुकरणात्मक शब्दों के द्वारा 'पशुपति भामिनि माया' का दैत्य–संहारकारी नृत्य सजीव होकर आँखों के सामने आ जाता है । यही नही एक अन्य स्थल पर विद्यापति की भाषा की भावानुकूल संगीत-योजना अपूर्व हो गई है । ऋतु बसंत मे रास-क्रीडा का चित्र प्रस्तुत करता हुआ कवि कहता है –

बाजत द्रिगि द्रिगि धौद्रिम द्रिमिया ।
नटति कलावति मति श्याम संग
कर करताल प्रबन्धक ध्वनिया ।।
डम-डम डंफ डिमिक डिम मादल
रूनु झुनु मंजिर बोल ।
किंकिन रनरनि बलआ कनकनि
निधुबन रास तुमुल उतरोल ।। ··· ·[3]

यहाँ पर विद्यापति ने रास-चित्रण मे इतनी संगीतमय शब्द-योजना की है कि शब्दों के उच्चारण मे घुँघरू की झंकार स्पष्ट रूप से झकृत होने लगती है । 'बाजत द्रिगि द्रिगि धौद्रिम द्रिमिया' तथा 'डम-डम डंफ डिमिक डिम मादल' से ऐसा प्रतीत होता है मानों वास्तव में डफ, डमरू आदि वाद्य बज रहे हों । ये बोल डमरू के बोल के सदृश ही हैं ।

---

१. श्री रामचरितमानस, तुलसीदास, किष्किन्धाकाण्ड, पृ० ७७२
२. विद्यापति-पदावली, श्री रामवृक्ष बेनीपुरी, पृ० ५–६, पद सं० ३
३. वही, पृ० २४५, पद सं० १८४

किन्तु कवि का वास्तविक भाषा-प्रयोग का कौशल देखिए। इसके पश्चात्, तत्काल ही वह कहता है 'रुन झुन मंजिर बोल'। मँजीरे की ध्वनि में माधुर्य होता है और डमरू की ध्वनि में कर्कशता। डमरू के सदृश्य कठोर नाद को उत्पन्न करके कवि उसी में लीन नही हो जाता वरन् मँजीरे शब्द के प्रयोग के साथ ही उसकी भाषा मधुर, मजुल और कोमल हो जाती है।

कृष्णभक्तिकालीन कवि संगीतशास्त्र के तीनों अंगो अर्थान् गायन, वादन तथा नृत्य के ज्ञाता थे। अत उनके प्राय सभी पदों मे निश्चयात्मक ढंग से ध्वनि का प्रयोग हुआ है। उदाहरणस्वरूप देखिए, रासलीला का वर्णन करते हुये सूरदास कहते है –

मानौ माई घन घन अंतर दामिनि।
घन दामिनि दामिन घन अंतर सोभित हरि ब्रज भामिनि।
जमुन पुलिन मल्लिका मनोहर सरद-सुहाई जामिनि,
सुंदर ससि गुन रूप-राग निधि अंग अंग अभिरामिनि।
रच्यो रास मिलि रसिक राइ सौं मुदित भई ब्रजभामिनि,
रूप निधान स्याम सुंदर घन आनंद मन बिस्रामिनि।
खंजन, मीन, मयूर, हस, पिक भाइ भेद गजगामिनि,
को गति गनै सूर मोहन सँग काम बिमोह्यौ कामिनि॥[1]

पद की प्रथम पंक्ति से नृत्य के उपयुक्त वातावरण, ताल और गति की अभिव्यक्ति होने लगती है। 'घन घन अंतर दामिनि' शब्दो से यहाँ एक ओर रात्रि के वातावरण का भास होता है वही दूसरी ओर श्यामवर्ण कान्हा तथा गौरवर्णा गोपियों का रूप भी साकार हो जाता है। 'मानो माई' दो अक्षर वाले समविराम शब्दो से नृत्य के प्रारंभ होने से पूर्व किन्तु नृत्य करने के लिए पूर्णतय. प्रस्तुत नृत्यकार के नृत्य की ठहरी हुई मुद्रा झलकती है। 'घन घन' शब्दो के द्वारा ऐसा प्रतीत होता है मानो धीरे-धीरे मद ताल तथा गति में नृत्य का आरंभ हो रहा हो। 'अंतर दामिनि' शब्दो से नृत्य की तीव्रता का सकेत होने लगता है। द्वितीय पंक्ति से कृष्ण तथा ब्रजवनिताओ के सयोग के द्वारा रास-नृत्य का सकेत मिलता है। दोनो पक्तियो मे 'न' ध्वनि की अधिकता विश्व मे व्याप्त नाद-ध्वनि तथा घुँघुरू की मधुर, धीमी, महीन तथा नृत्य की मद गति को व्यक्त करती है। तृतीय पक्ति मे तीन अक्षर वाले समविराम के शब्दों द्वारा नृत्य की गति तथा ताल मे तीव्रता आती है। 'म' ध्वनि के प्राधान्य से अंगो की भावभगिमा, उनके मोड तथा झुकने का आभास होता है। शब्दो की गति मे चरणों की चंचल तीव्र गति स्पष्ट परिलक्षित होती है। यहाँ पर आकर प्रथम पक्ति के 'घन-घन' शब्द अत्यधिक सार्थक हो जाते है। अवरोह मे लौटकर प्रथम पक्ति के 'घन घन' शब्द के आने पर ऐसा प्रतीत होता है मानो दुगन मे नृत्य करते हुए तिया लेकर सम पर आ गए हो। प्रथम घन तक मानो किनारे पर लहर टकराती है, मुड़ती है और दूसरे घन पर उतर कर विलीन हो जाती है। आगे की तीन पक्तियो मे सूरदास रासलीला का सम्पूर्ण

१. सूरसागर, (पहला भाग), दशमस्कंध, पृ० ६२१, पद सं० १६६६

वातावरण और कृष्ण-गोपियों के आनद तथा उल्लास का प्रदर्शन करते है। यही नही इसके आगे की पक्ति मे कवि खंजन, मीन, मयूर, हंस और पिक शब्दो के द्वारा रास-नृत्य की विशेषताओं – चंचलता, माधुर्य तथा सरसता, नृत्य-कौशल, गति की सुकुमारता और स्वर का भी संकेत कर देता है। इस प्रकार शब्दो की ध्वनियो के संयोग से रास-नृत्य का पूर्ण चित्र अंकित हो जाता है।

विरह-वर्णन मे सूरदास जी गोपियो के मुख से कहलाते है –

'बरु ये बदराऊ बरसन आए'।[1]

ये पक्तियाँ माधुर्य और भावना की तीव्रता मे अद्वितीय है। अक्षर-अक्षर म सगीत मुखरित हो उठा है। 'बरु' और 'बदराऊ' के 'ऊ' मे कितना करुण संगीत है। ऐसा प्रतीत होता है मानो हृदय मे व्याप्त कसक, वेदना, दर्द, करुणा, मलिनता, खीझ और उपालम्भ, सब एक साथ साकार हो गए हो।

प्रेम के भावावेश मे मीरा कोमल शब्दो मे गा उठती है –

मतजा, मतजा, मतजा जोगी पांव परूँ मैं तोरे।
प्रेम भक्ति को पंथ ही न्यारो, हमको गैल बताजा।
अगर चन्दन की चिता रचाऊँ, अपने हाथ जलाजा।
जल बल भई भस्म की ढेरी अपने अंग लगाजा।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर, ज्योति में ज्योति मिलाजा।।[2]

पद के प्रत्येक शब्द के साथ मीरा की करुणा क्रमश बढती जाती है और अंतिम पंक्ति मे अपने चरमतम रूप पर पहुँच कर मौन हो जाती है। मानो व्यथा की तीव्रता में संगीत में विभोर मीरा गान के अन्त में आराध्यदेव को अपनी आत्मा अर्पित कर देती है। और गूंजता रह जाता है सगीत का उच्च आदर्श। वास्तव मे पद के प्रत्येक शब्द मे इतना तन्मयकारी, हृदयस्पर्शी सगीत निहित है कि वह सहृदय पाठक को बरबस रुला देता है।

कृष्ण मे एकाग्रचित्त होकर मीरा ने अपने आराध्य की भिन्न-भिन्न मुद्राओ एवं रूपो का सरल भावपूर्ण शब्दों मे इतना सजीव वर्णन किया है कि पढते-पढ़ते ऐसा प्रतीत होता है मानो पास ही मीरा आनन्दातिरेक से छक कर गा रही है। उदाहरणस्वरूप देखिये –

म्हारो परनाम बांके बिहारी जी।
मोर मुगुट माथा तिड़क बिराज्यां कुंडड़ अड़कां कारी जी।

---

१. सूरसागर, (दूसरा खंड), दशमस्कंध, पृ० १३८२, पद स० ३९२६
२. मीरां-माधुरी, ब्रजरत्न दास, पृ० ९०, पद सं० २४१

अधर मधुरधर बसी बजावां रीझ रिझावां व्रजनारी जी ।
या छब देख्यां मोह्यां मीरां मोहण गिरवरधारी जी ॥[1]

साधिका की गहरी अनुभूति और साध्य की मनोहारिणी मूर्ति स्निग्ध भावुकता मिश्रित शब्दो के माध्यम से नेत्रो के सम्मुख अकित हो जाती है ।

इसी प्रकार कृष्णभक्तिकालीन सभी कवियो ने प्राय भावानुकूल शब्द-चयन किया है । बाल-वर्णन करने मे उन्होने गमजात, नन्ही-नन्ही एडियन, लकुटिया, कटोरे, गुइयाँ, छइयाँ, नन्हैयाँ, अरबराइ, पैंजनियाँ, छगन-मगन आदि ऐसे शब्दो का प्रयोग किया है जिससे बाल जीवन की अनुभूतियों और मातृहृदय के दुलार को वे साकार कर सके है । ओजपूर्ण स्थलों पर उन्होंने वीर, भयानक आदि भावो को व्यक्त करने वाले तमकि, दमकि, घमकि, झमकि, घहरात, भहरात, दररात, थहरात, झपटि आदि शब्दो का चयन किया है । रामलीला प्रसग मे उन्होंने लटकनि, भटकनि, चपलनैननि, उरप, तिरप, लागदाट, गिड गिड, थुग थुग, धीलाग, रुनझुन, सुधग, पटकार आदि ऐसे अक्षर एकत्र किए है जो नृत्य का यथा-तथ्य आभास देते है । रति तथा वात्सल्य भावो की व्यजना मे यदि उनकी भाषा सुकुमार, मधुर तथा मृदुल होती है तो ओजपूर्ण भावो के प्रकाशन मे उनकी शब्दावली कर्णकटु तथा कठोर हो जाती है । रासलीला के प्रसंग मे कवियो की शब्दलहरी नृत्य की गति तथा लय के अनुकूल होती है तो सयोग शृगार तथा उन्मादपूर्ण स्थलो पर भाषा का रूप उन्मत्त-उमंग-उल्लास भरा होता है और विरह के पदो मे उनके शब्द हृदय की दीनता, व्यथा, गम्भीरता, शोक, बेचैनी तथा व्याकुलता के द्योतक हो जाते है । कहने का तात्पर्य यह है कि प्राय. अधिकाश स्थलो पर प्रयुक्त ध्वनियो से जिस अत सगीत की सृष्टि होती है वह भावो के वातावरण के पूर्णतया अनुकूल रहती है और विषय से नितांत सामंजस्य रखती है । उदाहरण-स्वरूप निम्नलिखित पदो मे कृष्णभक्तिकालीन कवियो की भाषा की यह शक्ति देखी जा सकती है ।

वात्सल्य भाव की द्योतक शब्दावली

सिखवति चलन जसोदा मैया ।
अरबराइ कर पानि गहावत, डगमगाइ धरनी धरै पैया ।
कबहुँक सुंदर बदन बिलोकति, उर आनँद भरि लेति बलैया ।
कबहुँक बल कौं टेरि बुलावत, इहिं आँगन खेलौ दोउ भैया ।
सूरदास स्वामी की लीला, अति प्रताप बिलसत नँदरैया ।[2] **(सूरदास)**

माई मीठे हरि के बोलना,
पाँय पैंजनियाँ रुनझुन बाजे आँगन आँगन डोलना ।

---

१. मीरा-स्मृति ग्रंथ, मीरा-पदावली, पृ० २, पद सं० ४

२. सूरसागर, (पहला खंड), दशमस्कंध, पृ० ३०६, पद सं० ७२३

कज्जर तिलक कंठ कठुला मनि पीताम्बर को चोलना ।
परमानंददास को ठाकुर गोपी झुलावत मो ललना ॥[१] (परमानंददास)

अपने सुतहिं जगावति रानी ।
उठो मेरे लाल मनोहर सुंदर, कहि-कहि मधुरी बानी ॥
माखन मिश्री और मिठाई; दूध मलाई आनी ।
छगन मगन तुम करहु कलेऊ, मेरे सब सुखदानी ॥
जननी वचन सुनत उठि बैठे कहत बात तुतरानी ।
'नंददास' प्रभु निरखि जसोदा, मन ही मन हरषानी ॥[२] (नंददास)

पीरीसी झगुली झीनी, कंठ सोहै मोती मनियाँ रुनुकु-झुनुकु पाँय बाजत पैजनियाँ ।
ताथेई ताथेई नाँचत आगँनियां, निरखि-निरखि हँसे नंद जू की रनियां ॥
गृह-गृह तें जुरि आई गोपी धनियाँ, मैया जू उठाय लीनों लाइ दुरि कनियाँ ।
करत न्योछावर धन अरु धोनियां, प्यारे पर वारि वारि पीवे सब पनियाँ ॥
ललित लड़ैते सिर सोहै सोंधे सनियाँ, मानहुँ जल जलागे अलि-अलि घनियाँ ।
कुंडल की झलक ससि की किरनियाँ, गावै जन 'गोविंद' चतुर सुजनियाँ ॥[३]
(गोविंदस्वामी)

जसोदा मैया लाल को झुलावे ।
आछे बार कान्ह कों हुलरावे ॥
कनिया-कनिया अईया-अईया यों कही लाड लडावे ।
हुलुलुलु हुलुलुलु हाँ हाँ हाँ हाँ कहि के गोद लीये खेलावे ॥
दोउ कर-पकर जसोदा रानी ठुमकी पाय धरावे ।
घननन-घननन घुंघरु बाजे झाँझरीयां झंमकावे ॥
सूरदास मदनमोहन को ये ही भाँत रीझावे ।
मंमंमंमं पप् पप् पप् पप् चच्चच् चच् चच् तत् ताथेई ।
यहि विधि लाड लड़ावे ॥[४] (सूरदास मदनमोहन)

मंगल बधाई की परिचायक शब्दावली

रतन जटित कनक-थाल मध्य सोहै दीप-माल,
अगरादिक चंदन अति, बहु सुगंध माई ।

---

१. हस्तलिखित पद-संग्रह, परमानंददास, डा० दीनदयालु गुप्त, पद सं० २२
२. अष्टछाप-परिचय, प्रभुदयाल मीतल, पृ० ३१७, पद सं० १
३. वही, पृ० २४६, पद सं० ३
४. अकबरी दरबार के हिन्दी कवि, सरयूप्रसाद अग्रवाल, पृ० ४४७, पद सं० १

घननन घन घंटा घोर, झननन झालर टंकोर,
तननन तत थेई थेई, करत है एकदाई।
तननन तन तान पान, राग रंग स्वर-बंधान,
गोपी जन गावें गीत मंगल बधाई।
'चतुर्भुज' गिरिधरन लाल, आरती बनी विसाल,
वारत तन-मन-प्रान जसोदा नंदराई।[1] (चतुर्भुजदास)

आरति करत जसोमति मुदित लाल को।
दीप अद्‌भुत जोति प्रगट जगमग होति प्रगट वारि वारत फेरि अपने गोपाल को।
बजत घंटा ताल झालरी संख धुनि निरखि ब्रज सुंदरी गिरिधरन लाल को।
भई मन में फूल गई सुधि-बुधि भूली छीतस्वामी देखि जुवती जन जाल को।[2]

ओजपूर्ण भावों की द्योतक शब्दावली

भहरात झहरात दवा (नल) आयौ।
घेरि चहुँ ओर, करि सोर अंदोर बन, धरनि आकास चहुँ पास छायौ॥
बरत बन-बाँस, थरहरत कुस काँस, जरि उड़त है भाँस, अति प्रबल धायौ।
झपटि झपटत लपट, फूलफल चट-चटकि,फटत, लटलटकि द्रुम-द्रुम नवायौ॥
अति अगिनि-झार, भभार धुंधार करि, उचटि अंगार झंझार छायौ।
बरत बन पात भहरात झहरात अररात तरु महा, धरनी गिरायौ॥
भए बेहाल सब ग्वाल ब्रज-बाल तब, सरन गोपाल कहि कै पुकारयौ।
तृना केसी सकट बकी बक अघासुर, बाम कर राखि गिरि ज्यौं उबारयौ॥
नैंकु धीरज करौ, जियहिं कोउ जिनि डरौ, कहा इहिं सरौ लोचन मुँदाए।
मुठी भरि लियौ, सब नाइ मुखहीं दियौ, सूर प्रभु पियौ ब्रज-जन बचाए॥[3]
(सूरदास)

देखि नृप तमकि हरि चमक तहँई गए, दमकि लीन्हौ गिरह बाज जैसें।
धमकि मारयौ धाव, गुमकि हिरदै रह्यौ, झमकि गाहि केस लै चले ऐसें॥
ठेलि हलधर दियौ, झेलि तब हरि लियौ, महल के तरें धरनी गिरायौ।
अमर जय धुनि भई, धाक त्रिभुवन गई, कंस मारयौ निदरि देवरायौ॥
धन्य बानी गगन, धरनि पाताल धनि, धन्य हो धन्य वसुदेव ताता।
धन्य अवतार सुर धरनि उपकार कौं, सूर प्रभु धन्य बलराम भ्राता॥[4]
(सूरदास)

---

१. अष्टछाप-परिचय, प्रभुदयाल मीतल, पृ० २८१, पद सं० २४
२. हस्तलिखित पद-संग्रह, छीतस्वामी, डा० दीनदयालु गुप्त, पद सं० ३३
३. सूरसागर, (प्रथम खंड), दशमस्कंध, पृ० ४७२, पद सं० १२१४
४. वही, (दूसरा खंड), दशमस्कंध, पृ० १३१०, पद सं० ३६६७

मेघ-दल-प्रबल ब्रज-लोग देखै ।
चकित जहाँ-तहँ भए, निरखि बादर नए, ग्वाल गोपाल डरि गगन पेखैं ।।
ऐसे बादर, सजल, करत अति महाबल, चलत घहरात करि अंध काला ।
चकित भए नंद, सब महर चक्रित भए, चकित नर-नारि हरि करत ख्याला ।
घटा घनघोर घहरात, अररात, दररात, थररात ब्रज लोग डरपे ।
तडित आघात तररात, उतपात सुनि, नारि-नर सकुचि तन प्रान अरपे ।
कहा चाहत होन, भई कबहूँ जो न, कबहुँ आँगन भौन बिकल डोलै ।
मेटि पूजा इंद्र, नंद-सुत गोविंद, सूर प्रभु आनँद करि कलोलै ।।[1] (सूरदास)

स्वच्छन्द यौवन की उन्मुक्त उमंग की द्योतक शब्दावली

नृत्यत स्याम स्यामा-हेत ।
मुकुट-लटकनि, भृकुटि-मटकनि, नारि-मन सुख देत ।।
कबहुँ चलत सुधंग गति सौ, कबहुँ उघटत बैन ।
लोल कुंडल गंड-मंडल चपल नैननि सैन ।।
स्याम की छबि देखि नागरि, रही इकटक जोहि ।
सूर-प्रभु उर लाइ लीन्ही, प्रेम-गुन करि पोहि ।।[2] (सूरदास)

गावति गिरिधरन-संग परम मुदित रास-रंग
उरप तिरप लेत तान नागर नागरी ।।
सरि-गम-पध-धनि, गम-पधनि, उघटति सप्त सुरनि,
लेति लाग, दाट, काल अति उजागरी ।।
चर्वन ताम्बूल देत, ध्रुव तालहिं गति हिं लेत,
गिडिगिडि तत-थुंग-थुंग अलग लाग री ।।
सुरति केलि रास-विलास बलि-बलि 'कुंभनदास'
श्री राधा नंद-नँदन वर सुहागरी ।।[3] (कुंभनदास)

आली री दाम दाम दाम बाजत मृदंग गति उपजत अनेक भांत ।
तीकी झंकन कुं झुंतन झगता धीलांग धीलांग तागर डोगावत दुलहिन दूलो जोत पाँत ।।
पिया के रिझाइबे कों न्यारी न्यारी गति तामें लेत ही सुघर
बनाइ 'गोविंद' प्रभु पिया अंग संग ए निर्त्तत भांमनी संग ।।[4] (गोविंदस्वामी)

---

१. सूरसागर, (पहला खंड), दशमस्कंध, पृ० ५४८, पद सं० १४७३
२. वही, पृ० ६५५, पद सं० १७६६
३. कुंभनदास, काँकरौली, पृ० २२, पद सं० ३५
४. गोविंदस्वामी, काँकरौली, पृ० २७, पद सं० ५९

प्यारे नाँचत प्रान-अधार
रास रच्यौ बंसीवट, नट-नागर वर सहज सिंगार ॥
पाँइनि की पटकार मनोहर, पैजनि की झनकार ।
रुनझुन किंकिनि-नूपुर बाजत, संग पखावज तार ॥
मोहन धुनि मुरली सुनि कर तब, मोहे कोटिक मार ।
स्थावर जंगम की गति भूली. भूले तन-व्यौपार ॥
अंग सुधंग अनंग दिखाइ रीझि सरबसु दोऊ देत उदार ।
'व्यास' स्वामिनी पिय सों मिलि, रस राख्यौ कुंज-बिहार ॥'[1] (व्यास जी)

नवल किसोर नवल नागरिया
अपनी भुजा स्याम-भुज ऊपर, स्याम भुजा अपनें उर धरिया ॥
क्रीड़ा करत तमाल-तरुन-तर स्यामा स्याम उमँगि रस भरिया ॥
यौं लपटाई रहे उर-उर ज्यौं, मरकत मनि कंचन में जरिया ॥
उपमा काहि देउँ, को लायक, मन्मथ कोटि वारनें करिया ।
सूरदास बलि-बलि जोरी पर, नंद कुँवर वृषभानु-कुँवरिया ॥[2] (सूरदास)

खेलत गिरधर रँगमगे रग ।
गोप सखा बनि आए है हरि हलधर के संग ।
बाजत ताल मृदंग झाँझ डफ मुरली मुरज उपंग,
अपनी अपनी फेंटन भरि भरि लिये गुलाल सुरंग ।
फिचकाई नीकें करि छिरकत गावत तान तरंग,
उत आई ब्रजबनिता बनि बनि मुक्ताफल भरि मंग ।
अँचरा उरसि कंचुकी कसिकसि राजत उरज उतंग,
चोवा चन्दन बन्दन लै मिलि भरत भामते अंग ।
किशोर किशोरी दोउ मिलि बिहरत इत रति उतहि अनंग,
परमानन्द दोऊ मिलि बिलसत केलि कला जू निसंग ।[3] (परमानन्ददास)

झूलत लाल गोवरधनधारी सोभा बरनि न जाई हो ।
बाम भाग वृषभानु-नंदिनी, नव सत अंग बनाई हो ॥
अति सुकुमारी नारि डरपति है, मोहन उर सों लाई हो ।
नील पीत पट मिलि फहरत है, घन दामिनि जुरि आई हो ॥
मानहुँ तरुन तमाल मिलन को अंग-अंग मुरझाई हो ।
गौर स्याम मरकत-तन परसत, कनक बेलि छवि पाई हो ॥

---

१. भक्तकवि व्यास जी, वासुदेव गोस्वामी, पृ० ३६४, पद सं० ६३४
२. सूरसागर, (पहला खंड), दशमस्कंध, पृ० ५०२, पद सं० १३०६
३. कीर्तन-संग्रह, भाग ३, बसन्त धमार, देसाई, पृ० ३५

सुरति सिन्धु मिलि बिलसे दोउ जन, सब सहचरि सुख पाई हो ।
'चतुर्भुजदास' लाल गिरिधर-जस, सुर-नर-मुनि मिल गाई हो ॥[१] (चतुर्भुजदास)

देखो प्यारी कुंजबिहारी मूरतिबंत बसंत ।
मोरी तरुण तरुलता तनमैं मनसिज रस वरसंत ॥
अरुण अधर नव पल्लव शोभा विहसनि कुसुम विकाश ।
फूले विमल कमल से लोचन सूचित मन को हुलास ॥
चल चूर्ण कुन्तल अलिमाला मुरली कोकिल नाद ।
देखीयति गोपीजन बनराई मुदित मदन उनमाद ॥
सहज सुवास स्वास मलयानिल लागत सदानि सुहायौ ।
श्री राधामाधवी गदाधर प्रभु परसत सुख पायौ ॥[२] (गदाधर भट्ट)

नवल वृंदावन नवल वसंन ।
नव द्रुम वेलि केलि नव कुंजनि नवल कामिनी कत ॥
नव अलि अलक झलक नव कोकिल नव सुर मिलि विलसंत ।
नव रस रसिक विहारनि दासी के नव आनंदहि न अंत ॥[३] (बिहारिन दास)

नवल वसंत बृंदावन नवलहि फूले फूल
नवलहि कान्ह नवल सब गोपी निरतत राकहि तूल ।
नवलहि साख जवादि कुमकुमा नवलहि वसन अमूल
नवलहि छींट बनी केसरि की मेटत मनमथ सूल
नवल बाल गुलाल उडवैं रंग बुका नवल पवन के झूल
नवलहि वाजे बाजें श्री भट कालिंदी कूल ॥[४] (श्री भट्ट)

रंगभरी रागभरी राग सूं भरी री ।
होड़ी खेड़्या स्याम शंग रंग शूं भरी री ।
उड़त गुड़ाड़ ड़ाड़ बादड़ रो रंग ड़ाड़ ।
पिचकां उडावां रंग रंग री झरी री ।
चोवा चंदण अरगजां म्हां केसर णो गागर भरी री ।
मीरां दासी गिरधर नागर चेरी चरण धरी री ॥[५] (मीरा)

---

१. अष्टछाप-परिचय, प्रभुदयाल मीतल, पृ २९३, पद सं० ८३
२. श्री गदाधर भट्ट जी महारांज की बानी, बालकृष्णदास जी की प्रति, पत्र सं० २४, पद स०१
३. पद-संग्रह प्रति सं० ३७१।२९६, का० ना० प्र० स० पत्र सं० १४, पद सं० ७
४. जुगलसतक, श्री भट्ट, प्रनि सं० ७१२।३२, का० ना० प्र०स०, पत्र सं० १३, पद सं० १
५. मीरा–स्मृति–ग्रंथ, मीरा-पदावली, पृ० २१, पद सं० ७३

विरह की करुण कथा की सरल शब्दावली

किते दिन भए रैनि सुख सोए,
कछू न सुहाय गोपाल बिछूरे, रहें पूँजी सी खोए।
जबते गए नन्दलाल मधुपुरी चीर न काहू धोए,
मुख न तँबोर, नैन नहि कज्जर बिरह समीर विगोए।
ढूढ़त बाट घाट बन पर्वत जहाँ जहाँ हरि खेल्यों,
परमानंद प्रभु अपनो पीताम्बर मेरे सिर पर मेल्यो ॥[1] (परमानंददास)

कारी निसि में दामिनि कोंधति
हरि समीप बिनु सूनी सेज अकेले माई हों डरपति चोंधति।
ज्यों ज्यों ब सुरति होति प्रीतम की नेंननि ढरति जल ज्यों गगरी ओंधति।
कुंभनदास प्रभु गिरिधर बिनु अब नींद गई छिनु छिनु छतियाँ रोंधति ॥[2]
(कुंभनदास)

शब्दालंकार

अनुप्रास अलकार –

शब्दालंकारो के अन्तर्गत शव्द-सगीत को उत्पन्न करने मे अनुप्रास[3] शब्दालंकार विशेष रूप से सहायक होता है। यो तो भाव-सौदर्य के निमित्त साहित्य-जगत मे अन्य शब्दालकार भी प्रयुक्त किए जाते है किन्तु भाषा के नाद-सौदर्य की वृद्धि मे शब्दालंकारो के अन्तर्गत अनुप्रास अलकार ही विशेष महत्वपूर्ण है। अनुप्रास के संयोग से कविता में सगीत की छटा अनुपम हो जाती है। "हमारे (अर्थात् भारतीय) साहित्य-शास्त्र मे स्वीकृत शब्दालंकार दो प्रकार के है, एक वे जो मुख्यत सगीत का विधान करते है जैसे अनुप्रास।

१. हस्तलिखित पद-सग्रह, परमानंददास, डा० दीनदयालु गुप्त, पद सं० १६५
२. हस्तलिखित पद-संग्रह, कुभनदास, डा० दीनदयालु गुप्त, पद सं० ४६
३. अनुप्रास–

अनुप्रासः शब्दसाम्यं वैषम्येऽपि स्वरस्ययत् ॥

स्वर की विषमता रहने पर भी शब्द अर्थात् पद पदांश के साम्य (सादृश्य) को 'अनुप्रास' कहते है। स्वरों की समानता हो चाहे न हो परन्तु अनेक व्यंजन जहाँ एक से मिल जायें वहाँ अनुप्रास अलंकार होता है।''''''अनुप्रास शब्द का अक्षरार्थ बताते हैं – रसेति-रस भावादि के अनुगत प्रकृष्ट न्यास को अनुप्रास कहते हैं। यहाँ 'अनु' का अर्थ 'अनुगत' और 'प्र' का प्रकृष्ट एवं 'आस' का अर्थ न्यास है। रस की अनुगामिनी प्रकृष्ट रचना का नाम अनुप्रास है। इससे यह भी सिद्ध हुआ कि रस के प्रतिकूल वर्णों की समता को अनुप्रास नहीं माना जाता।

अनुप्रासों का समावेश वही अच्छा लगता है जहाँ वह संगीत को पुष्ट करता है।"[1] श्री बख्शी जी भी अनुप्रास को शब्द-संगीत का साधन मानते हुए अत्यधिक महत्वपूर्ण स्थान प्रदान करते है। "अलंकार दो प्रकार के माने गए है"[2] —शब्दालंकार और अर्थालंकार। शब्दालंकारो मे अनुप्रास मुख्य है और अर्थालिकारों में उपमा[3]। "सच पूछिए तो इन्ही दो से अन्य सभी अलंकारो का उद्भव हुआ है और उक्ति मे विलक्षणता लाने के ही लिए उनकी सृष्टि हुई है।"[4] अनुप्रास अलंकार कवितावधूती के अग-प्रत्यग को सॅवारकर उसे कोमलकात रूप, माधुर्य तथा स्वर और गतिमय अमरत्व प्रदान करते है। आधुनिक आलोचक प्राय· अनुप्रास को व्यर्थ तथा शब्दाडम्बर मात्र मानते है। किन्तु यह भ्रम मात्र ही है क्योकि यदि अनुप्रास का प्रयोग सार्थक और उपयुक्त है तो कविता के लिए यह अनिवार्य है कि शब्दो की ध्वनिमात्र से ही कविता का मूलगत अर्थ स्पष्ट हो जाय। अनुप्रास अलकार वाणी का वह कौशल है जिसके साहचर्य से सगीत ध्वनि उत्पन्न कर कविता के भावो को बहुत कुछ व्यक्त किया जा सकता है। स्वाभाविक रूप से अनुप्रास के प्रयोग भापा के नांद-सौदर्य के उत्कर्षक होते है। सफल कवियो के काव्य मे अनुप्रास बिना प्रयास स्वत आ जाते है। उन्हे ढूँढना नही पडता। हाँ यदि कवि का सम्पूर्ण प्रयास अनुप्रास की योजना के लिए होने लगता है अथवा अनुप्रासगत चमत्कार प्रदर्शन के मोह मे आकर कवि आलकारिक उक्तियों की झड़ी लगा देता है तब वे अवश्य भार रूप बन जाते है और कविता अलंकार-बोझिल होकर शब्द-आडम्बर बन उत्कर्ष के धरातल से नीचे गिर जाती है।

कृष्णभक्तिकालीन कवियो के काव्य मे अनुप्रास अलकार की प्रयास रहित स्वाभाविक अभिव्यंजना मनोहारिणी है। इन कवियो ने कविता करने के उद्देश्य से काव्य रचना नही की थी। उनकी कविता उनके हृदय का स्वर है, बुद्धि का चमत्कार नही। भगवत् प्रेम मे एकाकार होकर इन कवियो ने जिस अमर संगीत का सृजन किया उसमे स्वाभाविक रूप से अनुप्रास का ही क्या आवश्यकतानुसार प्राय सभी अलकारो का समावेश हो गया है। भावोन्मेष के क्षणो मे उमड़े हुये उनके शब्दो मे अनुप्रास ढूँढने नही पडते। किसी-किसी स्थल पर अनुप्रास इस तरह स्वाभाविक रीति से चले आते है मानो इनके शब्दभडार मे अनुप्रास युक्त शब्दो के अतिरिक्त अन्य कोई शब्द ही नही था। किन्तु अनुप्रास का नाद-सौंदर्य शब्दो के भाव को कही भी दबने नही देता। कृष्णभक्तिकालीन कवियों के काव्य मे कही कही अनुप्रास का भव्य विन्यास तो अवश्य है किन्तु वह विन्यास इतना भडकीला नही है

---

१. साहित्य-चिंता, डा० देवराज, पृ० १५
२. हमारे यहाँ अलंकार-योजना में तीन कोटियाँ मानी गई है —
(१) शब्दालंकार (२) अर्थालंकार (३) उभयालंकार
३. बख्शी जी का यह मत शायद सर्वथा मान्य नहीं है।
४. प्रदीप, पदुमलाल पन्नालाल बख्शी, पृ० २३४

कि पाठको का ध्यान वर्ण्यवस्तु को छोडकर अलकारो की छटा की ओर आकृष्ट हो जाय। उस अनुप्रास-योजना से काव्य मे कुछ स्थल अत्यधिक श्रुति-मधुर और माधुर्य-व्यजक हो गए है। यो तो कृष्णभक्तिकालीन सभी कवियो ने अनुप्रास के प्रयोग से भाषा के नाद-सौदर्य को अत्यधिक बढा दिया है किन्तु नददास की रासपंचाध्यायी मे अनुप्रास की छटा दर्शनीय है। मीरा मे काव्य-कला का प्रदर्शन कराना उनके साथ घोर अन्याय करना है किन्तु इसका यह तात्पर्य नही कि उनमे काव्य-कला सबधी अलकार आदि का सर्वथा अभाव है। उनके हृदय से उमड़े हुए शब्दो मे स्वाभाविक रूप से अनुप्रास अलकार आए है। कृष्णभक्तिकालीन सभी कवियो के काव्य मे अनुप्रास की सुन्दर छटा दर्शनीय है। उदाहरणस्वरूप इन कवियो के कुछ स्थल दृष्टव्य होगे –

चरन रुनित नूपुर कटि किंकिनि, ककन करतल ताल।
मनु तिय-तनय समेत, सहज-सुख, मुखरित मधुर मराल ॥[1]
चटकीलौ पट लपटानौ कटि पर, बंसीबट जमुना कै तट राजत नागर नट।
मुकुट की लटक, मटक भृकुटी की लोल कुंडल चटक आछी सुबरन की लुकट ॥[2]
पंचमि पंच शब्द करि साजे सजि वादित्र अपार।
रुज मुरज ढफ ताल बाँसुरी झालर को झंकार ॥[3] (सूरदास)
रैनि पपीहा बोल्यौ री माई
नीद गई चिंता चित बाढी सुरति स्याम की आई।[4]
कुंडल लोल कपोल लोल मधु, लोचन चारु चलावनि।
कुंतल कुटिल मनोहर आनन, मीठे धेनु बुलावनि ॥[5] (परमानंददास)
नव बन, नव घन, नव चातक पिक, नवल कसूमी सारी।
नवल किसोर वाम अंग सोभित, नव वृषभान दुलारी।[6]
कुंतल, बकुल, मालती, चंपा, कितकी नवल निवारे।
जाही, जुही, केवरौ, कुंजी, रायबेलि मँहकारे ॥[7] (कुंभनदास)
रसमय रसिक रसिकिनी मोहन रसमय बचन रसाल रसीलो
नवरंग लाल नवल गुन सुंदर नवरँग भाँति नव नेह नवीलो।

---

१. सूरसागर, भाग १, पृ० ६५१, पद सं० ११३७, १७५४
२. वही, पृ० ७४७, पद सं० १४०१, २०१९
३. सूरसारावली, पृ० ३७, पद सं० १०७२
४. हस्तलिखित पद-संग्रह, परमानंददास, डा० दीनदयालु गुप्त, पद सं० ३२३
५. अष्टछाप-परिचय, प्रभुदयाल मीतल, पृ० १९८, पद सं० ७५
६ वही, पृ० १११, पद सं० ३५
७. वही, पृ० १११, पद सं० ३३

नव सिख सीव सुभगता सीवां सहज सुभाइ सुदेस सुहीलो
कृष्णदास प्रभु रसिक मुकट मनि सुभग चरित रिपुदलन हठीलो ।[१]

नूपुर रुनित कुनित मनि कंकन, जुवति-जूथ रस-रासि बढ़ावै ।
सुरति देत मधु मत्त मधुप-कुल एक ताल सब के जिय भावै ॥[२]
(कृष्णदास)

नवल कुंज नव कुसुमित दल, नव नव वृषभानु दुलारी ।
नवल हास, नव नव छवि क्रीड़त, नवल विलास करत-सुखकारी ॥[३]

इति महकति मालती, चारु चंपक चित-चोरत ।
उत घनसार, तुसार, मिली मंदार-झकोरत ॥[४]

ललित लवंग लतन की छाँहीं, हँसि बोलो डोलो गलबाहीं ।[५] (नंददास)
मोहन मूरति मन हर लीनों नहिं समुझत कछु काहू की कही री ।[६]

ललित लिलाट लर लटकन सोहै, लाड़िले ललन कों लड़ावै ललना ।
प्रान प्यारे प्रानपति उपजत अति रति, पल पल पौढ़े प्रेम पलना ॥[७]
(चतुर्भुजदास)

श्रीकृष्न कृपालु कृपानिधि, दीन–बंधु दयाल......
गोचारी गोविंद गोपपति, भावन मंजुल ग्वाल ।[८]

लाल ललित ललितादिक संग लिएँ
बहरे री बन बसंत रितु कला सुजान ।[९] (छीतस्वामी)

नैक निहारि नागरी नारी, पैयाँ परत मुरारि[१०]
मोर मुकुट मंजुल मुरली मुख, पीत बसन उरमाला[११] (गोविंदस्वामी)
तव चली चरन मथर विहार

---

१. हस्तलिखित पद-संग्रह, कृष्णदास, डा० दीनदयालु गुप्त, पद सं० १०१
२. अष्टछाप-परिचय, प्रभुदयाल मीतल, पृ० २३२, पद सं० ३३
३ वही, पृ० ३२२, पद सं० २३
४. रासपंचाध्यायी, नंददास
५. विरहमजरी, बलदेवदास करसनदास, छन्द सं० ५६
६. हस्तलिखित पद-संग्रह, चतुर्भुजदास, डा० दीनदयालु गुप्त, पद सं० ३४
७. अष्टछाप-परिचय, प्रभुदयाल मीतल, पृ० २७६, पद, सं० २
८. वही, पृ० २७०, पद सं० २७
९ वही, पृ० २६७, पद सं० १६
१०. वही, पृ० २५८, पद सं० ६१
११. वही, पृ० २५२, पद सं० २६

वाजे रुनझुनुनु नूपुर झंकार ।[१]
देखो प्यारी कुंजविहारी मूरतिवंत वसंत
मौंरी तरुनि तरुनता तन में मनसिज रस वरसंत ।
अरुन अधर नव पल्लव सोभा विहसनि कुसुम विकास ।
फूले विमल कमल से लोचन सूचत मन उल्लास ।
चल चूरन कंतुल अलिमाला मुरली कोकिल नाद ।
देखत गोपी जन वनराई मदन मुदित उनमाद ।[२] (गदाधर भट्ट)

सखियन संग राधिका कुंवरि बीनति कुसुम कलियाँ ।[३]
अरुझीं कुंडल लट बेसरि सों पीत पट
बनमाला बीच आंन अरुझें है दोउ जन ।
नयन सों नयना प्रानन सों प्रान अरुझि रहे
चटकीली छवि देख लटपटात स्याम घन ।[४] (सूरदास मदनमोहन)

पुलिन पवित्र सुभग यमुना तट मोहन बेनु बजायौ
कलकंकन किंकिणी नुपुर धुनि सुनि खग मृग सचुपायौ ।[५]
नवल नागरी नवल नागर किशोर मिली
कुज कोमल कमल दल निसि जा रची ।[६]
सरद बिमल नभ चंद बीराजत रोचक त्रिविधि समीर री सजनी
चंपक बकूल मालती मुकलित मत्त मुदित पिक पीर री सजनी ।[७]
(हितहरिवंश)

रसिक, सुंदरि बनी रास-रंगे
सरद ससि जामिनी, पुलिन अभिरामिनी, पवन सुख भवन बन बिहंगे ।......
चरन नुपुर रुनित, कटि किंकिन क्वनित, कर कंकन चुरीरव भंगे ।
चरन धरनी धरत, लेत गति सुलप अति, तत्त थेई-थेई नदति मन मृदंगे ।[८]
सैनन बिसरे नैननि भोर
बैन कहत कासों पिय हिय ते, विहँसत कितब किसोर ।[९]

---

१. श्री गदाधर भट्ट की महाराज की बानी, बालकृष्णदास की प्रति, पत्र २५, पद सं० २
२. वही, पत्र २४, पद सं० १
३. अकबरी दरबार के हिन्दी कवि, सरयूप्रसाद अग्रवाल, पृ० ४४८, पद सं० ३
४. वही, पृ० ४४८, पद सं० ५
५. चौरासी पद, हितहरिवंश, प्रति सं० ३८|२१५, प्रयाग-संग्रहालय, पद सं० ३६
६. वही, पद सं० ५०
७. वही, पद स० २४
८. भक्त कवि व्यास जी, वासुदेव गोस्वामी, पृ० ३६०, पद सं० ६१६
९. वही, पृ० २७४, पद सं० ३२५

झूलत कुंजनि कुंज किसोर .....
सिथिल पलक मँह बंक बिलोकनि, बिहसनि चित-बित-चोर ।[१] (व्यास)

नव बन नव निकुज नव पलव नव जुवतिन मिलि मांहि
वंसी सरस मधुर धुनि सुनियत फूली अंगनि मांहि ।[२]

अद्भुत गति उपजत अति नाचत दोऊ मंडल कुँवर किसोरी
सकल सुधंग अंग भरि भोरी पिय नृतत मुसकनि मुख मोरी परिरंभन रस रोरी ।[३]
(हरिदास)

प्रिया पग धारियै पिय पहियां
कुंजन वन के छारै बाढ़े कुंवर कदंब की छहियां ।[४]

नव नव नव निकुंज नवबाला
नव रग रसिक रसीलौ मोंहन विलसत कुंजविहारी लाला ।[५] (विट्ठल विपुल)

राजत रास रसिक रस रासे
आस पास जुवती मुख मंडल मिलि फूले कमला से
मध्य मराल मिथुन मन मोहन चितवत आतुरता से ।[६]

नवल वृंदावन नवल वसंत
नवद्रुम वेलि केलि नव कुंजनि नवल कामिनी कंत ।[७] (विहारिनदास)

कारी घटा छुटन के डोरा मोरा बोलत जोरै
कोकिला कल जलकन वरषन रंग नीर घन घोरै ।[८]

फूली कुमदनि सरद सुहाई
जमुना तीर धीर दोऊ विहरत कमल नील पीत कर माई[९] (श्री भट्ट)

मन मोहन मन मै बसि रह्यो सखी दिष्ट अचानक आई री ।
सोई हरि सुमन विवस भयो भावत अब कैसें करि जाइ री ।।[१०]

---

१ भक्त कवि व्यास जी, वासुदेव गोस्वामी, पृ० २७१, पद सं० ३१५
२. पद-संग्रह, प्रति सं० ३७१।२६६, काशी नागरी प्रचारणी सभा, पत्र सं० २५, पद सं० २
३. वही, पत्र सं० १२, पद सं० ३
४. पद-संग्रह, प्रति सं० १६२०।३१७०, हिन्दी-संग्रहालय, पद सं० २१
५. वही, पद सं० ३६
६. पद-सग्रह, प्रति सं० ३७१।२६६, का० ना० प्र० सभा, पत्र सं० १४८, पद सं० २२
७. वही, पत्र सं० १४४, पद सं० ७
८. जुगलसतक, प्रति सं० ७१२।३२, का०ना०प्र० सभा, पत्र १४, पद सं० १
९. वही, पत्र सं०-१७
१०. रामसागर, प्रति सं० ६८०।४६२, का०ना०प्र० सभा, रा०सा० ७६, पद सं० १६

नांना धुंनि वंसिका बजावत
निर्तत अति मन मोद बढ़ावत ।[१]   (परशुराम)

रंगभरी रागभरी राग सूं भरी री ।
होड़ी खेड़या स्याम शंग रंग शूं भरी री ।
उड़त गुड़ाड लाड़ बादड़ा रो रंग ड़ाड
पिचकां उडावां रंग रंगरी झरी री ।
चोवा चंदण अरगजां म्हां केसर णो गागर भरी री ।
मीरां दासी गिरधर नागर चेरी चरण धरी री ।[२]

म्हारो परनाम बांके बिहारी जी
मोर मुगट माथां तिड़क बिराज्यां कुंडड़ अडकां कारी जी ।
अधर मधुरधर बंसी बजावां रीझ रिझावां ब्रजनारी जी ।
या छब्र देख्यां मोह्यां मीरा मोहण गिरवरधारी जी ।[३]

मोहन देखि सिराने नैना
रजनी मुख आवत गायन संग मधुर बजावत बैना ।[४]
खुरजा खाजा गुंजा मठरी पिस्ता दाख बदाम
दूध भात घ्रित खानि थारभरि लै आई ब्रजवाम ।[५]   (आसकरण)

कृष्णभक्तिकालीन साहित्य की संगीतमय भाषा पर एक सामान्य दृष्टि

कृष्णभक्तिकालीन कवियो ने अपने साहित्य मे पूर्णतय सगीत से सिक्त भाषा का सृजन किया है । इससे पूर्व चारणकाल मे वीर-काव्य पर डिंगलभाषा का पर्याप्त प्रभाव था । डिंगल रण की भाषा थी । उसमे शक्ति थी, नाद था और वह परुष भावो को प्रकट करने मे समर्थ थी किन्तु उसमे संगीत की कोमलता और श्रुति-माधुर्य के गुण का अभाव था । सत कवियो मे कुछ को छोड कर अन्य कवियो की उक्तियो को देखने से ऐसा जान पडता है कि कदाचित् सर्वागीण विकासोन्मुखी भाषा पर उनका न तो विशेष अधिकार था और न शायद वे उस ओर सचेष्ट ही थे । भाषा के अपरिष्कृत होने के कारण उनकी भाषा को सधुक्कडी भाषा कह कर सबोधित किया गया । विभिन्न प्रदेशो की भाषाओ के शब्दो के अत्यधिक मेल के कारण संत कवि अपनी रचनाओ मे उस परिष्कृत संगीतमाधुर्य को न ला सके जो अपेक्षित था । सूफी काव्य की भाषा मे सगीत का समावेश प्रचुर मात्रा मे हुआ ।

---

१. रामसागर, प्रति सं० ६८०।४६२, का० ना० प्र० स; रां० सा० ६८, पद सं० १४८
२. मीरा-स्मृति-ग्रंथ, मीरा-पदावली, पृ० २१, पद सं० ७३
३. वही, पृ० ३, पद सं० ४
४. अकबरी दरबार के हिन्दी कवि, सरयूप्रसाद अग्रवाल, पृ० ४५१, पद सं० ७
५. वही, पृ० ४५०, पद सं० ३

उन्होंने मात्रिक वृत्त अपनाये जिनमें गेयता का गुण भी था। भाषा के संगीत-माधुर्य को प्रस्फुटित करने के लिए सूफी कवियों ने अवधी के परिमार्जित सुसंस्कृत और सर्वथा साहित्यिक रूप को न ले कर उसके सरल, ठेठ, ग्रामीण रूप का प्रयोग किया किन्तु अवधी का यह संगीत-माधुर्य, ब्रजभाषा की स्वाभाविक संगीत-मधुरता, कोमलता तथा मृदुलता की समता न कर सका। प्रधान रूप से अवधी मे ही राम का चरित्र वर्णन करने वाले तुलसीदास जी भी ब्रज-भाषा के काव्य और संगीतगत् वैशिष्ट्य से परिचित थे और उनकी कृतियो से यह स्पष्ट है कि जहाँ रामचरितमानस जैसा उत्कृष्ट ग्रंथ उन्होंने अवधी में लिख कर अवधी भाषा के उत्कर्ष को सीमा पर पहुँचा दिया वहाँ अपनी विनयवाणी को पूर्ण सफलता प्रदान करने के लिए उन्होंने संगीतमयी तरल ब्रजभाषा को ही अपनाया। इसी प्रकार राम का शैशव वर्णन करते समय यह प्रत्यक्ष हो जाता है कि कृष्णगीतावली और गीतावली मे तुलसी केवल ब्रजभाषा का प्रयोग ही करते है। सूर द्वारा प्रवाहित कृष्णलीला की वात्सल्य-मन्दाकिनी की सारभूमि सरलता से सराबोर है। भाषागत सगीत के विचार से कृष्णभक्तिकालीन कवियों की प्रतिभा अद्वितीय है। कृष्णभक्तिकालीन कवियों ने अपने काव्य मे कर्णकटु शब्दो के परिष्कार, संयुक्त वर्णो के अभाव, शब्दों के लोचयुक्त रूपों तथा ब्रजमडल के लोक प्रचलित ग्रामीण प्रयोगों री, अरी, एरी आदि शब्दो के प्रयोग-बाहुल्य, अनुस्वार युक्त दीर्घ-स्वरो के संयोग, ध्वनिसौदर्य, देशज तथा अनुप्रास के सुन्दर समावेश से स्वभाव से ही अत्य-धिक मधुर ब्रजभाषा के द्वारा जिस अपूर्व संगीत की झकार पैदा की है उसकी लहरियाँ चिरकाल् तक वांछित भावावेश उत्पन्न करने में समर्थ रहेगी।

अष्टम अध्याय

लय, ताल और गायन प्रणाली के आधार पर कृष्णभक्तिकालीन साहित्य में प्रयुक्त पदों की समीक्षा

कृष्णभक्तियुगीन साहित्य में प्रयुक्त पद-शैली

प्राय सभी कृष्णभक्तिकालीन कवियो ने अपने प्रेमाधिक्य से हृदयगत भावनाओं को ही वाणी के रूप मे घनीभूत कर दिया है। भक्त जब अपने आराध्य की मोहिनी छवि मे पूर्णत अनुरक्त और लीन होकर उसकी उपासना करने लगता है तो उस समय वह इस लौकिक ससार तथा स्वय को विस्मृत कर आराध्य के साथ एकाकार होकर गा उठता है। कृष्णभक्तिकालीन कवियों का ध्येय अपने आराध्यदेव की उपासना करना था। भक्ति की तन्मयता मे ये कवि मौज मे आकर कृष्ण की लीलाओ का अनुभव करते हुए उनकी छवि का गान किया करते थे। यही नही ये भक्त कवि प्रेम के पुजारी थे। आध्यात्मिक विरह-वाण से बिंधे इनके व्यथित हृदय से गाए बिना रहा नही जाता था। अत प्रिय-मिलन की आशा मे वे जीवन पर्यन्त गुनगुनाते रहे। उनका गान उनके हृदय का वह अमर सगीत है जिसमे संघर्ष, वेदना, समर्पण तथा आनद के विभिन्न स्वर मधुर लय मे गुजरित हो रहे है।

आध्यात्मिक भावना से परिपूर्ण तथा सगीत-प्रधान होने के कारण प्रायः सभी कृष्णभक्तिकालीन कवियो के हृदय के उद्गार अधिकतर पिगल अथवा काव्य-शास्त्र के नियमों मे बद्ध छंदों के रूप मे नही प्रकट हुए वरन् गीत-पद्धति मे ढल कर पदो के रूप मे सम्मुख आए।

पदो का संगीत से विशेष संबध है। यो तो दोहा, चौपाई आदि छद भी गाए जा सकते है और गाए जाते है किंतु छंदों को बिना यति भग किए रागानुसार गाना, लय के अनुसार मनमाना खीचना तथा ताल में बद्ध रखना संभव नही है। इसके विपरीत पदो मे

राग-ताल का बंधान बाँधना अत्यधिक सुगम है। उसमे मात्रा तथा यति संबंधी कोई विशिष्ट अपरिवर्तनशील बधन नही होता। भावना की तीव्रता मे पदों को गाते हुए इच्छानुसार संगीत मे प्रयुक्त अकार के द्वारा मात्राओ को घटा बढा कर लय तथा ताल में बिठाया जा सकता है। कृष्णभक्तिकालीन कवियो के समस्त काव्य की रचना गा-गा कर हुई है इसीलिए उसमें पदों का बाहुल्य है।

पदों के स्वरूप –

कृष्णभक्तिकालीन साहित्य मे जो पद प्रयुक्त हुए है वे लिपिबद्ध रूप मे तीन प्रकार से मिलते है (१) समान मात्रा वाले पद (२) टेक वाले पद (३) असमान मात्रा वाले पद।

समान मात्रा वाले पद –इन पदों मे सभी पक्तियों मे समान मात्राये होती है। उदाहरणार्थ कवि सूर का एक पद दृष्टव्य होगा –

IIII S IISI SI II SIIS IISI IS = ३०
बिछुरत श्री ब्रजराज आज सखि नैनन की परतीति गई।
II IIS II SIISII S IIS IISI IS = ३०
उड़ि न मिले हरि संग बिहंगम ह्वै न गये घनस्याम मई।
SS SI III II SII IS IS II SI IS = ३०
याते क्रूर कुटिल सह मेचक वृथा मनी छबि छीन लई।
SI III SIS ISII S IIS II S I IS = ३०
रूप रसिक लालची कहावत सो करनी कछु तौ न भई।
II SS SII II SII III IS II SI IS = ३०
अब काहे सोचत जल मोचत समय गये नित सूल नई।
SISI SS S II II II S IIII IS SI = ३०
सूरदास याही ते जड़ भए, जब तें पलकन दगा दई।[1]

उपर्युक्त पद की प्रत्येक पंक्ति मे समान रूप से ३० मात्राये है।

टेक वाले पद–इन पदों मे पद की प्रथम पक्ति अन्य पक्तियो की अपेक्षा छोटी होती है जिसे स्थायी पद अथवा टेक कहते है। प्रत्येक दो चरणो के पश्चात् प्रथम पक्ति की आवृत्ति की जाती है अन्य सब पक्तियों मे मात्राएँ समान होती है। एक निश्चित अन्तर के उपरान्त बार बार टेक की आवृत्ति होने से पद मे सगीत की अपूर्व झकार तथा ध्वनि सौदर्य प्रकटित होने लगता है। उदाहरणस्वरूप सूरदास का निम्नलिखित पद देखिए –

SS SI IS IISS = १६
ऊधौ होत कहा समुझाए।
IIII IS SIS SII SI IS IISS = २८
चित चुभ रही सांवरी मूरति जोग कहा तुम लाए।

---

१. सूरसागर, (दूसरा खंड), दशमस्कंध, पृ० १२८०, पद सं० ३६१४

SSS ।।S ।। S S ।।। S। ।। SS = २८
पालागौं कहियो हरि जू सौं दरस देहु इक बेर।
S।S। ।। S ।।S ।। ।S ।SS SS = २८
सूरदास प्रभु सौं विनती करि यहं सुनैयौ टेर ।[1]

टेक मे केवल १६ मात्राये है तथा वह सब पंक्तियो मे छोटी है। शेष सभी पक्तियो मे २८ मात्राये है।

असमान मात्राओं वाले पद –इन पदों मे मात्राओ का कोई बंधन नही है। प्रत्येक पक्ति मे विभिन्न मात्राये होती है। पंक्तियो मे मात्राओं का कोई क्रम नही रहता। भावों के अनुरूप ही मात्राओ की गति परिवर्तित होती रहती है। यथा हरिदास स्वामी का एक पद है –

S।।S।।S। S। ।।। SS। ।S।। = २७
नाचत मोरनि संग स्याम मुदित स्यामाहि रिझावत
SSS S।S ।S।।।SS S।।।SSS S।।S।।S।।S।। = ४८
तैसीयै कोकिला अलापत पपीहा देत सुर तैसीई मेघ गर्जित मृदंग बजावत।
SSS S। ।S ।।SS SS S S।। S। S। ।S।। = ३६
तैसीयै स्याम घटा निसिकारी तैसी ये दामिनि कौंधि दीप दिखावत।
S ।।S।S SS SS S। ।SS S। SS ।। S।।S।। = ४२
श्री हरिदास के स्वामी स्यामा कुंज बिहारी रीझि राधे हँसि कठ लगावत।[2]

पद की प्रथम पक्ति मे २७ मात्राये, द्वितीय पक्ति मे ४८ मात्राये, तृतीय पक्ति मे ३६ मात्राये और चतुर्थ पक्ति मे ४२ मात्राये है। इस प्रकार प्रत्येक पक्ति की मात्राओ मे कोई साम्य नही है। मीरा का एक पद है –

SS S S ।S S।S S। = १६
माई री म्हां ड़ियां गोंविदां मोड़।
S ।S SS S S SS ।S ।।S S। = २८
थे कह्या छाणे म्हा का चोड़डे ड़ियां बजंतां ढोड़।
S ।S।S। S ।S ।S ।S S ।SS S। = ३०
थे कह्या मुहोघ म्हा कह्या सुस्तोडियां री तराजां तोड़।
।। SS S S।। SS SS ।S।।S। = २८
तण व्यारा म्हा जीवण वारा वारा अमोड़क मोड़।
SS ।।।।।। SS ।।। ।।। S S। = २५
मीरां प्रभु दरसण दीज्या पुरब जणम को कोड़।[3]

---

१. भ्रमरगीतसार, पं० रामचन्द्र शुक्ल, पृ० ९२, पद सं० २४०
२. पद-सग्रह, प्रति सं० ३७१।२६६, काशी नागरी प्रचारिणी सभा, पृ० २४, पद सं० १
३. मीरा-स्मृति-ग्रथ, मीरा-पदावली, पृ० ४, पद सं० १३

पद की प्रत्येक पंक्ति मे विभिन्न मात्राये है । प्रथम पक्ति में १९ मात्राये, द्वितीय में २८, तृतीय मे ३०, चतुर्थ मे २८ और पचम पक्ति मे २५ मात्रायें है ।

(कृष्णभक्तिकालीन साहित्य के अन्तर्गत लिखित रूप मे यद्यपि पीछे कहे गये तीनो प्रकार के पद प्राप्त होते है किंतु उनमे असमान मात्रा वाले पदो का बाहुल्य है और समान मात्रा वाले पदो की संख्या अत्यधिक न्यून है । असमान मात्राओ वाले पदो के अधिक होने का प्रमुख कारण यही है कि कृष्णभक्तिकालीन कवि गाते समय सगीत के स्वरो तथा अकार आदि के द्वारा अपने पदो को ताल तथा लय मे बिठा लेते थे अत लिखित रूप मे उन पदो की पक्तियो मे मात्राओं की विभिन्नता का रह जाना स्वाभाविक ही है ।)

लय

भावानुकूल विलम्बित, मध्य तथा द्रुतलय का प्रयोग –

काव्य मे सगीत-माधुर्य को प्रस्फुटित करने के लिए जिस प्रकार भावानुकूल कोमल तथा परुष शब्दो का चयन करना अनिवार्य है उसी प्रकार लय[1] का भी विवेकपूर्ण प्रयोग होना चाहिये । भाव की जहाँ जैसी गति हो वहाँ वैसी ही लय प्रयुक्त की जानी चाहिए। प्रत्येक छंद की अलग-अलग गति होती है इसलिये विभिन्न भावों को प्रकट करने के लिये विभिन्न छंदो का प्रयोग किया जाता है । कुशल कवि रस तथा भावानुकूल छंद-चयन द्वारा सगीत के अनुकूल वातावरण उपस्थित करने मे समर्थ होता है। उदाहरण स्वरूप देखिए –

रामचरितमानस मे राम के राज्याभिषेक का समय सब के लिए सुखद और आनंदप्रद है । जिस समय राम गद्दी पर आसीन होते है उस समय नाना वाद्य बजाए जाते है और मंगलगान आयोजित किये जाते है । राम के गद्दी पर बैठते ही –

सिंहासन पर त्रिभुवन सांई, देखि सुरन्ह दुंदुभी बजाई ।[2]

लिखने के उपरान्त तुलसी तत्काल ही चौपाई छद को छोड़कर हरिगीतिका छंद पकड़ लेते है –

नभदुंदुभी बाजहिं विपुल गंधर्व किन्नर गावहीं ।
नाचहिं अप्सराबृन्द, परमानंद सुर मुनि पावहीं ।।[3]

---

१. "स्वर की एक गति होती है । जिस गति से स्वर चलते है उसको 'लय' कहते है । यह लय कभी विलम्बित, कभी मध्य और कभी द्रुत होता है । संगीत का पूरा आनंद लेने के लिये स्वर के साथ लय का भी ध्यान रखना चाहिये ।" सारंग, ७ दिसंबर १९५४ ई०, संगीत के सुनने की कला, ठा० जयदेव सिंह, पृ० ४

२. रामचरितमानस, टीकाकार हनुमान प्रसाद पोद्दार, पृ० १०३२

३. वही, पृ० १०३२

तुलसी जानते थे कि राजगद्दी का मगलोत्सव अत्यधिक संगीतपूर्ण होता है, इसे पढते ही भक्त आनन्द-विह्वल हो उमग से झूमने लगेगा, इसीलिए उन्होने तत्काल उस छंद का प्रयोग किया जो वातावरण को सगीत की ध्वनि से गुजायमान कर दे। कवि चौपाई में भी दुन्दुभी बजवा सकता था तथा किन्नरो का गान और अप्सराओ का नृत्य भी करा सकता था किंतु संगीत की जो तीव्र ध्वनि, संगीत का जो लययुक्त प्रवाह, हरिगीतिका मे सुनाई पड़ रहा है वह चौपाई मे कहाँ होता ?

इसी प्रकार कवि चन्दवरदायी की छद-चयन सबधी निपुणता ने उन्हे सगीत के उपयुक्त भावमय वातावरण के चित्र प्रस्तुत करने मे अत्यधिक सहायता प्रदान की है। "कवि ने अपने छंदो का चुनाव बडी दूरदर्शिता के साथ किया है। कथा के मोडो को भली प्रकार पहचान कर वर्ण और मात्रा की अद्भुत योजना करने वाला रासो का रचयिता वास्तव मे छदो का सम्राट था।"[1] राजा जयचद की सभा मे नृत्य-वर्णन के प्रमग के अन्तर्गत नमस्कार की मुद्रा से नृत्यारभ करते हुए कवि कहता है —

दूहा— **पहुपंजलि दिसि वाम कर। फिर लग्गी गुरपाइ ॥**
तरुनि तार सुर धरिय चित। धरनि लग्गी गुरपाइ ॥[2]

मगल आलाप के उपरान्त गान, वाद्य के साथ तीव्र लय में नृत्य होने लगता है —

उअं अलाग मद्धिता सुरं सु ग्रामपंचम।
षडंग तप्प मूरछं मनुंत मान संचमं।
निसंग थारंत अलप्य जापते प्रसंसई।
दरस्स भाव नूपुरं इतन्न तान ने तई।
सुरंसपत्त तंत्र कंठ बोधि राग साभरं।
हहा हु हू निरष्णि तार रंभ चित्त ताहर।
ततंग थेइ तत्तथेइ तत्तथेइ तत्तथे सुमंडियं।
थथुंग थुंग थुंगथे विराम काम मंडयं।
सरग्गमप्प धुन्निधा धुन धुनं निरष्षियं।
भवंति जोति अंग मानु अंग अंग लष्षिय।
कल कलं सुसथ्थनं सुभेदन मन मनं।
रनक्कि भ्कंकि नूपरं बुलंत झभ्कन भ्कनं॥[3]

वातावरण को संगीतमय और शात वनाने के लिए नृत्य प्रारम्भ करते हुए नमस्कार तथा मगल आलाप मन्द लय मे किया जाता है। इसके उपरान्त नृत्य मे गति और तीव्रता आ जाती है। हाव-भाव दिखाते हुए तीव्र गति के साथ नृत्य-कला का प्रदर्शन होने लगता

१ रेवातट, सं० डा० विपिनबिहारी त्रिवेदी, भूमिका, पृ० ४२
२. पृथ्वीराजरासो, चंदवरदायी, नागरी प्रचारिणी सभा संस्करण, समय ६१.
३. वही, समय ६१

है। कवि ने नृत्य की समस्त मुद्राओ का सजीव यथातथ्य आभास देने के लिए पहले दूहा छद का प्रयोग किया है। लय मन्द गति से चलती है किंतु नृत्य का आरंभ होने के उपरान्त तत्काल ही कवि चंद दूहा छंद को त्याग कर नाराच छद पकड लेते है जिसकी गति के द्वारा तीव्र लय मे होते हुए नृत्य, नूपुरो की झनकार और विविध वाद्ययंत्रो की ध्वनि का चित्र नेत्रो के सम्मुख अंकित हो जाता है।

पदो मे यद्यपि छदो की भाँति मात्रा, यति आदि के प्रयोग करने का कोई निश्चित नियम नही है किंतु पदो के द्वारा भी कम-अधिक मात्राओ और छोटे बडे चरणो के प्रयोग तथा लघु-गुरु वर्णो की आवृत्ति के द्वारा द्रुत, मध्य और विलम्बित लय की सृष्टि करके भावानुकूल नाद-सौंदर्य प्रवाहित किया जा सकता है। उदाहरणस्वरूप कवि विद्यापति का एक पद देखिये –

सुंदरि चललिहु पहु घर ना।
चहु दिश सब कर धर ना।
जाइतहु लागु परम डर ना।
जइसे ससि काँप राहु डर ना।
जाइतहि हार टुटिए गेल ना।
भूखन बसन मलिन भेल ना।
रोए रोए काजर दहाए देल ना।
अदकहि सिंदुर भेटाए देल ना।
भनइ विद्यापति गाओल ना।
दुख सहि सहि सुख पाओल ना॥[1]

यहाँ पर कवि को कोमल और मधुर भावो का प्रकाशन करना था इसलिए उसने द्रुत लय मे छोटे-छोटे चरणो से युक्त पद का सृजन किया है। किंतु घनघोर गर्जन करते हुए बादलो और उससे जागरित हुई विरहिणी के हृदय की सुप्त स्मृति तथा व्यथा के चित्रण मे मेघ के भयानक गर्जन और घनीभूत व्यथा के प्रकट करने के लिए छोटे-बडे चरणो के प्रयोग, लघु-दीर्घ वर्णो की आवृत्ति के द्वारा कवि ने एक ही पद मे द्रुत तथा विलम्बित लय की सृष्टि करके सगीत की अपूर्व ध्वनि झकृत की है –

सखि हे हमर दुखक नहि ओर।
इ भर बादर माह भादर, सून मंदिर मोर।
झंपि घन गरजंति संतत भुवन भरि वरसंतिया।
कंत पाहुन काम दारुन सघन खर सर हतिया।
कुलिस कत सत पात मुदित मयूर नाचत मातिया।
मत्त दादुर डाक डाहुक फाटि जायत छातिया।

---

१. विद्यापति-पदावली, रामवृक्ष बेनीपुरी, पृ० १०३, पद सं० ७२

तिमिर दिग भरि घोर यामिनि अथिर बिजुरिक पाँतिया ।
विद्यापति कह कइसे गमाओब हरि बिना दिन-रातिया ।।'[1]

यो तो कृष्णभक्तिकालीन प्राय सभी कवियो के पदो मे लय का भावानुकूल सफल निर्वाह किया गया है किंतु मीरा के पद इस दृष्टिकोण से अत्यधिक महत्वपूर्ण है । लघु-गुरु वर्णो की आवृत्ति, उतार-चढाव तथा समन्वित संतुलन और न्यूनाधिक मात्राओ से युक्त छोटी-बड़ी पंक्तियो के सहयोग मे भावानुकूल द्रुत तथा विलम्बित लय की योजना द्वारा मीरा के पदो मे संगीत की धारा सुन्दरतम रूप मे प्रवाहित हुई है । उदाहरणस्वरूप देखिए — संयोग के क्षणों मे कृष्ण के अनुराग-रस से भीज-भीज कर मतवाली मीरा होली की उन्मत्त उमंग तथा हर्षोल्लास का यथातथ्य आभास देने के लिए द्रुत लय मे छोटे-छोटे चरणो से युक्त पद का गायन करती है -

रंग भरी रागभरी राग सूं भरी री ।
होडी खेड्या स्याम संग रंग सूं भरी री ।
उडत गुड़ाड़ लाड़ बादड़ा रो रंग ड़ाड़ ।
पिचकां उड़ावां रंग रंग री झरी री ।
चोवा चंदण अरगजां म्हां केसर णो गागर भरी री ।
मीरां दासी गिरधर नागर चेरी चरण धरी री ।।[2]

किंतु संयोगावस्था मे आनंद प्रदान करने वाली होली की क्रीडायें कृष्ण के वियोग में विरह-वेदना की उद्दीपक बन असहनीय हो रही है । अस्तु हृदय की खीभ, उपालंभ और कसक को प्रकट करने के लिए मीरा गुरुवर्णो के प्रयोग-बाहुल्य द्वारा विलम्बित लय का आश्रय ग्रहण करती है

होड़ी पिया बिण लागां री खारी ।
शूणो गांव देस सब शूणो शूणी सेज अटारी ।
शूणी बिरहण पिव बिण डोड़ां तज गयां पीव पियारी ।
बिरहा दुख भारी ।।
देस विदेशा णा जावां म्हारो आणेशा भारी ।
गणतां गणतां घिश गयां रेखां आंगरियां री शारी ।
आया णा री मुरारी ।।
बाज्यां झांझ मिरदंग मुरलियां बाज्यां कर इकतारी ।
आया बसंत पिया घर णा री म्हारी पीड़ा भारी ।
स्याम मण क्यां री बिसारी ।।

---

१. विद्यापति-पदावली, रामवृक्ष बेनीपुरी, पृ० ३६२, पद सं० १९९
२. मीरा-स्मृति ग्रंथ, मीरा-पदावली, पृ० २१, पद सं० ७३

ठाढ़ी अरज करां गिरधारी राख्यां ड़ाज हमारी ।
मीरा रे प्रभु मिड़श्यो माधो जणम जणम री क्वांरी ।
मणे लागी दरसण तारी ।।[1]

तथा –

होड़ी पिया बिण म्हाणे णा भावां घर आंगणां णा शुहावां ।
दीपां जोयां चोक पुरांवां हेड़ी पिया परदेस शजावां ।
शूणी शेजा ब्याड़ बुझावां जागा रेण बितावां ।
णीद नेणा णा आवां ।।

कब री ठाढ़ी म्हा मग जोवां णिश दिण बिरह जगावां ।
क्या शूं मण री बिथा बतावां हिबडो म्हां अकुड़ावां ।
पिया कब दरश दखावां ।।

दीख्यां णा कांई परम सणेही म्हारो सणेशा लावां ।
वां बिरयां कब होशी म्हारो हंस पिय कण्ठ ड़गावां ।
मीरा होड़ी गावां ।।[2]

तुक अथवा अन्त्यानुप्रास –

लय पर नियंत्रण करने और पदों की संगीतात्मकता तथा नाद-सौदर्य की वृद्धि में तुक अथवा अन्त्यानुप्रास अत्यधिक सहायक होता है। पद्य के चरणात की अक्षर-मैत्री को तुक या अन्त्यानुप्रास कहते है।[3]

---

१. मीरा-स्मृति-ग्रंथ, मीरा-पदावली, पृ० २६, पद सं० १०२

२. वही, पृ० २०, पद सं० ७०

३ व्यंजनं चेद्यथावस्थं सहाद्येन स्वरेण तु ।
आवर्त्यतेऽन्त्ययो ज्यत्वादन्त्यानुप्रास एव तत् ।। ६ ।।

"पहिले स्वर के साथ ही यदि यथावस्थ व्यंजन की आवृत्ति हो तो वह अन्त्यानुप्रास कहलाता है। इसका प्रयोग पद अथवा पाद आदि के अंत में ही होता है। अतः इसे अन्त्यानुप्रास कहते हैं।"

साहित्य-दर्पण, विश्वनाथ शालिग्राम शास्त्री की टीका, पृ० ८२

"प्रत्येक पद के चार चरण होते हैं। इन चरणों के अन्त्याक्षरों को तुकांत कहते हैं।" छंदः प्रभाकर, जगन्नाथप्रसाद, 'भानु' पृ० २३६

"तुकांत पर दो ढग से विचार हो सकता है। एक तो चरण के अंत मे पड़ने वाले स्वरों और अक्षरों के आधार पर और दूसरे प्रत्येक चरण के अन्य चरणों के समन्वय के विचार से होने वाले स्वरूप के आधार पर। पहले को तुक का अंतवर्ती और दूसरे को तुक का बहिर्वर्ती प्रकार कह सकते है। अन्तर्वर्ती तुक तीन प्रकार के माने गए है – उत्तम, मध्यम, अधम। ······ इन तीनों के भिन्न-भिन्न प्रकार के तीन-तीन भेद और माने गये

है; जिनके नाम ये हैं—उत्तम – समसरि, विषमसरि, कष्टसरि, मध्यम – असयोगमीलित, स्वरमीलित, दुर्मिल ; अधम – अमिलसुमिल, आदिमत्तअमिल, अतमत्तअमिल ।

जहाँ तुकांत मे जितने वर्ण मात्रा सहित दिखाई दे उनका स्वरूप सब स्थानों में एक सा रहे और तुकात में पडनेवाले शब्द स्वत पूर्ण हो वहाँ 'समसरि' उत्तम तुकात होता है, जैसे – चलना, पलना, पालना, आदि –

आनन - कलानिधि मे दूनी कला देख देख ,
चाहक चकोरों के उदास उर ऊलेंगे ।
दाड़िम के दानी फल दाने उगलेंगे नहीं ,
कुंद - कलियों के झुंड झाड़ में न झूलेंगे ।।

जहाँ सभी तुकातो के शब्द एक से न हो, कोई तुक बडे शब्द का खड हो तो कोई पूर्ण. वहाँ 'विषमसरि' उत्तम तुकात होता है, जैसे –

त्यों अभिमान को कूप इतै ,
उतै कामना रूप सिलान की ढेरी ।

तू चल मूढ़ संभारि अरे मन ,
राह न जानी है रैन अँधेरी ।।

यहाँ 'ढेरी' का तुकात 'अँधेरी' रखा गया है । जहाँ कुछ तुकात खडित और कुछ पूर्ण हो वहाँ 'कष्टसरि' उत्तम तुकात होता है, जैसे 'बिलोकिए', 'तिलोकिए', के साथ 'को किए' और 'रोकिए' । (कवितावली - सुदरकाड)

जहाँ सयुक्त वर्ण के तुकात मे कोई असयुक्त वर्ण हो वहाँ 'असयोगमीलित' मध्यम तुकात होता है, जैसे –

बरसती है खचित मणियो की प्रभा ,
तेज में डूबी हुई है सब सभा ।

यहाँ प्रभा मे 'प्र' सयुक्त वर्ण है और सभा मे 'स' असयुक्त वर्ण । यदि सभा के स्थान पर 'स्त्रभा' होता तो यह उत्तम तुकात कहा जाता ।

जहाँ तुकात मे केवल स्वर मिलता हो वहाँ 'स्वरमीलित' मध्यम तुकात होता है, जैसे – जियै, सुनै, मै, कै, आदि । यहाँ केवल ऐ' स्वर का साम्य है ।

जहाँ अत का वर्ण या स्वर मिला तो हो पर उसके पूर्व के स्वर-व्यंजन एकदम भिन्न हो और विजातीय हो वहाँ 'दुर्मिल' मध्यम तुकात समझना चाहिए, जैसे – 'सरलपन ही था उसका मन । निराला पर था आभूपन' इसमे 'का मन' और 'भूपन' दुर्मिल है ।

जहाँ सरलतापूर्वक मिलनेवाले तुक के साथ एक आध शब्द बेमेल भी पड़े हो वहाँ

'अमिलसुमिल' अधम तुकात माना जाता है, जैसे – पलके, अलके, झलके का तुकात 'न छकै' रखना।

जहाँ ऐसे तुकात हो कि छद के अत की मात्राएँ और वर्ण तो मिलते हो पर तुकांत के आदि मे स्वर विभिन्न हो वहाँ 'आदिमत्त अमिल' अधम तुकात माना जाता है। जैसे –

मृदु बोलन तोय सुधा श्रवती।
तुलसी बन-बेलिन में भंवती॥
नहि जानिय कौन अहै युवती।
वहि तें अब औध है रूपवती॥

यहाँ 'वती' का तुकात तो मिल गया है किंतु इसके पहल के स्वर एक से नही है।

जहाँ तुक की अंतिम मात्रा अमिल हो, केवल व्यजन मिलता हो वहाँ 'अतमत्त अमिल' तुकात होता है; जैसे –

गंगे बढ़कर विष हुआ,
सुधा सदृश तब अंबु।
जीवन पाकर खो रहे,
जीवन जीव - कदब॥

चरणो के समन्वय के आधार पर तुकात छ ढग के होते है –

(१) **सर्वान्त्य** – जिस छंद के चारो चरणो के अन्त्याक्षर एक से हो। यथा –
न ललचहु। सब तजहु। हरिभजहु। यमकरहु।

(२) **समान्त्य विषमान्त्य** – जिस छंद के सम से सम और विषम से विषम पद के अन्त्याक्षर मिले। यथा –

जिहि सुमिरत सिधि होय, गणनायक करिवर वदन।
करहु अनुग्रह सोय, बुद्धि राशि शुभ गुण सदन॥

(३) **समान्त्य** – जिस छंद के सम चरणो के अन्त्याक्षर मिलते हो परन्तु विषम चरणो के नही। यथा –

सब तो। शरणा। गिरिजा। रमणा।

(४) **विषमान्त्य** –जिस छंद के विषम चरणो के अन्त्याक्षर मिलते हो परन्तु सम चरणो के नही। यथा –

लोभहि प्रिय जिमि दाम, कामिहि नारि पियारि जिमि।
तुलसी के मन राम, ऐसे ह्वै कब लागि हौ॥

(५) **समविषमान्त्य** – जिस छंद के प्रथम पाद का अन्त्याक्षर दूसरे पद के अन्त्याक्षर से और तीसरे का चौथे से मिले। यथा –

जगो गुपाला। सुभोर काला। कहै यशोदा। लहै प्रमोदा।

तुक के संयोग से सगीत की धारा स्वाभाविक गति से आगे बढती जाती है । "तुकात का प्रभाव भी कुछ ऐसा होता है कि वह चरण के मध्य की स्वरभिन्नता को दबाकर अन्त मे स्वर को एक ताल पर बैठा देता है । हृदय की लयात्मक प्रवृति से अंत्यानुप्रास या तुकांत का इतना सामंजस्य है कि पदोच्चारण के पहले ही विविक्षित पदांत की कल्पना से सम पर मस्तक झुक जाता है । ऐसा नही कि पाठक या श्रोता थके मजदूर की तरह घर पहुँचकर सर का बोझा धम्म से पटक देते है ।"[1] तुक के प्रभाव और महत्व का प्रतिपादन करते हुए श्री सुमित्रानन्दन पंत कहते है – " तुक राग का हृदय है । जहाँ उसके प्राणो का स्पन्दन विशेष रूप से सुनाई पड़ता है । राग की समस्त-छोटी बड़ी नाडियाँ मानो अत्यानुप्राम्स के नाडी चक्र मे केन्द्रित रहती है, जहाँ से नवीन बल तथा शुद्ध रक्त ग्रहण कर वे छंद के शरीर में स्फूर्ति संचार करती रहती है । जो स्थान ताल मे सम का है वही स्थान छद मे तुक का । वहाँ पर राग शब्दो की सरल-तरल ऋजु-कुचित 'परनो' में घूम फिर कर विराम ग्रहण करता उसका शिर जैसे अपनी ही स्पष्टता मे हिल उठता है । जिस प्रकार अपने आरोह अवरोह मे रागवादी स्वर पर बार-बार ठहर कर अपना रूप विशेष व्यक्त करता है, उसी प्रकार वाणी का राग भी तुक की पुनरावृत्ति से स्पष्ट तथा परिपुष्ट होकर लययुक्त हो जाता है ।"[2] प० रामचन्द्र शुक्ल ने भी तुक का विधान नादसौंदर्य की वृद्धि के लिए आवश्यक माना है – 'श्रुति कटु मान कर कुछ वर्णो का त्याग, वृत्त विधान, लय, अन्त्यानुप्रास आदि नाद-सौंदर्य साधन के लिए ही है ।"[3]

सगीत पूर्ण होने के कारण कृष्णभक्तिकालीन साहित्य मे तुको का सर्वत्र प्रयोग हुआ है । कृष्णभक्तिकालीन कवियो के पदो मे सर्वान्त्य तुकात, समविषमान्त्य तुकात, समसरि उत्तम तुकात और विषमसरि उत्तम तुकात का बाहुल्य है । उदाहरणस्वरूप इन प्रकारो की तुको के कतिपय पद दृष्टव्य होगे –

सर्वान्त्य तुकांत –

> **सुंदर सत्ता की सीवाँ नैन ।**
> **परम स्वच्छ चपल अनियारे, सहज लगावत मैन ॥**

---

(६) **भिन्न तुकांत** – जिस छद के सम से सम और विपम से विषम पदो के अन्त्याक्षर न मिले । इसके तीन भेद है –

(क) **प्रतिपद भिन्नांत्य** – रामा जू । ध्यावोरे । भक्ती को । पावोगे ।

(ख) **पूर्वार्द्ध तुकांत** – श्री रामा । विश्रामा । दै दीजै । दाया कै ।

(ग) **उत्तरार्द्ध तुकांत** – दै दीजै । दाया कै । श्री रामा । विश्रामा ।"

छंद प्रभाकर, जगन्नाथप्रसाद भानु, पृ० २३७ - ३८

१. **जीवन के तत्व और काव्य के सिद्धांत, लक्ष्मीनारायण सुधांशु, पृ० १६८,**

२ **पल्लव, सुमित्रानंदन पंत, भूमिका, पृ० ४०.**

३. **चिन्तामणि, प्रथम भाग, प० रामचन्द्र शुक्ल, सं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, पृ० १७६.**

कमल-मीन मृग खग आधीनहिं, तजि अपने सुख सब चैन ।
निरखि सबनि सखि, एक अंस पर सब सुख के ये दैन ।।
जब अपने रस गूढ़ भाव करि, कछुक जनावत सैन ।
'कुंभनदास' प्रभु गोबरधन-धर, जुवतिन मन हरि ऐन ।।[१] (कुंभनदास)

ग्वालिन कृष्ण दरस सों अटकी ।
बार बार पनघट पर आवत, सिर यमुना जल मटकी ।।
मन मोंहन को रूप सुधानिधि, पिवत प्रेम रस गटकी ।
'कृष्णदास' धन्य धन्य राधिका, लोक लाज सब पटकी ।।[२] (कृष्णदास)

सब ब्रज गोपी रही तकि ताक ।
कर कर गाँठि लसत सबहिंन के, बन कों चलत जब छाक ।।
मधु मेवा पकवान मिठाई, घर घरतें लै निकसी थाक ।
'नंददास' प्रभु को यह भावत, प्रेम प्रीति के पाक ।।[३] (नंददास)

डगमगात आए नट नागर ।
कछु जँभात अलसात भोर भए, अरुन नैन झूँमत निसि जागर ।।
रसिक गुपाल सुरति-रन कौ जस, सकल चिह्न लाए उर कागर ।
'चतुर्भुजदास' प्रभु गिरिधरन कुंज गढ़ रतिपति जीत्यौ रस सुख सागर ।।[४]
(चतुर्भुजदास)

लाडिलौ लड़ाइ बुलावत धेंन ।
चढ़ि कदंब, धौरि धूंमरि काजर अरु पीयरी पूरत मधुर सुन बैन ।।
पुचकारत, पौंछत सुंदर कर, सकल सुभग सुख-ऐन ।
'गोविंद' प्रभु कौ मुख देखि हूँकि-हूँकि, सबै स्रवत पय-फैन ।।[५]
(गोविंदस्वामी)

प्रीतम प्यारे ने हौ मोही ।
नेक चितै इन चपल नैन सों, कहा कहूँ तोही ।।
कहा कहूँ मोंहि रह्यौ न जावै, जब देख्यौ चित गोही ।
'छीतस्वामी' गिरधरन निरखि के, अपनी सुधि हौं खोही ।।[६]
(छीतस्वामी)

---

१. अष्टछाप-परिचय, प्रभुदयाल मीतल, पृ० १०६, पद सं० १०.
२. वही, पृ० २३२ पद सं० २८
३. वही, पृ० ३१९, पद सं० ८०
४. वही, पृ० २९२, पद सं० ७८.
५. वही, पृ० २४९, पद सं० १८
६. वही, पृ० २६६, पद सं० १४.

युगल वर आवत हैं गठ जोरे ।
संग सोभित वृषभान नन्दिनी ललितादिक तृणतोरे ।।
सीस सेहरो बन्यौ लाल के निरख हसत मुख मोरे ।
निरख निरख बल जाय गदाधर छबिन बढ़ी कछु थोरें ।।[१]

(गदाधर भट्ट)

सखिन संग राधिका कुंवरि बीनति कुसुम कलियाँ ।
एक ही बानिक एक वेस क्रम स्याम बाल के हाथन रँगीली डलियाँ ।।
एक अनूपम माल बनावत एक परस्पर वेनी गूंथत सोभित कुन्द कलियाँ ।
सूरदास मदनमोहन आय अचानक ठाड़े भये मानी हैं रंगरलियाँ ।।[२]

(सूरदास मदनमोहन)

अति ही अरुन तेरे नयन नलिन री ।
आलश युत इतरात रँगमगे भये निसि जागरन खिन मलिन री ।।
सिथिल पलक मे उठति गोलक गति विधि यौ मोहन मृग सकत चलिन री ।
जै श्री हितहरिवंश हस कल गामिनि संभ्रम देत भवरनि अलिन री ।।[३]

(हितहरिवंश)

बधिक हूतें अधिक उरज की चोट ।
अनी अन्योर बान-धनुष बिनु, तकि बेध्त तन-ओट ।।
मोहन मृग मोह्यौ बिनु नादहिं, लगत न जानत चोट ।
'व्यास' बरावस हाव कियौ हठि, चंचल अंचल ओट ।।[४] (व्यास जी)

नाचत मोरनि सग स्याम मुदित स्यामाहि रिझावत ।
तैसीयै कोकिला अलापति सुर देत तैसीई मेघ गर्जित मृदंग बजावत ।।
तैसीयै स्याम घटा निसिकारी तैसीये दामिनि कौंधि दीप दिखावत ।
श्री हरिदास के स्वामी स्यामा कुंजविहारी रीझि राधे हसि कंठ लगावत ।।[५]

(हरिदास स्वामी)

सजनी नव निकुंज द्रुम फूले ।
अलि कुल मनमथ करत कुलाहल सौरभ मनमथ भूले ।।
हरषि हिडोरै रसिक रासिवर जुगल परस्पर झूले ।
श्री वीठल विपुल विनोद देखि नभ देव विमाननि भूले ।।[६]

(विट्ठलविपुल)

---

१ मोहिनीवाणी श्री श्री गदाधर भट्ट जी की, प्रकाशक कृष्णदास, पृ० ३६
२ अकबरी दरबार के हिंदी कवि, सरयूप्रसाद अग्रवाल, पृ० ४४८, पद सं० ३
३. चौरासी पद, हितहरिवंश, प्रति सं० ३८।२१५, प्रयाग-संग्रहालय, पद सं० ८.
४. भक्त कवि व्यास जी, वासुदेव गोस्वामी, व्यासवाणी, पृ० २८३, पद सं० ३५६.
५. पद-संग्रह, प्रति स० ३७१।२६६, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, पृ० २४, पद सं० १.
६. पद-संग्रह, प्रति सं० १६२०।३१७०, हिंदी-संग्रहालय प्रयाग, पृ० ३६–४०, पद सं० १३

उपमा कहा देउँ को लाइक, केहरि की वाही मृग लोचनि ।
'परमानंद' प्रभु प्रान-वल्लभा, चितवनि चारु काम-सर-मोचनि ॥[१]
(परमानंददास)

दूलह गिरिधर लाल छबीलौ, दुलहिन राधा गोरी ।
जिन देखत जिय में मन लाजत, ऐसी बनी है जोरी ॥
रतन जड़ित कौ बन्यौ सेहरो, गज-मोतिन की माला ।
देखत बदन स्याम सुंदर कौ, मोहि रहीं ब्रज बाला ॥[२] (नंददास)

ग्वालिनि तोहि कहत क्यो आयौ ।
मेरौ कान्ह निपट बालक, क्यों चोरि माखन खायौ ॥
बूझि विचार देखि जिय अपुने, कहा कहों हौं तोहि ।
कंचुकि-बंद तोरै यह कैसें, सो समुझि परत नहि मोहि ॥
'चतुर्भुजदास' लाल गिरिधर सों, झूठी कहति बनाय ।
मेरौ स्याम सकुच कौ लरिका, पर घर कबहुँ न जाय ॥[३] (चतुर्भुजदास)

चितवत रहति सदा श्री गोकुल तन ।
बारंबार खिरक ह्वै झाँकत, अति आतुर पुलकित मन ॥
नम्र सखा सुख संगहि चाहत, भरत कमल-दल लोचन ।
ताही समै मिले 'गोविंद' प्रभु, कुँवर विरह दुख मोचन ॥[४]
(गोविंदस्वामी)

अरी हौ स्याम रूप लुभानी ।
मारग जाति मिले नँद नंदन, तन की दसा भुलानी ॥
मोरमुकुट सीस पर बाँकौ, बाँकी चितवनि सोहै ।
अंग अग भूषन बने सजनी, जो देखै सो मोहै ॥
मो तन मुरिके जब मुसिकाने, तब हौं छाकि रही ।
'छीतस्वामी' गिरिधर की चितवनि, जाति न कछू कही ॥[५]
(छीतस्वामी)

सखी हौ स्याम रंग रँगी ।
देखि बिकाइ गयी वह मूरति, सूरति माँहि पगी ॥
संग हुतो अपनो सपनो सो, सोई रही रस खोई ।
जागेहु आगे दृष्टि परै सखि, नेकु न न्यारो होई ॥

---

१. अष्टछाप-परिचय, प्रभुदयाल मीतल, पृ० १६७, पद सं० ६६
२. वही, पृ० ३२०, पद सं० १८
३. वही, पृ० २७६, पद सं० १६
४. वही, पृ० २५७, पद सं० ५१
५. वही, पृ० २६६, पद सं० १२

एक जु मेरी अँखियनि में निसि द्योस रह्यो करि भौन ।
गाइ चरावन जाति सुन्यो सखि, सो धौं कन्हैया कौन ॥[१]

(गदाधर भट्ट)

जोवन मोर रोमावली सुफल फली कंचुकी बसंत ढाँपि ले चली बसंत पूजन ।
वरन वरन कुसुम प्रफुलित अंब मोर ठौर ठौर लागे री कोकिला कूजन ।
बिबिध सुगन्ध संभारि अरगजा गावत रितुराज राग सहित ब्रजबधू बन ।
सूरदास मदनमोहन प्यारी ओ पिय सहित चाहत कुसल सदा दोऊ जन ।[२]

(सूरदास मदनमोहन)

फिरत संग अलिकुल-मोर-चकोर ।
घनरु जुन्हाई सरद बसंत मनहुँ है जुगलकिसोर ॥
निकट कुरंग-कुरंगिनि आवत, सुनि मुरली-धुनि घोर ।
'व्यास' आस करि त्रास तजत सर, चक्रवाक भरि भोर ॥[३] (व्यास जी)

जन्म गवायो रैन रे मूरिष अंधा ।
हरि विण कविण कटै क्यों फंधा ॥
पर घर रहै कहै मैं मेरा ।
आवागवण वहै भ्रम फेरा ॥[४] (परशुराम)

समसरि उत्तम तुकांत –

ऊधौ बिरहौ प्रेम करै ।
ज्यै बिनु पुट पट गहत न रँग कौं, रँग न रसै परै ॥
ज्यौं घर दहै बीज अंकुर गिरि, तौ सत फरनि फरै ।
ज्यौ घट अनल दहत तन अपनौ, पुनि पय अमी भरै ॥
ज्यौं रन सूर सहै सर सन्मुख, तौ रवि रथहुँ अरै ।
सूर गुपाल प्रेम पथ चलि करि, क्यौं दुख-सुखनि डरै ॥[५] (सूरदास)
माई री ! चंद लग्यौ दुख दैन ।
कहाँ वे देस, कहाँ वे मोहन, कहाँ वे सुख की रैन ॥

---

१. मोहिनी वाणी श्री श्री गदाधर भट्ट जी की, प्रकाशक कृष्णदास, पृ० २५
२. अकबरी दरबार के हिंदी कवि, सरयूप्रसाद अग्रवाल, पृ० ४५०, पद सं० ११
३. भक्तकवि व्यास जी, वासुदेव गोस्वामी, व्यासवाणी, पृ० ३०८, पद सं० ४४३
४. रामसागर, परशुराम, प्रति सं० ६८०।४६२, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, रा० साग० ५३, पद सं० ४
५. सूरसागर, (भाग २), दशमस्कध, पृ० १५८८, पद सं० ४६०४

तारे गिनत गई री सबै निसि, नैक न लागे नैन ।
'परमानंद' पिया बिछुरे तें, पल न परत चित चैन ।।[1] (परमानंददास)

रूप देखि नैननि पलक लागें नहीं ।
गोवरधन-धर अंग-अंग प्रति जहाँ ही परति दृष्टि रहति तहीं ।।
कहा कहौं कछु कहत न आयौ चोर्‌यौ मन माँगिवे दही ।
'कुंभनदास' प्रभु के मिलन की, सुंदरि बात सखीनु सों कही ।।[2]
(कुंभनदास)

तोकों री स्याम कंचुकी सोहै ।
लहँगा पीत रंगमगी सारी, उपमा कों तहाँ कोहै ।।
चिबुक बिंदु, वर नैन, सु अंजन, धरिकै जब जोहै ।।
'चतुर्भुज' प्रभु गिरिधर नागर कों, चितै चतुर मन मोहै ।।[3]
(चतुर्भुजदास)

मोहन नैनन तें नहिं टरत ।
बिन देखे तलाबेली सी लागत, देखत मन जो हरत ।।
असन बसन सैन न सुधि आवै, अब मन कछु न करत ।
'गोविंद' बलि इमि कहत पियारी, सिख दैरी कैसैक आवै भरत ।।[4]
(गोविंदस्वामी)

ललन की बतियाँ चोज सनी ।
परम कृपाल चितै करुनामय, लोचन-कोर-अनी ।।
उमंगि ढरे दोऊ सुरत सेज पै, टूटी तरकि तनी ।
परम उदार 'व्यास' की स्वामिनि, बकसति मौज घनी ।।[5] (व्यास जी)
नव नव नव निकुंज नव वाला ।
नव रंग रसिक रसीलौ मौहन विलसत कुंज विहारी लाला ।।
नव मराल जीति अवनि धरत पग कूजित नूपुर किंकिन जाला ।
श्री वीठल विपुल विहारी के गर यों राजत जैसे चपे की माला ।।[6]
(विट्ठलविपुल)

री म्हा बैठ्यां जागां जगत शव शोवां ।
बिरहण बेढ्यां रंग महड़ मा णेणा लडयाँ पोवां ।।

---

१. अष्टछाप-परिचय, प्रभुदयाल मीतल, पृ० २०३, पद सं० ६६.
२. वही, पृ० १०७, पद सं० ११.
३. वही, पृ० २८४, पद सं० ४०
४. वही, पृ० २५५, पद सं० ३६.
५. भक्त कवि व्यास जी, वासुदेव गोस्वामी, व्यास वाणी, पृ० ३४३, पद सं० ५७०
६. पद-संग्रह, प्रति सं० १६२०।३१७० हिंदी-संग्रहालय प्रयाग, पद सं० ३६

तारां गणता रेण बिहावां शुख घड़्यां री जोवां ।
मीरां रे प्रभु गिरधर नागर मिड़ बिछड़्यां णा होवां ॥[१] (मीरा)

मोहैं दधि मथन दे बलि गई ।
जाउं बलबल बदन ऊपर छांड मथनी रई ॥
लाल देउंगी नवनीत लौंदा आर तुम कित ठई ।
सुत हित जान बिलोक जसोमति प्रेम पुलकित मई ॥
लै उछंग लगाय उरसो प्रान जीवन जई ।
बालकेलि गुपाल जू की आसकरन नित नई ॥[२] (आसकरण)

विषमसरि उत्तम तुकांत –

जाकै लागी होइ सु 'जानै' ।
हौं कासों समुझाइ कहति हौं मधुकर लोग 'सयाने' ॥[३] (सूरदास)

पतियाँ बाँचेहू न आवै ।
देखत अंक नैन जल पूरे, गदगद प्रेम जनावै ॥[४] (परमानंदास)

जगाई माई ! बोल बोल इन मोर ।
बरसत मेह अंधियारी चौमासे की, कैसै करौं नंदकिसोर ॥[५] (कुंभनदास)

आरती करत जसोदा प्रमुदित फूली अंग न मात ।
बलि-बलि कहि दुलरावति, आँगन मगन भई पुलकात ॥[६] (कृष्णदास)

हिंडोरे माई झूलत गिरिधर लाल ।
सँग राजत वृषभानु नंदिनी, अंग-अंग रूप रसाल ॥[७] (नंददास)

मैया मोहि माखन मिश्री भावै ।
मीठौ दधि मधु घृत अपने कर, क्यों नहि मोहि खवावै ॥[८] (चतुर्भुजदास)

प्रीतम प्रीति ही तें पैयै ।
जदपि रूप, गुन, सील, सुघरता, इन बातन न रिझैयै ॥[९]
(गोविंदस्वामी)

---

१. मीरा-स्मृति-ग्रंथ, मीरा पदावली, पृ० २७ पद, सं० ६६
२. अकबरी दरबार के हिंदी कवि, सरयूप्रसाद अग्रवाल, पृ० ४५२, पद सं० १०
३. सूरसागर, (भाग २), दशम स्कंध, पृ० १५७७, पद सं० ४५६८
४. अष्टछाप-परिचय, प्रभुदयाल मीतल, पृ० २०४, पद सं० १०१
५. वही, पृ० १११, पद सं० ३२
६. वही, पृ० २२६, पद सं० २
७. वही, पृ० ३२१, पद सं० १६
८. वही, पृ० २७८, पद सं० ११
९. वही, पृ० २५७, पद सं० ५४

करत कलेऊ मोहन लाल।
माखन, मिश्री, दूध मलाई, फल मेवा परम रसाल ॥[१] (छीतस्वामी)
राधे रूप अद्भुत रीति ।
सहज जे प्रतिकूल तो तन, रहे छाँड़ि अनीति ॥[२] (गदाधर भट्ट)
झूलत जुग कमनीय किसोर सखी चहुँ ओर झुलावत डोल ।
ऊँची ध्वनि सुन चकित होत मन सब मिल गावत राग हिंडोल ॥[३]
(सूरदास मदनमोहन)
मधुरित वृंदावन आनंद न थोर ।
राजत नागरी नव कुशल किशोर ॥[४] (हितहरिवंश)
रूप तेरौ री, मोपै बरन्यौ न जाइ ।
रोम रोम रसना पावौं, तौ गाऊँ तेरौ गुन अघाइ ॥[५] (व्यास जी)
राजत रास रसिक रस रासे ।
आस पास जुवती मुख मंडल मिलि फूले कमला से ॥[६] (विहारिनदास)
अंतरवसी री मेरें ।
प्रीति पर्म दयाल पीव की लागि रही हियरें ॥[७] (परशुराम)
चाड़ां मण व जमणा कां तीर।
वा जमणा कां निरमड़ पाणी सीतड़ होयां सरीर ॥[८] (मीरा)
प्रात समय घर घरतें देखन को आई गोकुल की नारी ।
अपनो क्रिसन जगाय यसोदा आनंद मंगलकारी ॥[९] (आसकरण)

कृष्णभक्तिकालीन साहित्य में प्रयुक्त ताल और उनकी समीक्षा

कृष्णभक्तिकालीन साहित्य के अधिकाश पदों के ऊपर तालों का उल्लेख नही मिलता । सूर, कृष्णदास, नंददास तथा छीतस्वामी के कुछ पदों के ऊपर अवश्य कुछ तालो का उल्लेख हुआ है । इन कवियों के पदों को तालानुसार संख्या निम्नलिखित प्रकार से है –

१. अष्टछाप-परिचय, प्रभुदयाल मीतल, पृ० २६४, पद सं० २
२. मोहिनी वाणी श्री श्री गदाधर भट्ट जी महाराज की, प्रकाशक कृष्णदास, पृ० २६
३. अकबरी दरबार के हिंदी कवि, सरयूप्रसाद अग्रवाल, पृ० ४५०, पद सं० १२
४. चौरासी पद, हितहरिवंश, प्रति सं० ३८।२१५, प्रयाग-संग्रहालय, पद सं० २७
५. भक्त कवि व्यास जी, वासुदेव गोस्वामी, व्यास वाणी, पृ० ३०२, पद सं० ४२४
६. पद-संग्रह, प्रति सं० ३७१।२६६, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, पृ० १४८, पद सं० २२.
७. रामसागर, परशुराम ६८०।४९२, का० ना० प्र० स०, पद सं० १३
८. मीरा-स्मृति-ग्रंथ, मीरा-पदावली, पृ० २, पद सं० ७
९. अकबरी दरबार के हिंदी कवि, सरयूप्रसाद अग्रवाल, पृ० ४५१, पद सं० ८

सूरदासकृत सूरसागर में प्रयुक्त ताल

ताल	पदसंख्या
तिलाला	५

डा० दीनदयालु गुप्त के कृष्णदास के हस्तलिखित पद-संग्रह में प्रयुक्त ताल

ताल	पदसंख्या	ताल	पदसंख्या
रूपक	५	जतिताल	१२
चर्चरी	३	एकताल }	११
पटताल	७	इकताल }	
		कुलपद	३८

डा० दीनदयालु गुप्त के नंददास के हस्तलिखित पद-संग्रह में प्रयुक्त ताल

ताल	पदसंख्या	ताल	पदसख्या
चौताल	१	इकताल	१
चंपक	२		
		कुलपद	४

डा० दीनदयालु गुप्त के छीतस्वामी के हस्तलिखत पद-संग्रह मे प्रयुक्त ताल

ताल	पदसंख्या
चर्चरी	२

तालों की मात्राओ, गति और उनके विभाजन के रूप में विभिन्नता होती है जिसके फलस्वरूप प्रत्येक ताल की गति, चलन तथा लय मे अन्तर रहता है अतः एक विशिष्ट पद को इच्छानुसार प्रत्येक ताल में बद्ध नही किया जा सकता वरन् जिस पद की जो गति, लय और चाल होती है उसी से साम्य रखने वाली ताल मे ही उस पद का गायन संभव है।

कृष्णभक्तिकालीन साहित्य मे प्रयुक्त पदो के ऊपर जिन तालों का उल्लेख हुआ है वे प्रायः समीक्षा करने पर खरे उतरते है अर्थात् पदों के ऊपर लिखित तालों में ही वे पद सुविधापूर्वक, सुगमता से बिना अधिक खीचतान किये गाये जा सकते है। उदाहरणस्वरूप कृष्णभक्तिकालीन कवियो के तालबद्ध रूप मे कतिपय पद दृष्टव्य होगे जिससे यह स्पष्ट प्रकट हो जायेगा कि कृष्णभक्तिकालीन साहित्य में प्रयुक्त पद के ऊपर जिस ताल का उल्लेख किया गया है वह पद उसी ताल मे गाया जा सकता है।

तिताला

हमारे प्रभु, औगुन चित न धरौ।
समदरसी है नाम तुम्हारौ, सोई पार करौ ॥

इक लोहा पूजा मैं राखत, इक घर बधिक परौ ।
सो दुबिधा पारस नहिं जानत, कंचन करत खरौ ।।
इक नदिया इक नार कहावत, मैलौ नीर भरौ ।
जब मिलि गए तब एक बरन ह्वै, गंगा नाम परौ ।।
तन माया ज्यौ ब्रह्म कहावत, सूर-सु मिलि बिगरौ,
कै इनकौ निरधार कीजियै, कै प्रन जात टरौ ।।[1] (सूरदास)

त्रिताल में १६ मात्रायें होती है जो चार बराबर भागों मे विभाजित होती है, पहली, पाँचवी और तेरहवी मात्राओ पर ताली तथा नवी मात्रा पर खाली होती है । ताल लिपि इस प्रकार है –

त्रिताल

मात्रा	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६
ठेका	धा	धिन्	धिन्	धा	धा	धिन्	धिन्	धा	धा	तिन्	तिन्	ता	ता	धिन्	धिन्	धा
ताल	×				२				०				३			

पद "हमारे प्रभु औगुन......" की तालबद्ध रचना

स्थाई

							ह	मा	रे	प्र	भु	ऽ	औ	गु	न
								२				०			
चि	त	न	ध	रौ	ऽ	ऽ	ह	मा	रे	प्र	भु	ऽ	औ	गु	न
३				×				२				०			

अंतरा १ला

म	म	द	र	सी	ऽ	है	ऽ	ना	ऽ	म	तु	म्हाऽ	ऽ	रौ	ऽ
०				३				×				२			
सो	ऽ	ई	ऽ	पा	ऽ	र	क	रौ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ
०				३				×				२			
इ	क	लो	ऽ	हा	ऽ	पू	ऽ	जा	ऽ	मे	ऽ	रा	ऽ	ख	त
०				३				×				२			
इ	क	घं	र	ब	धि	क	प	रौ	ऽ	ऽ	ह	मा	रे	प्र	भु
०				३				×				२			
ऽ	औ	गु	न	चि	त	न	ध	रौ							
०				३				×							

---

1. सूरसागर, (भाग १), प्रथमस्कंध, पृ० ७२, पद सं० २२०

अंतरा २ रा

सो ऽ दु वि	धा ऽ पा ऽ	र स न हि	जाऽ ऽ न त
०	३	×	२
क ऽ च न	क र त ख	रौ ऽ ऽ ऽ	ऽ ऽ ऽ ऽ
०	३	×	२
इ क न दि	या ऽ इ क	ना ऽ र क	हा ऽ व त
०	३	×	२
मैं ऽ लो ऽ	नी ऽ र भ	रौ ऽ ऽ ह	मा रे प्र भु
०	३	×	२
ऽ औ गु न	न्नि त न ध	रौ	
०	२	×	

अंतरा ३ रा

त न मा ऽ	या ऽ ज्यौ ऽ	ब्र ऽ ह्म क	हाऽ ऽ व त
०	३	×	२
ऽ सू र सु	मि लि बि ग	रौ ऽ ऽ ऽ	ऽ ऽ ऽ ऽ
०	३	×	२
कै ऽ इ न	कौ ऽ नि र	धा ऽ र की	ऽ जि यैं ऽ
०	३	×	२
कै ऽ प्र न	जा ऽ त ट	रौ ऽ ऽ ह	मा रे प्र भु
०	३	×	२
ऽ औ गु न	चि त न ध	रौ	
०	३	×	

रूपक ताल

कही न परति तेरे बदन की ओप ।
झलकनि नव मोतिनहि लजावत निरखत ससि सोभा भई लोप ।
पलक न लागत चाहत पिय तन उन्नत भौह मानो घटा टोप ।
चलल कटाछ कुसुम सर तानति फरकत अधर कछु प्रेम प्रकोप ।।
प्रात समें आए स्याम मनोहर तोहि लड़ावत अपनी चोप ।
कृष्णदास प्रभु गोवरधन धन तू नागरी वे नागर गोप ।।[1] (कृष्णदास)

ताल रूपक मे ७ मात्राये होती है जो तीन भागों में विभक्त होती है । पहले भाग में ३ मात्राये तथा दूसरे एवं तीसरे भाग मे दो दो मात्राये होती है । ताल लिपि इस प्रकार है –

---

१. हस्तलिखित पद संग्रह, डा० दीनदयालु गुप्त, पद सं० १०

ताल रूपक

१	२	३	४	५	६	७
ती	ती	ना	धी	ना	धी	ना
×			२		३	

पद– 'कहि न परति तेरे बदन की ओप' की ताल बद्ध रचना

स्थाई

प	र	ति	ते	ऽ	रे	ऽ	ब	द	न	क	हि	ना	ऽ
×			२		३		×			२		३	
ओ	ऽ	प	क	हि	ना	ऽ	प	र	ति	की	ऽ	ऽ	ऽ
×			२		३		×			२		२	

अंतरा पहला

न	व	मो	ति	न	हि	ल	जा	व	ति	भ	ल	क	नि
×			२		३		×			२		३	
सु	सि	सो	भा	ऽ	भ	ई	लो	ऽ	प	नि	र	ख	त
×			२		३		×			२		३	

अंतरा दूसरा

ला	ग	त	चा	ऽ	ह	त	पिय	त	न	प	ल	क	न
×			२		३		×			२		३	
भौं	ऽ	ह	मा	नो	घ	टा	टो	ऽ	प	उ	ऽ	न्न	त
×			२		३		×			२		३	

इकताल

तेरे चपल नैंन जुग खंजन लागत नीके ।
ताप हरन अति विदित बिस्व में देखत शतदल लागत नीके ॥
स्याम सेत राते अनियारे गिरिधर कुंमर सुख जीके ।
सुनि कृष्णदास सुरति कोतिक बस प्यारी दुलराए अपने पीके ॥'

इकताल मे १२ मात्रायें होती है जो ६ बराबर भागों में विभाजित होती है। पहली, पॉचवी, नवी और ग्यारहवी पर ताली तथा तीसरी और सातवी पर खाली होती है। ताल लिपि इस प्रकार है –

---

१ हस्तलिखित पद-संग्रह, कृष्णदास, डा० दीनदयालु गुप्त, पद सं० १४.

इकताल

मात्रा	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२
बोल	धीन्	धीन्	धागे	तिरकिट	तू	ना	क	त्ता	धागे	तिरकिट	धी	ना
ताल	×		०		२		०		३		४	

पद–'तेरे चपल नैन जुग खंजन' की ताल बद्ध रचना

स्थाई

ते	रे	च	प	ल	नै	ऽ	न	जु	ग	खंऽ	ऽ
×		०		२		०		३		४	ऽ
ज	न	ला	ऽ	ग	त	नी	ऽ	के	ऽ	ऽ	ऽ
×		०		२		०		३		४	

अंतरा–१

ता	ऽ	प	ह	र	न	अ	ति	वि	दि	त	ऽ
×		०		२		०		३		४	
वि	ऽ	स्व	में	ऽ	ऽ	देऽ	ऽ	ख	त	श	त
×		०		२		०		३		४	
द	ल	ला	ऽ	गऽ	त	नी	ऽ	ऽ	के	ऽ	ऽ
×		०		२		०		३		४	

इकताल

खेलत रास रसिक रस नागर ।
मंडित नव नागरी निकर-बर परम रूप कौ आगर ॥
बिकच बदन बनिता बृंद अतिसै अमल सरद सी राजत ।
एका सुभग सरोवर में जैसे फूले कमल बिराजत ॥
नव किसोर सुंदर सांवर अंग बलित ललित ब्रजबाला ।
मानों कंचन खचित नील मनि मंजुल पहिरी माला ॥
या छबि की उपमा कहिबे को ऐसौ कौन पढ्यौ है ।
'नंददास' प्रभु को कौतुक लखि कामहि काम बढ़्यौ है ॥[१]

(नंददास)

---

१. हस्तलिखित पद-संग्रह, नंददास, डा० दीनदयालु गुप्त, पृ० ५१

पद—'खेलत रास रसिक रस नागर' की ताल बद्ध रचना

स्थाई

खे	ऽ	ऽ	ल	ऽ	त	रा	ऽ	ऽ	स	ऽ	र
×		०		२		०		३		४	
सि	ऽ	क	र	ऽ	स	ना	ऽ	ऽ	ग	ऽ	र
×		०		२		०		३		४	

अंतरा पहला

मं	ऽ	ऽ	डि	ऽ	त	न	व	ऽ	ना	ऽ	ग
×		०		२		०		३		४	
री	ऽ	नि	क	र	ऽ	व	ऽ	र	प	र	म
×		०		२		०		३		४	
रू	ऽ	प	कौ	ऽ	ऽ	आ	ऽ	ऽ	ग	ऽ	र
×		०		२		०		३		४	

ताल चौताल

प्रातकाल नंदलाल पाग बनावत बाल दिखावत दर्पन रह्यौ लसि।
सुंदर करन में मंजु मुकुर की छबि रही फबि,
मानौ बिबि कमलन गहि आन्यौ ससि ॥
बीच बीच चित्त के चोर मोर चंदवा दियै,
ता पर रतन पेंच बांधत है कसि।
नंदवास ललितादिक ओट भयें अवलोकत,
अतुलित छबि रही फबि फूल डारि हँसि ॥[1]

चौताल मे १२ मात्रायें होती है जो ६ भागों में विभाजित होती है। यह पखावज पर बजाई जाती है और केवल ध्रुपद अथवा धमार गायन के माथ बजाई जाती है। ताल लिपि इस प्रकार है—

स्थाई

मात्रा	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२
बोल	धा	धा	दिन्	ता	किट	धा	दिन्	ता	किट	तक	गदि	गन
ताल	×		०		२		०		३		४	

१. हस्तलिखित पद-संग्रह, नंददास, डा० दीनदयालु गुप्त, पृ० ५१

पद–'प्रातकाल नंदलाल पाग बनावत' की ताल बद्ध रचना

स्थाई

प्रा	ऽ	त	का	ऽ	ल	नं	ऽ	द	ला	ऽ	ल
×		०		२		०		३		४	
पा	ग	ब	ना	व	त	बा	ला	दि	खा	व	त
×		०		२		०		३		४	
द	र	ऽ	प	ऽ	न	र	ह्यो	ऽ	ल	ऽ	सि
×		०		२		०		३		४	

अंतरा

सु	ऽ	ऽ	न्द	ऽ	र	क	र	न	में	ऽ	ऽ
×		०		२		०		३		४	
म	ऽ	ऽ	जु	ऽ	ऽ	मु	कु	र	की	ऽ	ऽ
×		०		२		०		३		४	
छ	वि	र	ही	ऽ	ऽ	फ	बि	मा	ऽ	नौ	ऽ
×		०		२		०		३		४	
बि	ऽ	बि	ऽ	क	म	ल	ऽ	न	ग	ऽ	हि
×		०		२		०		३		४	
आ	ऽ	ऽ	न्यौ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	स	सि
×		०		२		०		३		४	

कृष्णभक्तिकालीन कवियों की गायन-प्रणाली

८४ वैष्णवन की वार्ता से ज्ञात होता है कि कृष्णभक्तिकालीन कवियों के द्वारा ख्याल की गायकी हेय तथा निम्न कोटि की मानी जाती थी।[1] अतः प्रश्न उठता है कि इन कवियों को कौन सी गायन शैली मान्य थी और इन्होंने अपने पदों में किस प्रकार की गायकी को अपनाया था ?

। ध्रुवपद –कृष्णभक्तिकालीन कवियों के समय में ध्रुपद की गायकी का प्रचलन हो गया था।[2] "ध्रुवपद का अर्थ है ध्रुव, अर्थात् निश्चित पद। इसके निश्चत बँधे हुए पद

---

१. देखिए प्रस्तुत ग्रंथ के प्रथम अध्याय के अन्तर्गत कृष्णदास के संगीत-ज्ञान का परिचय।

२. "राजा मानसिंह ग्वालियर का शासक था और उसका संगीत-शास्त्र विषयक ज्ञान

होते है। इसके चार अवयव होते है। स्थायी, अन्तरा, संचारी और आभोग। कुछ ध्रुवपद ऐसे भी मिलते हैं जिन में स्थायी और अन्तरा केवल दो ही अवयव होते है। ध्रुवपद प्रबंध का रूपान्तर मालूम पड़ता है। आजकल के गवैये इसको धुरपद कहते है। यह अधिकतर चौताल, सूलफाकताल, झंपा, गजताल, तीव्रा, ब्रह्मा, रुद्र इत्यादि तालो मे गाया जाता है।··· "ध्रुवपद गाने के लिए अच्छा दम चाहिये और आवाज़ मे बड़ी कस चाहिए। ध्रुवपद मे तानो, मुर्की इत्यादि नहीं प्रयोग करते। इस मे राग की शुद्धता बहुत ही सुरक्षित रहती है।······इसमें वीर, शृंगार और शात रस की प्रधानता रहती है। मध्यकाल में ध्रुवपद के गानोवाले 'कलावन्त कहलाते थे।"[1]

तथा कीर्ति अनुपम है। कहते हैं कि सबसे पहले ध्रुवपद का आविष्कार राजा मानसिंह ने किया था।" मानसिंह और मानकुतूहल, हरिहरनिवास द्विवेदी, राग-दर्पण, फ़कीरुल्ला, पृ० ५८

"मै चाहता हूँ कि ग्वालियर के संगीत सम्प्रदाय पर मै कुछ विस्तृत और स्पष्ट विवरण आपके सामने प्रस्तुत करूँ। यह सम्प्रदाय अकबर के सिंहासनारूढ़ होने के पहले ही एक महत्वपूर्ण स्थान ग्रहण कर चुका था। इसके अग्रणी स्वयं ग्वालियर के राजा मानसिंह थे। ऐसा माना जाता है कि वे ही वर्तमान ध्रुपद शैली के प्रवर्तक है।" उत्तर भारतीय संगीत का संक्षिप्त इतिहास, भातखंडे, पृ० २३

"ध्रुवपद का गायन कब से प्रारम्भ हुआ यह आज ठीक-ठीक नहीं कहा जा सकता। फिर भी वह गये पाँच सौ वर्षो से उत्तर की ओर लोकप्रिय है ऐसा कहने के लिए ऐतिहासिक आधार है। अकबर के दरबार में जो प्रसिद्ध गायक होते थे वे सारे ध्रुवपदिये अर्थात् ध्रुवपद गाने वाले ही होते थे।" हिंदुस्तानी-संगीत-पद्धति, क्रमिक पुस्तक मालिका चौथी पुस्तक, भातखंडे, पृ० ४५

"···संगीत रत्नाकर के समय में प्रबन्ध, वस्तु, रूपक इत्यादि गान गाए जाते थे। प्रबन्ध के निम्नलिखित अवयव होते थे—उदग्रह, मेलापक, ध्रुव, अन्तरा और आभोग। जयदेव के गीतगोविंद के गान प्रबन्ध में ही है। परन्तु जयदेव के प्रबन्ध में दो ही अवयव मिलते है—ध्रुव और आभोग। कालांतर में प्रबन्ध की गायकी बिल्कुल उठ गई। आजकल उसका कोई उदाहरण नहीं मिलता। उसके स्थान में १५ वीं शताब्दी से ध्रुवपद की गायकी प्रचलित हुई।

ग्वालियर के राजा मानसिंह तोमर (१४८६–१५२६ ई०) ने ध्रुवपद की गायकी का का उत्थान कर उसे बहुत प्रोत्साहित किया। कुछ विद्वानों का मत है कि ध्रुवपद की गायकी का इन्होंने आविष्कार किया।···········" विक्रम-स्मृति-ग्रंथ, भारतीय संगीत का विकास, श्री जयदेवसिंह, पृ० ७८५, तथा ६९१

१. वही, पृ० ७८५

'अनूप संगीत रत्नाकर' के रचयिता भाव भट्ट ने ध्रुवपद की परिभाषा निम्नलिखित प्रकार से दी है –

अथ ध्रौपद लक्षणम्
गीर्वाणमध्यदेशीय भाषासाहित्यराजितम् ।
द्विचतुर्वाक्यसंपन्नं नरनारीकथाश्रयम् ॥ १६५ ॥
शृंगाररसभावाढ्यं रागालापपदात्मकम् ।
पादांतानुप्रासयुक्त पादांतयमकं च वा ॥ १६६ ॥
प्रतिपादं यत्रबद्धमेवं पादचतुष्टयम् ।
उद्ग्राहध्रुवकाभोगोत्तमं ध्रुवपदं स्मृतम् ॥ १६७ ॥[1]

फकीरुल्ला ने राग-दर्पण मे ध्रुवपद की व्याख्या करते हुए कहा है – "इस में चार पंक्तियाँ होती है और सारे रसो मे बाँधा जाता है। नायक मन्नू, नायक बख्शू और 'सिंह' जैसा नाद करने वाला महमूद तथा नायक कर्ण ने ध्रुपद को इस प्रकार गाया कि इसके सामने पुराने गीत फीके पड गए। इसके दो कारण थे। पहला यह कि ध्रुवपद देशी भाषा मे देशवारी गीत था तथा मार्गी में संस्कृत थी। इस लिए मार्गी पीछे हट गया और ध्रुवपद आगे बढ गया। दूसरा कारण यह था कि मार्गी एक शुद्ध राग था और ध्रुवपद मे सब रागो का थोड़ा थोड़ा लिया गया है।"[2]

भातखडे सगीत-शास्त्र में कहा गया है –"ध्रुवपद के बहुधा चार भाग होते हैं जिन्हें गायक तुक कहते है। इन भागों के नाम अस्थाई, अतरा, सचारी तथा आभोग है। राग मे विशेष महत्व का भाग अस्थाई अंतरा है। अंतिम भाग को आभोग कहते है। अस्थाई तथा आभोग के बीच में अंतरा आता है। संचारी मे इन तीनों भागो में आये स्वरों का मिश्रण होता है। इन चारों भागो मे से प्रत्येक भाग मे कितने चरण रखे जायें यह गायक की इच्छा पर निर्भर है। वैसे तो प्रत्येक भाग में नियमानुसार चार चरण होते है परंतु आगे चल कर यह नियम उपेक्षित होता गया। प्राचीन ध्रुपदो मे शब्द अत्यधिक होते थे। उन्हें याद रखने में गायकों को असुविधा होने लगी फलतः ध्रुवपद संक्षिप्त की जाने लगी। अनेक बार तुम्हे ध्रुवपद मे अस्थाई तथा अंतरा ये दो ही भाग दृष्टिगोचर होंगे। ध्रुपद के साथ जो वाद्य बजाया जाता है उसे पखावज कहते है। ध्रुपद अधिकतर चौताल, सूलफाक, झंपा आदि, तीवरा इत्यादि तालो में गाये जाते है।"[3]

अष्टछाप के कवि नंददास का एक पद मिलता है जिसके ऊपर 'ध्रुवपद' शब्द लिखा है और जो ध्रुवपद की गायकी मे गाया जा सकता है –

१. उत्तर भारतीय संगीत का संक्षिप्त इतिहास, भातखंडे, पृ० २३
२. मानसिंह और मानकुतूहल, हरिहरनिवास द्विवेदी, पृ० ९०–९१
३. भातखंडे संगीत-शास्त्र, (प्रथम भाग), श्री विष्णुनारायण भातखंडे, प्रकाशक संगीत कार्यालय हाथरस, पृ० ५२

(ध्रुव-पद)

अनत रति मान आए हो जू मेरे ग्रह, अरसीले नैन, बैन तोतरात,
अंजन अधर धरै, पीक-लीक सोहै आछी, काहें को लजात झूँठी सौंह खात ।
पेंचहू सँवारत, पै पेचहू न आवत, एते पै तिरछी-भौंह करि चितै गात,
'नंददास' प्रभु जो हिय में बसत प्यारी, ताही मैं भूलि नाम वाही कौ निकसि जात ।[१]

इस पद के अतिरिक्त नंददास तथा अन्य कृष्णभक्तिकालीन कवियों के कुछ ऐसे पद प्राप्त होते है जिनके ऊपर यद्यपि 'ध्रुवपद' शब्द का उल्लेख नही किया गया है किंतु वे ध्रुवपद की गायकी मे गाये जा सकते हैं । उदाहरणस्वरूप इन कवियों के कुछ पद दृष्टव्य होंगे जो ध्रुवपद की गायकी मे गाए जा सकते है –

भले जू भलै आए, मो मन भाए, प्यारे, रतिके चिह्न दुराए ;
सरबस दै आए, अजन लीक लाए, अधरन रँग लाए कहाँ जाइ ठगाए ।
हौं ही जानत, और नाहिं पहिचानत, घर छोरि बतियाँ बनाइ तुम लाए ;
'नंददास' प्रभु तुम बहु नाइक, हम गँवारि, तुम चतुर कहाए ।।[२]

गोकुल की पनिहारी, पनियाँ भरन को चाली, बड़े-बड़े नैनि तामें खुभि रह्यो कजरा ;
पहिरै कसूंभी-सारी अँग-अँग छबि भारी, गोरी गोरी बाँहन में मोतिन के गजरा ।
सखी संग लियें जात हँसि हँसि के करत बात, तनहूँ की सुधि भूली सीस धरै गगरी ।
'नंददास' बलिहारी बीच मिलै गिरिधारी, नैननि की सैननि में भूलि गई डगरी ।।[३]
(नंददास)

आलस उनींद्यों ना आवत घूमत मूदे अति नीके लागत अरुन बरन ।
जानति हों सुंदर स्याम रजनी के चारिधाम नेकहुं न पाये मानों पलक परन ।
अधरनि रंग रेख उरहि चित्र विसेष सिथिल अंग डगमगति चरन ।
चतुर्भुज प्रभु कहां बसन पलटि आए सांचीए कहो गिरिराज धरन ।।[४] (चतुर्भुजदास)

आजु लाल अतिराजें बैठेऽब निकसि छाजें सुधि न कछू री गात प्यारी प्रेम मगनाँ ।
लटपटी पाग सिर सिथिल चिकुर चारु उपटत उर हार प्यारी कंठ लगनाँ ।।
आलस अरुन अति खरेई विलोचन भरि भरि आवत पिय सी अनुरंगनाँ ।
'गोविंद' प्रभु पिय जांनि सिरोमनि सुरति रंग रस भोर लों जँगनाँ ।।[५] (गोविंदस्वामी)

---

१. हस्तलिखित पद-संग्रह नंददास, डा० दीनदयालु गुप्त, पद सं० १३
२. वही, पद सं० १४
३. वही, पद सं० २०
४ वही, चतुर्भुजदास, पद सं० १५
५. गोविंदस्वामी, कॉकरौली, पृ० १२२, पद सं० २७२

राधिका रवन गिरिवरधरन गोपीनाथ मदनमोहन कृष्ण नटवर बिहारी ।
रास क्रीड़ा रसिक ब्रज जुवती प्रानपति सकल दुख हरन गोगणनचारी ॥
सुखकरन जगत करन नंदनंदन नवल गोपपति नारि वल्लभ मुरारी ।
छीतस्वामी सकल जीव उधरन हित प्रकट वल्लभ सदन दनुजहारी ॥[१] (छीतस्वामी)

आइ हु अकेली आज सांझी के कुसुम लेन भलो मिल गयो तू मोपें जात घर गाय ले ।
बरखत घनघोर मेह तामें कछू नहिं सूझत चुन्दरी चटक रंग नीरते बचाय ले ॥
चपला चमक अचक चोधीं ते करत हो अरे वीर मोह अंग संग क्यों न लगाय ले ।
सूरदास मदनमोहन तुम कहावत सुजान छोड़ मान तज सयान कामरी उढ़ाय ले ॥[२]
(सूरदास मदनमोहन)

जोई जोई प्यारो करै सोई मोहि भावे भावे मोहि जोई सोई सोई करें प्यारे ।
मोको तो भावती ठौर प्यारे के नैनन मे, प्यारो भयो चाहै मेरे नैननि के तारे ॥
मेरे तो मन तन प्राण हूँ में प्रीतम प्रिय अपने कोटिक प्राण प्रीतम मोसों हारे ।
जै श्री हितहरिबस हंस हंसिनी साँवल गौर कहो कौन करे जल तरगनि न्यारे ॥[३]
(हितहरिवंश)

निसि अँधियारी दामिनि कौंधति, राधिका प्यारी बिनु कैसे रहै बृन्दावन ।
घुमरि घुमरि घन-धुनि सुनि दादुर, मोर, पपीहा सुघर मलार सुनावन ॥
उनमद मदन महीपति दलसज, बिरही कौ बल धीर हलावन ।
कोटिक कहि-कहि मै समुझाई 'व्यास' स्वामिनी मान न कीजे सुनि स्त्रावन ।,
(व्यास जी)

राधे चलि री हरि बोलत कोकिला अलापत सुरदेत पंछी राग बन्यों ।
जहां मोर काछ बांधे नृत्य करत मेघ पखावज बजावत बंधान गन्यों ॥
प्रकृति की कोऊ नाही यातें श्रुति के उनमान गहि हौं आई मे जन्यों ।
श्री हरिदास के स्वामी स्यामा कुंज विहारी की अटपटी औरे कहत कछु औरै भन्यों ॥[४]
(हरिदास)

नीकै द्रुम फूले फूल श्रुभग कालिन्द्री कूल ईन्द्र धनुष राजै स्याम घटानि में ।
नीकै गृह लता कुंज नीकी आली अलि गुंज नीकौ राग रंग रह्यौ पिकनि की रटनि में ॥
नीकी गति मंद मंद विहारी आनंद कंद नीकौ भेद बन्यों अरुन पीतपटनि में ।
श्री बीठल विपुल रंग ललिता के फूल अंग मिले ले देखोंगी नेननि की विधि छटनि में ॥[५]
(विट्ठलविपुल)

---

१. हस्तलिखित पद-संग्रह, छीतस्वामी, डा० दीनदयालु गुप्त, पद सं० १०
२. अकबरी दरबार के हिंदी कवि, डा० सरयूप्रसाद अग्रवाल, पृ० ४४८, पद सं० ४
३. हित चौरासी, हितहरिवंश, प्रति सं० ३८।२१५, प्रयाग संग्रहालय, पद सं० १
४. व्यास-वाणी, वासुदेव गोस्वामी, पृ० २७५, पद सं० ६६६
५. पद-संग्रह, प्रति सं० ३७१।२६६, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, पद सं० १४
६. पद-संग्रह, प्रति सं० १६२०।३१७०, हिंदी-संग्रहालय प्रयाग, पृ० ४२, पद सं० २८

धूमरे गगन गरजत घन मंद मंद बरषत वृन्दावन सघन सरस पावस रितु सुहाई।
चातक पिक मोर मुदित नाचत गावत भरे निरखि दंपति सब संपति सुखदाई ॥
तैसीयै सरस सरदनिसि आई तैसीयै निकुंज कुसुमनि छाई तैसीयै ललनालाल लडाई
कंठलपटाई।
श्री विहारनिदासि गाई गूढ ओढनी उठाइ रहे अंग भीजि मिलि मलार गाई ॥[1]
(विहारिनदास)

जैसा कि पूर्व दिखाया जा चुका है कृष्णभक्तिकालीन कवियों ने अपने पदों में 'ध्रुवपद' शब्द का उल्लेख किया है।[2]

ध्रुपद गायन के साथ मृदंग अथवा पखावज की संगत की जाती है।[3] वार्तासाहित्य से ज्ञात होता है कि कृष्णभक्तिकालीन कवियो के गान के साथ मृदंग बजाया जाता था।

इन उपर्युक्त कारणो तथा आधारो से यह संकेन मिलता है कि कृष्णभक्तिकालीन कवियो को ध्रुवपद की गायकी का पूर्ण ज्ञान था और सभवत· वे अपने कुछ पदों को ध्रुवपद की गायकी मे अवश्य गाते रहे होगे।

धमार—कृष्णभक्तिकालीन कवियों मे धमार[4]-गायन का विशेष चलन था। वार्ता साहित्य मे निम्नलिखित दो प्रसंग दिए है —

"और फागन के दिन हते। सेन भोग सराय के गुसांई जी बीडी अरुगावत हते। तब गोविंदस्वामी धमार गावत हते। सो धमार—श्री गोवरधन राय लाला — ये धमार पूरी

---

१. पद-संग्रह, प्रति सं० ३७१।२६६, काशी नगरी प्रचारिणी सभा, पत्र सं० १३१, पद सं० २
२. देखिए प्रस्तुत ग्रंथ के चतुर्थ अध्याय के अन्तर्गत 'गायन के प्रकारों का उल्लेख'।
३. भातखंडे संगीत-शास्त्र, प्रथम भाग, श्री विष्णुनारायण भातखंडे, पृ० ५२
४. "होरी—होरी को धमार ताल में गाते है। इसको ध्रुवपद के कलावन्त ही गाते है। इसकी कविता में अधिकतर कृष्ण और गोपियों की लीला का वर्णन रहता है। धमार ताल में होने के कारण कभी-कभी लोग इसे केवल धमार ही कहते हैं। गायक इसे पहिले विलम्बित लय में गाते है फिर द्विगुन, तिगुन, चौगुन लय में गाते है। इसमें भी तानें नहीं लेते।

परम्परा से होरी को धमार ताल ही में गाते चले आये है और गायकों की परिभाषा में होरी से यही समझा भी जाता है परंतु आजकल जिस किसी कविता में होली का वर्णन होता है चाहे वह किसी भी ताल में हो 'होरी' कह बैठते है।"
विक्रम-स्मृति-ग्रंथ, श्री जयदेवसिंह, पृ० ७८५

करे बिना गोविदस्वामी चुप कर रहै । जब श्री गोसाई जी ने आज्ञा करी गोविददास धमार पूरी करौ । तब गोविदस्वामी ने कही महाराज धमार तो भाज गई है । वे तो घर मे जाय घुसे । खेल तो बंद भयो अब कहा गावू । ये सुन के श्री गुसांई जी चुप कर रहे । पाछे बैठक मे पधारे । जब एक तुक आपने बनाय के गोविदस्वामी के नाम की वा धमार मे धरी वा दिन सूं गोविंदस्वामी की धमार लोक मे साढे बारह कही जाय है ।"[1]

तथा – "एक दिन राजा आसकरण न्हायवे जाते हते । सो श्री ठाकुर जी ने मुरली बजाई । सो राजा आसकरन जी सुन के श्री ठाकुर जी की आडी दौड गये । उहा श्री ठाकुर जी ठाडे है और अलौकिक सब लीला है और सब ब्रजभक्त आवे है और होरी को खेल होवे हे ऐसे दर्शन राजा आसकरण जी कुं भये । तब राजा आसकरन जी देहदशा भूल गये और दर्शन करके धमार गायवे लगे । सो धमार –

यो गोगुल के चौहटे रंगराची ग्वाल ।
मोहन खेले फाग नैन सलौने री रंगराची ग्वाल ।।

ये धमार मे जैसे दर्शन करत गये तैसे गाते गये । ऐसे तीन दिन सूधी गायो करे और कुछ सुध न रही ।"[2]

इन प्रसंगों से ज्ञात होता है कि कृष्णभक्तिकालीन कवि धमार गाते थे और गोविंदस्वामी की धमार विशेष विख्यात थी । कृष्णभक्तिकालीन साहित्य मे 'धमार' शब्द का उल्लेख भी हुआ है ।[3]

ताल की कसौटी पर भी कृष्णभक्तिकालीन कवियो के धमार संबंधी अधिकांश पद खरे उतरते है । उदाहरण स्वरूप ऊपर के प्रसंग मे दी गई राजा आसकरण की धमार दृष्टव्य होगी जिसका गायन धमार ताल मे किया जा सकता है ।

ताल धमार मे १४ मात्राये होती है जो चार भागों में इस प्रकार विभक्त होती है कि पहले भाग मे ५ मात्राये, दूसरे मे २, तीसरे मे ३ और चौथे मे ४ मात्राये होती है । ताल लिपि इस प्रकार है –

ताल धमार

मात्राये	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४
बोल	क	धि	ट	धि	ट	धा	ऽ	ग	ति	ट	ति	ट	ता	ऽ
ताल	×					२		०			३			

१. २५२ वैष्णवन की वार्ता, पृ० ८

२. वही, पृ० १७२

३. देखिए प्रस्तुत ग्रंथ के चतुर्थ अध्याय के अन्तर्गत 'गायन के प्रकारों का उल्लेख' ।

पद – "या गोकुल के ...." की ताल बद्ध रचना –

स्थाई

या	ऽ	गो	ऽ	ऽ	कु	ल	के	ऽ	ऽ	चो	ह	टे	ऽ
×					२		०			३			
ऽ	रं	ग	ऽ	ऽ	रा	ऽ	ची	ऽ	ऽ	ग्वा	ऽ	ऽ	ल
×					२		०			३			

अंतरा

मो	ऽ	ह	न	ऽ	खे	ऽ	ले	फा	ऽ	ग	नै	ऽ	न
×					२		०			३			
स	लो	ऽ	ने	ऽ	रं	ऽ	ग	रा	ऽ	ची	ग्वा	ऽ	ल
×					२		०			३			

किंतु यहाँ यह उल्लेखनीय है कि कृष्णभक्तिकालीन साहित्य मे प्राप्त होली से सम्बद्ध सभी पदो का धमार ताल मे गायन सभव नही है। उदाहरणस्वरूप नंददास का निम्नलिखित पद देखिये –

राग ललित

कुंज-कुटीर, मिलि जमुना तीर, खेलत होरी रस भरे बीर।
एक ओर बल-भीर धीर हरि, एकु ओर जुबतिन की भीर।
केकी, कीर, कल गुन-गंभीर पिक, ढफ, मृदंग, धुनि करि मंजीर।
पग मंजीर कर लै अबीर, केसर के तीर, छिरकत है चीर।
व्है गये अधीर, रति पथ के तीर, आँनद-समीर परसत सरीर;
'नंददास' प्रभु पहिरैं हीर - नग मिटत पीर गहि सुख कों सीर।'

प्रस्तुत पद होली के रूप में निम्नलिखित प्रकार से रूपक ताल मे गेय है।

ताल रूपक मे सात मात्राये होती है जो तीन भागों मे विभक्त होती है। पहले भाग मे ३ मात्राये, दूसरी मे २ और तीसरी मे भी २ मात्राये होती है। ताल लिपि इस प्रकार है –

ताल रूपक

मात्रायें	१	२	३	४	५	६	७
बोल	ती	ती	ना	धी	ना	धी	ना
ताल	×			२		३	

पद – 'कुंज - कुटीर, मिलि जमुना तीर·········' की ताल-बद्ध रचना –

स्थाई

कुं	ऽ	ज	कु	टी	ऽ	र	मि	लि	जमु	ना	ती	ऽ	र
२		३		×			२		३		×		
खे	ऽ	ल	त	हो	ऽ	री	र	स	भ	रे	वी	ऽ	र
२		३		×			२		३		×		

अंतरा १

ए	क	ओ	र	ब	ऽ	ल	भी	र	धी	र	ह	ऽ	रि
२		३		×			२		३		×		
ए	क	ओ	र	जु	व	ति	न	ऽ	की	ऽ	भी	ऽ	र
२		३		×			२		३		×		

अंतरा २

के	ऽ	की	ऽ	की	ऽ	र	क	ल	गु	न	गं	भी	र
२		३		×			२		३		×		
पि	क	ढ	फ	मृ	दं	ग	धु	नि	करि	मं	जी	ऽ	र
२		३		×			२		३		×		
प	ग	मं	ऽ	जी	ऽ	र	क	र	ले	अ	बी	ऽ	र
२		३		×			२		३		×		
के	स	र	के	ती	ऽ	र	छि	र	कत	है	ची	ऽ	र
२		३		×			२		३		×		

भजन कीर्तन

कृष्णभक्तिकालीन साहित्य में ऐसे पदों का बाहुल्य है जो भजन और कीर्तन[1] पद्धति में गाये जा सकते हैं। "भगवान् के नाम, गुण, माहात्म्य, लीला, धाम तथा भगवद्भक्ति के यश का, प्रेम और श्रद्धा के साथ कथन, स्तुति, उच्चस्वर से पाठ तथा गान, 'कीर्तन' कहलाता है।......कीर्तन के अन्तर्गत भगवान् के गुण, लीला तथा नाम का कथन अनियमित स्वर से नही होता वरन् वह गान कला के सहारे पर होता है।"[2] भजन, कीर्तन

---

१. "भारतीय संगीत के इतिहास में भजन गायन प्राचीन माना जाता है। भिन्न-भिन्न प्रांतों में इसे भिन्न-भिन्न प्रकार से गाते हैं। भिन्न-भिन्न प्रांतों के लोग भजन को ही कीर्तन, हरिकथा, कालक्षेप, आभंग और नगर कीर्तन कहते हैं।" भजन संगीत, (पहला भाग), श्री पद बन्दोपाध्याय, पृ० २०

२. अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय, (भाग २), डा० दीनदयालु गुप्त, पृ० ५६२–६३

मे एक ही इष्ट की आराधना करने वाले जन कुछ वाद्ययंत्रो यथा– करताल, झाँझ, मृदंग, मजीरे, एकतारा आदि की संगत में गायन करते है। विविध वाध्ययत्रों की संगत मे गाये जाने के कारण भजन तथा केकीर्तन साधन में विशेष कष्ट नहीं होता। कीर्तन गायन की विशेषता यह है कि उसमें शब्द प्रधान होने के कारण अधिक स्वर विन्यास नही होता। प्राय: समान तथा एक से ही स्वर समुदाय की पुनरुक्ति होती जाती है जिसके कारण साधारण जनता भी गायन में सहयोग दे लेती है। भजन में एक मात्र परमार्थिक बिषयों, ईश्वर भक्ति अथवा उसकी महिमा का ही वर्णन किया जाता है। इसमें करुण, प्रेम, शान्त तथा वात्सल्य भावों की प्रधानता रहती है।

जैसा पूर्व कहा जा चुका है कि वार्ता तथा अन्य बाह्य आधारों से ज्ञात होता है कि बहुधा समस्त कृष्णभक्तिकालीन कवि कृष्ण के शुद्ध और प्रगाढ़ प्रेमानुराग, भक्ति और ध्यान में भजन तथा कीर्तन किया करते थे और कीर्तन करते करते यहाँ तक लीन हो जाते थे कि उन्हे अन्तर्साक्ष्य प्राप्त हो जाता था।

यों तो कृष्णभक्तिकालीन सभी कवियो के भजन संगीत की अलौकिक निधि है जिनसे अनेक गायको को महान प्रगति मिली है और प्रसिद्ध संगीतिज्ञो ने प्राय: सभी के भजनों को अपनाया है –"प्रातः स्मरणीय पूज्यपाद गुरुदेव, श्री विष्णु दिगम्बर जी ने कुछ बेसमझ गायकों के 'पंडित जी तो अब गायक नही रहे, भजनीक बन गये' ऐसे उलाहने सह कर भी सूर, मीरा ......आदि के पदो को अपने संगीत मे हेतुपूर्वक स्थान दिया था और जीवन भर उसे निबाहा था। उनके शिष्य-प्रशिष्यों में भी वही संस्कार अवतरित हुए है और वे इन महाकवियो के पद-लालित्य का पूर्ण भाव अपने कण्ठ से ललकार कर जनता की आत्मा तक पहुँचाने का प्रयास कर रहे हैं।"[१] किंतु मीरा के भजन सगीतज्ञों मे विशेष रूप से प्रसिद्ध है और उनका अत्यधिक चलन है। "मीरा के 'भजन' बंगाल में बहुत प्रसिद्ध है। यहाँ तक कि 'कीर्तन गान' इत्यादि प्रसगो मे 'भजन' शब्द का व्यवहार जब हम करते है तो हमारा अभिप्राय मीरा के ही भजनो से होता है। यदि प्रसिद्ध गायक से भजन गाने के लिए कहा जाय तो वह उसका अर्थ मीरा के भजन ही समझता है और गायक लोग जब भजन गाना सीखना प्रारम्भ करते है तो पहले मीरा के ही भजन सीखते है।"[२]

मीरा के भजन गेयता, सरसता, सरलता और माधुर्य में अतुलनीय है। मीरा समाज की उपेक्षा कर प्रेम के संगीत राज्य मे दीवानी हो कर विचरण करती थी और अपने घायल हृदय की पीड़ा, वेदना, प्रेम तथा विरह की कसक को सगीत के स्वर तथा लय मे बाँध कर कहती जाती थीं। यही कारण है कि उनके भजनों में मुक्त सगीत की स्वच्छन्द धारा इतनी तीव्र गति से प्रवाहित होती है कि वह सबको बरबस अपनी ओर आकर्षित कर अरसिक को भी रसलीन कर देती है।

१. सूर संगीत, (प्रथम भाग), प्राक्कथन, पं० ओंकार नाथ ठाकुर, पृ० ६

२. मीरा स्मृति-ग्रंथ, मीराबाई, प्रो० शशिभूषणदास गुप्त, पृ० ७८

विष्णु पद

वार्ता साहित्य से ज्ञात होता है कि कृष्णभक्तिकालीन कवि 'गाया करते थे।'[1] फकीरुल्ला 'विष्णुपद' का वर्णद करते हुए कहते है –"मथुरा मे एक राग और गाया जाता है जिसे विष्णुपद कहते है। उसमें चार बोल से लेकर आठ बोल तक होते है। इसमे कृष्णजी की स्तुति होती है। इसमें पखावज बजाई जाती है।"[2]

सोरीन्द्रमोहन ने गीतावली मे 'विष्णुपद' की व्याख्या करते हुए लिखा है–'जिस गाने में सेरेफ रामजी का और श्री कृष्ण जी का स्तुत वर्णन होता है उसका नाम विष्णुपद। इसमे रचना करुण रस मिला होना चाहिये। विष्णुपद का चरण या तुक का कुछ ठिकाना नाहि। इसमे इच्छाधीन बहुत तुक रहते है। सुरदास बाबा जी नाम करके एक साधु ने ऐसा नया तरह को गाना का सृष्टि किया था।[3]

किस प्रकार की गायन-प्रणाली को विष्णुपद कहा जाता था। इसका निश्चित रूप से ज्ञान नही होता। संभवत. कृष्णभक्तिकालीन गायक कवियो के भजनों को विष्णुपद कहा जाता रहा हो।

---

१. वार्ता साहित्य में वर्णित विष्णुपद संबंधी प्रसंग, देखिए, प्रस्तुत ग्रंथ का प्रथम अध्याय
२. मानसिंह और मानकुतूहल, हरिहरनिवास द्विवेदी, पृ० ६७
३. गीतावली, सोरीन्द्र मोहन टैगोर, पृ० १५

परिशिष्ट

हस्तलिखित ग्रंथ

(क) एशियाटिक सोसाइटी से प्राप्त–

पंचम संहिता, नारद
रागमाला, मेषकरण

(ख) डा० दीनदयालु जी गुप्त के सौजन्य से प्राप्त–

हस्तलिखित पद-संग्रह, कृष्णदास
वही, कुंभनदास
वही, गोविंदस्वामी
वही, चतुर्भुजदास
वही, छीतस्वामी
वही, नंददास
वही, परमानंददास

(ग) नागरी - प्रचारिणी - सभा, काशी से प्राप्त–

जुगलसतक, श्री भट्ट, प्रति सं० २५१।३२
वही, प्रति सं० ७१२।३२
वही, प्रति सं० २७६६।१६६६
पद-संग्रह, हरिदास, विट्ठलविपुल, बिहारिनदास, प्रति सं० ३७१।२६६
रामसागर, परशुराम, प्रति सं० ६८०।४६२
श्री चौरासी जू, हितहरिवंश, प्रति सं० २८६६।१७८१
श्री चौरासी पद, हितहरिवंश, प्रति सं० २८८७।१७६०
श्री मच्चोरासी, हितहरिवंश, प्रति सं० २८००।१७८२

हितहरिवश चौरासी, प्रति सं० १०५।५५
वही, प्रति सं० ५०२।५५
वही, प्रति सं० ७०५।५३०

(घ) श्री ब्रजरत्नदास जी बनारस के सौजन्य से प्राप्त–

दान लीला, गंग ग्वाल
मोती लीला, गंग ग्वाल
राधाजी की जन्म लीला, गंग ग्वाल

(च) श्री बालकृष्णदास जी, चौखम्बा बनारस के सौजन्य से प्राप्त–

श्री गदाधर भट्ट जी महाराज की बानी

(छ) व्यास-स्मारक-हस्तलिखित-ग्रंथालय, प्रयाग-संग्रहालय से प्राप्त–

चौरासी पद, हितहरिवंश, प्रति सं० ३८।२१५
वही, प्रति सं० ८५।२१६
वही, प्रति सं० २१७।१०३
रागमाल, प्रति सं २०६।२१९
वही, प्रति सं० २३२।२१९
श्री कृष्ण लीला, प्रति सं० १९५।२१९
संगीत प्रबंध सार भाषा, हरिवल्लभ प्रति सं० १०७।२१०

(ज) हिन्दी-संग्रहालय, हिंदी-साहित्य,-समेलन प्रयाग से प्राप्त–

उत्सव के पद, प्रति सं० १४५५।२५५५
चौरासी पद, हितहरिवंश, प्रति सं० १३६१।२१६०
पद-संग्रह, हरिदास, विट्ठलविपुल, बिहारिनदास, प्रति सं १६२०।३१७०
राग रत्नाकर, राधाकृष्ण
संगीतदर्पण, भर्त बिहारीलाल

प्रकाशित ग्रंथ

हिन्दी–

ग्रंथ नाम– विशेष विवरण–

अष्टछाप: प्रकाशक विद्याविभाग कॉकरौली, संस्करण सं० १९९८ वि०

अष्टछाप और वल्लभ-सम्प्रदाय : डा० दीनदयालु गुप्त, प्रकाशक हिंदी साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग, संस्करण संवत २००४ वि०

अष्टछाप परिचय : प्रभुदयाल मीतल, प्रकाशक अग्रवाल प्रेस मथुरा, संस्करण संवत् २००६ वि०

अकबरी दरबार के हिंदी कवि : डा० सरयूप्रसाद अग्रवाव, प्रकाशक लखनऊ विश्व-विद्यालय, संस्करण संवत् २००७ वि०

आधुनिक कवि (२) : सुमित्रानंदन पंत, प्रकाशक हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, चतुर्थ संस्करण संवत् २००६ वि०

उत्तरभारतीय संगीत का संक्षिप्त इतिहास : पं० विश्णुनारायण भातखंडे, प्रकाशक लक्ष्मीनारायण गर्ग, संगीत कार्यालय ह्राथरस, उत्तर प्रदेश, संस्करण सन् १९५४ ई०

कबीर-ग्रंथावली : संपादक श्यामसुन्दर दास, प्रकाशक नागरी प्रचारणी सभा, काशी, संस्करण सन् १९४७ ई०

कला, कल्पना और साहित्म : सत्येन्द्र, प्रकाशक साहित्य रत्नभंडार, आगरा, प्रथम संस्करण सवत् २००७ वि०

कविता कौमुदी, तीसरा भाग : सम्पादक रामनरेश त्रिपाठी, प्रकाशक नवनीत प्रकाशन लिमिटेड, तारदेव बंबई, दूसरा संस्करण सन् १९५५ ई०

काव्य कल्पद्रुम : सेठ कन्हैयालाल पोद्दार, प्रकाशक पं० जगन्नाथप्रसाद शर्मा, मथुरा, मुद्रक सत्यव्रत शर्मा, शाति प्रेस, आगरा

काव्यचर्चा : आचार्य ललिताप्रसाद सुकुल, प्रकाशक साहित्य-सौध, १५ बंकिमचटर्जी स्ट्रीट, कलकत्ता, संस्करण संवत् २००८ वि०

काव्यांग कौमुदी : पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, प्रकाशक नंदकिशोर एंड ब्रदर्स, बुकसेलर्स, बनारस, सिटी, प्रथमावृत्ति संवत् १९९१ वि०

कीर्तन संग्रह भाग १, २, तथा ३ : प्रकाशक लल्लूभाई छगनलाल देसाई, व्यवस्थापक "श्री भक्तिग्रन्थमाला" कार्यालय, रीचीरोड, नं ५७, मेडाउपर, अहमदाबाद

कुंभनदास : प्रकाशक विद्याविभाग, कांकरौली

गद्यपथ : सुमित्रानंद पंत, साहित्य भवन लिमिटेड, प्रयाग

गीतांजलि : रवीन्द्रनाथ ठाकुर, अनुवादक श्री लालधर त्रिपाठी, प्रथम संस्करण सन् १९४६ ई०

गीतावली : सोरीन्द्र मोहन टैगोर

गोविंदस्वामी : प्रकाशक विद्याविभाग कॉकरौली, सस्करण संवत् २००८ वि०

चंद वरदायी और उनका काव्य : डॉ विपिन विहारी त्रिवेदी, प्रकाशक हिंदुस्तानी एकेडमी, प्रयाग, १९५२ ई०

चिंतामणि : पं० रामचन्द्र शुक्ल, प्रकाशक इंडियन प्रेस लिमिटेड, प्रयाग

चौरासी वैष्णवन की वार्ता : प्रकाशक गंगाविष्णु श्री कृष्णदास जी, लक्ष्मीवेंकटेश्वर प्रेस, कल्याण, मुबई, सस्करण सवत् १९८५ वि०

चौरासी वैष्णवन की वार्ता : गो० श्री हरिराय जी प्रणीत सम्पादक द्वारिकादास परीख, प्रकाशक अग्रवाल प्रेस मथुरा, प्रथम सस्करण सवत् २००५ वि०

छंदः प्रभाकर : जगन्नाथप्रसाद भानु, प्रकाशक जगन्नाथ प्रेस, बिलासपुर, आठवाँ संस्करण संवत् १९९२ वि०

जायसी-ग्रंथावली : संपादक पं० रामचन्द्र शुक्ल, प्रकाशक नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, पंचम संस्करण सवत् २००८ वि०

जायसी-ग्रंथावली : संपादक डॉ० माताप्रसाद गुप्त, प्रकाशक हिंदुस्तानी एकेडमी, उत्तर प्रदेश, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण सन् १९५१ ई०

जीवन के तत्व और काव्य के सिद्धांत : लक्ष्मीनारायण सुधांशु, जनवाणी प्रकाशन, १६१।१ हरिसन रोड कलकत्ता, द्वितीय सस्करण सन् १९४१ ई०

दर्शन और जीवन : डॉ० सम्पूर्णानद, प्रकाशक श्री परिपूर्णानंद वर्मा, कानपुर, सन् १९४१ ई०

दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता : सम्पादक श्री ब्रजभूषण शर्मा व श्री द्वारिकादास पारीख, प्रकाशक शुद्धाद्वैवत् एकेडेमी, कॉकरौली

नंददास (दो भाग) : सम्पादक श्री उमाशंकर शुक्ल, प्रकाशक प्रयागविश्वविद्यालय, प्रथम, संस्करण सन् १९४२ ई०

नृत्य अंक : प्रकाशक सगीत-कार्यालय हाथरस, तृतीय सस्करण सन् १९५४ ई०

नृत्यशाला, प्रथम भाग : प्रकाशक श्री प्रभुलाल गर्ग, संगीत कार्यालय, हाथरस, अंक १

नागर समुच्चय : नागरीदास, प्रकाशक ज्ञानसागर प्रेस, मुबई, संस्करण संवत् १९५५ वि०

निबंध संग्रह : संकलनकर्त्ता डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी, प्रकाशक श्रीकृष्णलाल, साहित्य-भवन लिमिटेड, इलाहाबाद, प्रथम सस्करण १९५३ ई०

पल्लव : श्री सुमित्रानंदन पंत, प्रकाशक इंडियन प्रेस लिमिटेड, प्रयाग, द्वितीय वृत्ति, सन् १९३१ ई०

प्रबंध पद्म : श्री सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला', सपादक तथा प्रकाशक श्री दुलारे लाल भार्गव, गंगापुस्तकमाला, कार्यालय, लखनऊ, प्रथम आवृत्ति संवत् १९९१ वि०

प्रदीप : श्री पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी, प्रेमा पुस्तक माला, इंडियन प्रेस लिमिटेड, जबलपुर, प्रथम संस्करण दिसम्बर १९३३ ई०

पृथ्वीराजरासो : चन्दवरदायी, नागरी प्रचारिणी सभा, संस्करण सन् १९०१–५ ई०

पाश्चात्य साहित्यालोचन के सिद्धांत : श्री लीलाधर गुप्त, प्रकाशक हिंदुस्तानी एकेडेमी, उत्तर प्रदेश, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण १९५२ ई०

ब्रजभाषा व्याकरण : डॉ० धीरेन्द्र वर्मा, प्रकाशक रामनारायण लाल इलाहाबाद, संस्करण सन् १९५४ ई०

बिहारी सतसई : टीकाकार श्री रामवृक्ष बेनीपुरी, प्रकाशक पुस्तक-भंडार लहेरिया सराय, चतुर्थ संस्करण

भक्तकवि व्यास जी : वासुदेव गोस्वामी, प्रकाशक अग्रवाल प्रेस, मथुरा, प्रथम संस्करण सं० २००६ वि०

भक्तनामावली : ध्रुवदास, संपादक श्री राधाकृष्णदास, प्रकाशक इंडियन प्रेस लिमिटेड, प्रयाग, संस्करण १९२८ ई०

भक्तमाल टीका : टीकाकार प्रियादास, प्रकाशक श्री लक्ष्मी वेंकटेश्वर प्रेस, कल्याण, मुंबई, संवत् १९६८ वि०

भक्तमाल, भक्तकल्पद्रुम टीका : टीकाकार श्री प्रतापसिंह, प्रकाशक, नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ, संस्करण सन् १९२६ ई०

भक्तमाल, भक्तिसुधास्वादतिलक : टीकाकार श्री सीताराम शरण भगवान प्रसाद, रूपकला, प्रकाशक नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ, संस्करण १९३७ ई०

भक्तमाल रामरसिकावली : टीकाकार महाराज रघुराजसिंह, प्रकाशक, वेंकटेश्वर स्टीम प्रेस, बंबई, संस्करण सवत् १९७१ वि०

भक्तमाल हरिभक्ति प्रकाशिका : प्रकाशक लक्ष्मीवेंकटेश्वर प्रेस, संस्करण संवत् १९८१ वि०

भजन संगीत, पहला भाग : श्री पदबन्दोपाध्याय, मुद्रक शर्मा ब्रादर्स, इलेक्ट्रिक प्रेस, अलवर, संस्करण सन् १९४१ ई०

भ्रमर गीतसागर : संपादक आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, प्रकाशक गोपालदास सुंदरदास, साहित्य सेवा सदन, बनारस सिटी, चतुर्थ संस्करण सवत् १९९९ वि०

भातखंडे-संगीत शास्त्र : विष्णुनारायण भातखंडे, अनुवादक विश्वम्भर नाथ भट्ट तथा श्री सुदामाप्रसाद दुबे, प्रकाशक प्रभुलाल गर्ग, संगीत कार्यालय, हाथरस, संस्करण प्रथम भाग, सितम्बर १९५१, दूसरा भाग, मार्च १९५३ ई०

भाषा की शक्ति और अन्य निबंध : सम्पूर्णानंद, प्रकाशक उमाशंकर सिंह, मुद्रक इंडियन प्रेस लिमिटेड, प्रयाग, संस्करण सन् १९५४ ई०

मानसिंह और मानकुतूहल : श्री हरिहर निवास द्विवेदी, प्रकाशक विद्यामंदिर प्रकाशन, मुरार (ग्वालियर), प्रथम संस्करण संवत २०१० वि०

मिश्रबंधुविनोद : मिश्रबंधु, प्रकाशक हिंदी ग्रंथ प्रसारक मण्डली खंडवा व प्रयाग, संस्करण सवत् १९७० वि०

मीरा माधुरी : सपादक ब्रजरत्नदास, प्रकाशक हिंदी साहित्य कुटीर, काशी, संस्करण संवत् २००५ वि०

मीरा-स्मृति-ग्रंथ : प्रकाशक बंगीय हिदी परिषद, कलकत्ता, सस्करण संवत् २००६ वि०

मोहनी वाणी श्री श्री गदाधर भट्ट जी की : प्रकाशक कृष्णदास, कुसुम सरोवर (गोवर्धन), संस्करण सवत् २००० वि०

यशोधरा : श्री मैथिलीशरण गुप्त, प्रकाशक और मुद्रक साहित्य प्रेस, चिरगाँव (झाँसी), संस्करण संवत् २०१० वि०

यामा : महादेवी वर्मा, प्रकाशक किताबिस्तान, इलाहाबाद, द्वितीय संस्करण सन् १९४७ ई०

रसज्ञ रंजन : महावीर प्रसाद द्विवेदी, प्रकाशक राष्ट्रीय हिदी मंदिर, जबलपुर, प्रथम संस्करण वैशाख सवत् १९७९ वि०

राग चंद्रिकासार : पं० विष्णु शर्मा, प्रकाशक निर्णय सागर प्रेस, बम्बई, संस्करण संवत् १८३३ वि०

राग दर्पण : एम० एस० टैगोर

राग रत्नाकर : खेमराज श्री कृष्णदास, श्री वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई, संस्करण संवत् १९७८ वि०

राजस्थान का पिंगल साहित्य : पं० मोतीलाल मेनारिया, प्रकाशक हितैषी पुस्तक भण्डार, उदयपुर, प्रथम संस्करण १९२५ ई०

रामचरित मानस : तुलसीदास, टीकाकार हनुमान प्रसाद पोद्दार, प्रकाशक गीता प्रेस, गोरखपुर, पंचम संस्करण संवत् २००९ वि०

रेवातट (पृथ्वीराजसो) २७वाँ समय : महाकवि चंदरवरदायी कृत, सम्पादक डॉ० विपिन विहारी त्रिवेदी, प्रकाशक हिदी विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, सन् १९५३ ई०

व्यासवाणी : प्रकाशक राधाकिशोर गोस्वामी, वृन्दावन, संस्करण संवत् १९९४ वि०

वाङ्मयविमर्श : विश्वनाथ मिश्र, प्रकाशक हिंदी साहित्य कुटीर, बनारस, द्वितीय संस्करण संवत २००५ वि०

विक्रमस्मृति ग्रंथ :

विद्यापति पदावली : टीकाकार श्री कुमुद विद्यालंकार, प्रकाशक, रीगल बुक डिपो, दिल्ली, संस्करण संवत् २०११ वि०

विद्यापति की पदावली : टीकाकार श्री रामवृक्ष बेनीपुरी, पुस्तक भंडार, पटना, लहरिया सराय

शिवसिंह सरोज : शिवसिंह इंसपेक्टर पुलिस, मुशी नवलकिशोर प्रेस, सस्करण नवम्बर सन् १८८३ वि०

श्री गोबर्धननाथ जी के प्राकट्य की वार्ता · श्री गोबर्द्धनाथ जी, संपादक तथा प्रकाशक, मोहनलाल विष्णुलाल पाण्ड्या, वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई

संगीत कौमुदी : विक्रमादित्य सिंह निगम, मुद्रक लक्ष्मीप्रसाद पांडेय, लक्ष्मी प्रिंटिंग प्रेस, दुगावा, लखनऊ

संगीत तरंग : राधामोहन सेन

संगीत रागकल्पद्रुम : संपादक कृष्णानंद व्यास, प्रकाशक, बंगीय साहित्य परिषद मंदिर, कलकत्ता

संगीत शिक्षा, भाग २ : श्री कृष्णनारायण रातांजनकर, प्रिंसिपल मैरिस कालेज आफ हिन्दुस्तानी म्यूज़िक, लखनऊ, प्रकाशक महादेवप्रसाद श्रीवास्तव, संस्करण संवत् १९३२ वि०

संगीत सागर : संपादक और प्रकाशक प्रभुदयाल गर्ग, संगीत कार्यालय, हाथरस, चतुर्थ संस्करण

संगीत सीकर : श्री विश्वम्भरनाथ भट्ट तथा श्री हरिश्चन्द्र श्रीवास्तवा, प्रकाशक प्रभुलाल गर्ग, संगीत कार्यालय, हाथरस, द्वितीय संस्करण अक्टूबर १९५२ ई०

समाज और साहित्य : आनंदकुमार, प्रकाशक हिंदी मंदिर, प्रयाग, प्रथम संस्करण जुलाई १९३८ ई०

साकेत : मैथिलीशरण गुप्त, प्रकाशक साहित्य सदन, चिरगाँव (झाँसी)

साहित्य का मर्म आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, लखनऊ विश्वविद्यालय व्याख्यानमाला १, प्रकाशक विश्वविद्यालय लखनऊ, प्रथमावृत्ति

साहित्यचिंता डा० देवराज, प्रकाशक गौतम बुक डिपो, नई सड़क दिल्ली, प्रथम संस्करण १९५० ई०

साहित्य जिज्ञासा : आचार्य ललिताप्रसाद सुकुल, प्रकाशक रामलाल पुरी, आत्माराम एंड संस, काश्मीरी गेट, दिल्ली, संस्करण सन् १९५२ ई०

सिद्धांत और अध्ययन : बाबू गुलाबराय, प्रकाशक प्रतिभा प्रकाशन मंदिर, दिल्ली. मुद्रक साहित्य प्रेस, आगरा, प्रथम संस्करण .

सूर संगीत (प्रथम भाग): प्रकाशक श्री प्रभुलाल गर्ग, संगीत कार्यालय हाथरस, प्रथम संस्करण अगस्त सन् १९५२ ई०

सूरसागर : सूरदास, प्रकाशक नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, प्रथम संस्करण, पहला खंड संवत् २००५ वि०, दूसरा खंड संवत् २००७ वि०

सूरसारावली : सूरदास, प्रकाशक वेंकटेश्वर प्रेस, बंबई

स्कंदगुप्त विक्रमादित्य : जयशंकरप्रसाद, प्रकाशक भारती भंडार लीडर प्रेस, इलाहाबाद, आठवाँ संस्करण संवत् २००२ वि०

सौन्दर्य शास्त्र : डा० हरद्वारी लाल शर्मा, प्रकाशक साहित्य भवन. लिमिटेड, इलाहाबाद, संस्करण सन् १९५३ ई०

हस्तलिखित हिंदी पुस्तकों का संछिप्त विवरण : सपादक डा० श्यामसुदरदास, प्रकाशक नागरी प्रचारणी सभा, काशी, पहला सस्करण सवत् १६८० वि०

हिंदी प्रेमगाथा काव्य संग्रह . श्री गणेशप्रसाद द्विवेदी, हिन्दुस्तानी एकेडेमी, उत्तर प्रदेश, इलाहाबाद ।

हिंदी भाषा और साहित्य : डा० श्यामसुंदरदास, प्रकाशक इडियन प्रेस लिमिटेड, प्रयाग, प्रथम सस्करण सवत् १६८० वि०

हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास : डा० रामकुमार वर्मा, प्रकाशक रामनारायणलाल पब्लिशर एंड बुकसेलर, इलाहाबाद

हिंदी साहित्य का इतिहास : आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ,प्रकाशक नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, संस्करण संवत् २००५ वि०

हिंदुई साहित्य का इतिहास : गार्सां द तासी, अनुवादक लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय

हिंदुस्तानी संगीत पद्धति क्रमिक पुस्तक मालिका : पं० विष्णुनारायण भातखडे

संस्कृत—

अभिनवराग मंजरी : पं० विष्णु शर्मा, प्रकाशक भालचंद्र सीताराम सुकथनकर, मुद्रक आर्य भूषण प्रेस, पूना, संस्करण सन् १६२१ ई०

काव्यादर्श : दंडी, प्रकाशक डा० वी० एस० सुकथनकर, मुद्रक, भाण्डा प्राच्य विद्या मदिर मुद्रणालय, सन् १६३८ ई०

काव्यालंकार : भामह, संपादक प० बटुकनाथ शर्मा व प० बलदेव उपाध्याय, प्रकाशक जयकृष्णदास, विद्याविलास प्रेस, बनारस, सन् १६२८ ई०

काव्य प्रकाश : मम्मट, संस्कृत टीका बालबोधनी, प्रकाशक रघुनाथ दामोदर करमरकर, मुद्रक आर्य भूषण प्रेस, पूना, चतुर्थ संस्करण सन् १६२१ ई०

काव्य मीमांसा : राजशेखर, प्रकाशक बन्यतोष भट्टाचार्य, ओरियन्टल इन्स्टीटयूट बड़ौदा से प्रकाशित, मुद्रक निर्णयसागर प्रेस, तृतीय सस्करण सन् १६३४ ई०

चतुर्दण्डी प्रकाशिका : श्री वेकटमखि, संपादक एस० सुब्रह्मण्य शास्त्री, टी० वी० सुब्बरावाय वेंकटरामाय, मुद्रक भद्रपुरी संगीत विद्वत्सभा, संस्करण सन् १६३४ ई०

नाट्य शास्त्र : भरत, संपादक बटुकनाथ शर्मा तथा बलदेव उपाध्याय, प्रकाशक जयकृष्णदास हरिदास गुप्त, विद्याविलास प्रेस, बनारस, सन् १६२६ ई०

निरोध लक्षण : षोडश ग्रंथ, श्री वल्लभाचार्य, संपादक भट्ट रमानाथ शर्मा, मुद्रक निर्णयसागर प्रेस, बंबई, संस्करण संवत् १६७६

नीतिशतकम् : भर्तृहरि, चौखम्बा संस्कृत पुस्तकालय

बृहद्देशी : मतंग मुनि, संपादक के० साम्बशिव शास्त्री, राजकीय मुद्रणयंत्रालय, त्रावंकोर

श्री मद्भागवत् : महापुराण वेदव्यास, प्रकाशक घनश्यामदास जालान, गीता प्रेस, गोरखपुर

मेघदूत : कालिदास, अनुवादक एच० एच० विलसन, द्वितीय संस्करण

राग कल्पद्रुमांकुर : प्रकाशक विष्णुनारायण भातखडे, मुद्रक निर्णय सागर प्रेस, बंबई, संस्करण सन् १९११ ई०

राग चंद्रिका : प्रकाशक विष्णुनारायण भातखंडे, मुद्रक निर्णय सागर प्रेस, बंबई, सस्करण सन् १९११ ई०

राग तत्वविबोध : श्री निवास पडित, प्रकाशक भालचन्द्र सीताराम सुकथनकर, आर्य भूषण प्रेस, पूना, सस्करण सन् १९१८ ई०

राग मंजरी : श्री पुडरीक विट्ठल, प्रकाशक भा० सी० सुकथनकर, आर्य भूषण प्रेस, पूना, संस्करण सन् १९१८ ई०

राग तरंगिणी : लोचन, प्रकाशक भालचन्द्र सीताराम सुकथनकर, आर्य भूषण प्रेस, पूना, संस्करण सन् १९१८ ई०

रामायण : वाल्मीकि, टीकाकार श्री गोविदराज, प्रकाशक टी० आर० कृष्णाचार्य, मुद्रक निर्णय सागर प्रेस, सन् १९१२ ई०

संगीत दर्पण दामोदर पडित अनुवादक विश्वम्भरनाथ भट्ट, प्रकाशक प्रभुलाल गर्ग, सगीत कार्यालय, हाथरस, प्रथम संस्करण जुलाई सन् १९५० ई०

संगीत पारिजात : अहोबल पडित, भाष्यकार पं० 'कलिन्द जी', प्रकाशक प्रभुलाल गर्ग, सगीत कार्यालय, हाथरस, प्रथमावृत्ति अगस्त सन् १९४१ ई०

संगीत मकरन्द : नारद, संपादक मंगेश रामकृष्ण तेलंग, मुद्रक, निर्णय सागर प्रेस, सन् १९२० ई०

संगीत रत्नाकर : शार्ङ्गदेव, संपादक पं० एस० सुब्रह्मन्य शास्त्री, मुद्रक वसंत प्रेस, अदयर (Adyar) मद्रास, सन् १९४३ ई०

संगीत राज : कालसेन (महाराणा कुंभा), सम्पादक डा० सी० कुनहनराजा, अनूप सस्कृत लाइब्रेरी, बीकानेर सन् १९४६ ई०

संगीत समयसार : पार्शदेव, प्रकाशक महामहोपाध्याय, त० गणपति शास्त्री, मुद्रक राजकीय मुद्रणयन्त्रालय, त्रिवन्द्रम सन् १९२५ ई०

संगीत सुधा : श्री रघुनाथ भूप, सपादक श्री पी० एस० सुन्दरम अय्यर व पं० एस० सुब्रह्मण्य शास्त्री, प्रकाशक तथा मुद्रक संगीत विद्वत्सभा, मद्रास, सन् १९४० ई०

स्वरमेल कलानिधि : रामामात्य, अनुवादक पं० विश्म्भरनाथ भट्ट, प्रकाशक, प्रभुलाल गर्ग, संगीत कार्यालय, हाथरस, संस्करण मई १९५० ई०

साहित्य दर्पण : विश्वनाथ, टीकाकार श्री शालिग्राम शास्त्री, प्रकाशक श्री श्यामसुन्दर शर्मा, मुद्रक नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ, सं० १९७८ वि०

हरिवंश पुराण : टीकाकार नीलकण्ठ, पूना प्रकाशन, प्रथम सस्करण सन् १९३६ ई०

गुजराती–

राग अने रस : पं० ओंकारनाथ ठाकुर, प्रकाशक गो० हृ० भट्ट प्राच्य विद्या-मंदिर, बड़ौदा, मुद्रक पटवा प्रिंटिंग प्रेस, बड़ौदा, प्रथम आवृत्ति संवत् २००८ वि०

मराठी–

मराठी : हिंदुस्तनी संगीत पद्धति क्रमिक पुस्तकमालिका, सहावे पुस्तक, पं० विष्णुनारायण भातखंडे, संपादक प्रोफेसर श्री कृष्णनारायण रातांजनकर, संस्करण सन् १९३७ ई०

पत्र पत्रिकायें–

आलोचना : राजकमल प्रकाशन दिल्ली

खोज रिपोर्ट : नागरी प्रचारिणी सभा काशी

जनभारती : कलकत्ता

नवनीत : मुम्बई

नागरी प्रचारिणी पत्रिका : काशी

नाद : मैरिसकालिज, लखनऊ

प्रतीक : सरस्वती प्रेस बनारस द्वारा प्रकाशित

माधुरी : लखनऊ

रजत जयंती पत्रिका : मैरिस कालेज, लखनऊ

राजस्थानी : कलकत्ता

विशाल भारत : कलकत्ता

सरस्वती : इंडियन प्रेस, इलाहाबाद

सारंग : पब्लिकेशन्स डिवीज़न, कर्ज़न रोड, नई दिल्ली

साहित्य संदेश : आगरा

संगीत : हाथरस

हिंदी साहित्य सम्मेलन पत्रिका : प्रयाग

ENGLISH BOOKS —

A Comparative System of some of the Leading Music Systems of the 15th, 17th and 18th centuries. V. N Bhatkhande.

A Dictionary of Music and Musicians: Grove.

A History of Music. Percy C. Buck.

Ain-I-Akbari. Abul Fazi Allami, translated by H. Blochmann.
Ain-I-Akbari. Abul Fazi Allamı, translated by H. S. Jarret.
Akbarnama : Ttranslated by H. Beveridge.
A Short Account of the Hindu System of Music. Anne C. Wilson.
Essays on Poetry and Music as they Effect the Mind. Beattie.
Golden Treasury. Pal Grave.
Hındu Musıc from various authors. S. M. Tagore.
History of Auragnzib. J. N. Sarkar.
Indian Music. B. A. Pingle.
Introduction to the study of Indian Music. E. Clements.
Lectures on Indian Music. E. Clements.
Masterpieces of Rajput Paintings. O. C. Gangoli.
Mathura Memoirs. F. S. Growse.
M. E. Mohan's General Knowledge Encyclopedia.
Milton, Book V.
Mirati Sıkhandari. Sikandar, translated, by Fazlullah, Lutfullah Faridi.
Music. Thomas Russel.
Music and its Appreciation. Joseph Williams Ltd.
Music and Religıon. Brıan Wibberly.
Music and Sound. L. L. S. LLoyd.
Music of India. Popley.
Philosophy of Fine Art. Hegel.
Poets and Music. E. W. Naylor.
Psychology of Music Carl E. Seashore.
Sangit Bhava. Maharana Vijayadeve ji of Dharampur.
Sangit of India. Atiya Begum.
Six Principal Ragas - With a briet view of Hindu Music. S. M. Tagore.
The Appeal in Indian Music. Mani Sahukar.
The Dance of Shiva. Anad Coomarswami.
The Encyclopedia Britanica.
The Krishna Pushkaram Souveneir, People Press, Bezwada.
The Laud Rangmala miniatures, Herbert J. Stooke and Karl Khandelavala.
The Merchant of Venice. Shakespeare, edited by A. W. Verity.
The Music of Hındustan. A. H. Fox, Strang Ways.
The Music Of India. Atiya Begum.
The New Dictionary Of Thoughts. Tryon Edwards.
The Origın Of Raga. Sripad Bondopadhyaya.

The Philosophy of Music. William Pole.
The Pocket Book of Quotations. edited by Henry David Off,
The Shorter Bartletts Familiar Quotations. John Bartlett.
Best Quotations for all Occasions. edited by Lewis C. Henery.
Loci-Critici. George Saintsbury.
Ragas and Raginis. O. C. Gangoli.
Rhetoric and Prosody, L. R. M. Brander.
Science and Music. Sir James Jeans.

रागिनी केदारा

चित्र संख्या १

रागिनी नट
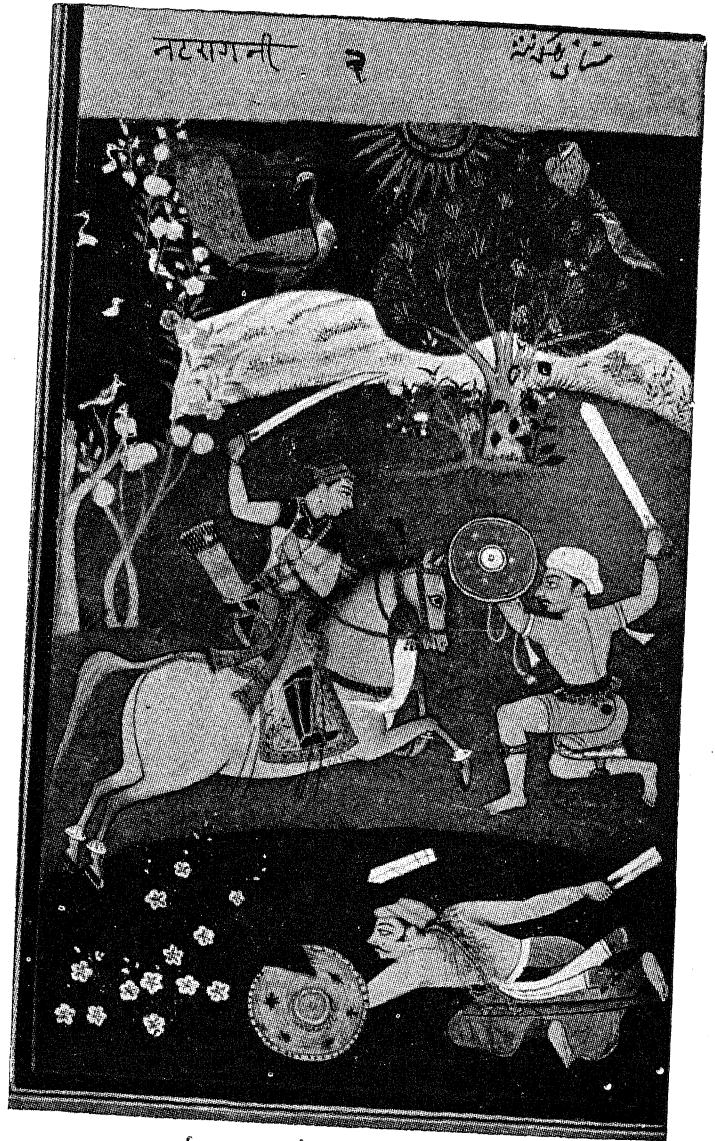
चित्र संख्या २.

रागिनी मारू
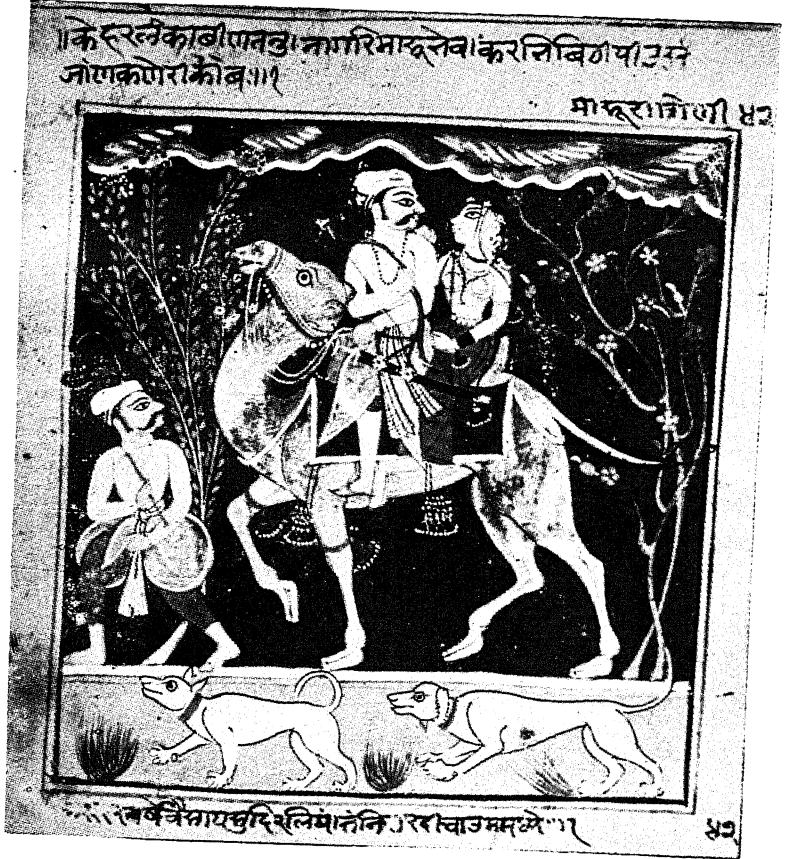
चित्र संख्या ३

रागिनी कान्हरो

चित्र संख्या ४

राग मल्हार

चित्र संख्या ६

राग मालव कौंसिक
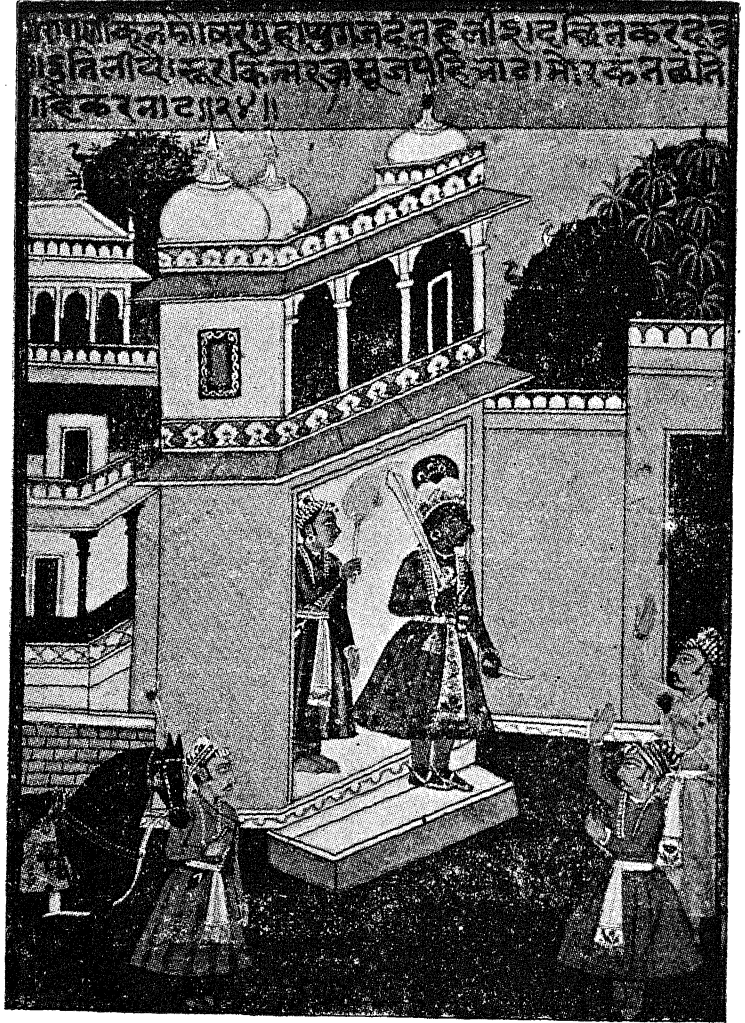
चित्र संख्या ६

राग भैरव

चित्र संख्या ७

रागिनी सारंग

चित्र संख्या ८

रागिनी विभास
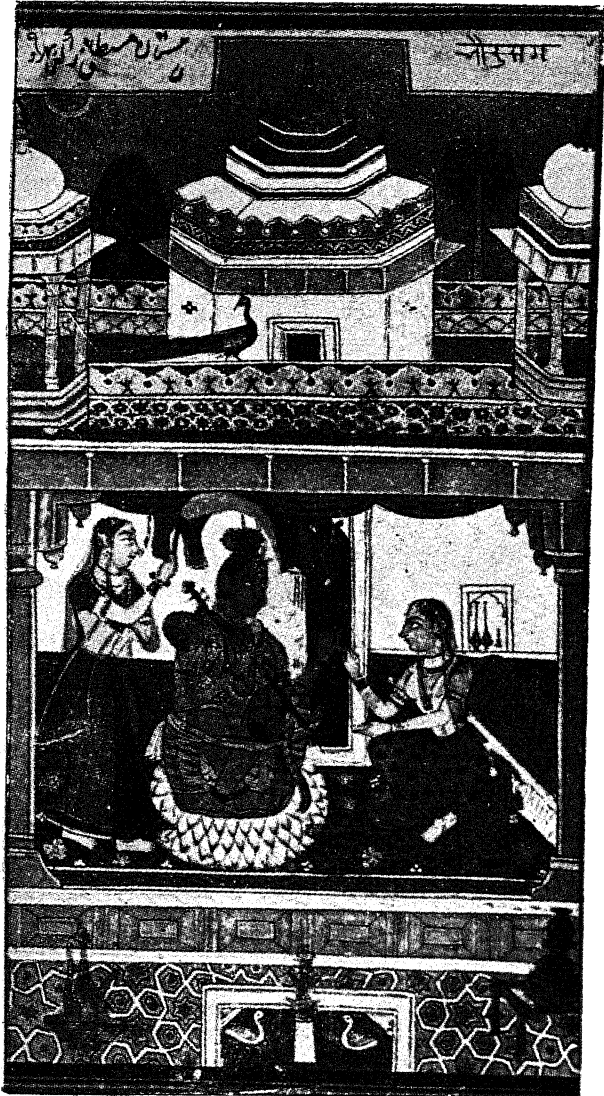
चित्र संख्या ६
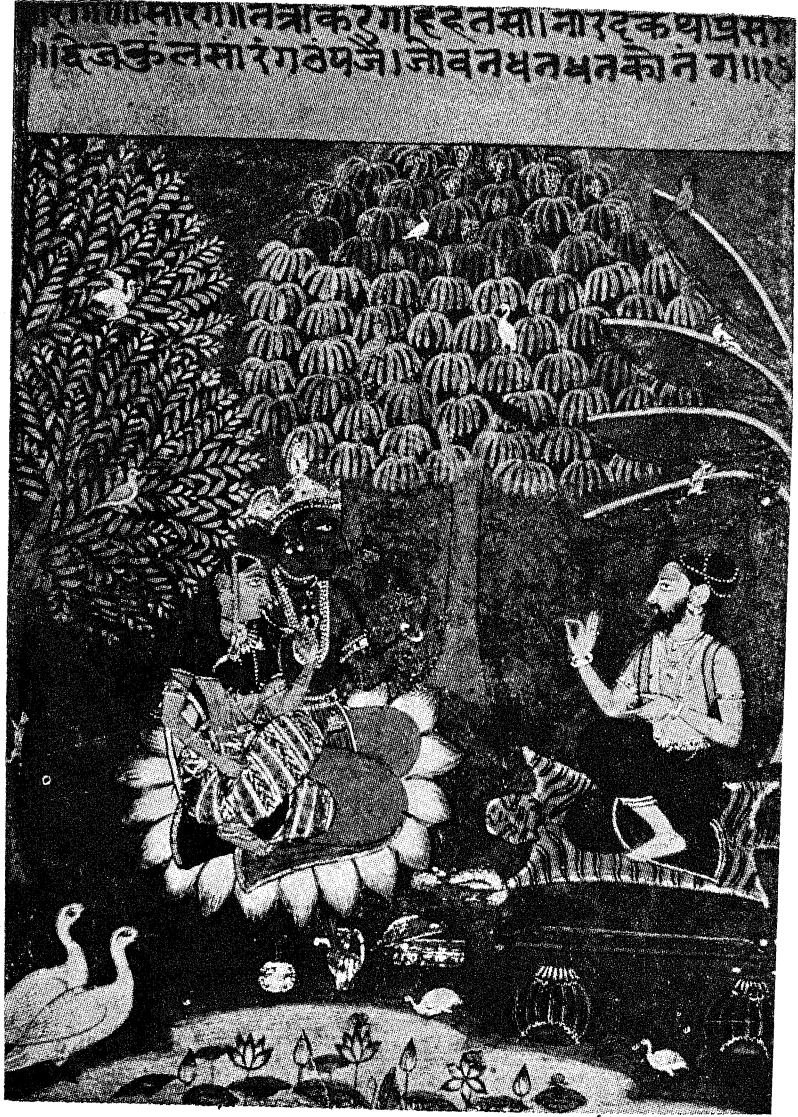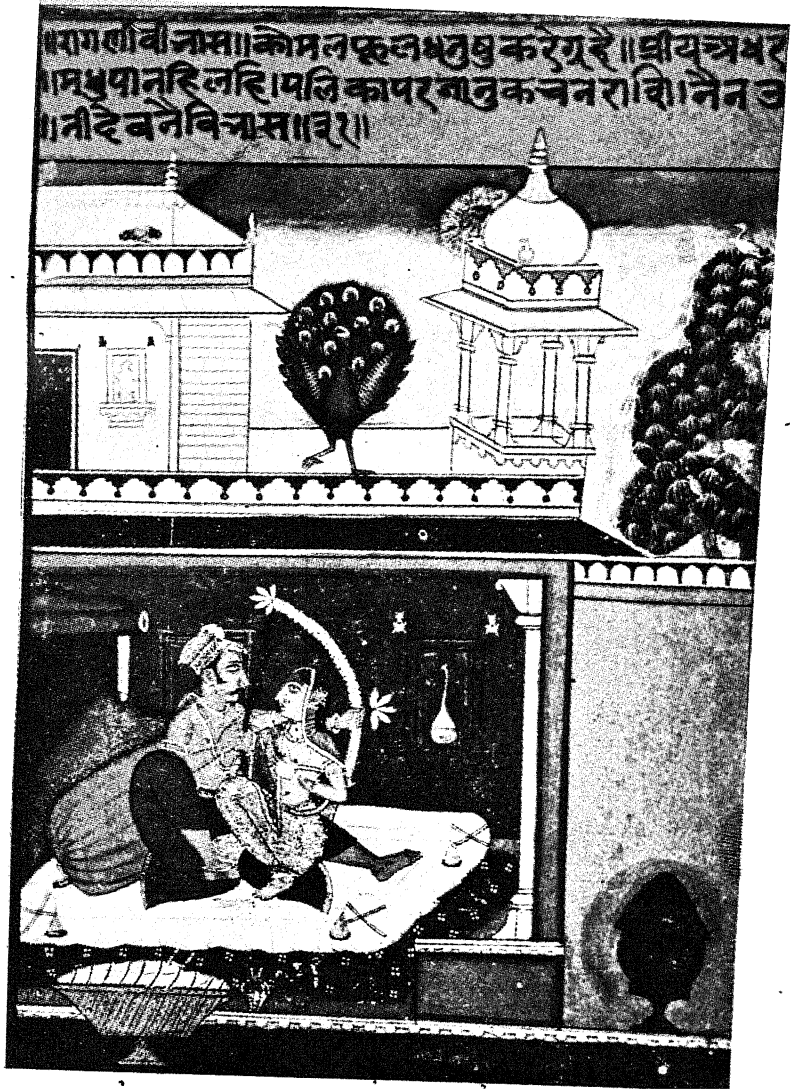
राग वसंत
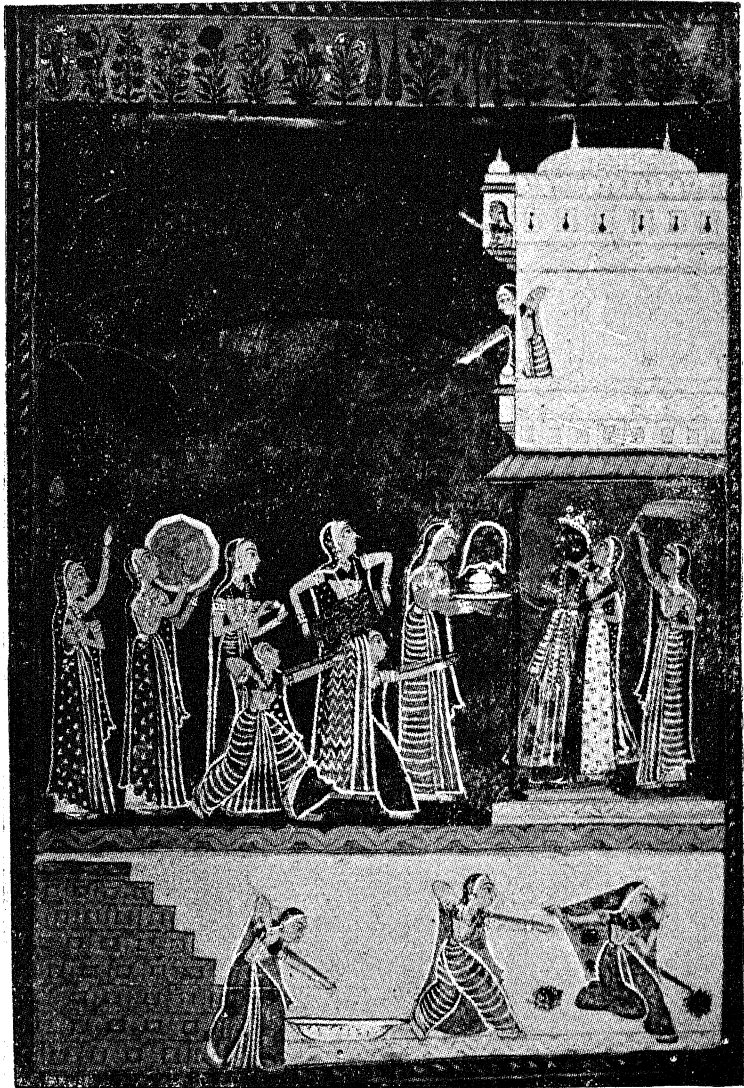
चित्र संख्या १०

राग हिंडोल

चित्र संख्या ११

रागिनी तोड़ी

चित्र संख्या १२

अनुक्रमणिका

(ग्रंथ)

---o---

अनुक्रमणिका

[पात्र]

———o———

शुद्धिपत्र

पृष्ठ		पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
भूमिका	क	८	उदग्रथ	उदग्र
,,	घ	८	न	ने
,,	ट	१४	ह	है
,,	द	६	अविभावक	अभिभावक
११		२	जिनके	उनके
१८		१	परमानन्दादास	परमानन्ददास
१६		१०	म	में
२६		८	कुंभनदास	कृष्णदास
२६		१६	महाप्रभन	महाप्रभून
३५		२८	बोल	बोले
४३		२३	म	में
४६		१४	राजा असकरण	राजा आसकरण
४७		१७	होने कारण	होने के कारण
५४		१६	पध, पध	पध
५६		१३	संगीत दामोदर	संगीत पारिजात
५७		४	विक्रुन	विकृत
५७		१५	मं	म
५७		२१	अन्य-अन्य	अन्य
५७		२६	वही, पृ० १८	संगीतपारिजात, अहोबल,पृ० १८
६२		२१	वही, पृ० ६६	संगीतदर्पण, दामोदर, पृ० ६६
६५		१०	वह	वे
६५		१०	करता है	करते है
६७		३	राष्ट्रीय के गान	राष्ट्रीय गान
६८		२	भिव जी	शिव जी
७०		१५	लगा व	लगाव
७२		३२	हिचकचाते	हिचकिचाते
७५		३४	once the once	once
८३		१	सं ाम	संगम
६१		१०	र्का	कवि

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
९३	२	सं ीत	संगीत
१२६	५	।४	।४ (हरिदास)
१२७	८	देशख	देशाख
१३१	१२	भीजलिट	भीजलट
१३२	६	(हितहरिवंश)	(सूरदास)
१३८	२८	युगलशत	युगलशतक
१४०	१४	नृत्य के प्रकाश	नृत्य के प्रकार
१४४	१३	करता।	करता है।
१४५	२—३	प्रणय की की	प्रणय की
१४८	२९	वही, पद सं० १६	हस्तलिखित पद संग्रह, कृष्णदास, डा० दीनदयालु गुप्त, पद सं० १६
१४९	३१	वही, पृ० २६, पद सं० ५८	गोविंदस्वामी, कांकरौली, पृ० २६, पद सं० ५८
१५३	२८	वही, (दूसरा खंड), पृ० १३८८, पद सं० ३९४६	सूरसागर, (दूसरा खंड), पृ० १३८८, पद सं० ३९४६
१६३	२२	वही, पृ० १०१, पद सं० ३०८	सूरसागर, पृ० १०१, पद सं० ३०८
१६६	२१	वही, पृ० १९४, पद सं० ९	अष्टछाप-परिचय, प्रभुदयाल मीतल, पृ० १९५, पद सं० ८
१६७	२०	वही, पृ० ३२६, पद सं० ४१	अष्टछाप परिचय, प्रभुदयाल मीतल, पृ० ३२६, पद सं० ४१
१६८	२३	वही, पृ० २५८, पद सं० २६६	भक्त कवि व्यास जी, वासुदेव गोस्वामी, पृ० २५८, पद सं० २६६
१७४	३	गायन गायन का	गायन का
१७५	२२	संगीताचार्य	संगीताचार्यो
१७८	१९	हिंडोला	हिंडोल
१८०	१७	खंवावती	खंभावती
१८२	१	(६)	(५)
१८३	११	पुंडरीक विट्टठल	पुंडरीक विट्ठल
१८८	१९	म	में
१८९	१३	लालत	ललित
१९२	६	रामकगी	रामकली
१९७	१४	१४	२४
२१४	२४	रामश्री	रामग्री

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२१४	३१	बिलावल, रामकली	बिलावल-रामकली
२१६	२	नटनारायण तथा चर्चरी	नटनारायण चर्चरी
२१७	१	निकर्ष	निकष
२१७	१६	emonion	emotion
२२६	३	ह	है
२२६	२३	और सिद्धांत	और समय सिद्धांत
२२७	८	शाहंशाह	शहंशाह
२२८	३१	(तृतीय खंड)	(द्वितीय खंड)
२३३	१	चरान	चराने
२३६	१३	५ बजे ७ बजे	५ बजे से ७ बजे
२३६	२६	रस और रागों	रस, रागों
२४४	४	श्री स्वामिनी जी जी	श्री स्वामिनी जी
२४५	२७	वही, पृ० ११६	८४ वैष्णवन की वार्ता, पृ० ११६
२५१	२	वादी स्वर (ध)	वादी स्वर धैवत (ध)
२५१	१५	रास सारंग	राग सारंग
२५५	३	षदों	पदों
२५५	११	गय	गेय
२५५	१२	असावरी	आसावरी
२७७	३०	प्रति सं० ३७१।२६४	प्रति सं० ३७१।२६६
२८८	१८	अपा्ी	अपनी
२९५	१	कलश > कलश	कलश > कलस
३५०	६	नि त	चि त
३६४	१	गाया करते थे	विष्णुपद गाया करते थे

टिप्पणी— पृ० ३५१ पर रूपक ताल में दिये गये पद की ताल बद्ध रचना अशुद्ध मुद्रित हो गई है। उसका शुद्ध रूप निम्न प्रकार से है—

			स्थाई	क हि २	ना ऽ ३
प र ति ×	ते ऽ २	रे ऽ ३	ब द न ×	की ऽ २	ऽ ऽ ३
ओ ऽ प ×	कं हि २	ना ऽ ३	प र ति ×		

अंतरा पहला

										झ	ल	क	नि
										२		३	
न	व	मो	ति	न	हि	ल	जा	व	ति	नि	र	ख	ति
×			२		३		×			२		३	
स	सि	सो	भा	ऽ	भ	ई	लो	ऽ	प				
×			२		३		×						

अंतरा दूसरा

										प	ल	क	न
										२		३	
ला	ग	त	चा	ऽ	ह	त	पिय	त	न	उ	ऽ	म्न	त
×			२		३					२		३	
भों	ऽ	ह	मा	नो	घ	टा	टो	ऽ	प				
×			२		३		×						